MAHI - 09

# वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

## भारत में भक्ति आन्दोलन एवं सूफीवाद

**MAHI - 09**

# वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

## भारत में भक्ति आन्दोलन एवं सूफीवाद

## पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

**कुलपति(अध्यक्ष)**

**कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

- **डा. बृजकिशोर शर्मा (संयोजक)**
  सह-आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
  इतिहास विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **प्रो. रविन्द्र कुमार शर्मा**
  इतिहास विभाग
  कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
- **प्रो. डी.सी. शुक्ला**
  सेवानिवृत्त,जयनारायण विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **प्रो. एस.पी. गुप्ता**
  इतिहास विभाग
  अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,अलीगढ़
- **प्रो. जे.पी. मिश्रा**
  सेवानिवृत्त, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **प्रो. एस.एन. दुबे**
  इतिहास विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. वी.के. वशिष्ठ**
  इतिहास विभाग, एम.डी.एस. विश्वविद्यालय,अजमेर
- **डा. कमलेश शर्मा**
  सहायक आचार्य, इतिहास विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **डा. याकूब अली खान**
  इतिहास विभाग
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

## पाठ्यक्रम निर्माण दल

- **श्री सुल्तान अहमद**
  विज्ञान नगर
  कोटा
- **जाकिर खान**
  पुरालेखपाल
  राष्ट्रीय अभिलेखागार, भोपाल
- **डा. मकसूद अहमद खान**
  इतिहास विभाग
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **श्रीमती सैयद रिजवाना तबस्सुम**
  व्याख्याता
  सर सैयद कॉलेज, औरंगाबाद
- **डा. याकूब अली खान**
  इतिहास विभाग
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

## अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

| **प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच** | **प्रो.(डॉ.)एम.के. घड़ोलिया** | **योगेन्द्र गोयल** |
|---|---|---|
| कुलपति | निदेशक(**अकादमिक**) | प्रभारी |
| **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा** | **संकाय विभाग** | **पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग** |

## पाठ्यक्रम उत्पादन

**योगेन्द्र गोयल**

सहायक उत्पादन अधिकारी,

**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

**पुनः उत्पादन अप्रैल-2011 ISBN No. 13/978-81-8496-278-9**

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

**व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।**

# वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

## भारत में भक्ति आन्दोलन एवं सूफीवाद


| इकाई संख्या | इकाई का नाम | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| **खण्ड- 1** | | |
| इकाई - 1 | उद्भव एवं अवधारणा-दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन | 7–29 |
| इकाई - 2 | शंकराचार्य एवं उनका अद्वैत वेदान्त | 30–48 |
| इकाई - 3 | भारत में भक्ति आन्दोलन का विकास | 49–60 |
| इकाई - 4 | इस्लाम का भक्ति आंदोलन पर प्रभाव | 61–72 |
| इकाई - 5 | भक्ति संतों की विशेषताएं | 73–86 |
| **खण्ड- 2** | | |
| इकाई - 6 | संत कबीर का जीवन एवं शिक्षाएं | 87–98 |
| इकाई - 7 | I-नानक एवं उनकी शिक्षाएं<br>II-खालसा पंथ : उत्पत्ति, विकास सिद्धान्त एवं दर्शन | 99–115 |
| इकाई - 8 | भक्ति आंदोलन के अन्य संत एवं उनकी विशेषताएँ | 116–123 |
| इकाई - 9 | सांस्कृतिक संश्लेषण और भक्ति आन्दोलन | 124–134 |
| इकाई - 10 | भक्त संतों का भारतीय समाज एवं संस्कृति में योगदान | 135–150 |
| **खण्ड- 3** | | |
| इकाई - 11 | भारत के बाहर सूफीमत की उतपत्ति और विकास | 151–170 |
| इकाई - 12 | सूफीमत का भारत में विकास | 171–182 |
| इकाई - 13 | चिश्ती सिलसिले के प्रमुख सन्त | 183–193 |
| इकाई - 14 | चिश्ती सन्तों का खानकाही और राज्य के स्ज़ाथ उसका सम्बन्ध | 194–202 |
| इकाई - 15 | भारत में सुहरावर्दी सिल-सिला (संघ) के प्रमुख सूफी तथा उनके सिद्धान्त एवं शिक्षाएँ | 203–217 |
| **खण्ड- 4** | | |
| इकाई - 16 | सुहरावदी खानकहें और उनका राजनैतिक सम्बन्ध | 218–226 |
| इकाई - 17 | सूफीवाद के अन्य सूफी सम्प्रदाय | 227–241 |
| इकाई - 18 | बोहरों की सूफी परम्परा | 242–249 |
| इकाई - 19 | सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद | 250–262 |
| इकाई - 20 | मुस्लिम रहस्यवादी विचारधारा और भारतीय संस्कृति को उसका योगदान | 263–272 |

# इकाई – 1

# उद्भव और अवधारणा – दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन

**इकाई संरचना**


1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आड़वार – क

1.3 आड़वार – ख

1.4 आड़वार – ग

1.5 शैव नायनार - स्रोत, दार्शनिक पृष्ठभूमि, रहस्यवाद (क)

1.6 शैव नायनार (ख)

1.7 रामानुज द्वारा भक्ति को दार्शनिक पृष्ठभूमि की देन

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 संदर्भ ग्रन्थ


## 1.0 उद्देश्य

भक्ति की अवधारणा, संरचना तथा उद्भव विषयक विभिन्न मत–

दक्षिण भारत में भक्ति का उद्भव तथा विकास अत्यंत प्राचीन है। शैव संबंध में आगम परंपरा ई. पू. शताब्दियों की मानी गयी है। दक्षिण भारत में भक्ति की परंपरा समझने के लिये हमको भक्ति की अवधारणा तथा इसके उद्भव विषयक विभिन्न मतों को समझना आवश्यक है।

भक्ति का इतिहास सांस्कृतिक इतिहास की आदर्श प्रक्रिया के अन्तर्गत समझा जा सकता है। यद्यपि राजनैतिक इतिहास में सर्वथा बुद्धिवादी तथा जैविक विकास की प्रक्रिया नहीं देख सकते है, विचारों के विकास के इतिहास में यह देखी जा सकती है। इस दृष्टिकोण से भक्ति के उद्भव तथा विकास का इतिहास सांस्कृतिक इतिहास की एक आदर्श प्रक्रिया का इतिहास है जिसमें सतत तर्कपूर्ण तथा जैविक विकास देखा जा सकता है।

**भक्ति की धातु भज के दो अर्थ है** – सेवा तथा सम्मिलित होना या बांटना। सेवा के अर्थ ईश्वर की विभिन्न नाम रूपों द्वारा आराधना है। यह आनुष्ठानिक (वैधी) अथवा भावनात्मक (रागामिका)[1] दोनों ही हो सकती है। इसमें एक विशिष्ट आचार संहिता तथा उपासना अथवा पूजा प्रणाली भी समाहित रहती है। शनै शनै : भक्त, के हृदय का शुद्धीकरण, उसको पूर्व कर्मों से मुक्ति, तथा उसके अज्ञान का आवरण हटता है। जो वह पहले श्रद्धा के आधार पर समझता था अब साक्षात अंतदृर्ष्टि से देखता है जिसका फल ईश्वर साक्षात्कार है। यही पर भक्ति तथा ईश्वर की लीला में सम्मिलित होना अथवा "बांटना" के अर्थ है। दोनों ही परिस्थितियों में भक्ति से ईश्वर के साथ एक वैयक्तिक संबंध स्थापित होता है जिसमें ईश्वर भी वैयक्तिक रूप में देखा जाता है जिससे भक्त संबंध स्थापित कर सकता है। प्रेम के इस रूप

की सैद्धांतिक अवधारणा तथा इसके विकास के लिये विशिष्ट व्यावहारिक आचरण भी भक्ति के विकास के चरण माने गये है।

अत: भक्ति की संरचना सैद्धांतिक, भावनात्मक तथा व्यावहारिक है। सैद्धांतिक रूप से. भक्ति ईश्वर तथा भक्त के संबंधों के सिद्धान्तों का निरूपण है। भावनात्मक दृष्टि से ईश्वर तथा मनुष्य के मध्य विभिन्न संबंधों की अनुमति तथा रसानुमत है तथा व्यावहारिक तौर पर यह आराधना की विधियां, नैतिक तथा आध्यात्मिक चरित्र को परिभाषित करती है।[2] वैदिक ऋचाओं में यह सभी तत्व प्राप्त होते है। देवताओं के पिता–माता आदि के रूप में संबंध स्थापित करना, उनसे अनुकम्पा की भीख मांगना तथा आत्म समर्पण के तत्व सभी उपर्युक्त बात की पुष्टि करते है। डी.सी सरकार[3] भक्ति की अवधारणा को अनार्य तत्व मानते है। जिसको बाद की आर्य–अनार्य जनता ने अपनाया। वे इसको वैदिक धर्म के स्वरूप से भिन्न मानते है, क्योंकि वैदिक धर्म में याज्ञिक तत्व प्रमुख थे, परन्तु उनके इस मन के विरूद्ध यह कहना आवश्यक है कि यज्ञ को लेन–देन से संबंधित आत्महीन यांत्रिक प्रक्रिया मात्र कह देना उचित नही। उसके अंतर्गत देवतोद्देशेन द्वव्यतयाग: तथा द्दविर्वेदीक्षित: के भाव प्रमुख थे जिनसे समर्पण तथा आत्म त्याग की भावनाएं दिखती हैं। यद्यपि वेदों में पौराणिक धर्म की भांति मूर्ति पूजा के लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते फिर भी उनमें भक्ति के तत्व का निराकरण नहीं कर सकते। वैदिक ऋचाओं में ईश्वर का सहज अनुभव तथा विश्वास सर्वोच्च दिखता है तथा ईश्वर से विविध संबंध स्थापित किये गये है।[4] उसके विविध रूपों में प्रकटीकरण के कारण उसको किसी एक मूर्त रूप में बांधना उचित न समझा गया। इस सभी रूपों के पीछे एक पराशक्ति की कल्पना थी जिसको ऋचाओं में सैद्धान्तिक तथा बुद्धिवादी निरूपण तो नहीं है परन्तु इस विषय में अनुभव तथा अंतदृर्ष्टि की झलकियां स्पष्ट दिखती है। बाद में उपनिषदों में इसका सैद्धान्तिक स्वरूप स्पष्ट हुआ।

डी.सी. सरकार विष्णु से संबंधित ऋचा[5] में एक प्रकार के सांप्रदायिकता के बीज देखते है जो परवर्ती वैष्णव संप्रदाय से संबंध रखते है तथा जो भक्ति के तत्वों से संबंधित माने जा सकते है। परन्तु भक्ति तथा सांप्रदायिकता के इस यमन उद्भव का सिद्धांत कृत्रिम है, क्योंकि (अ) स्वयं परवर्ती–वैष्णव आचार्यों द्वारा भक्ति विषयक सभी सिद्धांतों में इसको सांप्रदायिकता तथा विशिष्टताओं से परे एक सार्वभौमिक तत्व माना गया है जो मानव की चित्तवृत्ति में परम चेतना का प्रतिबिंब है।[6] भक्ति को मानव का ईश्वर के प्रति सहज स्वाभाविक आकर्षण माना गया है।[7] अथवा आध्यात्मिक शक्ति के रूप में माना है।[8] (ब) क्योंकि भक्ति मानव की एक स्वाभाविक अनुभूति है जो किसी भी देशकाल में प्रस्फुटित हो सकती है। यद्यपि वैदिक ऋचाओं में उसका सैद्धान्तिक निरूपण नहीं है फिर भी उसके सभी आवश्यक तत्व विद्यमान है। (स) आर्य तथा अनार्य का भेद अब चुनौती ग्रस्त है।[9]

---

1. वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाविधा रूप गोस्वामी हरिभक्तिरसामृतसिधु पूर्वभाग
2. सुस्मिता पांडे – वर्थ ऑफ भक्ति इन इंडियन (रिलिजन्स एंड आर्ट पृ.2)
3. सरकार – रिलिजस लाइफ –

सुवीश जायसवाल भक्ति शब्द को जनजातीय संपत्ति के मार्ग से उद्भव मानती है,[10] परंतु यह विचार भी अनेक पूर्वाग्रहों से ग्रसित है। पहला यही कि जनजाति (ट्रायबल) शब्द भी अनेक पूर्वाग्रहों से ग्रसित है और जनजातियों का ऋग्वैदिक ऋचाकारों से जातिगत भेद देखने का कोई प्रमाण नहीं है। दूसरे कि जैसा ऊपर बतलाया गया है भक्ति की धातु के दो अर्थ है जिससे साधक तथा साध्य भक्ति के अर्थ निकलते है।

ऐतिहासिक तथ्यों से सर्वथा धर्म विषयक विचारों के उद्भव देखने की परंपरा में डी. डी. कोसम्बी भी आते है जिनके अनुसार भक्ति की अवधारणा सामंतवादी युग के पूर्व की है जो बाद में सामंतवादी युग के लिये आदर्श थी।[11] इस प्रकार के मतों में

ऐतिहासिक तथ्यों से सर्वथा धर्म विषयक विचारों का उद्भव देखा गया है जो उतना ही भ्रामक है जितना धर्म विषयक विचारों को बाह्य तथ्यों से पूणरूपेण स्वतंत्र देखना।[12] ये विचार एक देश के आर्किटाइप (आद्य अनुमत) से फूटने वाले प्रतीकों के माध्यम से प्रकट होते है तथा एक विशिष्ट संस्कृति के ईश्वर, मनुष्य तथा सृष्टि विषयक अनुमतों के गहन रूप को दर्शाते है। शुद्ध प्रेम, निष्ठा, अपने आप को एक दिल आलौकिक संपूर्ण शक्ति का अंग मानना, सीमित व्यक्तिगत से असीम की ओर जाने की उत्कटता आदि ऐसी सार्वभौमिक अनुभूतियां है जो किसी एक विशिष्ट समाजार्थिक संरचना की प्रतिबिंब नहीं कही जा सकती है। हां विशिष्ट सामाजिक संरचनाएं अवश्य इन मूल्यों से प्रेरित हो सकती है।

कुछ विद्वान भागवत पुराण के एक उद्धरण (1.145.50) के आधार पर प्राय: यह कहते है कि भक्ति की उत्पत्ति दक्षिण भारत में हुई। इस उद्धरण में भक्ति द्वारा यह कहा गया है कि वह द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई तथा कर्नाटक में बढ़ी। परंतु जैसा कि ऊपर कहा गया है भक्ति की अनुभूति सांप्रदायिकता तथा देशकाल से परे है तथा उसका विकास हम वैदिक काल

---

4. सुस्मिता पांडे – बर्थ ऑफ भक्ति अध्याय 2
5. वदविष्णो: परमं पदं सदा पश्चंति सूरय:
6. मधुसूदर सरस्वती – **भगवदभक्ति रसायनम्**
7. वल्लभाचार्य – **अनुमाण्य**
8. विशेषत : अचिन्त्य मेदामेद में।
9. आज अधिकांश विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुंच रहे है कि यह शब्द सही माने नही रखता। आर्य शब्द भाषा विषयक विशेषताएं दिखलाता है जाति विषयक नहीं। यह विचार कि आर्य जाति ने द्रविड़ जाति को जीता अब अस्वीकृत हो गया है। हमको यह भी स्पष्टत: ज्ञात नही है कि ऋग्वेद के रचनाकार यही बसने वाले इन्हीं यूरोपीय भाषा बोलने वाले लोग थे अथवा बाहर से आए, अथवा बाहर से आने वाले लोगों के अगमन का क्या रूप था।
10. सुवीश जायसवाल **दि ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ भागवतिजम** पृ.37 उनके अनुसार भगवत एक आदि जनजाति थी तथा भक्त इस जनजाति की संपत्ति का भागीदार।
11. डी.डी. कोसम्बी – **स्पेशल एंड इकनामिक एस्पेक्टस ऑफ द भगवदगीता** – मिथ एंड रियालटी पृ.31

से ही देख सकते है। भागवत का यह कथन संभवत: आड़वारों की संत परंपरा की ओर संकेत करता है। भक्ति से यहां अर्थ एक भावनात्मक तथा ठोस अनुभव के अर्थ में है जो आड़वारों द्वारा एक आंदोलन के रूप में फैला। उत्तर भारत में ई. पू. शताब्दियों से ही पुरातात्विक अवशेष भागवत भक्ति आन्दोलन की ओर संकेत अवश्य करते है परंतु ऐतिहासिक संत परंपरा के विषय में इतने प्रारंभिक काल का इतिहास अंधकारमय है। अत: दक्षिण भारतीय भक्तिवादी संत परंपरा भक्ति आंदोलन के रूप में विचारों के विकास के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखती है।

## 1.1 प्रस्तावना

**भक्ति के विकास की पृष्ठभूमि में दक्षिण भारतीय भक्ति आन्दोलन –**

दक्षिण भारतीय भक्ति आन्दोलन की विशिष्ट देन की व्याख्या करने के लिये उसको भक्ति के विकास की पृष्ठभूमि में समझना आवश्यक है। किसी भी धर्म के अन्तर्गत भक्ति के विकास का इतिहास शनै: शनै: आध्यात्मिकता की, अवधारणा के बढ़ने का इतिहास है। उपनिषदों में ईश्वर की अवधारणा पूर्णरूपेण आध्यात्मिक है। श्वेताश्वतर उपनिषद में तो वैयक्तिक ईश्वर का सैद्धांतिक निरूपण भी किया गया है। महाभारत में एकान्तिक भक्ति के स्वरूप का स्पष्ट निरूपण है। इसमें ईश्वर प्राप्ति कठोर तप, अथवा हिंसा और कर्मकांड से नहीं अपितु एकांतिक भक्ति से होती है।[13] कृष्णा, नारायण, विष्णु और वासुदेव को भी इसमें एक माना है जिनका स्वरूप इतना रोचक है कि वही स्वरूप बाद में आड़वारों की भक्ति का भी आधार बना। रामायण में भक्ति तथा अवतारवाद की सामाजिक मूल्यों से जोड़ा गया जिनका प्रतीक राम है। गीता में भक्ति को ज्ञान और कम से समग्र रूप से जोड़ा गया तथा अवतारवाद की एक उत्कृष्ट व्याख्या प्रस्तुत की गयी। इसमें साधन तथा साध्य दोनों प्रकार की भक्ति का निरूपण है। ज्ञानी भक्त की भक्ति परा भक्ति के अंतर्गत आती है। गीता में अवतार के रूप में ईश्वर का मानवीकरण तथा कर्म और ज्ञान द्वारा मनुष्य के ईश्वरी करण – इन दोनों तत्वों का भक्ति द्वारा ही संश्लेषण है। पंचरात्र संहिताओं में भक्ति के विकास की विस्तार से विधि दी है तथा अनुकम्पा और प्राप्ति की महिमा स्थापित की गयी है। इसमें ईश्वर को पांच प्रकट रूपों में – पर, व्यूह, विभव, अंतर्यामी तथा ऊर्धा है। पर ईश्वर का सर्वोच्च रूप है, व्यूह उसके निस्सरण का सिद्धांत है जिससे वह क्रमश : सूक्ष्य से स्थूल रूप से प्रगट होता है – जैसे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और शाम्ब। विभव के अर्थ अवतार है जैसे राम और कृष्ण अन्यर्तामी सभी के अन्दर के ईश्वर तथा अर्चा – उनका मूर्ति के रूप में प्रकटीकरण है। पंचरात्रियों के सभी कर्म, ज्ञान, योग क्रिया तथा चर्या के अन्तर्गत आते है। क्रिया के अंतर्गत मंदिर बनवाना तथा अर्चा के अन्तर्गत पूजा आती है। इसके अतिरिक्त पुराणों द्वारा अवतार की विकसित अवधारणा प्रस्तुत की गयी जिसमें विष्णु, कृष्ण आदि का संपूर्ण मानवीकरण, उनसे संबंधित पुराकथा तथा धर्म कथाओं का विकास, मंदिर तथा मूर्तियों का अधिक प्रयोग, व्यक्तिगत पूजा तथा सार्वजनिक पाठ

12. जोअश्विम वाश – सोशियालाजी ऑफ रिलिजन पृ.54.
13. महाभारत के शांति पर्व में एकांतिक भक्ति का स्वरूप स्पष्ट होता है जो भगवत धर्म का प्रमुख तत्व था।

की परम्परा बढ़ी। विद्वानों के अनुसार प्रारंभिक पुराणों का संकलन कुषाण एवं गुप्तकाल का प्रारंभ माना गया है। यद्यपि उनकी परम्परा प्राचीन मानी गयी है।

आड़वारों की भक्ति में उपनिषदों तथा गीता की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पांचरात्रियों की क्रिया तथा चर्या तथा अर्चा–अवतार को अत्याधिक महत्व देने की प्रवृत्ति तथा पौराणिक कथाओं से प्रभावित ईश्वर का संपूर्ण मानवीकृत स्वरूप ये सभी तत्व विद्यमान है। गीता की देन दार्शनिक पृष्ठभूमि थी तथा पंचरात्र की व्यावहारिक विज्ञान अंधता शास्त्र की थी। पुराणों में सैद्धांतिक अवधारणाओं तथा व्यावहारिक विज्ञान को धर्म कथाओं में पिरो कर एक शास्त्र का रूप दिया गया है जो सिद्धांत तथा आदेश के रूप में है तथा आनुभूतिक तथा वैयक्तिक उतने नहीं है। आड़वारों ने उपर्युक्त सभी धर्म कथाओं, सिद्धांतों आदि को आत्मसात कर अपने वैयक्तिक आध्यात्मिक अनुभव की अभिव्यक्ति की। उनका कथन उनके स्वयं के ठोस अनुभव पर आधारित था। हम पहली बार उनकी रचनाओं में रागात्मिकता तथा साध्य भक्ति के अंश देखते है। मध्यकालीन संतों की भांति वे सभी वर्गों तथा वर्गों से है जिन्होंने एक स्थान से दूसरे स्थान भ्रमण करते हुए भक्ति तथा ईश्वर प्रेम का संदेश दिया। बाद में विशिष्टाद्वैत का सिद्धांत उनकी भक्ति से प्रेरित हुआ। उनको "मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के प्रात: कालीन सितारें" कहा गया है।[15] इसी प्रकार दक्षिण भारत के शैव संत अथवा नायनारों की रचनाओं में भी आगमिक शैव तत्व तथा शैव सिद्धांत के सभी तत्व मिलते है जैसे पति, पशु तथा पाश का सिद्धांत तथा छत्तीस तत्व आदि। इनको शैव सिद्धांत का लोकप्रिय तथा भक्तिवादी रूप कहा जा सकता है क्योंकि यह नायनारों के व्यक्तिगत अनुभव के ठोस आधार पर अभिव्यक्त है।

**आड़वार तथा नायनारों के प्रमुख स्रोत तथा तिथि –**

आड़वारों के अध्ययन के तीन प्रमुख स्रोत है – (अ) संतों के जीवन के विषय में परम्परागत कथाएँ (ब) तत्कालीन पाषाण अथवा धातु अभिलेख (स) नाथमुनी द्वारा उनके पद्यों का संकलन जो नालरिय दिव्य प्रबन्धन कहलाता है।

आड़वारों की परंपरागत तिथि 4203–2703 ई.पू. मानी गयी है जो ऐतिहासिक कारणों से पूर्ण रूपेण त्रुटिपूर्ण है। कृष्णास्वामी आयंगर के अनुसार प्रारम्भिक आड़वारो की तिथि द्वितीय शताब्दी ई. है[16] परंतु अधिकांश विद्वानों के अनुसार यह स्वीकृत नहीं हो सकती। टी.एन. गोपीनाथ राव के अनुसार भूतन्ताड़वाड़ की जन्मभूमि मामल्लई थी तथा मामल्लई अथवा महाबलीपुरम पल्लव राजा नृसिंहवर्मन द्वारा सातवीं शताब्दी में स्थापित किया गया[17] अत: भूतन्तार तथा उसके समकालीन पेथ तथा पोयगई सातवीं शताब्दी ई. से पूर्व नहीं रखे जा सकते। डी.सी. सरकार उन्हें छठी तथा नवीं शताब्दी ईस्वी के बीच रखते है।[18] उनके अनुसार प्रथम तीन आड़वारों को गुप्तकाल से पूर्व नहीं रखा जा सकता। नीलकंठ शास्त्री आड़वारों के पदों

---

14. तेषा ज्ञानी नित्ययुक्त एक भविर्विचेते

    प्रियो हि ज्ञानिनोडत्यर्धमहं सच भम प्रिय :

तथा भक्तयाभाम भिजानाति शवन्यश्चारिस्मतखत:

    ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम.

15. हूपर **हिम्ज ऑफ दि आडवार्स** पृ .6.

द्वारा सरलता से निष्कर्ष निकालते है कि प्रारंभिक आड़वार पाँचवीं छठी ई. के बाद नहीं रखे जा सकते।[19] हूपर के अनुसार आड़वारों का उदय बौद्ध तथा जैन धर्मों की शुष्कता से उत्पन्न क्रांति का परिणाम था। इन दोनों धर्मों की कोरी नैतिक शिक्षाएं तथा व्यक्तिगत ईश्वर के अभाव के पश्चात् आड़वारों के पदों ने भावना के मरुस्थल में प्रथम बूंदों का कार्य किया। परंतु हमपर के इस मत के विरूद्ध दो तर्क है– एक तो यह है कि आड़वारों की भक्ति उपनिषदिक गीता, पांचरात्र पौराणिक आदि भक्तिवादी तत्वों का एक स्वाभाविक परिपाक थी। दूसरे यह कि बौद्ध धर्म में महायान के प्रभाव से कोरी नैतिक शिक्षाएं ही नहीं अपितु भक्तिवादी विचारधारा का आगमन हो गया था।

**दक्षिण भारतीय भक्ति के स्वरूप का विश्लेषण –**

आड़वार तथा नायनारों की भक्ति के स्वरूप में तीव्र–वैयक्तिक अनुभूमि तथा रहस्यवाद (mysticism) मिलता है। किसी भी रहस्यात्मक अनुभव में आध्यात्मिक सत्य की अनुभूमि सहज रूप से निश्चेष्टता से तथा बिना परिश्रम कर होती है। जिसमें परम आध्यात्मिक सत्य का साक्षात तथा प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यह दो प्रकार का माना गया है – अवांडमनस गोयर अथवा अनुमवातीत (Transcendental mysticism) तथा ईश्वरीय (Thustic mysticism) प्रथम में जीव का परम सत्य के साथ पूर्ण लय हो जाता है। इस प्रकार में भक्ति का विषय वस्तु गुणों तथा काल से परे निराकार होता है। दूसरे प्रकार में भक्ति का विषय वस्तु सगुण ईश्वर है जो गुणों की पराकाष्ठा तथा असीमित गुणों का धाम है। इस प्रकार से भक्त का ईश्वर में विलय नहीं अपितु उसके साथ अनन्य संबंध अथवा मेल होता है। आड़वारों में तथा नायनारों में ईश्वरीय रहस्यवाद की प्रवृत्ति मिलती है यद्यपि कई उदाहरणों में ईश्वर में लय होने की भी प्रवणना दिखती है जैसे गोडा तथा तिरूप्पान ईश्वरीय अनुभव में[20] हूपर के अनुसार आध्यात्मिक लक्ष्य दो बिन्दुओं के मध्य दोलायमान दिखलायी देता है – ईश्वर में लय तथा उससे संगम के बीच। यह प्रेम की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

आड़वार तथा नायनारों दोनों में ही संसार के प्रति उदासीनता तथा ईश्वर सायुज्य के लिये तीव्र उत्कटता दिखती है। इस अनुभव में निराशा से लेकर तीव्र भावनात्मक आनन्दातिरेक के भावों का उतार–चढ़ाव मिलता है। यद्यपि आध्यात्मिक अनुभव के रस से संबंध की अवधारणा का सैद्धांतिक निरूपण अभिनव गुप्त (10वीं .श .ई.) द्वारा हुआ[21] फिर भी दक्षिण भारतीय संतों में अनुभव के तौर पर ये भक्ति से संबंधित सभी रस प्राप्त होते है। आड़वार तथा नायनार दोनों ही में आत्मा को सांसारिक अनुभवों से परे उठके आध्यात्मिकता तथा ईश्वर सानिध्य प्राप्त करना है। उनके लिये ईश्वर सृष्टि का सृजन कर्ता तथा पालनकर्ता है जो मनुष्यों को उनके कर्म अनुसार भाग्य प्रदान करता है परन्तु अपनी रहस्यमयी तथा परम शक्ति द्वारा

16. एस.के. आयंगर श्री **रामानुजाचार्य** पृ. 187–88.
17. हूपर व्ही पृ. 11, राय चौधरी **अर्लीहिस्ट्री ऑफ द वैष्णव सेक्ट** पृ. 187–88.
18. डी.सी. सरकार –**स्टडीज़ इन द रिलिज्स लाइफ ऑफ एंश्येंट एंड मेंडीवल इंडिया** पृ. 55–
19. नीलकंठ शास्त्री – **ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया** पृ. 426.
20. के.सी. वरदाचारी – **आडबर्व ऑफ साउथ इंडिया** पृ.11.

उन पर अनुकम्पा कर उनको उनका लक्ष्य प्रदान भी करता है। यह ईश्वर नैतिकता से परे है जो भक्त के त्रुटि पूर्वक मार्ग को देखकर उसे सही पथ में डाल देता है। यह विप्रनारायण तथा तिरूमंगई की कथाओं में स्पष्टत: दिखलायी देता है।

आड़वार तथा नायनार दोनों में ही सांख्य के तत्व तथा विकासवाद सृष्टि की ईश्वरवादी अवधारणा तथा एक प्रकार के निस्सरण (emanation) के सिद्धांत से जुड़े है। सांख्य के तत्व तथा निस्सरण के सिद्धांतों के द्वारा ईश्वर की एक ऐसे पर सत्य के रूप में कल्पना होती है जिसका रूपान्तर कई स्तरों में होता है।

ईश्वर के साथ अनेक मानवीय संबंधों की कल्पना है जैसे – माँ–पुत्र, दास–स्वामी, प्रेमी–प्रेमिका आदि।

ईश्वर की अनुकम्पा तथा प्रेम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आड़वारों के लिये मुक्ति से अधिक ईश्वर सेवा का महत्व था।

आड़वारों द्वारा अर्चा अवतार को बहुत अधिक महत्व दिया गया। मूर्ति स्वयं ईश्वर का अवतार समझी जाती थी, ईश्वर का प्रतीक श्रीरंगम की प्रतिमा उनके लिये वास्तव में ईश्वर थी। नायनारों द्वारा अवतार का सिद्धांत नहीं था परन्तु उनके द्वारा शिव का "शाक्त शरीर" अथवा शक्तिमय रूप स्वीकार किया गया है जो पंचमुखी माना गया है[22] यह एक प्रकार का मंत्रमय तनु भी है।

आड़वारों में गुरू की महिमा का महत्व बहुत है। यह मधुर कवि के पदों से ज्ञात होता है। दोनों ही में सभी वर्ण तथा वर्ग सम्मिलित थे। तिरूण्णान अस्पृश्य जाति के (पंचम) थे। कुलशेखर राजा थे।

## 1.2 आड़वार – क

प्रथम तीन आड़वारों के विषय में पारंपरिक कथाएं यह कहती है कि उनका चमत्कारी उद्भव था।[23] उनके विषय में एक कथा के अनुसार वे ईश्वर की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान में जा रहे थे कि मूसलाधार वर्षा होने लगी। तीनों को एक ही छत के नीचे परिस्थितिवश आना पड़ा। उस समय उन्होंने यह अनुभव किया कि उन तीनों के अतिरिक्त कोई चौथी अदृश्य शक्ति भी थी। यह भी कहा जाता है कि पोचगई आड़वार ने ईश्वर का अस्तित्व प्रज्ञान द्वारा, पूतत्तार ने परिपक्व ज्ञान प्राप्त परा भक्ति द्वारा तथा पेच ने ज्ञान तथा भक्ति के समन्वय की अंतदृर्ष्टि द्वारा प्राप्त किया।[24]

पोयगई आडवाण की रचनाओं में ईश्वर का महिमा गान है तथा विभिन्न अवतारों तथा उनकी कथाओं – जैसे त्रिविक्रम, वामन आदि के प्रति मंत्रमुग्धता मिलती है। इसमें संपूर्ण आत्म निक्षेप का भाव मिलता है जो शरणागति का एक प्रमुख अंग है। भक्त अपनी सभी ज्ञानेंद्रियों, कर्मेंद्रियों, मन तथा अहंकार और बुद्धि को ईश्वर को समर्पण करता है। जीव तथा ईश्वर का

---

21. सुस्मिता पांडे – भक्ति एंड रस–ए नोट ऑन देयर हिस्टारिकल कलेकशन एंड फिलसाफिकल मीनिंग **जे.बी.आर.एम.** द्वारा स्वीकृत।
22. सर्वदर्शन संग्रह पृ. 67.
23. ए. गोविंदाचार्य **द होली लाईफ ऑफ दि आड़वारण आर द द्रविड सेंट्स**

संबंध शरीर तथा आत्मा के समान है। "ईश्वर के चरण सिर पर धारण" करने का लक्ष्य इसमें प्रमुख दिखता है। पंचरात्र आदर्शों के अनुसार अर्चा अवतार को बहुत महत्व दिया गया है। यह मूर्ति के रूप में ईश्वर का अवतार है जो तिरूवेंगडम में यथोत्कारी तथा तिरूवकोइलूर के मंदिर में निवास करता है। पूतत्तार – पूतत्तार का जन्म मद्रास के चिंगलीपुत जिले के महाबलीपुरम में हुआ। इनकी रचनाएं ऐसी पराभक्ति से ओतप्रोत है जिसका सैद्धांतिक निरूपण बहुत बाद में मधुसूदन सरस्वती द्वारा हुआ जिसके अनुसार भक्ति भावना द्वारा द्रवित चित्त में समाई हुयी ईश्वर की छवि पराभक्ति की प्राप्ति है। इरेन्हाम तिरूवेन्दादि में पूतत्तार भक्ति की प्रज्वलित द्वीप से तुलना करते है जिसमें ईश्वर प्राप्ति की आकांक्षा धृत है। ईश्वर के समक्ष सभी आत्माओं को समान कहा गया है। अत: आध्यात्मिक जीवन में सभी प्राणियों के समान होने का सिद्धांत केवल मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के संदर्भ में कबीर आदि का ही मौलिक विचार न था, परंतु जब–जब शुद्ध प्रेम के रूप में उभरी सामाजिक समतावाद की विचारधारा प्रकट हुयी यद्यपि केवल आध्यात्मिक संदर्भ में ही।

पूतत्तार भी विष्णु के सभी अवतारों तथा कृष्णा लीलाओं के रस में डूबे हुए थे। वामन, चिविक्रम वराह वृसिंह आदि अवतारों का तथा पूना वध शकटासुर कथा आदि का वर्णन है। इनकी रचनाओं में केवल भावनात्मक आधिक्य है वही नैतिक चेतना भी ओतप्रोत है[25] जो किसी भी शुद्ध आध्यात्मिक अनुभूति का आधार है तथा जिसके बिना भक्ति वैयक्तिक भावनाओं तक ही सीमित हो जाती है। इसी प्रकार एकांतिक तथा अनन्य भक्ति का स्वरूप उनकी रचनाओं से स्पष्ट होता है।

पेय आड़वार – पेय आड़वार का जन्म आधुनिक मद्रास के निकट मैलापुर में हुआ था। उनकी रचनाओं में नारायण तथा श्री दोनों की महिमा है। मुन्नम तिरूवन्दादि में मातृ शक्ति अथवा श्री के रूप की अंतदृर्ष्टि है। यह संपूर्ण सौंदर्य तथा भारवरता के रूप में है। पांचरात्र आगमों में भी श्री तथा विष्णु का भेदाभेद संबंध है। उसी से यह भी प्रभावित है। इनकी रचनाओं में भी त्रिविक्रम तथा पूतना, हिरण्यकश्यप, गजेन्द्र मोक्ष आदि की कथाएं दी गई है। ईश्वर के धाम तथा उनके अन्य विभव प्रकारों व्यूह, अर्चा आदि का भी वर्णन है।

अत: प्रथम तीनों आड़वारों की रचनाओं में समस्त वैष्णव धार्मिक क्रांति की छाप स्पष्ट है। इन्होंने वैदिक, उपनिषदिक तथा आगमिक धार्मिक ज्ञान, अनुभव तथा अंतदृष्टि का समन्वय कर आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा का परिचय दिया है।

**भक्तिसार अथवा तिरूमलिसाई का आड़वार –**

इनके जन्म की पृष्ठभूमि अंधकारमय है। एक मतानुसार वे प्रारंभ में शैव थे। परंपरा के अनुसार पेय ने उनको वैष्णव मोड़ दिया। इनकी रचनाएं **नानमुखन तिरूवन्दादि तथा तिरूच्छंदविरूत्तम** है।

तिरूच्छंद तिरूत्तम बहुत ही दार्शनिक रचना है। उसमें अस्तित्व के विभिन्न स्तरों का उल्लेख है। जिनको बहम का रूपान्तर कहा गया है। वह सूक्ष्म से स्थूल रूप में रूपांतरित होता है। यह पांचरात्रिको के व्यूह दर्शन से प्रभावित है जिसमें सांख्य के तत्वों को ईश्वर का ही

24. के. सी. वरदाचारी आड़वारण ऑफ साउथ इंडिया पृ. 1.

25. 25 छंद 20.

क्रमशः सूक्ष्म से स्थूल रूपों में रूपांतर बतलाया गया है। उपनिषदिक ईश्वरीय अंतर्यामिता का सिद्धांत भी इसमें मिलता है जहां यह कहा गया है कि समस्त जगत में ईश्वर व्याप्त है, सभी तत्व–व्यक्त तथा अव्यक्त उनके भोग के विषय है। भक्तिसार के लिए भी विभव अवतार सर्वोच्च महत्वपूर्ण थे। अवतार मनुष्यों के मध्य अपना आश्रित वात्सल्य (भक्त के प्रति प्रेम का स्वरूप) सौलभ्य (आसानी से प्राप्त होने वाला स्वरूप) तथा सौशीष्य (अनुकम्पा का स्वरूप) दिखलाता है। राम, वराह, वामन, त्रिविक्रम, कृष्णा, नृसिंह मत्स्य आदि अवतारों का तथा व्यूहों का वर्णन पौराणिक प्रभाव दर्शाता है। इसी प्रकार तिरूच्छंद विरूत्तम में शरणागति में परमविश्वास है। शरणागति के छः तत्वों – अनुकूलस्य संकल्प, प्रतिकूलस्यवर्जनम, गोप्तृत्ववरणम, रक्षिष्यति विश्वास, आत्म निक्षेप तथा कार्णण्य[26] के अतिरिक्त स्वनिष्ठा तथा आचार्यनिष्ठा भी मिलती है।[27]

**तिरूमंगई** – यह तंजौर जिले में एक छोटे सामंत थे। कुछ विद्वानों के अनुसार इनकी तिथि सातवीं शताब्दी ईस्वी तथा कुछ के अनुसार आठवीं शताब्दी ई. थी। डी.सी. सरकार[28] के अनुसार तिरूमंगई नरसिंह शैव संत विरूज्ञनसंबंदर का समकालीन था जो पल्लव राजा नरसिंहवर्मन (630–38 ई.) का समकालीन था। नीलकंठ शास्त्री के अनुसार[29] तिरूमंगई राष्ट्रकुट राजा वैरमेध का समकालीन था जो आठवीं शताब्दी के मध्यम में था। उनका जीवन रोमंचमय तथा शौर्य से भरा था। एक वैष्णव कन्या से प्रेम में वह वैष्णव बने किंतु कुछ काल पश्चात प्रेम का यह सोपान ही जीवन का लक्ष्य बन गया तथा विष्णु ही उनके लिये पर प्रेम के विषय हो गये।

उनकी रचनाएं पेरिय तिरूमोलि है जिनमें बड़े तथा छोटे मंडल, दंडक तथा तिरूवेलुकुरीरुक्कई है। यह तियमालारिय दिव्य प्रबंधम का एक तिहाई भाग है।

पेरिय तिरूमोलि में प्रेम को ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ कहा गया है। तिरूवेलुकुरीरूक्कई में ईश्वर की महिमा गान है।

## 1.3 आड़वार – ख

**पेरियंआड़वार (विष्णुचित)** – विष्णुचित्त श्रीवल्लीपुत्तूर के रहने वाले ब्राहमण थे। वे वहां के मंदिर में अपने हाथों से पुष्पमालाएं बना कर देते थे। नीलकंठ शास्त्री द्वारा उनकी तिथि नवीं शताब्दी ईस्वी मानी गई है। उनकी रचनाएं पेरियंआड़वार में है। इसमें उनका उच्च कोटि का वात्सल्य भाव प्रकट होता है जिसमें वे कृष्णा के माता–पिता सुख का अनुभव करते है तथा उसका बड़ा ही सजीव चित्रण देते है। सर्सिया इलियेड्स के अनुसार धर्मकथा का सबसे बड़ा लक्ष्य यह है कि वह भक्त को ईश्वर के समकालीन होने का अनुभव कराते है।[30] पेरियआड़वार के संदर्भ में यह आधुनिक व्याख्या बिलकुल सही उतरती है। उनके विषय में यह किवदंती है कि उनको वेदों का ज्ञान ईश्वर द्वारा चमत्कारिक ढंग से दिया गया। ईश्वर के आशीर्वाद द्वारा

26. अहिर्बुध्य संहिता 37.27–293 लक्ष्मी तंत्र 17.60–61
27. तिरूच्छंद विरूत्तम छंद 77, वरदाचारी से उद्धृत पृ. 50
28. सरकार – स्टडीज इन द रिलिजस लाईफ ऑफ एंश्येंट एंड मेडीवल इंडिया पृ. 57.
29. नीलकंठ शास्त्री डेवलपमेंट ऑफ रिलिजन्स इन साउथ इंडिया अध्याय 111 पृ. 46.

उनके जो कान्यासंतान - गोडा हुयी वह बाद में परम भक्त बनी।

तिरुप्पलाण्डु में विष्णु अथवा नारायण की महिमा का गान किया है। हरि तथा उनके वक्ष में श्री की अनन्त वर्षों तक रहने की कल्पना की है। अपनी प्रत्येक पुश्त में विष्णु की सेवा की कामना की है। भक्त वे ही वस्तुएं ग्रहण करने की इच्छा प्रगट करता है जो श्री हरि द्वारा ग्रहण की गई है। अर्चा अवतार द्वारा ग्रहण की गई तुलसी की माला पुष्पमाला, प्रसाद आदि।

गोडा (आंडाल) – गोडा का दक्षिण भारतीय भक्ति आंदोलन में वही स्थान है जो मीराबाई का मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन में था उनकी रचनाओं में नच्चियार तिरूमोलि तथा तिरूप्पावई है। तिरूप्पावई में वह कृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करने हेतु कात्यायनी का व्रत करती है। पुराणों में इस व्रत का वर्णन व्रज बालाओं द्वारा किया जाता था। विष्णु उसी से प्रसन्न होते है जो एकांतिक भक्ति तथा शारीरिक और मानसिक रूप से शुद्ध हो। इसमें माधुर्य भक्ति का चरमोत्कर्ष मिलता है क्योंकि गोडा नीलदेवी (विष्णु की पत्नी) की समता करती है।

नच्चियार तिरूमोलि में वह कामदेव की प्रार्थना करती है कि वह विष्णु का उनके प्रति प्रेम बढ़ाए। इस रचना में उनका ईश्वर के प्रति सतत चिंतनम, ईश्वर के सौन्दर्य विविध कार्यों के विषय में सोच, अनिद्रा तथा ईश्वर मिलन की तीव्र उत्कंठा जाग्रति दिखती है। तथा ईश्वर के साथ ऐश्वर्य पूर्ण विवाह की तीव्र लालसा भी। मीराबाई की भांति इसमें भी माधुर्य भाव की सृष्टि अपने को कृष्णा की प्रेमिका मानने तथा लीलाओं के वर्णन करने से होती है। इसमें भी कृष्णा या विष्णु भक्ति का आलम्बन विभाव विष्णु या कृष्ण है तथा उद्दीपन उनके गुणों तथा प्रसाधन से है। विषाद तथा दैन्य आदि व्याभिचारी भाव भी भरे है। इनकी रचनाओं में भी संभ्रम तथा भैरव प्रीति दोनों के उदाहरण है। वेदान्तदेशिक ने अपनी गोडास्तुति में कहा है कि अन्य आड़वारों ने अपनी भक्ति का प्रेम में रूपांतर गोडा की ही प्रेरणा द्वारा किया है।[31] उनकी विष्णु के साथ विवाद की रचनाएं आज भी वैष्णव विवाहों में गायी जाती है। विष्णुचित्त द्वारा उनका विवाह श्रीरंगम के आर्धावतार के साथ संपन्न हुआ तथा यह कहा जाता है कि उनका शरीर वास्तव में उस प्रतिमा में लय हो गया।

**तिरुप्पान** – तिरुप्पान पंचम अथवा अस्पृश्य जाति के थे। उनके गाये दस ही पद्य प्राप्त होते है। उनके विषय में यह कथा है कि नित्य वे कावेरी के किनारे श्री रंगनाथ की स्तुति गाते थे । श्रीरंगनाथ की चर्चा करने वाले लोकसारंग नामक सेवक नित्य वहां से रंगनाथजी के हेतु जल जाता था। एक दिन उसने तिरुप्पान को वहां से हटाने हेतु कंकड़ मारा जिससे उनको चोट आ गयी। उसी रात्रि श्री रंगनाथ ने स्वप्न में लोकसारंग मुनि को तिरुप्पान को आदरपूर्वक अपनी पीठ में मंदिर में लाने का आदेश दिया। तिरूप्पान इसी प्रकार मंदिर में लाये गये। श्री रंगनाथ के दर्शन होते ही वे भक्ति भाव में विभोर हो भाव समाधि की दशा में हो गये तथा श्री रंगम की ही प्रतिमा में समा गए। उनके पद्यों में ईश्वर को अमल, विमल, नीतिवान आदि कहा गया है। उन्होंने राम, गोपाल कृष्णा तथा नृसिंह रूप की महिमा गायी है। उनके शरीर के विभिन्न अवयवों के सौन्दर्य से वे अभिभूत थे तिरूप्पान की जीवनी तथा कार्य यह सिद्ध करता

30. मर्रिया इलियेड्स मिथ एण्ड रियलटी पृ. 19 मोदा स्तुति 8.

31. भोक्तुं तव प्रियतम भवतीव गोदे, भक्ति निजां प्रणय भावनया गृनन्त:, उच्चावचैर विरह संगनजैमदन्ति: श्रिंगारचंति हृदयं गुरूवस्त्वदीव:

है कि शुद्ध प्रेम के रूप में पराभक्ति जाति–पांति के भेदभाव तथा सामाजिक असमानताओं को भेद कर एक ऐसे आध्यात्मिक मानववाद की सृष्टि करती है जिसमें मनुष्य ईश्वर के समान हो सकता है तथा एक आध्यात्मिक मानववाद उभरता है। जिसमें ईश्वर के समक्ष सभी समान है।

**विप्रनारायण** – गुरूपरंपरा के अनुसार वह 2814 ई. पू. में हुए थे, परंतु आधुनिक इतिहासकार उनको सातवीं शताब्दी ई. में मानते है। उनकी कृतियों में **तिरूमालाई** तथा **तिरूपल्लिवेलुच्ची** प्रसिद्ध है। विप्रनारायण की जीवनी से यह सिद्ध होता है कि यदि भक्त किसी पाप को राह में हो जाय तो स्वयं ईश्वर अपनी अनुकंपा द्वारा उसको पुन: सत्मार्ग में डाल देते है। दूसरे यह कि नैतिकता के स्रोत भी ईश्वर है अत यह गुण उन्हीं के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। विप्रनारायण माल्यकारों के ब्राह्मण परिवार के थे तथा ईश्वर के लिये वाटिका को देखते थे। देवदेवी नाम की सुन्दरी स्त्री ने छल से उनको अपने प्रेम पाश में बांध लिया तथा उनकी संपत्ति भी ले ली।

रंगनाथ स्वयं अड़कीयमनवालन नाम से अपने को विप्रनारायण का सेवक बता देवदेवी को मंदिर का एक स्वर्ण पात्र दे आये। मंदिर में रंगनाथ ने स्वप्न में आय व्यय अधिकारी को सब सत्य बतला कर अपने भक्त को दोष विमुक्त किया। इस घटना से विप्रनारायण तथा देवदेवी दोनों की आंखें खुल गयी तथा वे पुन: ईश्वर सेवा में संलग्न हो गये। उनका नाम तोण्डर अदिप पोदी अथवा "ईश्वर की चरण धूल धारण करने वाले" रखा गया।

तिरूमलाई पैतालिस पद्यों की रचना है। 39 तथा 42 पद्यों में सभी जातियों तथा कथित निम्न मानी जाने वाली भी, को ईश्वर प्रेम तथा भक्ति का पूर्ण अधिकार है। इसमें रीराम के अर्वा अवतार की महिमा है तथा उनका अवतरण भक्तों के लिये अनुकम्पा तिरूपल्लीवेलुच्ची ईश्वर को जगाने का प्रात: गान है। अपने आप को उन्होंने वैजयन्तीमाल का अवतार कहा है। गज तथा ग्राह की कथा में भी उनके अनुसार मनुष्य को ईश्वर द्वारा पाप से उबरने की प्रतीकात्मकता है। गज आत्मा, ग्राहकाम है। अत. केवल ईश्वर की अनुकम्पा से ही मनुष्य सांसारिकता तथा काम से परे हो सकता है।

## 1.4 आड़वार – ग

**कुलशेखर** – कुलशेखर का स्थान आड़वारों में अनूठा है क्योंकि परंपरानुसार वे केरल के शासक थे। उनको तमिल तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। उनकी रचनाएं पैरूमालतिरूमोली तथा मुकुन्दमाला कहलाती है। प्रथम मे आत्मा की ईश्वर की ओर सतत प्रगति है तथा दूसरे की प्रति गीतगोविंद से तुलना की जाती है तिरूमोली में दस खंड है।

उनकी रचनाओं में श्रीरंगनाथ के दर्शन तथा उनकी पूजा की लालसा है। शरणागति के सभी तत्व[32] जो पांचरात्रिकों द्वारा प्रतिपादित है उनका साक्षात प्रयोग है। ईश्वर प्राप्ति के गतिरोधों जैसे कि देहात्मभ्रम के निराकरण के लिये भी प्रार्थना है। उनकी याचना में ईश्वर से दूरत्व करने वाली सांसारिकता के पाशों से मुक्ति तथा ईश्वर का पूर्णरूप से आनन्द जो साध्य भक्ति है। ये दो तत्व प्रमुख है। ईश्वर के साथ व्यक्तिगत संबंध अनेक प्रकार के है। जैसे स्वयं का शिशु ईश्वर को मां, स्वयं को पत्नी, ईश्वर को पति, स्वयं को प्रजा, ईश्वर को राजा, ईश्वर को चिकित्सक भी कहा है जो जीवात्मा को सांसारिकता के रोग से मुक्ति दिलाये। स्वयं को माता देवकी तथा ईश्वर को शिशु कृष्णा के रूप में देखना उनका एक नवीन अनुभव है। एक

स्थान में स्वयं को दशरथ मान कर दशरथ का राम से विद्रोह देखा गया है। मुकुंदमाल को वैष्णावों का हार कहा गया है। उसके एक उदाहरण से उसका सौन्दर्य देखा जा सकता है।

जयतु जयतु देवो देवकी नन्दनो अयम्,
जयतु जयतु कृष्णे वृष्णिवंश प्रदीप :,
जयतु जयतु पृथ्वीमारनाशो मुकुन्दः
मुकुन्दा मुघ्ध्र प्रणिपत्य याचे
भवन्तमेकातमिजंयतमर्थन
अविस्मृतिस्वच्चरणारविंद
भावेभावेमेस्तुभवत्प्रसादः

**शठकोप (नम्माड़वार)** – नम्माड़वार सभी आड़वारों में श्रेष्ठ माने जाते है। उनकी रचनाओं में **तिरूविरूत्तम, तिस्वासरियमख तिस्वायमोलि, पेरियतिक भवंदादि** है। इनकी चार वेदों से तुलना की गई है। वेदान्तदेशिक द्वारा तिरूवायमोली को द्रोमणोपनिषद की संज्ञा दी गई है।

**तिरूविरूत्तम** चार–चार पंक्तियों के सौ छंदों की कृति है जिसमें वे स्वयं को स्वयं की प्रेमिका भाव से देखते है। जो जो भाव भागवत पुराण में मिलते है वे ही अनुभव के तौर पर नमाड़वार द्वारा चरितार्थ हुए। भागवत में कृष्णा कहते है कि वे मिल–मिल कर छुपते है और छुप–छुप कर मिलते है जिससे कि भक्त की मिलन की इच्छा अधिक तीव्र हों जाय। कृष्णा का यही स्वरूप नमाड़वार की मिलन की तीव्र उत्कंठा में झलकता है। तिरूविरूत्तम में ईश्वर के सुन्दर स्वरूप के प्रति भी तीव्र आकर्षण है इसमें एक गहरी प्रतीकात्मकता है। मां वास्तव में भक्त का मानसिक संतुलन है, वधु ईश्वर प्रेम है तथा वर ईश्वर है। पाँचवें छंद में जीवात्मा ईश्वर प्रेम तक सांसारिकता के मध्यम जूझती है। परन्तु शनैः शनैः ईश्वर प्रेम जीतता है। इसी प्रकार तुलसी भक्त तथा ईश्वर को जोड़ने वाली कड़ी है।

**तिरूवासरियम** के अर्थ विधिविधान के साथ पूजा है। अपने सात छंदों में यह तत्व (प्रकृति) हित (अच्छा) तथा पुरुषार्थ (लक्ष्य) के विषय में है। इनमें के सौंदर्य की महिमा है, उनके चरणों में आश्रित होने तथा उनके प्रति एकांतिक है।

**पेरिय तिरूवन्दादि** में 87 छंद है। इसमें ईश्वर को माता–पिता तथा गुरू के रूप में देखा गया है।

**तिरूवायमोलि** को द्रविडोपनिषद की संज्ञा दी गई है। इसमें 1102 छंद है। प्रथम बीस छंद ऋग्वेद के सार, अगले हजार सामवेद फिर सौर यजुर्वेद तथा शेष आठ भाग अथर्ववेद के स्थान पर माने गये है। ये आठ भाग आठ रसों से संबंधित है। प्रारंभ में यह कहा है कि ईश्वर सेवा की मुक्ति का उपाय है। फिर मुक्तजलों द्वारा ईश्वर आनन्द होता है इसके पश्चात् ईश्वर को साधन तथा साध्य कहा है। फिर सौ छंदों में यह कहा गया है कि ईश्वर केवल ईश्वर का अतिरिक्त किसी मीक्षा उपाय द्वारा प्राप्त नहीं है स्वयं (स्वसिद्धः करणम) ईश्वर आनन्द के धाम सब में व्याप्त है। उनकी लीला वर्णन तथा अवतारों का उल्लेख है। सम्पूर्ण रचना ईश्वर

32. अनुकूलस्य संकल्प (सही कर्म करना), प्रतिकूलस्यवजर्नम (अनुचित कार्य न करना) ईश्वर को तारने वाला मानना (आत्मनिक्षेप) स्वयं को उनकी ओर फेंकना, कार्पण्य (दैव्यभाव)

की अंतर्दृष्टि से ओतप्रोत है तथा स्वयं के आध्यात्मिक ज्ञान व अनुभव का परिपाक है।

**मधुर कवि** – मधुरकवि नम्नाड़वार के शिष्य थे। उनकी रचना कण्णिनम शिरुत्ताम्बु थी। इसमें बहुत गहरी गुरूभक्ति झलकती है। यद्यपि गुरू भक्ति की परंपरा अत्यंत प्राचीन है परंतु इस काल तक वह आध्यात्मिक रहस्यवाद का एक आवश्यक अंग बन गई थी।

## 1.5 शैव नायनार – स्त्रोत, दार्शनिक पृष्ठभूमि, रहस्यवाद (क)

तमिल देश में शिव भक्ति का इतिहास अति प्राचीन है। तोलकाण्पियम तथा संगम साहित्य (दूसरी शताब्दी ई.) में यह वर्णित है। तोलकप्पियम तमिल साहित्य का सबसे प्राचीन उपलब्ध अंश है। संगम साहित्य आठ संग्रह ग्रन्थों में है। तमिल कवियों द्वारा महाभारत तथा रामायण की कथाएं भली–भांति ज्ञात थी। शिव की कथाओं में शिव के त्रिपुरा के तीन धातु निर्मित किलो को नष्ट करना आदि मिलते है। प्रारंभिक तमिल महाकाव्यों मैं वह मणिमेकलई कहलाते है। शैव आगम जो पति, पशु तथा पाश तथा ज्ञान, योग क्रिया तथा चर्या का सिद्धांत प्रतिपादित करते थे, शिव भक्ति के प्रारंभिक चरण कहे जा सकते है। तिरूवस्तुवार द्वारा तिरूक्कुराल भी शिव भक्ति के तत्व प्रकाशित करता है। परन्तु शैव संत नायनारों द्वारा शिव भक्ति एक आन्दोलन के रूप में समस्त तमिल देश में फैली। इनकी रचनाओं में शैव सिद्धान्त के सभी अंशों की व्यावहारिक रूप से स्वीकृति मिलती है।

नायनारों के आध्यात्मिक अनुभवों की अंतर्दृष्टि से शैव सिद्धान्त दर्शन और भी अधिक विकसित हुआ। नयनार चरित तथा कार्य का प्रमुख स्त्रोत नम्बी आंडर नम्बी द्वारा संपादित कृति थी जो दस पुस्तकों में थी – प्रथम तीन तिरूज्ञान संबंदर की, चौथी से छठी तिरूनानुक्करसु की, सातवीं सुंदरार की, आठवीं मणिक्कवासगर की नवीं निरूवैसैंप्पा तथा तिरूप्पलांडु–नौ नायनारों द्वारा (900–1000 ई.) तथा तिरूमूलर (छठी शताब्दी ई.) की तिरूमतिरम दसवीं। इन दस के अतिरिक्त ग्यारहवीं नम्बी द्वारा जोड़ी गई जिसमें पतिनत्तार करैक्काल अम्मैयार आदि की रचनाएं थी। बारहवीं लगभग बारहवीं शताब्दी ई. में सेक्किलार द्वारा पेरिय पुराणम जोड़ी गयी।[33]

पारंपरिक रूप से 63 नयनार माने गये है। इनमें करैक्काल, अम्मैयार नाम की एक स्त्री भी थी जो छठी शताब्दी ई में हुयी।[34] ईश्वर प्रेम ही उसके जीवन का सब कुछ था। उसकी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के अनुसार ईश्वर एक भास्वर ज्योति के समान है।

नायनारों की रचनाओं में शिव शक्ति का द्वैत, छत्तीस तत्व, चर्या, ज्ञान, अर्चा तथा योग है जो शैव सिद्धान्त से प्रभावित है। शैव सिद्धान्त के अनुसार शिव पति, जीव पशु तथा प्रकृति पाश है। यह सभी यथार्थ सत्ता लिए है। शिव जगत के संदर्भ में अनुभवातीत तथा अंतर्व्याप्त दोनों है तथा जगत के निमित्त कारण है – उपादान नहीं[35] उपादान कारण माया अथवा प्रकृति है। शिव के कार्यों में सृष्टि (जगत निर्माण) स्थिति (जगत का पालन) संहार (जगत का विनाश) तिरोधान (छिपाना) तथा अनुग्रह (अनुकम्पा) है। माया की प्रकृति दो प्रकार की है – शुद्ध माया तथा अशुद्ध माया। शुद्ध माया से पांच शुद्ध तत्वों का सृजन होता है तथा अशुद्ध माया से फिर समस्त संसार। जीव तीन प्रकार के पाश अथवा मल से बंधे है। आणव मल

33. के. शिवरमन - शैविज़्म इन फिलसाफिकल पसैपेक्टिव पृ. 31.

जो नैसर्गिक मल है अथवा अद्वैत की अविधा के समान है, कर्म मल जो कर्म द्वारा है तथा मायी मल जो संसार से है। तीनों मलों वाला पशु सकल, प्रलय काल में आत्मा जो सांसारिक पाश से विमुक्त है। प्रलय तथा जिसे कर्ममल भी छूट गया है केवल आणव शेष है वह विज्ञानाकल है। वह शुद्ध माया के क्षेत्र में वास करता है। शिव की अनुकम्पा द्वारा ही उसका आणव हटता है तथा वह मुक्त होता है। जीव तथा शिव का संबंध शरीर आत्मा का है। इसमें अभेद नहीं है परंतु अनन्यत्व है। मुक्ति की व्यावहारिक शिक्षा में चर्या, क्रिया, योग तथा ज्ञान है। नयनारों की कृतियों में सभी शैव सिद्धान्तों के तत्व दिखलायी देते है।

नयनारों की सबसे बड़ी देन उनका आध्यात्मिक रहस्यवाद है। जैसा कि प्रथम अध्याय में बतलाया गया है नायनारों का यह अनुभव अथवा यह आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति सहज रूप. से निश्चेष्टता से तथा बिना परिश्रम के थी। यह परम सत्य का साक्षात अथवा प्रत्यक्ष अनुभव था। यह रहस्यात्मक अनुभव मुख्य रूप से ईश्वर रहस्यात्मकता (Theistic mysticism) था अनुमवांतीत (Transcendental) नहीं। इस अनुभव में भक्त का ईश्वर के साथ मिलन नहीं अपितु उससे अनन्यत्व था, यद्यपि दोनों ही प्रवृत्तियां कभी–कभी झलकती है।

नायनार आड़वारों की भांति अर्चा अवतार नहीं मानते थे परन्तु उनके द्वारा शिव का **"शाक्तं शरीरं"** अथवा शक्ति मय रूप स्वीकार किया गया है जो पंचमुखी माना गया है। यह वास्तव में ध्यान के हेतु मंत्र रूप है। नायनार भी सभी वर्णों तथा वर्गों से थे। प्रमुख नयनारों के जीवनी के महत्वपूर्ण पक्ष तथा कार्यों के विषय में संक्षिप्त में देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जो शास्त्रीय तौर पर सिद्धान्त बने थे उनका उन्होने वास्तव में जीवन में अनुभव किया–

**संबंदर** – पी. सुंदरम पिल्लई के अनुसार वे सातवीं शताब्दी ई. में थे । " दीक्षितार के अनुसार वे सातवीं शताब्दी के मध्य में थे। उनके अनुसार पेरिय पुराणम के अनुसार वे अप्पर तथा शिरूतोंडार के समकालिक थे।[37] उनकी रचनाओं के संकलित रूप को पन्निरू तिरूमुरई कहते है। शैशवकाल में ही स्वयं पार्वती से उनको ज्ञान–दुग्ध प्राप्त हुआ था। बाद में उन्होंने कुछ जैनों को शैव धर्म में परिवर्तित किया। उनके अनुसार ईश्वर प्रेम माता, पिता, स्वामी, पत्नी के समान है तथा आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि ईश्वर अनुकम्पा का फल होता है। जो ईश्वर की सच्ची भक्ति करते है वे सदा उनके चरणों में होते है भक्त को प्रेम में विव्हल नारी तथा ईश्वर को "हृदय चुराने वाले चोर" कहा गया है।

**अप्पर** – अप्पर ने भी ईश्वर के साथ व्यक्तिगत संबंध स्थापित किया। ईश्वर उनके माता, पिता तथा लिये रिश्तेदार थे । सृष्टि में जहां कहीं भी पूर्णता है वह ईश्वर की मनुष्य के

---

34. मारिया सुजाई धवमोनी – लव आफ गोड एकाडिग टू शैव सिद्धांत पृ. 132.
35. निमित्तकारण वह है जिसके द्वारा कार्य संभव होता है। उपादान कारण वह पदार्थ है जिससे व कार्य होता है जैसे घड़े के निर्माण में कुम्हार निमित्त कारण है तथा मिट्टी उपादान कारण।
36. पिल्लई एज ऑफ तिरूज्ञान सम्बन्दर टेमिलियन एंटिक्येरी सोसायटी सीरिज नम्बर 2, मरिया सुजाई धवमोनी – वही पृ. 31 – उनके अनुसार भी वे सातवीं शताब्दी के प्रारंभ में थे।

प्रति प्रेम की छाप है। यद्यपि उनकी रचना में दैन्य तथा नम्रता है परन्तु ईश्वरीय अनुकम्पा के विषय में वे निश्चित है। निरंतर चिंतन तथा उपासना ही भक्ति का साधन है। ईश्वर से रहस्यात्मक मेल नर तथा नारी, वर तथा वधू के संबंध की भांति देखा गया है।

सुंदरार – सुंदरार का जन्म ब्राह्मण परिवार में तिरून्नावलूर में हुआ था। सी. वी. एन. अप्पर के अनुसार उनको आठवीं शताब्दी के अंतिम भाग में रखना चाहिए।[38]

श्री निवास पिल्लई के अनुसार 825 ई. में सुंदरार की मृत्यु हुयी थी क्योंकि राजा सिरमान पेरूमाल नायनार का घनिष्ठ मित्र था तथा यह वर्ष चेर राजा सिरमान पेरूमाल नायनार का आखिरी वर्ष था।[39] राघव आयंगर के अनुसार सुंदरार को आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में मानना चाहिए। वी. स. रामस्वामी शास्त्री उनको नवीं शताब्दी के प्रारंभ में रखते है। दीक्षितार के अनुसार उनको आठवीं शताब्दी के आखिरी भाग तथा नवीं शताब्दी के प्रथम भाग में मानना चाहिए।[40] कर्मरकर भी यही मत स्वीकार करते है क्योंकि पाड्यराजा वरगुण ने दंतिवर्मन पल्लव के विरूद्ध युद्ध 775 ई. में किया था तथा वरगुण सुंदरमूर्ति का समकालीन था।

पेरिय पुराणम के आधार पर नारायण अम्बर ने कुछ अन्य नायनारों को अप्पर तथा सम्बन्दर का समकालीन कहा है जैसे नेडुमार नायनार, अप्पुडी अड़िगल मुरूग नायनार, जिसके घर में अप्पर रहते थे तथा जिनके संबंदर के साथ मुक्ति प्राप्त हुयी। तिरूनीलनक्क, शियतोंडार, मंगईरक्करसी जो नेडुमार नायनार, नरसिंह मुसैरेयरपैर ऐयरको कन्निक्कम नायनार, पैरूमिललै कुरूम्ब नायनार जिन्होंने सुंदरार का ही ध्यान कर दैवी शक्तियां प्राप्त की थी। सदैय नायनार – सुंदर मूर्ति के पिता, ईसज्ञानियर–सुंदरार की मां तथा मनक्कंजर नायनार।[41]

## 1.6 शैव नायनार (ख)

तिरूमूलर की प्रसिद्ध कृति तिरूमंतिरम कहलाती है। उनके ' में यह कहा जाता है कि उन्हें शिव के ब्दारपाल नंदी की अनुकम्पा प्राप्त थी। जनश्रुति के अनुसार एक बार जब वे ऋषि अगस्त्य से मिलने जा रहे थे तो राह में कुछ मवेशी अपने स्वामी मूल की मृत्यु पर शोक कर रहे थे। तिरूमूलर ने उन पर दया कर मूल के अंदर प्रवेश कर लिया। घर जा कर उन्होंने उसकी पली से कुछ बोला नहीं तथा स्पर्श भी नहीं किया। बाद में सबको यह ज्ञात हो गया कि वे एक महान योगी है।[42] वी. वी. रमन शास्त्री के अनुसार तिरूमूलर की तिथि छठी शताब्दी ई. रखनी चाहिए। सुंदरार की तिरूतोण्डत्तोगई ने उनका नाम तोंडर में से है अत: वे नवीं शताब्दी के पूर्व रखे जाने चाहिए। क्योंकि परम्परानुसार तिरूमूलर उत्तर में कैलाश से आये थे और उनके विचारों में तथा काश्मीर शैव दर्शन के विचारों में साम्य है अत: वे छठी शताब्दी के थे।[43] परन्तु कर्मरकर यह ध्यान दिलाते है कि काश्मीर शैव दर्शन की तिथि नवीं शताब्दी है अत: तिरूमूलर

37. दीक्षितार –**स्टडीज़ इन तमिल लिटरेचर** पृ. 92
38. अय्यर – **शैविज्म इन साउथ इंडिया** पृ. 125
39. पिल्लई – **तमिलवरलारू जिल्द** 11 पृ. 63
40. दीक्षितार – **स्टडीज़ इन तमिल लिटरेचर** पृ. 97
41. कर्मरकर – **द रिलिजस ऑफ इंडिया जिल्द** 1 पृ. 287

का दक्षिण आना इसके पश्चात ही अधिक संभव दिखता है। मरिया सुजाई धवमोनी के अनुसार तिरूमंतिरम ही प्रथम तमिल ग्रन्थ है जिसमें आपत्ति तथा अंजू केवल ईश्वर का अर्थ ही नहीं दिखलाते है अपितु ईश्वर के साथ अधिक गहरा तथा रहस्यात्मक मिलन भी दिखलाते है। उनके अनुसार अज्ञानी यह नहीं जानते कि प्रेम तथा ईश्वर एक ही है। यह जानने के बाद कि वे दोनों एक ही है वे प्रेम से आविष्ट रहते है जो वास्तव में ईश्वर है।[44] जब भक्त बछड़े की भांति ईश्वर को पुकारता है तो वह उसमें सजा जाते है। ईश्वर उन्हीं को प्राप्त है जिनका हृदय प्रेम से पिघलता है। अन्पोतू उरूकल के अर्थ प्रेम में पिघलना है। प्रेम का स्वरूप, ध्यान, तथा ईश्वर का महिमा गान प्रकट होता है। भक्ति तथा ज्ञान में कोई भी द्वंद नहीं है।

**मणिक्कवासगर** – तमिल शैव रचनाएं मणिक्कवासगर द्वारा अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंची। उनका जन्म तिरूनाडुवर में ब्राहमण परिवार में हुआ था। परंपरा के अनुसार वे मदुरा के अरिमर्तन पांडेय के मंत्री थे।[45] नीलकंठ शास्त्री उसे वरगुण 11 (862–880 ई.) का समकालीन कहते है। परम्परा के अनुसार एक बार राजा ने उन्हें राजकार्य के लिए बाहर भेजा परन्तु राह में ही शैव आगमों से वे पूर्णत: परिवर्तित हो गये अरिमर्तन पाण्डेय की सेवा से मुक्त हो राजाओं के उस राजा शिव की सेवा में संलग्न हो गए।[46] दीक्षितार के अनुसार वे नवीं शताब्दी ई. में हुए थे।47 (फर्क्युहार) इससे सहमत है। फ्रेजर उनको 800–900 ई. नीलकंठ शास्त्री **"छ पांडेय किंगडम"** में मणिक्कवासगर द्वारा उल्लिखित वरगुण को ऐतिहासिक वरगुण 1 तथा 11 से भिन्न मानते है।[48] परन्तु **हिस्ट्री आफ तमिल लिटरेचर** में तरगुण द्वितीय मानते हैं।[49]

मणिक्कवासगर की कृति **"तिरूनाशगम"** कहलाती है। उनकी दूसरी कृति **तिरूचिरम्बलोक्कोवई** है। तिरूवाशगम उनकी भक्ति की स्पष्ट अभिव्यक्ति है तथा तिरूचिरम्बलोक्कोवई नव दम्पत्ति के प्रेम के विभिन्न स्तरों के विकास को दर्शाता है जिसका प्रतीकात्मक महत्व है। यह जीवात्मा तिरूवासगम में डॉ. टोपे ने गीता का प्रभाव भी माना है।[50] इससे नटराज के नृत्य की दार्शनिक व्याख्या देखी जा सकती है। नटराज पंचकृत्यकारी के प्रतीक है – उत्पत्ति, पालन संहार, तिरोधान तथा अनुकम्पा। इसमें तिल्लई के स्वामी (शिव) की महिमा का गान है। समस्त जगत में ही शिव का यह नृत्य व्याप्त है। इसी में कुछ पद तिरूएम्पावई कहलाते है जिसमें गहन प्रतीकात्मकता है। सखियों द्वारा ऐसी सरती सखी को जगाया गया है जो प्रात: काल शिव के महिमागान के लिए नहीं तैयार हो पायी। यह सखियां संतों की प्रतीक है तथा विशेष सखी स्वयं कवि है। इसमें तालाब के पुष्प से मल साफ हो जाते

42. अम्बर – **शैविज्म इन साउथ इंडिया** पृ. 204
43. एम.वी. विश्वनाथ पिल्लई द्वारा संपादित **तिरूमंतिरम** में उनका प्राक्कथन
44. मरिया सुजाई धवमोनी, **वही** पृ. 127–28
45. नला नवरत्नम **तिरूवाशगम,** पृ. 30
46. रत्ना नवरत्न **वही,** पृ. 31–33
47. दीक्षितार –**स्टडीज़ इन तमिल लिटरेचर,** पृ. 99
48. **वही,** पृ. 66–67
49. **वही,** पृ. 99.

है। **तिरूएम्पावई** की तुलना वैष्णव संत आंडाल की निरूप्पावई से की जाती है।[51] मणिक्कवासगर के अनुसार जीवात्मा की मुक्ति शिव की अनुकम्पा से ही संभव है। यह उचित गुरू के मार्गदर्शन से आसानी से प्राप्त होती है। इसमे शिव अनुमतातीत तथा अंतर्मूत दोनों है, सृष्टि के निमित्त कारण है तथा पति पशु और पाश का सिद्धान्त है यही सब शैव सिद्धान्त के प्रमुख तत्वों के रूप में बाद में प्राप्त होते है। नायनार भी इन विषयों में आगमों से ही प्रभावित थे।

## 1.7 रामानुज द्वारा भक्ति को दार्शनिक पृष्ठभूमि की देन

दक्षिण भारतीय भक्ति आन्दोलन को स्पष्ट एवं विकसित दार्शनिक पृष्ठ भूमि की प्राप्ति –

दक्षिण भारतीय भक्ति आन्दोलन के उद्भव तथा उसकी अवधारणा बिना भक्ति के कुछ प्रमुख आचार्यों के योगदान का अध्ययन किये संपूर्ण नहीं हो सकती। नायनारों के आध्यात्मिक अनुभव की शास्त्रीय पृष्ठभूमि तो वेद तथा शैव आगम ही थे। शैव आगमों की परम्परा अति प्राचीन है, यद्यपि ये बाद तक संकलित होते रहे। बाद में 13वीं शताब्दी में शास्त्र तथा अनुभव को यह परम्परा शैव आचार्य जैसे मेकण्डदेव द्वारा सुव्यवस्थित रूप दिया गया। शैव सिद्धान्त के प्रमुख तत्वों द्वारा शास्त्रीय पृष्ठभूमि अध्याय 5 में वर्णित किये जा चुके है।

वैष्णव– भक्ति को दार्शनिक पृष्ठभूमि देने का श्रेय रामानुज को है। यद्यपि पांचरात्र आगमों द्वारा भक्ति को व्यावहारिक रूप मिला तथा आड़वारों द्वारा एक समृद्ध आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुआ परन्तु इन दोनों का समन्वय कर एक दार्शनिक पृष्ठभूमि देने का श्रेय रामानुज को ही है। संपूर्ण धार्मिक अनुभूति में आत्मपरकता तथा वस्तुपरकता के बीच एक संतुलन होना आवश्यक है। जहां आत्मपरक अनुभव दार्शनिक सिद्धान्तों से शून्य होता है वह विचारों के स्वेच्छाचार तथा निरंकुशता का शिकार हो जाता है तथा कोरी भावनात्मकता को जन्म देता है तथा जहां केवल वस्तुनिष्ठता अथवा अनुभव विहीन कोरा सिद्धान्त होता है वह वास्तविक आध्यात्मिक सत्य के समृद्ध रंग से तारतम्य नहीं रख पाता। इन दोनों के बीच उचित समन्वय से ही वास्तविक अर्थ में धर्म के विज्ञान का जन्म होता। जिसकी आवश्यकता आधुनिक धार्मिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी महसूस की गयी है।[52] रामानुज ने सच्चे अर्थ में भक्ति को एक ऐसा ही विज्ञान प्रदान किया।

नवीं शताब्दी में शंकर के अद्वैतवाद के सिद्धान्त से अनुभवजन्म जगत का, तथा उससे स्थापित धार्मिक सामाजिक मूल्यों का महत्व कम होता दिखा। शंकर के अनुसार सत्य के दो स्तर थे। परम सत्य केवल ज्ञान से ही प्राप्त था क्योंकि मनुष्य का अंतर्तम सत्य अनुभवातीत है तथा यह केवल ज्ञान द्वारा ही बोधगम्य है। सत्या का दूसरा स्तर जो अनुभव जन्य जगत का है – उसी से भावना तथा कर्म का महत्व होता है। इस स्तर को निम्न मान लेने से समस्त कर्म तथा भावना–भक्ति विषयक कर्मों तथा भावनाओं के भी अवमूल्यन का डर होने लगा। ऐसे समय रामानुज के विशिष्ट द्वैत के सिद्धान्त ने अद्वैत रूपी भावनात्मक मरुस्थल सिद्धांत का खंडन कर भक्ति को एक नया मोड़ दिया। उनके अनुसार जीव तथा जगत ईश्वर के ही अभिन्न

50. पोप **तिरूवाशगम**

51. रत्नानवरत्नम, **वही** पृ. 135 – 36

अंग हैं। जीव तथा जगत का ईश्वर से शरीर–शरीरी भाव, विशेषण – विशेष्य भाव, शेष–शेषी ताव, अंशाशी भाव, आधार–आधेय भाव, नियंत्रिनियत भाव, रक्षकरक्ष्य भाव, का संबंध है। शरीर–शरीरी भाव तथा, अशाशी भाव आदि से यह प्रश्न उठ सकता है कि जीव तथा जगत में तो बहुत दोष है तो क्या वे ईश्वर में भी माने जायेंगे क्योंकि ईश्वर तथा ये दोनों शरीर तथा शरीरी अंश तथा अंशी है? परन्तु रामानुज स्वयं उत्तर देते हुए कहते कि सभी परिवर्तन आदि ईश्वर के शरीर में है उनके सार में नहीं। अंशाशी भाव से भी जीव जगत को ईश्वर का "टुकड़ा" नहीं समझना चाहिए क्योंकि जीव की अशुद्धताएं ईश्वर पर आरोपित होंगी तथा यह इसलिये भी अमान्य है क्योंकि अंशाशी का अर्थ – ईश्वर खंडित नहीं हो सकता। एक भास्वर तत्व से दूसरे का भास्वरित होना समझना चाहिए। ईश्वर में सौलभ्य तथा सोशीन्य दोनों है अत: वह आसानी से प्राण्य तथा अनुकम्पा करने वाला है। अनुकम्पा अथवा प्रपत्ति के पुराने सिद्धान्त को रामानुज ने नया रूप दिया। अपने शरणागति गद्य में उन्होंने बहुत ही सुन्दरता से यह व्यक्त किया है। इसी प्रकार ईश्वर के अर्चा स्वरूप को उन्होंने बहुत महत्व दिया। यह उनके वैकुंठ गद्य से स्पष्ट है जिसमें उन्होंने श्रीरंगम के मंदिर की महिमा बतलायी है। मनुष्य का परम पुरुषार्थ ईश्वर की ही भांति होने में है। इसके लिए ज्ञान कर्म तथा भक्ति का संश्लेषण आवश्यक है। चरम भक्ति को भक्विरूपपन्नम ज्ञानम कहा गया है। अर्थात ज्ञान तथा भक्ति दोनों का समन्वय ही परा भक्ति के अंतर्गत आता है जो कैंकर्य के रूप में फलता–फूलता है।

अत: रामानुज ने भक्ति को पुन: अपने चरम स्थान में स्थापित कराया तथा यह समझाया कि चरम ज्ञान उससे भिन्न नहीं है।

रामानुज के व्यक्तिगत जीवन पर भक्ति का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने सभी प्रकार से भेदभाव का निराकरण करना चाहा। कुछ अस्प्रस्य जातियों को उन्होने तिरूकुलत्तार अथवा "अभिजात्य वर्ग के" की संज्ञा दी। धर्मदास जो शूद्र था उनका प्रिय शिष्य था। उस काल में शूद्र आदि वेद बाह्य होकर कुछ असामाजिक तांत्रिक प्रयोगों में रत हो जाते थे, अथवा हिन्दू धर्म से विरत हो जाते थे। रामानुज की भक्ति की नवीन परिभाषा से भक्ति से विमुख जनता पुन: उससे श्रद्धा रखने लगी। अधिक समृद्ध होने के कारण इस काल में मंदिर भ्रष्टाचार के केन्द्र होने लगे थे। रामानुज की व्याख्या ने उनमें वातायनों का कार्य किया। उन्होंने श्रीरंगम के मंदिर में भी आते हुए भ्रष्टाचार की भरसक प्रयत्न से रोकने की चेष्टा की।[53]

अत: रामानुज के द्वारा भक्ति को ठोस दार्शनिक पृष्ठभूमि मिली जिसकी वस्तुनिष्ठता से भक्ति के सामाजिक प्रभाव ने सुधारवादी रूप लिया तथा सैद्धान्तिक प्रभाव से भविष्य में अनेक भक्ति आचार्यों जैसे मध्व, विम्बार्क आदि को प्रेरित किया जिसके विशिष्ट दर्शन तो भिन्न हैं परन्तु विषयक मानक सामान्य है।

## 1.8 सारांश

विचारों के विकास के इतिहास में भक्ति का इतिहास एक अनूठा स्थान रखता है। हमने पिछले अध्यायों में देखा है कि भक्ति की धातु मजभज के दो अर्थ सेवा तथा सम्मिलित होना या बांटना से उसका आध्यात्मिक जीवन में साधन होना तथा स्वयं साध्य हो जाना दोनों अर्थ

52. विलियम जेम्स – **वैराइटीज आफ रिलीजन एक्सपिरियन्स**

स्पष्ट होते है।[54] भक्ति की संरचना के इन्हीं अर्थों के अंतर्गत सैद्धांतिक, भावनात्मक तथा आनुष्ठानिक तीन आयाम है। सैद्धान्तिक रूप से भक्ति ईश्वर तथा भक्त के संबंधों एवं सिद्धान्तों का निरूपण है, भावनात्मक दृष्टि से ईश्वर एवं मनुष्य के मध्य विविध संबंधों की अनुभूति तथा रसानुभव है तथा व्यावहारिक तौर पर आराधना की विधियां, नैतिक तथा आध्यात्मिक चरित्र को परिभाषित करती है।

हमने भक्ति के उद्भव के सभी मतों को बतलाते हुए[55] उन सिद्धान्तों का खंडन किया है। जो विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों से प्रेरित हो भक्ति का उद्भव मानती है। भक्ति मानव की एक सहज स्वाभाविक अनुभूति है जो किसी भी देश काल में प्रस्फुटित होती है तथा सांप्रदायिक विशिष्टताओं से परे एक सार्वभौमिक अनुभव है। परवर्ती आचार्यों ने इसे मानव की चित्तवृत्ति में इसे परम चेतना का प्रतिबिंब[56] तथा रस के रूप में ईश्वर के प्रति सहज स्वाभाविक आकर्षण[57] अथवा आध्यात्मिक शक्ति[58] के रूप में निरूपित किया है। इसकी उपर्युक्त संरचना को देखते हुए हमने वैदिक काल में ही इसके तत्व खोजे हैं।

उपयुक्त संदर्भ में यह कहना तो उचित न होगा कि भक्ति का उद्भव दक्षिण भारतीय संतों द्वारा हुआ[59] परन्तु हम यह अवश्य कह सकते है कि एक जन–आन्दोलन के रूप ने दक्षिण भारत में यह दिखलायी दिया। वैष्णव संत आड़वार तथा शैव संत नायनारों द्वारा रहस्यात्मक ईश्वर प्रेम (religious mysticism) प्रकट हुआ जिसमें अधिकांशत: ईश्वर सायुज्य की तीव्र उत्कर्षता तथा भावनात्मक आतंदातिरेक है। नायनारों की भक्ति तो शैव आगमों के अनेक सिद्धान्तों से प्रेरित है तथा आड़वारों का पांचरात्र सिद्धान्तों तथा पौराणिक कथाओं से। इस संत परम्परा का समाज में व्यापक प्रभाव पड़ा। इसमें सभी वर्णों के लोग सम्मिलित थे । हम यह तो नहीं कह सकते कि इन्होंने सामाजिक समतावाद की आवाज उठायी क्योंकि विश्व के इतिहास में यह अवधारणा आधुनिक है परन्तु आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के संदर्भ में यह समता अवश्य देखी गयी। दक्षिण भारतीय भक्ति परम्परा में तिरूण्यान तथाकथित निम्न जाति के तथा कुलशेखर राजा। दक्षिण भारतीय भक्ति को सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि देने वाले श्री रामानुज ने शोषित निम्न वर्ण का नाम तिरूकुलत्तर दिया जिसके अर्थ अभिजात्य वर्ग थे। उनके गुरू कांचीपूर्ण ब्राह्मण नहीं थे। जब रामानुज की पत्नी ने उनके प्रति अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया तो उन्होंने पली को त्याग दिया। उनके प्रिय शिष्यों में शूद्र भी थे जैसे धर्मदास। धर्मदास के कंधों का सहारा लेकर वे स्नान करके लौटते तथा यह कहते कि कावेरी के स्नान से तो उनका शरीर शुद्ध होता है परन्तु धर्मदास के स्पर्श से मन। अत: जब–जब भक्ति की आस एक आन्दोलन के

---

53. सुस्मिता पाण्डे मेडीवल भक्ति मूवमेंट, पृ. 33
54. प्रथम अध्याय, उद्देश्य
55. उद्देश्य
56. मधुसूदन, सरस्वती भगवद् भक्ति रसायनम्
57. वल्लभाचार्य अनुमाष्य
58. अचिन्त्य भेदाभेद में
59. भगवत के उद्धरण से प्राय: कुछ विद्वान ऐसा मानते है।

रूप में उभरी है तब–तब आध्यात्मिक संदर्भ में सामाजिक भेदभाव दूर हुए है। संभवत इसका कारण यही है कि भक्ति मानव चेतना में परम चेतना का प्रतिबिम्ब है, तथा परम चेतना अखंड तथा सार्वभौमिक है – सांप्रदायिक अथवा सभी अन्य भेदों से परे है।

आड़वार तथा नायनारों ने धर्मकथाओं को लोकप्रिय किया। विष्णु तथा शिव से संबंधित ये धर्म तथा पुरा कथाएं ऐतिहासिक घटनाओं की प्रतीक मात्र नहीं समझी जा सकती है जैसा कि कुछ विद्वान मानते हैं[60] परन्तु इनकी अभिव्यक्ति को एक स्वतंत्र क्षेत्र के संदर्भ में समझना चाहिए। ये एक संस्कृति विशेष के उच्चतम मूल्यों तथा आदर्शों की परम्परा का प्रतिनिधित्व करती है जो एक ओर तो वस्तुनिष्ठता लिए होती है क्योंकि वह सामाजिक तथ्यों के संदर्भ में प्रकट होती है परन्तु दूसरी ओर वह इससे भी अधिक है क्योंकि उसकी अनुभूति का एक सार्वभौमिक आयाम हो जाता है। ये विचार यद्यपि किसी विशेष काल में प्रकट होते हैं परन्तु वास्तव में कालातीत होते हैं। वे एक देश के आकि टाइप (आद्य अनुभव) से फूटने वाले प्रतीक होते है तो एक संस्कृति के ईश्वर, मनुष्य तथा सृष्टि विषयक अनुभवों के गहन रूप को दर्शाते है। अत: धर्म कथाओं के माध्यम से सांस्कृतिक विकास का कार्य इन संतों द्वारा संभव हुआ। आड़वार धर्म कथाओं की गाथा को अपने संदर्भ में कहते थे। अत: वे ईश्वर के महान कृत्यों का गान कर अपने जीवन में भी उत्कृष्टता से उसी प्रकार से ईश्वर की अनुकम्पा की आशा करते थे। इस प्रकार ये धर्म कथाएं उनको ईश्वर का समकालीन जैसा बना देती जिनसे न ही केवल उनका अंतर्मन किन्तु समस्त सृष्टि एक प्रकार से – ईश्वरीय उपस्थिति से आलोकित हो जाती। धर्म के आधुनिक दार्शनिक धर्मकथा के इसी महत्व की ओर संकेत करते है।[61]

पंचरात्र विधि से व्यक्तिगत पूजा का प्रसार करके उन्होंने सभी को भक्ति विषयक अनुष्ठानों के करने के अवसर दिये। इन विधानों में गुण चढ़ाना, चंदन लगाना, अर्चा अवतार (मूर्ति) को ईश्वर का अवतार समझना, मंदिर की परिक्रमा, तथा चर्या आदि थे जो सभी को सुलभ थे केवल धनिकों को ही नहीं।

अवतारों को आड़वारों द्वारा बहुत महत्व दिया गया तथा प्रत्येक की रचना में नैतिकता प्रधान तत्व है। अवतार स्वयं भी ऐसे परम सत्य का मार्ग दर्शाते है जिसमें वे सभी कष्टों और विधि की विडम्बनाओं से जूझते हुए भी सत्य के मार्ग से विचलित नहीं होते। अत: अवतार स्वयं भी समाज में नैतिक मूल्यों की प्रेरणा बनते है।

नायनारों द्वारा शैव सिद्धान्त को निजी जीवन में अनुभव का उदाहरण दिया गया। जो एक कोरा सैद्धान्तिक दर्शन था वह जीवन से जुड़ कर जीवन्त हो गया। रामानुज ने भक्ति की दार्शनिक पृष्ठभूमि स्थापित कर आत्मपरक अनुभवों की भावनात्मक अतिरंजता तथा सैद्धान्तिक वस्तुनिष्ठता के बीच समन्वय स्थापित किया तथा सच्चे अर्थ में धर्म के विज्ञान की स्थापना की।

---

60. डी. डी. कोसम्बी

61. लेराय ई लुमेकर "सिम्बल एंड मिथ इन फिलासफी टुथ, मिथ एंड सिम्बल" में पृ. 122

## 1.9 शब्दावली

**वेद** – हिन्दुओं द्वारा प्रारंभिक एवं सबसे अधिक प्रामाणिक धर्म ग्रन्थ जो पवित्र तथा प्रामाणिक सत्य को उद्घटित करते है।

**उपनिषद** – प्रत्येक वेद से जुड़े वे भाग जो ज्ञान कांड कहे जा सकते है। इनमें दार्शनिक सत्य के विषय में तर्क वितर्क आदि है।

**श्वेताश्वतर उपनिषद** – इसकी प्रकृति ईश्वरवादी (Theistic) दर्शन से ओत–प्रोत है। शैव सिद्धान्त के बीज इसमें देखे जा सकते है।

**अवतार** – ईश्वर का इतिहास तथा समय में मानव के रूप में अवतरण।

**पंचरात्र संहिताएं** – वैष्णव धर्म के कर्म कांड को दार्शनिक आधार देती है तथा भक्ति और प्रपत्ति के सिद्धान्त को महत्व देती है। इनके विषयों में ज्ञान, योग, क्रिया तथा चर्या प्रमुख है। क्रिया मंदिर तथा मूर्ति निर्माण संबंधी नियम तथा चर्या मंदिर में सेवा कर्म आदि है। विद्वानों द्वारा प्रारंभिक पंचरात्र संहिताओं की तिथि गुप्तकाल से पूर्व नहीं रखी जा सकती।

**आगम** – वैदिक परम्परा के समानान्तर दूसरी परम्परा जिसमें व्यक्तिगत ईश्वर की कृपा अनुकम्पा, लीला तथा मूर्ति पूजा, मंदिर, भक्ति, संगीत आदि की परम्परा थी। वेदों की भांति आगमों को भी ईश्वर द्वारा उद्घाटित माना जाता है।

**व्यूहवाद** – यह एक प्रकार का निस्सरण का सिद्धान्त है जिसके अनुसार परम सत्य का रूपांतरण सूक्ष्म से स्थूल तत्वों में प्रकट होता है। यह प्रकटीकरण कई स्तरों में होता है। ये व्यूह है – वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरूद्र और शाम्ब। वासुदेव में सभी छः दैवी गुण है। शेष सभी में सभी गुण है लेकिन दो–दो ही प्रकट दिखते है। जैसे संकर्षण में ज्ञान और बल, प्रद्युम्न में ऐश्वर्य एवं वीर्य, अनिरूद्र में शक्ति एवं तेजस। इनका सांख्य के तत्वों से भी तादात्म्य किया गया।

**अद्वैतवाद** – इस मत के अनुसार परम सत्य एक ही है। सृष्टि के पीछे का सत् ब्रह्म तथा मानव का अंतर्तम सत् आत्मा वास्तव में एक ही है। इससे सृष्टि की उत्पत्ति नहीं मानी गयी है। परन्तु ब्रह्म विवर्तवाद माना गया है अर्थात् जिस प्रकार अविद्या से रज्जु सर्प की भांति दिखता है उसी प्रकार माया द्वारा हम ब्रह्म में ही जगत का आरोपण करते है।

**विभिष्टाद्वैत** – रामानुज का दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें ईश्वर, जीव तथा जगत– अथवाचित वे ज्ञान और ईश्वर त्रितत्तत्माक 'ब्रह्म है। जीव तथा जगत ईश्वर के अंग समान है। इनका सार ईश्वर के समान ही है।

**आर्किटाईप** – प्रत्येक संस्कृति के कुछ आद्य विचार तथा अनुभव होते है जो सभी लोगों में सामान्य होते है। इनका स्वरूप धुंधला होता है तथा ठोस रूप में अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से होती है। ये प्रतीक कला साहित्य धर्म आदि है। ये एक संस्तुति विशेष के उच्चतम आदर्शों तथा मूल्यों की ओर संकेत करते है।

## 1.10 ग्रन्थ

1. भगवद्गीता – गीता प्रेस गोरखपुर

2. श्रीमद्भागवत पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर
3. विष्णु पुराण
4. पद्म पुराण – गुरू मण्डल सीरिज, कलकत्ता
5. अहिर्बुधवय संहिता – कृष्णामाचार्य आडियार, मद्रास
6. नारद भक्ति सूत्र
7. भगवद भक्ति रसायनम, मधुसूदन सरस्वती,
8. श्रीभाष्य – रामानुजाचार्य
9. हरिभक्तिरसामृतसिंधु – रूप गोस्वामी।
10. अनुभाष्य – वल्लभाचार्य

(1) ए. गोविंदाचार्य : द होली लाईफ दि आडवार्स द द्रविड सेंटर।
(2) ऐंक्यर : शैविच्च इन साउथ इंडिया।
(3) ए पी. कर्मकर : रिलीजन्स ऑफ इंडिया लोनावाला, 1950
(4) डी. सी. सरकार : रिलीनियस लाईफ इन ऐंश्यैंट एण्ड मेडीवल इंडिया, दिल्ली, पटना, वराणसी, 1971
(5) डी. डी. कोसम्बी : इन्ट्रोडक्सन टु द स्टडी आफ इंडियन हिस्ट्र, बाम्बे, 1975
(6) डी. डी. कोसाम्बी - द कल्चर एंड सिविलाईजेशन ऑफ ऐंश्यैंट इंडिया दिल्ली पुनर्संस्करण, 1997
(7) दीक्षितार : स्टडीज इन द तमिल लिटरेचर, मद्रास 1942
(8) जी. सी. पांडे : फाउन्डेशन्ज ऑफ इंडियन कल्चर 2 जिल्दों में – बुक्स एंड बुक्स मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
(9) जोआखिम ताश : सोशिआलाजी आफ रिलिजन
(10) जे. एस. एम. हूपर : हिम्ज ऑफ दि आडवार्स – आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 29
(11) के. शिवरमन : शैविज्म इन फिलोसोफिकल पर्सपेक्टिव
(12) के. सी. वरदाचारी : आडवार्स ऑफ द साउथ – भारतीय विद्या भवन, बाम्बे, 1966
(13) मर्सिया इलियेडस : मिथ एंड रियालटी एलेन एंड अनविन 1964
(14) मारिया सुजाई घवमोनी लव आफ गाड एकार्डिंग टु शैव सिद्धान्त - ए स्टडी इन द मिस्टिसिज्म एंड रियाल्टी आफ शेविज्म क्लोरीडन प्रेस, लंदन, 1971
(15) पिल्लई : तमिलव श्लाम जिल्द 11
(16) नीलकंठ शास्त्रीए : ए हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया–आक्सफोर्ड : यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966
(17) रत्ना नवरत्नम : तिरूवाशगम

(18) सुस्मिता पांडे : बर्थ आफ भक्ति इन इंडियन रिलिजन्स एंड आर्ट – बुक्स एंड बुक्स नई दिल्ली, 1982
: मेडीवल भक्ति मूवमेंट क्रसुमांजलि प्रकाशन मेरठ, 1989
(19) श्रीराम गोयल : ए रिलिजियस हिस्ट्री आफ इंडिया जिल्द 2, कुतुमांजलि प्रकाशन
(20) सुवीरा जायसवाल : दि ओरिजिन एंड डेवलपमेंट आफ भागवतिज्म।

# इकाई – 2
# शंकराचार्य एवं उनका अद्वैत वेदान्त

**इकाई की रूपरेखा**


2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 शंकराचार्य का जीवन वृतान्त

2.2.1 शंकर का जन्म

2.2.2 शिक्षा

2.2.3 विरोधियों से शास्त्रार्थ

2.2.5 वेदान्त पीठों की स्थापना

2.2.6 देहावसान

2.3 वेदान्त का विकास : वेदान्त का अर्थ – उपनिषदों से भाष्य तक

2.4 अद्वैत वेदान्त के ग्रन्थ

2.5 शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन

2.5.1 सत्ता के त्रिविध स्तर

2.5.2 परब्रह्म

2.5.3 ईश्वर

2.5.4 माया

2.5.5 जगत

2.5.6 जीव

2.5.7 बन्धन और मोक्ष

2.5.8 मोक्ष का स्वरूप

2.5.9 ब्रह्म और जीव में सम्बन्ध

2.6 उपसंहार

2.7 शब्दावली

2.8 संदर्भ ग्रन्थ


## 2.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य शंकराचार्य का संक्षिप्त जीवन वृतान्त तथा उनके अद्वैत दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों का विवेचन करना है, इस इकाई के अध्ययन से आप निम्नलिखित बातों को जान पाएंगे–

- शंकराचार्य का –जन्म उनकी शिक्षा–दीक्षा, विरोधियों से शास्त्रार्थ, सांस्कृतिक एकता में योगदान
- वेदान्त का अर्थ एवं उसका विकास
- शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त : ब्रह्म, ईश्वर, माया, जीव, जगत, बन्धन एवं मोक्ष।

## 2.1 प्रस्तावना

शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन उनके विवर्तवाद पर आधारित है विवर्तवाद वस्तुत: कारणता का सिद्धान्त है जिसके अनुसार कारण ही सत्य है तथा कार्य प्रतीत मात्र है दूसरे शब्दों में कारण का कार्य में रूपान्तरण वास्तविक नहीं है कारण कभी भी कार्य में परिवर्तन नहीं होता केवल ऐसा प्रतीत होता है कार्य कारण का विवर्त मात्र है अन्धेरे में पड़ी हुई रस्सी सांप में रूपान्तरित नहीं होती है अपितु ऐसी प्रतीत होती है इसी प्रकार ब्रह्म इस जगत का मूल कारण है तथा जगत ब्रह्म का विवर्त है अर्थात् ब्रह्म वास्तविकता में अनेकात्मक जगत में परिवर्तन नहीं होता है वरन् ऐसा प्रतीत होता है यह प्रतीत अनादी माया के कारण से होती है माया ब्रह्म की शक्ति है स्वयं अज्ञान रूप होते हुए भी ब्रह्म के शुद्ध चैतन्य रूप को प्रभावित नहीं करती इसी तरह जगत की नाम रूपात्मक अनेकता तथा जीव की ब्रह्म से भिन्नता भी वास्तविक नहीं अपितु विवर्त ही है माया के प्रभाव से जगत की अनेकता वास्तविक लगती है यही नहीं जीव स्वयं को ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर न केवल जीव स्वयं को ब्रह्म के रूप में देखने लगता है वरन् जगत की अनेकता के मूल में भी एक ब्रह्म के दर्शन करने लगता है शंकर के अनुसार अज्ञान भेद दृष्टि तथा अनेकता का जनक है एवं ज्ञान अद्वैत एवं एकता की ओर ले जाता है भेद दृष्टि बन्धन है अद्वैत दृष्टि मोक्ष है शंकर के अद्वैत वेदान्त को उसके सुदृढ़ तार्किक आधार के कारण भारतीय दर्शन में ही नहीं पाश्चात्य दार्शनिक जगत में भी अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

## 2.2 शंकराचार्य का जीवन वृतान्त

अनेकों युगों के बाद कभी–कभी ऐसे विलक्षण प्रतिभावान महापुरुषों का जन्म होता है जो अल्पायु में ही ऐसे महान कार्य कर जाते है जो साधारण मनुष्य जन्मों में भी नहीं कर पाते, अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक आद्य शंकराचार्य ऐसी ही दिव्य विभूति थे, मात्र 32 वर्ष की अल्पायु में न केवल उन्होंने एक ऐसे दर्शन का प्रतिपादन किया जो लगभग 7200 वर्षों से निरन्तर भारतीय जनमानस का उच्च आदर्श बना रहा है अपितु दक्षिण में श्रृंगेरी से उत्तर में बद्रिकाश्रम तथा पश्चिम में द्वारिका से पूर्व में पुरी तक देश के चारों कोनों में वेदान्त पीठों की स्थापना कर राष्ट्र को सही अर्थों में सांस्कृतिक एकता के धागे में पिरोया, यह महत्वपूर्ण कार्य उन कठिन परिस्थितियों में किया गया जबकि यातायात के आज जैसे समुन्नत साधनों का सर्वथा अभाव था।

हर महापुरुष के साथ दिव्यता जोड़ने की हमारी परंपरा के कारण उनके जीवन को मानवीय धरातल से उठाकर दैवीय स्वरूप दे दिया जाता है। फलस्वरूप उनके जीवन के साथ जुड़ी किवंदन्तियो ऐतिहासिक तथ्यों को धूमिल कर देती है। शंकराचार्य के साथ भी यही हुआ। माध्वाचार्य कृत शंकरदिग्विजय शंकर की उपलब्धियों' एवं उनके जीवन वृतान्त की जानकारी का प्रमुख स्त्रोत है, इस ग्रन्थ में शंकराचार्य को भगवान शिवजी का अवतार बतलाकर स्थान–स्थान पर उन्हें दैवीय चमत्कारों से जोड़ने का प्रयास किया गया है, इससे इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्व गौण हो जाता है।

### 2.2.1 शंकर का जन्म

शंकराचार्य की जन्मतिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, प्रसिद्ध तैलंग के अनुसार शंकर का जन्म छठी शताब्दी के मध्य या अन्त में हुआ, आर. जी. भण्डारकर शंकर की जन्म तिथि 680 ईस्वी मानते है, विख्यात पाश्चात्य मैक्समूलर तथा मक्डॉनल के अनुसार शंकर की जन्म तिथि 788 ईस्वी तथा मृत्यु, की तिथि 820 ईस्वी है, अधिकांश विद्वान इन्हीं तिथियों को स्वीकार करते है, किन्तु ए. बी. कीथ शंकर के जन्म को काफी पीछे ले जाते है, प्रो. कीथ 9वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शंकर का जन्म मानते है।

माध्वाचार्य तथा आनन्द गिरि दोनों विद्वानों ने शंकर के व्यक्तित्व पर शंकर दिग्विजय नाम से स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे है, इन ग्रन्थों में शंकर के जीवनावृतान्त के अतिरिक्त विरोधियों, विशेष रूप से बौद्धों तथा मीमांसकों के विरूद्ध किए शास्त्रार्थ तथा उनमें शंकर की विजय का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है, आनन्द गिरि शंकर दिग्विजय में शंकर का जन्म दिसम्बर में 44 ईस्वी पूर्व तथा मृत्यु 12 ई. पूर्व बतलाई गई है, किन्तु विद्वानों में मत की कोई मान्यता नहीं है, 14वीं शताब्दी में हुये विचारणीय "जिनका दूसरा नाम माध्वाचार्य भी था" द्वारा लिखित शंकर दिग्विजय के अनुसार आद्य शंकराचार्य का जन्म केरल प्रान्त के मलाबार क्षेत्र में कालड़ी नामक गांव में रहते वाले एक नखूदरी ब्राहमण परिवार में हुआ था, उनके अनुसार वृष पर्वत के निकट पूर्णा नदी के तट पर विशाल शिव मन्दिर के समीप ही कालड़ी नामक ग्राम स्थित है, इसी गांव में विद्याधिराज नामक विद्वान ब्राहमण रहा करते थे, विद्याधिराज के पुत्र शिवगुरू परम शिवभक्त तथा प्रकाण्ड पण्डित थे, विद्याध्ययन के उपरान्त शिवगुरू ने आर्याम्बा नामक विदुषी ब्राहमणी के साथ विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया, विवाह के कई वर्षों बाद भी जब शिवगुरू एवं आर्याम्बा के कोई सन्तान नहीं हुई तो ब्राहमण दम्पत्ति चिन्तित रहने लगा उन्होंने सन्तान प्राप्ति हेतु भगवान शंकर की कई वर्षों तक निरन्तर आराधना की अन्ततोगत्वा एक रात्रि में भगवान शंकर शिवगुरू के स्वप्न में प्रकट हुए और पूछा कि एक अल्पायु पुत्र, जो सर्वगुण सम्पन्न एवं विद्वान हो, दूं अथवा विपरीत आचरण करने वाले दीर्घायु अनेक पुत्र दूं? शिवगुरू ने एक अल्पायु किन्तु, सर्वगुण सम्पन्न विद्वान पुत्र मांगा तत्पश्चात समयोपरान्त शिवगुरू की धर्मपत्नी आर्याम्बा को एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। भगवान शंकर की कृपा से होने के कारण बालक का नाम शंकर ही रखा गया।

### 2.2.2 शिक्षा

शंकर जब बालक ही थे तभी पिता शिवगुरू का देहान्त हो गया। माता आर्याम्बा ने बालक का बहुत लाड़–प्यार एवं मनोयोग से लालन पोषण किया। शंकर तो जन्म से ही अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न तथा तीक्ष्ण बुद्धि के धनी थे। उन्होंने बहुत कम आयु में ही सारी शिक्षाओं को ग्रहण कर लिया था। कहा जाता है कि मात्र आठ वर्ष की आयु में ही शंकर ने समस्त वेदांत तथा शास्त्रों का अध्ययन सम्पन्न कर लिया था। किन्तु इस संदर्भ में कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। हां इतना अवश्य माना जा सकता है कि किशोरावस्था को पार करते–करते शंकर ने समस्त शास्त्रों का सांगोपांग अध्ययन कर लिया। क्योंकि इस बात से तो सभी सहमत

है कि 32 वर्ष की आयु में अपने देहावसान से पूर्व शंकर ने न केवल बौद्धों एवं मीमांसकों जैसे प्रबल विरोधियों को परास्त करते हुए अद्वैत मत की स्थापना ही कर ली थी, अपितु देश के चारों कोनों में वेदांत के प्रचार प्रसार हेतु वेदान्त पीठों को भी स्थापित कर लिया था। इससे स्पष्ट है कि युवावस्था तक पहुंचते पहुंचते मे सभी वेद वेदांगो को हृदयंगम कर चुके थे।

शंकर जब गुरूकुल में रह कर शिक्षा ग्रहण कर रहे थे तब एक दिन सहपाठियों के साथ भिक्षारन के दौरान एक निर्धन ब्राह्मण के घर पहुंचे। उन्हें देखकर ब्राह्मणी बार–बार मन में यह विचार करके कि वह गुणी विद्यार्थियों को भिक्षा देने में असमर्थ, अत्यन्त दुखी हुई। घर में इधर–उधर खोजबीन करने पर उसे एक आँवला मिला जिसे उसने शंकर के हाथ में रख दिया। उसी ब्राह्मणी की दीनता को देखकर शंकर का बाल सुलभ हृदय अत्यन्त द्रवित हो गया। उन्होंने तुरन्त लक्ष्मी–स्तवन की रचना कर स्तुति करने लगे। लक्ष्मी के प्रसन्न होने पर उस ब्राह्मण परिवार को धनी करने का वर मांगा। लक्ष्मी ने ऐसा ही किया।

### 2.2.3 सन्यास ग्रहण

गुरूकुल से शिक्षा ग्रहण करने के बाद शंकर ने माता आर्याम्बा से सन्यास की आज्ञा मांगी। किन्तु मां उनका शीघ्र विवाह कर उन्हें गृहस्थ बनाना चाहती थी। माता आर्याम्बा का शंकर के प्रति अगाध स्नेह था। शंकर भी माता को अत्यधिक आदर देते थे। वे माता की आज्ञा का उल्लंघन कर सन्यासी नहीं होना चाहते थे। उन्होंने एक युक्ति सोची। वे सदैव घर के पास बहने वाली नदी में स्नान करने जाया करते थे। एक दिन वे नदी में स्नान के लिए प्रवेश करने के उपरान्त जोर–जोर से बचाओ–बचाओ चिल्लाने लगे। उनकी आवाज सुन कर माता आर्याम्बा भागी–भागी नदी के किनारे पहुंची। शंकर ने माता से कहा कि मगरमच्छ ने उनका पाँव पकड़ लिया है और वह यदि उन्हें सन्यास लेने की आज्ञा दे दे तो मगरमच्छ से छुटकारा मिल सकता है। ममता की मारी माँ ने अन्त में सन्यास की आज्ञा दे दी किन्तु साथ ही शंकर से एक वचन भी मांगा कि उसके अन्तिम समय में अंत्येष्टि के लिए शंकर को अवश्य आना होगा। शंकर ने ऐसा ही करने का वचन दिया जिसे उन्होंने निभाया भी।

सन्यास लेने के बाद शंकर गुरू की खोज में निकले । इसी खोज में उन्हें नर्मदा के किनारे गोविन्दपाद मिले जिनके वे शिष्य हो गए। गोविन्दपाद प्रसिद्ध अद्वैतवादी गौड़पाद के शिष्य थे तत्पश्चात शंकर काशी पहुंचे। वहां एक दिन गंगा–स्नान करके लौटते हुए उन्हें एक संकरे मार्ग में अपने कुलों के साथ एक चाण्डाल आता हुआ दिखाई दिया। चाण्डाल को देखते ही वे चिल्लाए दूर रहो, दूर रहो, इस पर वह चाण्डाल बोला कि है? शंकर पर उस चाण्डाल की बात का गहरा असर हुआ। उन्होंने तत्काल एक पांच शलाकों की मनीषा पन्चक की रचना की जिसके माध्यम से उन्होंने कहा कि जो भी व्यक्ति इस जगत को भेद रहित देखता है वह मेरा गुरू है भले ही वह चाण्डाल ही क्यों न हो। अद्वैत की सच्ची भावना भी भेद रहितता, है। गीता में भी यही बात कही गई है कि ज्ञानी व्यक्ति ब्राह्मण और चाण्डाल में भेद नहीं करता। प्रतिभावान शंकर आशु कवि भी थे। काशी में ही उन्होंने एक वार एक विद्यार्थी को कड़े परिश्रम से संस्कृत व्याकरण को कंठस्थ करते हुए देखा उस विद्यार्थी को यह बतलाने के लिए कि, व्याकरण का लौकिक महत्व तो है पर उससे मोक्ष नहीं मिल सकता, बारह श्लोक का एक गीत "भज

गोविन्दम भजगोविन्दम भजगोविन्दम मूढ़मते " की तत्काल रचना कर डाली। इस भक्ति गीत के अतिरिक्त विष्णुसहस्रनाम आदि अनेक उपासना परक स्त्रोतों की शंकर ने रचना, इन भक्ति परक रचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि शंकर ज्ञान मार्गी होते हुए भी भक्ति के विरोधी नहीं थे।

### 2.2.4 विरोधियों से शास्त्रार्थ

शंकर ने अल्पायु में ही अद्वैत वेदांत के प्रचार–प्रसार के लिए अनेक यात्राएं की तथा विरोधियों के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें परास्त किया। काशी से वे बद्रिकाश्रम गए जहां पर उन्होंने प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवतगीता) पर अपने प्रसिद्ध भाष्य लिखे। तदुपरान्त पुन: काशी लौट आए। काशी से प्रयाग संगम में स्नानार्थ जाते हुए शंकर ने सुना कि कुमारिल भट्ट पक्के मीमांसक थे उनका वेदों की प्रमाणिकता में अटूट विश्वास था। वे वेद निहित कर्मकाण्ड को ही मुक्ति का मार्ग मानते थे। शंकर शास्त्रार्थ करने की इच्छा से उनसे मिलने गए। किन्तु जब तक वे पहुंचे तब तक कुमारिल भट्ट आधे जल चुके थे। उन्होंने शंकर को अपने शिष्य मण्डन मिश्र से, जो कि उन्हीं की भांति मीमांसा दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित थे, शास्त्रार्थ करने की सलाह दी। उनसे विदा लेने से पूर्व शंकर ने उनके आत्मदाह का कारण पूछा। कुमारिल भट्ट ने आत्मदाह के दो कारण के रूप में वेदों की प्रामाणिकता एवं स्वयंसिद्धता सिद्ध करने के लिए ईश्वर का खण्डन करना माना। कुमारिल भट्ट, जो जन्म से ब्राह्मण थे, बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली थी। किन्तु शीघ्र ही बौद्ध धर्म से विरक्ति हो जाने पर उसे छोडकर मीमांसक हो गए। अपने बौद्ध गुरू को ही शास्त्रार्थ में परास्त: कर बौद्धों के विरोध का श्रीगणेश किया। वे मीमांसा दर्शन के धुरन्धर विद्वान थे इसीलिए शंकर के मन में कुमारिल को परास्त करने की प्रबल अभिलाषा. थी जो पूरी न हो सकी।

कुमारिल भट्ट के कहे अनुसार शंकर शास्त्रार्थ के लिए मण्डन मिश्र के पास पहुंचे। दोनों विद्वानों की मध्यस्था मण्डन मिश्र की विदुषी पत्नी ने की। शास्त्रार्थ में मण्डन मिश्र के परास्त हो जाने पर उनकी पत्नी ने कहा कि पत्नी पति की अर्धांगिनी होती है। अत: जब तक शास्त्रार्थ में उसे हरा नहीं लेते तब तक उसके पति पूरी तरह परास्त नहीं माने जाएंगे, शंकर ने मण्डन मिश्र की विदुषी पत्नी की चुनौती को सादर स्वीकार किया, शास्त्रार्थ में मण्डन मिश्र की पत्नी ने कामशास्त्र से सम्बन्धित गूढ़ प्रश्न पूछे जिनका समुचित उत्तर देना शंकर जैसे ब्रह्मचारी के लिए सम्भव नहीं था, इसके लिए उन्होंने कुछ समय मांगा, ऐसा कहा जाता है कि शंकराचार्य ने यौगिक क्रिया द्वारा अपना स्थूल शरीर छोडकर उसी समय दिवंगत हुए राजा अमरूक के शरीर में प्रवेश किया, तत्पश्चात कुछ समय तक रमणियों के संग रह कर कामशास्त्र में निपुणता प्राप्त की अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पश्चात् शंकर ने पुन: अपने शरीर स्थूल में जो उनके शिष्य पद्मपाद के पास सुरक्षित पड़ा था, प्रवेश किया इस तरह कामशास्त्र में निष्णात हुए शंकर ने मण्डन मिश्र की विदुषी पत्नी को हराया फलस्वरूप मण्डन मिश्र अपनी पराजय स्वीकार कर शंकराचार्य के शिष्य हो गए मण्डन मिश्र ही कालान्तर में सुरेश्वराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए (कुछ विद्वान मण्डन मिश्र का सुरेश्वराचार्य को एक नहीं मानते है)।

### 2.2.5 वेदान्त पीठों की स्थापना

अपनी इस विजय यात्राओं के बाद शंकर ने समूचे राष्ट्र एवं समाज को एक सूत्र में बांधने की दृष्टि से देश की चारों दशाओं में मठों की स्थापना की सर्वप्रथम दक्षिण में आज के कर्णाटक राज्य में श्रृंगेरी मठ की स्थापना कर सुरेशवराचार्य को मठाधीश नियुक्त किया, उत्तर में बद्रीनाथ के पास जोशी मठ की स्थापना कर दक्षिण के आचार्य से उसका मठाधीश बनाया, पूर्व दिशा में जगन्नाथ धाम में गोवर्धन पीठ तथा पश्चिम दिशा में द्वारिका पीठ की स्थापना की देश की चारों दिशाओं में मठों की स्थापना कर शंकर ने सांस्कृतिक एकता की जो सुदृढ़ नींव रखी थी उसकी परम्परा आज भी अक्षुण्ण है।

### 2.2.6 देहावसान

शंकराचार्य के हृदय में मां के प्रति कितना अगाध प्रेम, श्रद्धा एवं कर्तव्य की भावना थी यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि मां की मृत्यु के समय पण्डित वर्ग के प्रबल विरोध की उपेक्षा करके तथा सन्यासी परम्परा का उल्लंघन करते हुए माँ की अन्त्येष्टि अपने हाथों से की, शंकर का 32 वर्ष की अल्पायु में केदारनाथ में देहावसान हो गया, शंकर ने न केवल अपनी प्रबल तार्किक पद्धति के आधार पर बौद्ध दर्शन का ही खण्डन किया, अपितु वैदिक कर्मकाण्ड का भी घोर विरोध किया, वैदिक कर्मकाण्डी ब्राह्मणवाद का लोकप्रिय एवं उदार हिन्दूवाद में रूपान्तरित करने का प्रमुख श्रेय शंकर को ही जाता है, समस्त भू–प्राणियों में एक भेद रहित शुद्ध चैतन्य का दर्शन करना ही अद्वैत की धारणा ही विभिन्न मतों में एकता ला सकती है, उन्होंने दक्षिण के मलाबार में उत्तर में हिमालय तक प्रचलित हिन्दू पूजा की सभी विधियों को स्वीकार किया, यही नहीं जहां शंकर ने शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य, आदि के स्त्रोत लिखे वहीं दूसरी ओर नर–बलि, पशु बलि जैसे अन्ध विश्वासों का भी कड़ा विरोध किया, शंकर द्वारा रोपित उदार हिन्दूवाद के बीज को वैष्णवाचार्यों ने शक्ति रस से सींच कर पुष्पित और पल्लवित किया तथा सूर, तुलसी, कबीर, मीरा जैसे संत कवियों की निर्मल वाणी ने इसे सुदृढ़ नीवों वाले पुष्ट वृक्ष के रूप में विकसित किया।

## 2.3 वेदान्त का विकास : वेदान्त का अर्थ – उपनिषदों से भाष्य तक

शंकराचार्य का दर्शन अद्वैत वेदान्त कहलाता है, उनके अद्वैत वेदान्त का मुख्य ग्रन्थ शारीरिक भाष्य है, यह ब्रह्मसूत्र पर लिखा गया है, शारीरिक का अर्थ शरीर का स्वामी अर्थात् आत्मा होता है, शंकर के भाष्य का प्रतिपाद्य विषय आत्मा या ब्रह्मा है। इसलिए इसका नाम शारीरिक भाष्य पड़ा वेदान्त नाम मूलतः उपनिषदों का है उपनिषदों को निम्नलिखित कारणों से वेदान्त कहा गया है : –

(अ) कालक्रम की दृष्टि से उपनिषद् वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग है।

(ब)अध्ययन की दृष्टि से उपनिषदों को अध्ययन संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक के बाद किया जाता है।

(स)ज्ञान की दृष्टि से उपनिषद् वैदिक साहित्य का सार है, वे वैदिक मनीषा की पराकाष्ठा है, अत: इन्हें वेदान्त अर्थात वेद का अन्त कहा जाता है। वैदिक साहित्य के प्रारम्भिक सोपान संहिताओं में विभिन्न देवों की स्तुतियों की गई है, ब्राह्मण सोपान में यज्ञ–योगादि का विधान है वैदिक साहित्य के अन्तिम सोपान उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय एक अद्वितीय परम सत्य का अन्वेषण करना है, या परमसत्य ब्रह्म है, यों तो उपनिषदों की संख्या सैकड़ों में है, किन्तु प्रामाणिक उपनिषद ग्यारह माने जाते है, जिन पर वेदान्ताचार्यों ने अपने भाष्य लिखे है, उपनिषद् यद्यपि ऋषियों की स्वानुभूति के उद्गार है, तथापि परम सत्ता के स्वरूप के निरूपण में इनमें परस्पर मतभेद देखने को मिलता है। इस सतही मतभेद को दूर करने तथा इनमें सैद्धान्तिक एकरूपता स्थापित करने की दृष्टि से बादरायण नामक ऋषि ने उपनिषदों के ज्ञान को सूत्रबद्ध किया इस सूत्र ग्रन्थ को वेदान्त सूत्र कहा गया, वेदान्त सूत्र का भी मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मा होने के कारण इसे ब्रह्मसूत्र भी कहा गया।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि महर्षि बादरायण के अलावा भी कुछ विद्वानों ने उपनिषदों की व्याख्या की है, स्वयं बादरायण ने अपने वेदान्त सूत्र या ब्रह्मसूत्र में आस्मरथ्य, औडुलेर्गम तथा काश्कस्ल का उल्लेख किया है, किन्तु इनमें से किसी भी एक विद्वान का कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होने के कारण वेदान्त सूत्र अथवा ब्रह्मसूत्र को ही उपनिषदों पर लिखा गया एकमात्र प्रमाणित ग्रन्थ, माना जाता है। ब्रह्मसूत्र के सूत्र छोटे–छोटे एवं क्लिष्ट हैं। फलस्वरूप इन्हें समझने में कठिनाई होती है। अत: जनसाधारण में इसे ग्राह्य बनाने के लिए आचार्यों ने इस पर भाष्य लिखे: ब्रह्मसूत्र पर लिखे गए उपलब्ध भाष्यों में प्राचीनतम भाष्य शंकराचार्य द्वारा रचित शारीरिक भाष्य है। इसे शंकर भाष्य भी कहा जाता है। यह लगभग 8वीं ईस्वी के आस–पास रचा गया है। शंकर के अतिरिक्त जिन आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र भाष्य लिखे। उनमें रामनुजाचार्य, माध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि है। वेदान्त नाम जो मूलत: उपनिषदों के लिए प्रयुक्त होता था कालान्तर में वह इन आचार्यों के दर्शन के लिए प्रयुक्त होने लगा। शंकर का दर्शन अद्वैत वेदान्त रामानुजार्य का विशिष्टाद्वैत वेदान्त, माध्वाचार्य का द्वैत वेदान्त, का दर्शन शुद्धाद्वैत वेदान्त कहलाने लगा। वेदान्त के इन सम्प्रदायों में शंकर अद्वैत वेदान्त सुदृढ़ तार्किक नींव पर आधारित होने के कारण सर्वाधिक प्रतिष्ठित है।

## 2.4 अद्वैत वेदान्त के ग्रन्थ

शंकर ने वेदान्त–सूत्र के अलावा प्रमुख उपनिषदों और भगवद्गीता पर भी भाष्य लिखे। इनके अतिरिक्त शंकर ने उपदेश–साहस्री भी लिखी है, जो संक्षिप्त होते हुए भी अद्वैत वेदान्त के सिद्धांतों को की बहुत अच्छी जानकारी देती है। शंकर के बाद उनके अनुयायियों ने अद्वैत मत का बहुत प्रभावशाली ढंग से विकास किया। परन्तु इस प्रयास में उनमें आपस में मतभेद

भी उभर कर सामने आए। परिणामस्वरूप शंकर के अद्वैत मत के दो प्रमुख सम्प्रदाय बन गए – एक विवरण सम्प्रदाय तथा दूसरा भामती सम्प्रदाय। विवरण सम्प्रदाय का सूत्रपात शंकर के शिष्य यज्ञपाद द्वारा उनके सूत्र भाष्य पर लिखी हुई एक टीका पंचपादिका से हुआ, पंचपादिका पर प्रकाशात्मन ने विवरण नामक टीका लिखी, जिससे इसका नाम विवरण सम्प्रदाय पड़ा। भामती सम्प्रदाय का प्रारम्भ वाचस्पति की विख्यात कृति भामती से माना जाता है। दोनों सम्प्रदायों के अनुयायियों ने महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर शंकर के अद्वैत वेदान्त को और समृद्ध किया। इनके अलावा शंकर के अद्वैत दर्शन पर कई स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे जिनमें से कुछ ग्रन्थ तो दार्शनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यथा–सुरेशवराचार्य का नैएकर्म्य–सिद्धि तथा सर्वज्ञात्मन् द्वारा लिखित संक्षेप शारीरिक विमुक्तात्मन् कृत इष्ट सिद्धि में शंकर के मायावाद की बहुत सुन्दर व्याख्या की गई है। विचारण्य द्वारा लिखित पंचदशी अद्वैत मत के अनुयायियों के पारस्परिक मतभेदों का सुन्दर विवेचन हुआ है। धर्मराज अध्वरीन्द्र का ग्रन्थ वेदान्त परिभाषा अद्वैत ज्ञानमीमांसा पर लिखा गया उच्चकोटि का ग्रन्थ है। सदानन्द का वेदान्तसार अद्वैत दर्शन पर लिखा गया सरल परिचयात्मक ग्रन्थ है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त श्री हर्ष का खण्डन – खण्डखाध तथा मधुसूदन सरस्वती का लिखा हुआ अद्वैतसिद्धि अपनी तार्किक श्रेष्ठता के कारण वेदान्त के पण्डितों में प्रतिष्ठित ग्रन्थ माने जाते है। दार्शनिक दृष्टि से इन पांडित्यपूर्ण ग्रन्थों ने शंकर के अद्वैत वेदान्त को भारतीय दर्शन में अत्यन्त सम्मानजनक स्थान दिलवाना है।

## 2.5 शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन

शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन का सार एक श्लोक में प्रस्तुत किया जा सकता है – **"ब्रह्म सत्य, जगन्नमिथ्या जीवों ब्रह्मौव नापर:"** अर्थात ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है तथा जीव ब्रह्म से अभिन्न है, इस तरह शंकर के अद्वैत मत में मात्र ब्रह्म को ही परम सत्य कहा गया है। शंकर ब्रह्म को ही परम सत्ता मानते हुए किसी भी प्रकार के द्वैतवाद को पूरी तरह से अस्वीकार करते है। इसलिए इनका दर्शन अद्वैतवाद कहलाता है। शंकर के अद्वैत दर्शन को भली–भांति समझने के लिए सर्वप्रथम उनके द्वारा वर्णित सत्ता के त्रिविध स्तर को जानना चाहिए। (स) पारमार्थिक सत्ता। इनमें से प्रत्येक निम्न सत्ता अपने से उच्च सत्ता के द्वारा बाधित हो जाती है। प्रतिमासिक सत्ता अपने स्तर पर सत्य होते हुए भी अपने से उच्च व्यावहारिक सत्ता के उदय हो जाने पर बाधित हो जाती है। इसी तरह अपने से उच्च पारमार्थिक सत्ता के उदय हो जाने पर व्यावहारिक सत्ता भी बाधित हो जाती है। पारमार्थिक सर्वोच्च सत्ता होने के कारण किसी अन्य सत्ता के द्वारा बाधित नहीं होती है। **पारमार्थिक सत्ता** त्रिकालाबाधित नित्य सत्ता है अर्थात् वह भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों में अबाधित रहती है। अब सत्ता के त्रिविध स्तर की विस्तार से विवेचन करते है।

### 2.5.1 सत्ता के त्रिविध स्तर

**(अ) प्रतिमासिक सत्ता:** जिसका केवल कुछ समय के लिए प्रतिमास या आभास मात्र होता है। वह प्रतिमासिक सत्ता है। सोते समय दिखाई देने वाले स्वप्नों की सत्ता प्रतिमासिक सत्ता है। जब तक स्वप्न की अवस्था रहती है। स्वप्न के नाना विषय भी सत्य प्रतीत होते हैं।

स्वप्न के स्तर पर स्वप्न के विषयों का बाध या लोप नहीं होता जब तक व्यक्ति स्वप्न देख रहा होता है वह उसे स्वप्न नहीं अपितु वास्तविकता ही मानता है। किन्तु जैसे ही व्यक्ति स्वप्न की अवस्था से निकल कर जागृत अवस्था में आता है। तो स्वप्न के विषयों का बोध हो जाता है। वे सभी वस्तुएँ जो कुछ समय पूर्व स्वप्न सत्य लग रही थीं जाग्रत अवस्था में लुप्त हो जाती है, इसी प्रकार साँझ के झुटपुटे में रस्सी के स्थान पर दिखाई देने वाले सांप की सत्ता भी प्रतिभासिक सत्ता है, समीप जाने पर अथवा पर्याप्त प्रकाश के हो जाने पर सांप लुप्त हो जाता है और हमें रस्सी दिखाई देने लग जाती है, प्रतिभासिक **सत्ता अल्पकालिक** होती है।

**(ब) व्यावहारिक सत्ता:** प्रतिभासिक सत्ता की अपेक्षा व्यावहारिक सत्ता की अपेक्षा व्यावहारिक **सत्तादीर्घकालिक** होती है, जब तक अज्ञान दूर नहीं हो जाता अर्थात परमसत्ता का ज्ञान नहीं हो जाता तब तक व्यावहारिक सत्ता वास्तविक ही जान पड़ती है व्यावहारिक सत्ता प्रतिमासिक सत्ता से इस अर्थ में भी भिन्न है कि वह सब व्यक्तियों के लिए एक सी होती है, दो या अधिक व्यक्तियों के लिए स्वप्नों में कोई समानता नहीं होती, जबकि अनुभवात्मक व्यावहारिक जगत विभिन्न व्यक्तियों के लिए एक सा होता है, नदी, पहाड़ वृक्ष मेज आदि वस्तुएं विभिन्न व्यक्तियों को एक सी ही लगती है, अनेक रूपात्मक वस्तु जगत की देशगत एवं कालगत सत्ता व्यावहारिक सत्ता है, व्यक्तियों का समस्त जागृतिक व्यवहार इसकी व्यावहारिक सत्ता के अन्तर्गत होता है इस स्तर पर वस्तुओं के अनेक रूप तथा उनके अनेक नाम ही वास्तविक लगते है उनके मूल में स्थित एकता का इस स्तर पर ज्ञान नहीं होता, दूसरे शब्दों में व्यावहारिक सत्ता के स्तर पर भेद दृष्टि वास्तविक लगती है, जब पारमार्थिक सत्ता अर्थात् पर ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है। तब इस भेद दृष्टि अर्थात् व्यावहारिक सत्ता का बोध हो जाता है, ज्ञानी व्यक्ति अनेक रूपात्मक वस्तुओं के मूल में एक ब्रह्म का दर्शन करने लगता है।

**(स) पारमार्थिक सत्ता:** यह सर्वोच्च या परम सत्ता है, इसका किसी अन्य सत्ता द्वारा कभी भी बोध नहीं होता पारमार्थिक सत्ता नित्य तथा अपरिवर्तनशील सस्ता है। परब्रह्म ही पारमार्थिक सत्ता है। यह शुद्ध चैतन्य है, भेद रहित है तथा सर्वव्यापक है। इन्द्रियों द्वारा ग्रहण की जाने वाली वस्तु जगत की अनेकता केवल नाम रूपात्मक है। वास्तविक नहीं वस्तुत: यह पारमार्थिक सत्ता ही प्रातिमासिक सत्ता एवं व्यावहारिक सत्ता का मूल आधार है। पारमार्थिक सत्ता के स्तर पर भेद–दृष्टि का लोप हो जाता है। एक बात ध्यान देने योग्य है कि सत्ता का प्रत्येक स्तर अपने स्तर पर सत्य है। अपने से उच्च स्तर से उसका बोध होता है। अन्यथा नहीं। जब तक जाग्रत अवस्था नहीं होगी तब तक स्वप्न, स्वप्न नहीं। अपितु वास्तविक ही लगेंगे। वैसे ही ब्रह्म ज्ञान के न होने तक यह अनेकात्मक जगत भी सत्य ही प्रतीत होगा। ब्रह्मज्ञान या पारमार्थिक सत्ता के उदय होने पर ही नाम–रूप की अनेकता मिथ्या तथा ब्रह्म की एकता वास्तविक लगने लगेगी।

त्रिविधसत्ता के विवेचन के उपरान्त अद्वित वेदान्त के मुख्य सिद्धांतों का निरूपण करते हैं। अद्वैत दर्शन के प्रमुख सिद्धांत हैं – पर ब्रह्म, ईश्वर, माया, जगत और जीव।

### 2.5.2 परब्रह्म

परब्रह्म मूलसत्ता है। यह समस्त चर–अचर वस्तुओं की आधारभूत सत्ता है। जैसे किसी वृक्ष का मूल उसकी जड़ होता है जिसके अभाव में वृक्ष का अस्तित्व सम्भव नहीं होता। वैसे ही परब्रह्म के अभाव में किसी भी वस्तु का अस्तित्व सम्भव नहीं होता। यह शुद्ध चैतन्य है, चैतन्य परब्रह्म का गुण या विश्लेषण नहीं है अपितु उसका स्वरूप है, गुण तथा गुणी में आधेय व आधार का भेद होता है, चैतन्य और परब्रह्म में यह भेद भी नहीं है, दोनों में तादात्म्य सम्बन्ध है, दूसरे शब्दों में चैतन्य ही ब्रह्म है, ब्रह्म ही चैतन्य है, शंकर ने ब्रह्म का दो रूपों में वर्णन किया है – एक निर्गुण ब्रह्म जिसे उन्होंने परब्रह्म भी कहा है, दूसरा सगुण ब्रह्म जो अपर ब्रह्म या ईश्वर भी कहा गया है, ये दो ब्रह्म नहीं अपितु एक ही बह्म के दो रूप है।

परब्रह्म निर्गुण है अर्थात् गुणरहित है, सभी ज्ञेय वस्तुएं गुण–गुणी या विशेषण विशेष्य संबंध के रूप में हमारे सामने आती है, यथा घोड़ा तेज भागता है, सोना पीले रंग का होता है, धातु गर्म करने पर फैलते है, आदि परब्रह्म सर्वथा गुण अथवा विशेषण रहित है, वस्तुत: वह शुद्ध सत्ता मात्र है, गुण या विशेषण रहित होने के कारण परब्रह्म की उद्देश्य विधेय रूप में व्याख्या भी नहीं की जा सकती, अत: परब्रह्म को अनिर्वचनीय या अकथनीय भी कहते है, यह निराकार है, पर ब्रह्म आकार रहित है, वह अरूपी है परबह्म सबसे परे है, यह देशकाल से परे है, भौतिक वस्तुऐं यहां–वहां, इधर–उधर स्थित होती है, किन्तु परब्रह्म किसी स्थान विशेष तक सीमित नहीं है, यह सर्वत्र एक–सा भाव से विद्यमान है, परब्रह्म के अविकारी अर्थात् अपरिवर्तनशील होने के कारण इसकी काल के अन्तर्गत गणना नहीं हो सकती, ब्रह्म न नया है न पुराना अपितु सनातन है, आदि अन्त और मध्य से रहित है, इसी अर्थ में परम सत्ता देश–काल से परे कही गई है, इसके विपरीत सभी भौतिक वस्तुओं की देश–काल में गणना होती है, वे उत्पन्न होती है, स्थित रहती है, और अन्त में नष्ट हो जाती है, परब्रह्म हर प्रकार के भेद से रहित है, भेद तीन प्रकार के माने गए है, (अ) सजातीय भेद – एक ही जाति की वस्तुओं में परस्पर भेद जैसे एक गाय का दूसरी गाय से भेद (ब) विजातीय भेद – एक जाति की वस्तु का दूसरी जाति की वस्तु से भेद जैसे गाय का भैंस से भेद। (स) स्वगत भेद – एक ही वस्तु में विभिन्न अंगों का भेद यथा गाय में सींग और पूंछ का भेद, परब्रह्म तीनों प्रकार के भेदों से सर्वथा परे है, वह भेद रहित अखण्ड शुद्ध चैतन्य सत्ता है, समझने की दृष्टि हम यहां शंकर की रामानुज के साथ तुलना करते है, रामानुज बह्म में स्वगत भेद मानते है, जिस प्रकार अंश–अंशी या अंग–अंगी का भेद होता है वैसे ही ब्रह्म में विशेषण विशेष्य का भेद है, रामानुज के अनुसार चित् (चेतन तत्व या जीव) तथा अचित (अचेतन तत्व या प्रकृति) ये दोनों ब्रह्म के विशेषण है। तथा ब्रह्म विशेष्य है, रामानुज आगे कहते है कि चित्–अचित (विशेषण) एवं ब्रह्म (विशेष्य) में अपृथक सिद्धि का सम्बन्ध है, दूसरे शब्दों में चित–अचित ब्रह्म से भिन्न हुए भी उससे पृथक नहीं किए जा सकते, शंकर ब्रह्म में इस विशेषण विशेष्य के स्वगत भेद को भी

अस्वीकार करते हुए ब्रह्म सर्वथा भेद रहित मानते है, पर ब्रह्म अचिन्त्य है, वह इन्द्रियां, मन, बुद्धि का विषय नही है। ब्रह्म अरूणी, अमूर्त एवं असीम होने के कारण इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, मन के द्वारा संकल्पित नहीं हो सकता तथा न ही बुद्धि के अनुसार पर ब्रह्म निर्गुण निराकार, देशकाल से परे भेद रहित, अनिर्वचनीय अचिन्त्य पर सत्ता है,

शंकराचार्य परब्रह्म के नकारात्मक विवेचन के बाद उसका सकारात्मक निरूपण भी करते है, परब्रह्म अकथनीय होने के कारण न तो उसके संबंध में कुछ स्वीकार किया जा सकता है, और न अस्वीकार किया जा सकता वह निषेध दोनों ही से परे है। तथापित परब्रह्म के स्वरूप को समझने के लिए उसे आनन्द कहा गया है, ब्रह्म निर्गुण एवं अमूर्त होते हुए भी सवशून्य अथवा निस्सार नहीं है, इसके विपरीत वह समस्त सत्तावन पदार्थों का सार है, परम सत्ता है, अर्थ में शंकर परब्रह्म का सत् कहते है, वह सर्वकालिक सत् है अर्थात् तीनों कालों में निर्बाध रूप से सर्वत्र विद्यमान रहता है ब्रह्म चित्त है अर्थात शुद्ध चैतन्य है, विश्व की समस्त चैतन्य वस्तुएं ब्रह्म के कारण से ही चैतन्य है, परब्रह्म अनन्त आनन्द है, आनन्द सुख से भिन्न है सुख वस्तु की प्राप्ति का परिणाम है, इसलिए सुख क्षणिक है जबकि आनन्द अविनाशी है आनन्द बल का स्वरूप है, यह किसी की अपेक्षा नहीं रखता अत: यह अनन्त व अविनाशी है, सत् चित्त आनन्द ब्रह्म विशेषण या गुण नहीं है, अपितु ब्रह्म का स्वरूप ही है, सत् ही ब्रह्म है, चित्त ही ब्रह्म है, आनन्द ही ब्रह्म है, सत् रूप में ब्रह्म समस्त पदार्थो का आधारभूत सार है, जिसके बिना किसी भी वस्तु का अस्तित्व संभव नहीं है, चित्त रूप में ब्रह्म सभी प्राणियों को अनुप्रमाणित करता है, आनन्द रूप में ब्रह्म समस्त सुखों व मूल, स्त्रोत है, इस सकारात्मक विवेचन से शंकर का ब्रह्म बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन के शून्य से सर्वथा भिन्न हो जाता है, नागार्जुन के परम सत्ता शून्य की नकारात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए उसे चतुष्कोटि (सत् है, असत् है, सत्–असत् दोनों है, न सत् न असत्) से परे बतलाया था, शंकर का पर ब्रह्म निर्गुण एवं निराकार रूप में जगत से नितान्त परे है तथा सत् चित् आनन्द रूप में वह जगत से परे होते हुए ही इसका मूल आधार है।

### 2.5.3 ईश्वर

परब्रह्म या शुद्ध चैतन्य जब माया की उपाधि से उपहित होता है। तो वह ईश्वर कहलाता है। शंकर ईश्वर को अपर ब्रह्म अथवा सगुण ब्रह्म भी कहते हैं: माया शक्ति से युक्त ईश्वर ही इस नाना रूपात्मक जगत का मूल, कारण है, यह माया ही अखण्ड, भेद रहित शुद्ध चैतन्य पर जगत की अनेकता का आरोपण करती है। ईश्वर की दृष्टि से देखने पर जगत की अनेकता प्रतिमास मात्र है, क्योंकि ईश्वर अपनी माया शक्ति से प्रभावित नहीं होता। जीवों की दृष्टि से देखने पर यह अनेकात्मक जगत वास्तविक है। जीव ईश्वर की माया से भ्रमित हो जाते है, अत: उन्हें माया–जन्य प्रतिमास वास्तविक लगने लगता है। इस बात को एक दृष्टांत से समझ सकते है। एक बाजीगर मंच पर अपनी विद्या से एक सिक्के से अनेक सिक्के बना देता है, दर्शक, जो कि बाजीगर की विद्या से अनभिज्ञ होते है: इस घटना को वास्तविक मानते हुए अचम्भित रह जाते है। इसके विपरीत बाजीगर इस सारे क्रियाकलाप में पूर्णतया निर्लिप्त रहता

है क्योंकि वह यह जानता है कि सिक्के की अनेकता उसकी हाथ की सफाई मात्र है। जैसे लहरें समुद्र में उठती है और पुन: समुद्र में लीन हो जाती है, वैसे ही यह अनेकात्मक जगत ईश्वर के भीतर अर्थात शुद्ध–चैतन्य में ही आभासित होता है और ईश्वर में ही इसका लय भी हो जाता है। अत: ईश्वर को ही जगत का निमित्तोषादान कारण कहा गया है अर्थात माया शक्ति युक्त ईश्वर ही इस नानात्मक जगत का निमित्त कारण तथा अपादान कारण दोनों ही है। प्रेरक होने के कारण ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण होता है तथा स्वयं से ही सृष्टि करने के कारण वह उपादान कारण कहलाता है। जैसे मकड़ी स्वयं से ही जाला निकालती है और स्वयं में ही पुन : समेट लेती है। ऐसे ही ईश्वर स्वयं से ही सृष्टि करता है तथा अन्त में सृष्टि को पुन: स्वयं में ही समेट लेता है। इस रूप में ईश्वर या सगुण ब्रह्म जगत का सृष्टा, पालक तथा संहारक है। परब्रह्म निराकार रूप में जगत से परे है। तथा सगुणरूप में यह अंतर्यामी है। जिस प्रकार मिट्टी से बने हुए सभी बर्तनों में मिट्टी व्याप्त है वैसे ही समस्त भूत प्राणियों में ईश्वर अंतर्व्याप्त है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक है। शंकर के अनुसार सगुण ब्रह्म उपासना या भक्ति का श्रेष्ठ विषय है। निर्गुण ब्रह्म (परब्रह्म) और सगुण ब्रह्म (ईश्वर) कोई दो भिन्न सत्ताएं नहीं है, अपितु एक ही सत्ता के दो रूप है। परब्रह्म ही जब माया की उपाधि से उपहित होता है तो वह सगुण ब्रह्म या ईश्वर रूप में प्रतीत होता है। ईश्वर अथवा सगुण ब्रह्म व्यावहारिक सत्ता है। माया का आवरण हटने पर ब्रह्म का निर्गुण रूप ही सामने आता है। परब्रह्म अथवा निर्गुण ब्रह्म पारमार्थिक सत्ता है। ब्रह्म का निर्गुण रूप वास्तविक है क्योंकि वह कभी बाधित नहीं होता। ब्रह्म के दोनों रूप एक ही है इस बात को एक दृष्टांत से समझ सकते है। मंच पर एक नाटक खेला जा रहा है। इस नाटक में एक व्यक्ति जो कि वास्तविक जीवन में चपरासी है, राजा का अभिनय कर रहा है। नाटक में राजा बना हुआ व्यक्ति भली–भांति जानता है कि वास्तविकता में तो वह चपरासी ही है, राजा होना तो अभिनय मात्र है। नाटक समाप्त होते ही उसे चपरासी का ही कार्य करना है। इस ज्ञान के कारण वह राजा की भूमिका से आसक्त नहीं रहता क्योंकि वह जानता है कि वह अस्थायी पात्र है, इसलिए वह राजा बना हुआ चपरासी राजा की भूमिका के प्रति तटस्थ अर्थात् निर्लिप्त रहता है, उसका अपना स्वरूप तो चपरासी का ही है, ठीक इसी भांति परब्रह्म अपने सगुण रूप से सर्वथा तटस्थ रहता है क्योंकि सगुण रूप वास्तविक रूप नहीं है, माया की उपाधि के न रहने पर सगुण रूप भी नहीं रहता, इसलिए सगुण रूप या ईश्वर परब्रह्म का तटस्थ लक्षण कहलाता है, ब्रह्म निर्गुण रूप वास्तविक होने के कारण वह स्वरूप लक्षण कहलाता है, शंकर और रामानुज में हम यहां मूलभूत मतभेद पाते है, रामानुज ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक मानते है, उनके अनुसार कोई भी वस्तु कदापि निर्गुण या निर्विशेष नहीं हो सकती, अत: ब्रह्म निर्गुण नहीं सगुण ही है इसके विपरीत शंकर ब्रह्म के निर्गुण रूप को ही वास्तविक मानते है, शंकर के अनुसार यह निर्गुण ब्रह्म ही पर सत्ता है, यही एकमात्र पारमार्थिक सत्ता है।

### 2.5.4 माया

ब्रह्मा के निरूपण के बाद हम माया का विवेचन करते है, माया शंकर वेदान्त का अत्यधिक महत्वपूर्ण साथ ही अत्यधिक जटिल सिद्धान्त है, माया की सहायता से ही शंकर अनेकात्मक जगत, जीव तथा ईश्वर की व्याख्या करते हैं। किन्तु माया का वास्तविक स्वरूप क्या है? माया का ब्रह्म के साथ कैसा संबंध है। माया का आधार क्या है? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जिनका हमें संतोषजनक समाधान नहीं मिलता, इसलिए माया महत्वपूर्ण सिद्धान्त होते हुए भी जटिल और दुरूह अवधारण है।

शंकर के अनुसार माया सगुण ब्रह्म अर्थात् ईश्वर की शक्ति है, जहां वास्तव में भेद नहीं है, वहां माया भेद दृष्टि पैदा कर देती है। भेद रहित शुद्ध–चैतन्य के स्थान पर अनेक रूपात्मक संसार का आरोपण माया ही का कार्य है, माया न केवल ज्ञान का अभाव है अपितु उससे अधिक है; यह न केवल परमसत्ता के स्वरूप को ढकती ही है। अपितु उसके स्थान पर अन्यत्व की भेद दृष्टि उत्पन्न करती है, माया के स्वरूप का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं में करते हैं:

1. **सदसद्विलक्षण :–** माया को सत्–असत् से विलक्षण कहा गया है, माया सत् नहीं है, क्योंकि अद्वैत–वेदान्त में उसी वस्तु को सत् कहा गया है जो त्रिकालाबाधित हो अर्थात् जो तीनों कालों में निर्बाध रूप से विद्यमान रहती हो, किन्तु ज्ञान के उदय होने पर अज्ञान रूपी माया लोप हो जाता है, अत: यह सत् नहीं है, माया असत् भी नहीं मानी जा सकती, अद्वैत वेदान्त में वह वस्तु असत् मानी जाती है जिसका खरगोश के सींग की तरह किसी भी काल में अस्तित्व न रहा हो, परन्तु माया की तो प्रतीति होती है, अत: यह असत् भी नहीं है, माया के इस प्रकार सत्–असत् से भिन्न होने के कारण इसे सदसद्विलक्षण कहा है, इसकी किसी भी रीति से व्याख्या सम्भव न होने के कारण माया को अनिर्वचनीय भी कहा गया है।

2. **अज्ञान–मूलक :–** माया ज्ञान आ अभाव है, शंकर के अनुसार ज्ञान का तात्पर्य है, परम सत्ता का स्वरूप जानना, माया के प्रभाव से परम सत्ता ब्रह्म का स्वरूप ढक जाता है, यही अज्ञान है, परम सत् को ढकने की यह क्रिया आवरण कहलाती है, माया द्विपक्षीय है, यह न केवल ब्रह्म को स्वरूप आवृत करती है। अपितु उसके स्थान पर अनेक रूपात्मक जगत की प्रतीति करवाती है, यह किया विशेष कहलाती है। आवरण तथा विक्षेप से माया के कार्य हैं।

3. **भावरूप :–** माया अज्ञान से अधिक है, यह न केवल ज्ञान का अभाव है अपितु सत् वस्तु पर अन्यत्व का आरोपण भी है, एक अखण्ड शुद्ध चैतन्य ब्रह्म को ढंग उससे अन्य अनेकात्मक जगत की प्रतीति करवाती है, अन्यत्व की प्रतीति करवाने कारण माया को भावरूप कहा गया है।

4. **अनादि :–** माया अनादि है, इसका कोई प्रारम्भ नहीं है।

5. **सान्त :–** यह सनादि होते हुए भी सान्त है, ज्ञान के उदय होने पर माया का अन्त हो जाता है, अत: यह सान्त है। सगुण ब्रह्म अथवा ईश्वर अपनी माया शक्ति से ही इस जगत का सृष्टा, पालक एवं संहारक कहलाता है, अद्वैत वेदान्त में माया को अविद्या भी कहा

गया है, यद्यपि स्वयं शंकराचार्य ने माया एवं अविद्या में कोई भेद नहीं किया, किन्तु शंकर के अनुयायियों ने माया तथा अविद्या का भिन्न–भिन्न प्रयोग किया है, परवर्ती अद्वैत वेदान्त में ईश्वर की उपाधि को माया तथा जीव की उपाधि को अविद्या कहा है।

### 2.5.5 जगत

यह अनुभावात्मक, इन्द्रियगोचर वस्तु–संसार ही जगत कहलाता है। यह जगत संसृति है अर्थात निरन्तर परिवर्तनशील है, शंकराचार्य जगत को मिथ्या कहते है, कुछ लोग भ्रान्ति से मिथ्या का अर्थ असत् अर्थात् नॉन बिंग्स (Not beings) से लेते हैं। जो उचित नहीं है, शंकर मिथ्या पद का विशिष्ट अर्थ में प्रयोग करते है, जिसकी तत्वतः सत्ता नहीं है वह मिथ्या है, इस बात को एक उदाहरण से समझा जा सकता है, सोने के बने हुए आभूषणों की सोने से स्वतंत्र तात्विक सत्ता नहीं है। अपने अस्तित्व के लिए आभूषण पूरी तरह सोना पर आश्रित है। अत: सोना (आभूषणों की तुलना में) तत्वत: सत्य है और आभूषण मिथ्या है, इसी तरह जगत अपनी सत्ता के लिए पूर्णत: ब्रह्मा पर आश्रित है। ब्रह्मा से स्वतंत्र इस जगत की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है इस दृष्टि से यह जगत निस्सार है, इसका अपना कोई सार नहीं, कोई स्वभाव नहीं, जगत्सत् नहीं है क्योंकि यह त्रिकालाबाधित नहीं है, ब्रह्म ज्ञान हो जाने पर इसका बोध हो जाता है, यह खरगोश के सींग की तरह असत् भी नहीं है, क्योंकि इसकी प्रतीति होती है, इस प्रकट जगत को निस्सार एवं सत्–असत् से भिन्न होने के कारण मिथ्या कहा गया है।

त्रिविध सत्ताओं के अन्तर्गत जगत की व्यावहारिक सत्ता है, जगत की नामरूप की अनेकता व्यवहार की दृष्टि से ही सत्य है, पारमार्थिक दृष्टि से नहीं, स्वर्ण आभूषणों की विविधता व्यवहार की दृष्टि से सत्य है, तत्व की दृष्टि से सोना ही सत्य है। सोने के आभूषणों में नाम और रूप की भिन्नता है तथा तत्व की अभिन्नता है, सुनार की दृष्टि से सोना प्रमुख है तथा अलग–अलग नाम और अलग–अलग रूप वाले आभूषण गौण है, इसके विपरीत आभूषणों की शौकीन महिला की दृष्टि में सुन्दर–सुन्दर आभूषणों की विविधता प्रमुख है और सोना गौण है, ठीक यही बात जगत के लिए भी है, जब तक अज्ञान रहता है, तब तक जगत की अनेकता ही एकमात्र सत्य प्रतीत होती है, लोगों के व्यवहार भी उसी के अनुरूप होते है, अनेकता को सत्य मानने पर कोई वस्तु अच्छी लगती है तो कोई बुरी अच्छी वस्तु के प्रति मन में प्रेम उपजता है तो बुरी वस्तु के प्रति घृणा, ब्रह्म ज्ञान के हो जाने पर नाम रूप की अनेकता गौण हो जाती है, फलस्वरूप ज्ञानी व्यक्ति सर्वत्र एक अद्वितीय शुद्ध–चैतन्य ब्रह्म को ही देखता है। जैसे स्वप्न से जाग्रतावस्था में आने पर यद्यपि स्वप्नावस्था का लोप हो जाता है तथापि उसकी नामरूपात्मक अनेकता निष्प्रभावी हो जाती है। ब्रह्म ज्ञानी सब भूत–प्राणियों में एक, अखण्ड, शुद्ध–चैतन्य को ही देखता है, तात्पर्य यह है कि जगत की अनेकता व्यावहारिकता दृष्टि से ही सत्य है, जब तक अज्ञान रहता है तब तक व्यक्ति इस अनेकता से प्रभावित होकर उसके अनुरूप व्यवहार करता है माया रूपी अज्ञान के हटते ही यह अनेकता प्रभावहीन हो जाती है । ज्ञानी व्यक्ति के लिए जगत की अनेकता को कोई अर्थ नहीं रह जाता उसके लिए सब कुछ

ब्रह्म ही है, पर ब्रह्म ही पारमार्थिक सत्ता है, यह सब सत्ताओं का आधार है, यह तीनों कालों में निर्बाध रूप से विद्यमान रहती है।

### 2.5.6 जीव

शंकर वेदान्त में ब्रह्म को आत्मा कहा गया है, दूसरे शब्दों में ब्रह्म और आत्मा दोनों एक ही है । जीव ब्रह्म या आत्मा का व्यावहारिक रूप है। आत्मा शुद्ध चैतन्य है जबकि जीव अन्त: करण की उपाधि से अवच्छिन्न चैतन्य है। जैसे घड़े के भीतर का आकाश अर्थात घटाकाश बाहर के आकाश से तत्वतः भिन्न नहीं है, घड़े की उपाधि के कारण से दोनों में व्यावहारिक भेद है। वैसे ही जीव और ब्रह्म में अविद्या जन्य अन्त: करण की उपाधि से भेद प्रतीत होता है। ब्रह्म अथवा आत्मा सभी उपाधियों से रहित शुद्ध–चैतन्य है, किन्तु जीव अन्त:करण की उपाधि से अविच्छन्न या सीमित चैतन्य है। जब घटाकाश की उपाधि घड़ा फूट जाता है। तब घटाकाश (घड़े के भीतर का आकाश) और महाकाश (घड़े के बाहर का आकाश) में कोई भेद नहीं रह जाता। यही स्थिति जीव की है। ज्ञान के उदय होने पर अविद्या का पर्दा हट जाता है तब जीव और ब्रह्म दोनों उपाधि रहित शुद्ध–चैतन्य रूप में एक हो जाते हैं। अविद्या के कारण भेद प्रतीत होता है। इस अविद्या के फलस्वरूप ही एक ब्रह्म के स्थान पर अनेक जीवों की प्रतीति होती है। आकाश में चमकने वाला एक ही चन्द्रमा विभिन्न जलाशयों में प्रतिबिम्बित होने पर अनेक प्रतीत होता है। ऐसे ही विभिन्न शरीर एवं अंत:करण से अविच्छिन्न होने पर शुद्ध चैतन्य अनेक जीवों में प्रतीत होता है। जीवों की यह अनेकता व्यावहारिक है। वास्तविक नहीं।

### 2.5.7 बन्धन और मोक्ष

जीव अपने मूल स्वरूप अर्थात शुद्ध चैतन्य रूप में अकर्ता, अभोक्ता, शुद्ध निर्विकारी एवं साक्षी है। वह सुख–दुख, राग–द्वेष आदि समस्त द्वन्द्वों से नितान्त पर है। कर्मों का कर्ता तथा सुख–दुखादि का भोक्ता अन्त:करण है। अविद्या के कारण अन्त:करण का कर्तापन व भोक्तापन जीव में आरोपित होता है। जैसे सूर्य के प्रकाश में स्फटिक मणि के पास लाल पुष्प के पड़े रहने पर उसकी प्रतिच्छाया पड़ने से स्फटिक मणि सफेद होते हुए भी लाल प्रतीत होती है, वैसे ही अन्त:करण से अविच्छन्न होने के कारण जीव में कर्तापन और भोक्तापन की प्रतीति होती है। यही जीव का बन्धन कहलाता है। बन्धन में पड़ा हुआ ऐसा जीव अज्ञानवश अपने शुद्ध–चैतन्य रूप को शरीर पर आरोपित करता है। जिससे यह शरीर और अन्तःकरण (मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त का संघात) जो कि अचेतन है, चेतन प्रतीत होने लगते है। यहीं अन्त:करण की विकारशीलता परिवर्तनशीलता जीव में आरोपित है, फलस्वरूप जीव बार–बार जन्मने और मरने वाला प्रतीत होता है। शंकर अन्तःकरण के गुणों का जीव में और जीव के गुणों का अन्त:करण में होने वाले इस अध्यारोपण को अध्यास कहते हैं। यह अध्यास ही जीव का बंधन है।

जीव का यह बन्धन व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं। जब ज्ञान जाता है तब जीव स्वयं को अकर्ता, अभोक्ता, साक्षी, शुद्ध चैतन्य मानने लगता है। अद्वैत–वेदान्त में ज्ञान का अर्थ है

आत्म–स्वरूप को जानना, जीव का अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को जान लेना ही ज्ञान है और यह ज्ञान ही मोक्ष है। शंकर के अनुसार ज्ञान मोक्ष दोनों एक ही है। यहां यह जान लेना जरूरी है कि शंकर वेदान्त में मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे प्राप्त करना होता है। आत्मा का स्वरूप ही मोक्ष अथवा मुक्ति है जो सदैव ही विद्यमान रहता है, आत्मा स्वरूप से ही नित्य, शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्त है। जैसे सूर्य आकाश में सदैव विद्यमान है, किन्तु बादल के आ जाने पर वह हमें दिखाई देना बन्द हो जाता है। बादल के हटते ही वह पुन: दिखाई देने लगता है। ठीक वैसे ही अज्ञान रूपी बादल के आ जाने पर आत्मा का शुद्ध–चैतन्य स्वरूप ढक जाता है तथा अज्ञान के हटते ही आत्मा अपने शुद्ध–चैतन्य स्वरूप को जानने लगता है। आत्मा को जानना ही ज्ञान है और ज्ञान ही मोक्ष है।

शंकर जीवन–मुक्ति में विश्वास करते हैं। जीवन–मुक्ति का तात्पर्य है कि शरीर के रहते हुए ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाना व्यक्ति में सांसारिक विषयों के प्रति वैराग्य की भावना जाग्रत हो जाने पर वह राग–द्वेष के द्वन्द्व से ऊपर उठ जाता है तब उसका चित्त अबोध बालक की भांति निष्कपट, निर्मल, और सरल हो जाता है। ऐसे निरभिमानी व्यक्ति को वर्तमान जीवन में ही कभी भी आत्म ज्ञान हो सकता है। ज्ञान के होते ही उस व्यक्ति के जन्मजन्मान्तर के संचित कर्म नष्ट हो जाते है तथा संचीयमान अथवा क्रियामान कर्म (जो वर्तमान जीवन में व्यक्ति द्वारा किए जा रहे है) भुने हुए बीज की तरह फलित नहीं होते। किन्तु प्रारब्ध कर्म, अर्थात संचित कर्मो का वह अंश जिनका भोगा जाना प्रारम्भ हो गया है, तब तक नष्ट नहीं होते जब तक कि वे पूरी तरह भोग नही लिए जाते। इन प्रारम्भ कर्मों के भोग के लिए ही मुक्त व्यक्ति की देह बनी रहती है। यह ज्ञानी व्यक्ति प्रारब्ध कर्मो के भोग से पूर्णत: अप्रभावित रहता है। यही जीवन मुक्ति की अवस्था है। इस जीवन–मुक्त व्यक्ति के जब समस्त प्रारब्ध कर्म भोग लिए जाते है तब उसकी देह के बने रहने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। फलस्वरूप उसकी देह का नाश अर्थात मृत्यु हो जाती है। तत्पश्चात् जब जीवन मुक्त ज्ञानी विदेह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। विदेह मुक्ति प्राप्त कर लेने पर उसे पुन: जन्म नहीं लेना पड़ता। इस प्रकार व्यक्ति के वर्तमान जीवन में ही देह के रहते हुए ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, जिसे जीवन मुक्ति कहा जाता है। जीवन मुक्त व्यक्ति के देह के त्यागने पर विदेह मुक्ति की प्राप्ति होती है।

### 2.5.8 मोक्ष का स्वरूप

भारतीय दर्शन में मोक्ष की सकारात्मक और नकारात्मक, दो प्रकार की व्याख्याएं हुई है। बौद्ध मीमांसा न्याय–वैशेषिक सांख्य आदि दर्शन मोक्ष को दुखों का अनत भर मानते हैं। जबकि जैन एवं वेदान्त के अनुसार मोक्ष न केवल दुखों का नाश है अपितु अनन्त आनन्द का सकारात्मक अवस्था है। शंकर वेदान्त में तो आनन्द और मोक्ष दोनों एक ही है। दृष्टव्य है कि शंकर के अनुसार ज्ञान, ब्रह्म मोक्ष और आनन्द इन चारों में तादात्मय है, अर्थात् ये चारों एक ही है। ज्ञान ही मोक्ष है, मोक्ष आनन्दमय नही अपितु स्वयं आनन्द है और आनन्द ब्रह्म का स्वरूप है। यह आनन्द सांसारिक सुख से नितान्त भिन्न है। सांसारिक सुख विषयापेक्षी होता है,

अर्थात् अभीष्ट विषय की प्राप्ति होने पर सुख की प्राप्ति होती है। यह विषयापेक्षी होता है, अर्थात् अभीष्ट विषय की प्राप्ति होने पर सुख की प्राप्ति होती है। यह विषयापेक्षी सुख सीमित और क्षणिक होता है। आनन्द विषय–निरपेक्ष होता है। आनन्द ब्रह्म अथवा आत्मा का स्वरूप ही है, अतः उसे बाहर विषयों में खोजने की आवश्यकता नहीं होती। आनन्द असीम व अनन्त है ऐसे अनन्त आनन्द को प्राप्त कर लेने के बाद व्यक्ति की समस्त कामनाएं स्वतः ही नष्ट हो जाती है, यही मोक्ष है।

### 2.5.9 ब्रह्म और जीव में सम्बन्ध

ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध के बारे में वेदान्ताचार्यों में पर्याप्त मतभेद हैं। विशिष्टाद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक रामनुजाचार्य के अनुसार जीव और ब्रह्म में विशेषण विशेष्य अथवा अंश–अंशी का सम्बन्ध है जीव अंश है ब्रह्म अंशी है, अंश (जीव) की अंशी (ब्रह्म) के बिना कोई सत्ता नहीं है, दोनों में अंश–अंशी का स्वगत भेद होते भी जीव ब्रह्मा से अपृथक है, द्वैत वेदान्त के प्रणेता माध्वाचार्य के अनुसार जीव ब्रह्मा से नितान्त भिन्न है, जीव निम्न है, ब्रह्म उत्कृष्ट है, मोक्ष की अवस्था में भी जीव और ब्रह्म में द्वैत बना रहता है, दोनों में, नितान्त भिन्नता मानने के कारण माध्वाचार्य का दर्शन द्वैत वेदान्त कहलाता है।

इन दोनों वेदान्ताचार्यों के विपरीत शंकराचार्य का मत है। जिनके अनुसार जीव और ब्रह्मा में पूर्ण तादात्म्य है, जीव मूलस्वरूप में आत्मा अथवा ब्रह्मा ही है, जीव की अनेकता अविद्याजन्य है, एक शुद्ध चैतन्य ही अविद्या के कारण भिन्न–भिन्न अन्तःकरण से अविच्छिन्न होकर अनेक जीवों में प्रतीत होता है, जीवों की यह अविद्याजनय अनेकता व्यवहारिक पारमार्थिक नहीं, शंकर उपनिषदों के इस महावाक्य में पूरी तरह से विश्वास करते है कि "ब्रह्मा वेद ब्रहम्बै भवति" अर्थात ब्रह्मा को जानने वाला ब्रह्मा ही हो जाता है, ज्ञान के उदय होने पर जीव और ब्रह्मा का व्यावहारिक द्वैत पूरी तरह समाप्त हो जाता है। जब भिन्न–भिन्न नामों वाली नदियां समुद्र में विलीन हो जाती है, तब वे अपना सीमित आकार तथा नाम दोनों ही खोकर साक्षात् समुद्र हो जाती है, ब्रह्म ज्ञान हो जाने पर जीव ब्रह्म ही हो जाता है, शंकर जीव और ब्रह्म के तादात्म्य संबंध को समझाने के लिए उपनिषदों के अन्य महावाक्य "तत्वमसि" को उद्धृत करते है, गुरू अपने जिज्ञासु शिष्य से कहते है तत् या वह अर्थात् पर ब्रह्मा, त्वम् या तुम अर्थात् जीव दोनों एक ही हो, वह जिज्ञासु शिष्य गुरू के उपदेश पर मनन करता है। फलस्वरूप उसे आत्मज्ञान होता है, "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् में ब्रह्मा हूं, यही नहीं वह आत्मज्ञानी सर्वत्र एक ही ब्रह्मा के दर्शन करने लगता है, वह कह उठता है "सर्व खल्विदं ब्रह्म" अर्थात् निश्चय ही यह सब कुछ (समस्त भू–प्राणि) ब्रह्मा ही है, इस प्रकार शंकराचार्य जीव और ब्रह्मा में पूर्ण तादात्म्य संबंध स्वीकार करते हैं।

## 2.6 उपसंहार

शंकराचार्य आग्रह पूर्वक द्वैत वाद को अस्वीकार करते है, उनके दर्शन को अद्वैत दर्शन कहा जाता है शंकर परब्रह्मा को ही एकमात्र सत्ता मानते है, यही नहीं वे परमसत्ता को पूर्णतः

भेद रहित, निर्विकारी एवं निर्गुण मानते है, ब्रह्मा के स्थान पर दिखाई देने वाले अनेकात्मक संसार की व्याख्या शंकर माया के आधार पर करते है किन्तु यह माया क्या है? इसका वास्तविक स्वरूप क्या है तथा ब्रह्मा के साथ माथा का क्या संबंध है? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जिनका शंकर संतोषजनक समाधान नहीं कर पाए है रामानुजाचार्य ने भी शंकर के मायावाद की कड़ी आलोचना की है। माया को अज्ञान रूपी अर्थात ज्ञान का अभाव और भावरूप दोनों एक साथ बतलाना आत्मनिरोधी हो जाता है। अज्ञान रूपी माया शुद्ध ज्ञान रूपी ब्रह्म में कैसे रह सकती है? माया और ब्रह्म दोनों एक है। अथवा भिन्न? यदि दोनों एक है तो ब्रह्म ज्ञान स्वरूप और माया अज्ञान रूप कैसे हो सकती है? यदि दोनों भिन्न है, तो विरोधी स्वभाव होने के कारण दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, माया का आधार जीव और जगत भी नहीं हो सकते क्योंकि दोनों माया के कार्य है, माया के द्वारा ही इनकी प्रतीति होती है वैसे इन समस्याओं का समाधान शंकर के अनुयायियों में भी माया और ब्रह्म के सम्बन्ध को लेकर पर्याप्त मतभेद है, तथापि शंकर का अद्वैत वेदान्त तार्किक दृष्टि से अत्यन्त प्रभावशाली दर्शन है, वे माया के स्वरूप के बारे में कहते हैं कि इसे माया कहा ही इसलिए है कि वह विचित्र है। सत्–असत् से विलक्षण है और अज्ञान रूपी होते हुए भी भाव रूप है।

मायावाद और विवर्तवाद अद्वैत वेदान्त के महत्वपूर्ण मौलिक सिद्धान्त है, इन्हीं के आधार पर शंकर जगत की अनेकता तथा जीव की ब्रह्मा से भिन्नता का खण्डन कर अद्वैत दर्शन की स्थापना करते हैं।

## 2.7 शब्दावली

परम सत्ता : वह सत्ता जो समस्त भूत–प्राणियों का मूल कारण है, पर स्वयं किसी का कार्य न हो तथा कभी बाधित न हो।

माया : ब्रह्म की वह शक्ति जो अभेद में भेद एवं एक में अनेक की प्रतीति करवाती।

अध्यास : चेतन के गुणों का अचेतन पर तथा अचेतन के, गुणों का चेतन पर अध्योरोहण अध्यास कहलाता है।

अनिवर्चनीय : जिसका किसी भी रीति से वर्णन या कथन न किया जा सके वह अनिर्वचनीय है।

विवर्तवाद : कारणतः का वह सिद्धान्त जिसके अनुसार कारण ही सत्य है, कार्य प्रतीति मात्र है।

बाधित : जो किसी अन्य ज्ञान के द्वारा लुप्त हो जाता है, वह बाधित कहलाता है जैसे – अंधेरे में दिखाई देने वाला सांप रस्सी के ज्ञान से बाधित हो जाता है।

जीवनमुक्ति : देह के रहते हुए मोक्ष की प्राप्ति हो जाना

जीवनमुक्ति कहलाता है।

अन्तःकरण : ज्ञान का आंतरिक करण या साधन अन्तःकरण कहलाता है, यह मन बुद्धि, अहंकार एवं चित्त का संघात है।

जीव : अन्तःकरण से अविच्छिन्न शुद्ध चैतन्य जीव कहलाता है।

## 2.8संदर्भ ग्रन्थ


1. शंकर : ब्रह्मसूत्र भाष्य
2. पॉलडायसन : वेदान्त दर्शन
3. गंगाप्रसाद उपाध्याय : अद्वैत वेदान्त
4. बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन
5. एम. हरियन्ना : भारतीय दर्शन की रूपरेखा (हिन्दी अनुवाद)
6. सर्वपल्ली राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन भाग– 2 (हिन्दी अनुवाद)
7. एन. के. देवराज : भारतीय दर्शन

# इकाई – 3

# भारत मे भक्ति आन्दोलन का विकास

**इकाई की रूपरेखा**


3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भक्ति ऐतिहासिक परिपेक्ष में

3.3 भक्ति आन्दोलन के उत्कर्ष के कारण

3.4 मध्यकालीन भक्ति का स्वरूप

3.5 मध्य युगीन प्रमुख भक्त

3.6 भक्ति आन्दोलन के संतों की देन एवं उनका प्रभाव

3.7 परवर्ती भक्त

3.8 उपसंहार

3.9 संदर्भ ग्रन्थ


## 3.0 उद्देश्य

भारत में सृष्टि के कर्ता की भक्ति करने की परम्परा प्राचीन से ही विद्यमान है। लेकिन फिर भी डॉ. ग्रियर्सन ने भक्ति को ईसाई धर्म की देन माना है। डा. ताराचन्द का मत है कि भारतवासियों का जब इस्लाम के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ और मुस्लिम शासकों के द्वारा हिन्दू धर्म तथा हिन्दू जनता के प्रति अत्याचार किये गये, उन्हें बलपूर्वक धर्म परिवर्तन के लिए विवश किया गया, तब सुख दुख में ईश्वर का स्मरण करने वाले धर्मनिष्ठ हिन्दुओं ने भक्ति का मार्ग अपनाकर अपने कष्टों के निवारण के लिए आराध्य देव की आराधना करना प्रारम्भ किया था। इस प्रकार डॉ. ताराचंद भक्ति आन्दोलन को इस्लाम धर्म की देन मानते हैं। इस पाठ के माध्यम से विद्यार्थियों को मध्य युगीन भक्ति आन्दोलन के उद्देश्यों, उत्कर्ष के कारणों, प्रमुख भक्तों तथा उनके उपदेशों का भारतीय जन मानस पर प्रभाव का इतिहास के परिपेक्ष ज्ञान कराना है।

## 3.1 प्रस्तावना

भक्ति आन्दोलन के दो प्रमुख उद्देश्य थे।

(1) हिन्दू धर्म व समाज में सुधार करना ताकि इस्लाम के प्रहारों से उसकी रक्षा की जा सके।

(2) इस्लाम तथा हिन्दू धर्म में समन्वय, सौहार्द स्थापित करना ताकि हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित की जा सके। शासक एवं शासित दोनों वर्गों के लिए यह आवश्यक था।

ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम एवं श्रद्धा भक्ति का प्रमुख लक्षण है। भक्त ईश्वर की एकता (एकेश्वर वाद) में विश्वास रखता हो, उसकी भक्ति निष्काम होनी चाहिए। ईश्वर के प्रति शरणागत भक्ति अनिवार्य है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा, अनुराग, प्रेम, उसका नाम स्मरण एवं भजन भक्ति के अनिवार्य तत्व है। सकाम भक्ति की अपेक्षा निष्काम भक्ति श्रेष्ठ है।

रामानुज ने भक्ति की व्याख्या करते हुए बताया था कि गीता के नवम् अध्याय में भक्ति की विस्तृत व्याख्या विद्यमान है। श्री कृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा था, "हे अर्जुन, सभी के आलम्बन छोडकर तू एकमात्र मेरा (ईश्वर का) आश्रय ले। तुझे सभी पापों से मुक्ति मिल जाएगी"। भागवत पुराण में भी भक्ति की व्याख्या करते हुए भाष्यकार ने लिखा था कि समस्त शारीरिक इन्द्रियों को निष्काम भाव से भगवान में लीन कर देने की प्रवृत्ति को ही भक्ति कहते है। शांडिल्य भक्ति सूत्र में ईश्वर में अनुराग को भक्ति बताया है।

## 3.2 भक्ति ऐतिहासिक परिपेक्ष में

भारतीय धर्म व्यवस्था त्रिगुणात्मक है। वह ज्ञान, कर्म और भक्ति के मार्गों पर आधारित है। इसमें भी कर्म और भक्ति सर्वसाधारण की सम्पत्ति होती है। भक्ति इसमें भी सरल है। वह सुलभ होने के कारण अधिक बोधगम्य है। भारत में भक्ति की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल में ही विद्यमान थी। सुप्रसिद्ध कवि दिनकर ने अपनी पुस्तक "संस्कृति के चार अध्याय" में यह प्रतिपादित किया है कि भक्ति आर्येतर प्रवृत्ति थी अर्थात् आर्यों के भारत में आगमन से पूर्व भी भक्ति भारत में विद्यमान थी। भारत के अनार्य निवासी द्रविड़ों में भी भक्ति का प्रचलन था।

भारत के ठोस प्रमाण हमें सिंधु सभ्यता में भी मिलते है। मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त कुछ सीलों व मुहरों पर उत्कीर्ण चित्रों के आधार पर इतिहासकारों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भक्ति का प्रचार उस काल में ही था। प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन के मतानुसार अनेक वैदिक ऋचायें भी भक्ति मार्ग के सिद्धांत का प्रतिपादन करती है, अत: भक्ति अत्यन्त प्राचीन है।

ईसा से कई शताब्दी पूर्व वैदिक कर्मकाण्डों के विरोध में भागवत अथवा पंचरात्र सम्प्रदाय की स्थापना हो चुकी थी। इन्होंने यज्ञ, बलि और धार्मिक आडम्बर के विरूद्ध ईश्वर की उपासना भक्ति के द्वारा करने पर बल दिया। उपनिषदों में भी भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। परिणाम स्वरूप वासुदेव, संकर्षण नारायण और विष्णु की भक्ति का प्रचार हुआ आर्यों की सात्वत शाखा ने इसे अपनाया व लोकप्रिय बनाया। अत: धीरे–धीरे यह सम्प्रदाय भागवत, सात्वत, पंचरात्र और वैष्णव संप्रदाय के नाम से जाना जाने लगा। ये सभी भक्ति सम्प्रदाय के पर्यायवाची शब्द है। मथुरा इसका प्रमुख केन्द्र था। रामायण के राम और महाभारत के कृष्ण भी भक्ति के केन्द्र बन गए। महाभारत के नारायणीय खण्ड में भी भक्ति का उल्लेख हुआ है। गीता में तो भक्ति का समर्थन करते हुए उसे मोक्ष का श्रेष्ठ मार्ग बताया।

भक्ति की विचारधारा का उत्कर्ष ईसा पूर्व की छठी सदी तक हो चुका था। पाणिनि नामक व्याकरणाचार्य की पुस्तक "अष्टाध्यायी" और जातक कथाओं में हमें वासुदेव भक्तों एवं देव पूजकों की जानकारी मिलती है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी की मौर्य राजसभा के यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने भी कृष्ण (हेराक्लीज) के भक्तों का उल्लेख किया है। शुंगसातवाहन काल के पंतजलि ने शिव भागवतों अर्थात शिव के भक्तों का उल्लेख किया है। इस काल में मूर्तिपूजा के माध्यम से एकांतिक भक्ति अर्थात् एक ईश्वर की भक्ति का प्रचार हो गया।

गुप्तकालीन पुराणों में विष्णु के अवतार और उनकी भक्ति का उल्लेख है। इसने विष्णु भक्ति को समाज में लोकप्रिय बनाया। इस समय तक जैन धर्म में तीर्थकरों की मूर्तियों और महायानी बौद्धों ने बुद्ध की मूर्तियों की भक्ति उपासना पूजा अपना ली थी। "हर्षचरित" और बाणभट्ट की "कादम्बरी" में भी विष्णु के भक्तों की सूचना दी गई है। चांग च्यां ने भी इसका समर्थन किया है, अत: इस्लाम व ईसाइयत के सम्पर्क में आने के पूर्व ही भारत में भक्ति का प्रचुर प्रचार था।

**शैव वैष्णव सम्प्रदाय एवं भक्ति :–**

इस्लाम के आगमन के पूर्व भारत में शैव और वैष्णव भक्तों के सम्प्रदाय गठित हो चुके थे। इनमें से अनेक महाकाव्यों और पुराणों में वर्णित विष्णु और उनके अवतारों की पूजा करने लगे। विष्णु के नृसिंह, वराह, राम कृष्ण आदि चौबीस अवतारों की व्यापक स्तर पर भक्ति होने लगी थी। इनमें राम और कृष्ण की भक्ति अधिक लोकप्रिय थी। खजुराहों और कोणार्क के मन्दिरों पर उत्कीर्ण विष्णु अवतार की मूर्तियाँ इसके प्रमाण है। बुद्ध और ऋषभदेव भी इन्हीं चौबीस अवतारों में सम्मिलित कर लिये गये थे। वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित गीता और भागवत पुराण ने "निष्काम भक्ति" का प्रतिपादन किया था गीता की निष्काम भक्ति को भागवत "अहेत की भक्ति" कहते हैं। वैसे गीता में भक्ति के विषय में विस्तृत चर्चा की गई थी।

शिव के उदाक्त और विविधता लिए रूप ने भक्तों को बहुत प्रभावित किया। राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य से ओतप्रोत, त्यागी एवं मर्यादावान चरित्र ने रामभक्तों को प्रेरणा दी और कृष्ण के बाल–लीलामय, गोपी रंजक रूप ने भक्तों को लोकतन्त्र भक्ति की और प्रेरित किया। अत: शैव और वैष्णव संप्रदायों ने भक्ति को नया स्वरूप प्रदान किया।

**दक्षिण के नयनार एवं आलवार भक्त :–**

द्रविड़ों के साथ ही भक्ति की विचारधारा दक्षिण में पुष्पित और पल्लवित हुई। मध्यकाल में भक्ति की परम्परा दक्षिण से उत्तरी भारत में आई। इसीलिए अनेक विद्वान भक्ति को दक्षिण की उपज मानते है। परन्तु पं. बलदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक "भागवत सम्प्रदाय" में प्रतिपादित किया है कि सात्वतों के साथ भक्ति उत्तर से दक्षिण गई। उत्तर के अनेक द्रविड़ परिवार सिन्धु सभ्यता के केन्द्रों से निष्क्रमण कर दक्षिण गए थे, द्रविड़ों व सात्वतों दोनों ने दक्षिण में भक्ति का प्रचार किया।

दक्षिण के नयनार शैव संतों और आलवार वैष्णव भक्तों के काल के बारे में मतभेद है। श्री एन. के. शास्त्री एवं कृष्ण स्वामी आयंगर इन्हें ईसा पूर्व की तीसरी सदी से दसवीं सदी के मध्य का मानते है। इन नयनारों की संख्या 63 थी। इनमें सम्मबन्धर सुनदरार आदि ने शिव भक्ति के गीत गाए। शिव वरणारविन्दो की भक्ति का उपदेश उन्होंने दिया।

वैष्णव आलवार भक्तों की संख्या 12 थी। इनमें सरोयोगिन, शठकोय, मधुरे कवि, आडान आदि थे। इन्होंने कृष्ण प्रेम और उनकी लीला का सरस वर्णन किया। कृष्ण की शरणागति को ही भक्ति का अन्तिम ध्येय निरूपित किया गया। इन्होंने जाति–पाति, ऊँच–नीच, स्त्री पुरुष आदि सभी के बन्धन तोड़ दिये। दक्षिण भारत के ही रामानुज ने भक्ति का प्रचार

उत्तर भारत मैं किया था रामानुज वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य थे। उन्होंने "पपक्ति" अर्थात "शरणागति" को परिभाषित किया।

## 3.3 भक्ति आन्दोलन के उत्कर्ष के कारण

कोई भी आन्दोलन उपयुक्त पृष्ठभूमि और वातावरण में ही पुष्पित एवं पल्लवित होता है। मध्ययुगीन भारत में भक्ति आन्दोलन को अनुकूल सामाजिक परिस्थितियां मिली। इसी ने तत्कालीन भारतीय जन जीवन और संस्कृति को नया मोड़ दिया। मध्ययुग में भक्ति मैं जो प्रमुखता आई, उसके निम्नलिखित कारण थे :–

(1) **राजनैतिक पराभव:–** तेरहवीं शताब्दी में भारत में मुस्लिम सल्तनत की स्थापना हो गई थी। भारतीयों के हृदय में इससे निराशा और पराभव की भावना उत्पन्न हुई। मुसलमान हमलावरों ने राजनैतिक और सामाजिक भेदभाव को जारी रखा। भारतीय नरेशों और हिन्दुओं को इससे बड़ा आघात पहुंचा था। अपने घर में उनसे दुर्व्यवहार होने लगा, अतएव वे ईश्वराश्रित बन गए।

(2) **धार्मिक भेदभाव :–** इस्लाम किसी भी प्रकार के भेदभावों को नहीं मानता, परन्तु भारत में मुस्लिम शासकों ने धार्मिक, सामाजिक, व राजनैतिक स्तर पर भेदभाव की नीति को प्रश्रय दिया। वे अपने को युद्ध रत श्रेष्ठ तुर्क समझते थे। वे भारतीयों से घृणा करते थे। उन्होंने उन्हें कुचलने का प्रयत्न किया। इस्लाम को श्रेष्ठ मानकर हिन्दुओं के सम्प्रदायों को खत्म करने के प्रयत्न किए।

(3) **धार्मिक अत्याचार :–** इसने धार्मिक अत्याचार की नीति को जन्म दिया। हिन्दू मन्दिर तोड़े गए। हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाने के प्रयत्न हुए। उन पर जजिया नामक घृणित कर लगाया गया। इस कारण समूचे देश में भय और अनाचार फैला। ऐसे वातावरण में भक्ति एक नयी ठण्डी हवा के झोंके के समान सिद्ध हुई। उसने लोगों के आत्मविश्वास की पुन: स्थापना की।

(4) **विकृतियों से छुटकारा:–** तेरहवीं सदी के भारत में अनेक सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों घर कर गई थी। धार्मिक आडम्बर और पाखण्ड बढ़ गए। बहुसंख्यक जन समुदाय पण्डितों, आचार्यों, कर्मकाण्डी ब्राह्मणों, संकुचित मनोवृत्ति के मुल्ला मौलवियों के धर्माचार से पीड़ित हो गई थी। हिन्दू व इस्लाम धर्म के धार्मिक मिथ्या वादानुवाद ने सर्वजन को संत्रस्त कर रखा था। संत भक्तों ने इन दोनों के पाखण्ड की पोल खोल दी।

(5) **सरल धर्म की आवश्यकता :–** धार्मिक, सामाजिक भेदभावों से दुखित जनता मोक्ष के लिए सरल और सच्चे मार्ग को खोजने के लिए उत्सुक हो उठी। वह शंकराचार्य के दार्शनिक अद्वैत को समझ नहीं सकी और न ही वह इस्लाम के रहस्यवादी ऐकेश्वरवाद को समझ पाई। भक्ति ने उसे एक आडम्बरहीन सर्वसुलभ मार्ग प्रदान किया।

(6) **सूफी सन्तों का योगदान :–** इस्लाम की कट्टरता को सूफियों ने सहिष्णु एवं उदार बना दिया था। उन्होंने इस्लाम के उदारवादी और ईश्वरीय प्रेम से ओत–प्रोत स्वरूप से जनता को परिचित कराया। फलस्वरूप अनेक हिन्दू सूफी सन्तो के अनुयायी बन गए। सूफियों के ईश्वर

प्रेम का समन्वय भक्ति आन्दोलन की ईश भक्ति प्रेम के द्वारा किया था। अत: सूफी मत ने आन्दोलन का नया उत्साह दिया।

(7) **व्यावहारिक एवं क्रियात्मक शक्ति :–** भक्ति आन्दोलन ने सर्वसाधारण को नया व्यावहारिक एवं क्रियात्मक धर्म प्रदान किया। इस्लाम के नाम पर किए गए अत्याचारों और राजनैतिक अव्यवस्था ने बहुसंख्यक भारतीयों की निर्माणात्मक शक्तियों को कुण्ठित कर दिया था। समाज में एक प्रकार की अकर्मण्यता व निष्क्रियता आ गई थी। भक्ति आन्दोलन ने उसे दूर करके उन्हें सक्रिय बनाया, उनकी क्रियात्मक शक्तियों को संगठित कर नया मार्ग प्रदान किया।

(8) **समन्वयात्मक भावना का प्रादुर्भाव :–** मध्ययुगीन भक्ति को नेतृत्व प्रदान करने वालों में हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मों के मत थे। कबीर, दादू, नानक और सूफी संत निजामुदीन औलिया आदि ने इस्लाम की कट्टरता एवं हिन्दू धर्म की संकुचित की कटु आलोचना कर सच्चे ईश्वर की भक्ति का उपदेश दिया। दोनों धर्मों के सर्वोत्तम सिद्धांतों का समन्वय कर, दोनों विरोधी व संघर्षरत संस्कृतियों को निकट लाने का काम किया। दोनों को प्रेम के साथ रहना सिखलाया। परिणाम स्वरूप दोनों जातियाँ निकट आयी। भक्ति आन्दोलन ने वह काम कर दिखाया जिसे शासक सुल्तान करने में असफल हुए।

उपरोक्त कारणों से भक्ति आन्दोलन तेजी से अपने चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर हुआ। उसे सौभाग्य से कबीर, दादू, नानक, रामानन्द जैसे श्रेष्ठ संत, भक्त और जननायक भी मिले गए। इन्होंने इसे अत्यधिक लोकप्रिय बनाया।

## 3.4 मध्यकालीन भक्ति का स्वरूप

मध्ययुग में इस्लाम व हिन्दू धर्म में आपसी सम्पर्क के कारण भक्ति पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। दो संस्कृतियों व धर्मों के संघर्ष ने समन्वय को जन्म दिया। संत भक्तों ने सर्वशक्तिमान परमात्मा की एकता पर बल दिया। अल्लाह व ईश्वर दोनों को एक ही रूप में निरूपित किया। मध्ययुगीन भक्ति के स्वरूप का निर्धारण निम्न प्रकार से हुआ :–

(1) **ईश्वर की एकता:–** संत भक्तों ने ईश्वर की एकता पर बल दिया। उन्होंने बनाया कि राम या रहीम कृष्ण या करीम, ईश्वर अथवा, सभी नाम एक ही ईश्वर के है। सर्वशक्तिमान परमात्मा एक है। उसे अलग नामों से स्मरण किया जाता है।

(2) **ईश्वर का स्वरूप:–** संतों ने ईश्वर के स्वरूप की चर्चा की। भक्ति आन्दोलन दो धाराओं में बंट गया। प्रथम वर्ग के संत ईश्वर के निर्गुण रूप की भक्ति के पक्ष में थे। उन्होंने निर्गुणोपासना का प्रचार किया। दूसरे वर्ग में सगुणोपासना के पक्षधर संत थे। अत: निर्गुण सगुण दोनों प्रकार की भक्ति का समर्थन किया गया।

(3) **भक्ति का ध्येय:–** भक्तों ने ईश्वर की उपासना को ही अपना प्रमुख ध्येय निरूपित किया। मोक्ष प्राप्ति के लिए एकाग्रचितता से प्रभु की भक्ति ही अनुपम है।

(4) इसके लिए संतों ने शरणागति अथवा रामानुजी का उपदेश दिया। इसे उन्होंने प्रभु के प्रति आत्म समर्पण की संज्ञा दी। भक्त को पूरी तरह से स्वयं एवं अपने समस्त कर्मों को प्रभु को समर्पित कर देना चाहिये यही श्रेयस्कर है।

(5) **सांसारिक प्रलोभनों का त्याग:–** शरणागति को सम्पूर्ण और निष्काम बनाना आवश्यक है। इसके लिए सांसारिक प्रलोभनों को जीतना जरूरी है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया मत्सर आदि पर भक्तों को विजय पानी चाहिए, तभी मनुष्य निष्काम भक्ति की ओर अग्रसर हो सकता है।

(6) **भक्ति का स्वरूप:–** भक्ति निष्काम होनी चाहिए ईश्वराधना के बदले में ईश्वर से किसी भी प्रकार का लाभ पाने की इच्छा भक्त में नहीं हो। भक्ति, प्रेमपूर्ण निष्काम, स्वार्थहीन होने पर ही श्रेष्ठ होती है। निष्काम या कामना रहित भक्ति श्रेष्ठतम है।

(7) **गुरू महिमा :–** बिना गुरू के ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। गुरू ही ईश्वर की भक्ति के माध्यम से उन तक पहुंचने का मार्ग दर्शाता है, अत: गुरू का होना आवश्यक है। वह आत्मा को जागृत करके सांसारिक प्रलोभनों पर विजय करने का मार्ग बताता है। अत: गुरू महिमा महान् है। तभी तो उसे गोविन्द (ईश्वर) से भी श्रेष्ठ कहा गया है।

(8) **आडम्बरों का बहिष्कार :–** संतों ने सामाजिक व धार्मिक स्वरूप की भर्त्सना की। उन्होंने ऊँच–नीच, छुआछूत, कर्मकांड आदि को निरर्थक बताया। संत एवं भक्त ईश्वर की शरण में जाते ही बन्धनों व आडम्बरों से परे हो जाता है। वह प्राणी मात्र से प्रेम करता है। धार्मिक–सामाजिक भेदभाव भक्ति के आदर्शों के प्रतिकूल है। इसके विपरीत संतों ने मन, कर्म एवं वचन की शुद्धता पर बल दिया। आचार विचार एवं व्यवहार की पवित्रता को अपनाने की राय दी।

## 3.5 मध्य युगीन प्रमुख भक्त

मध्ययुग में आचार्यों ने भक्ति के दर्शन को परिपुष्ट किया था। वैसे तो प्राचीन साहित्य गीता–एवं पुराणों आदि में भक्ति दर्शन पर विस्तृत चर्चा की गई थी, परन्तु मध्ययुग में रामानुज, माध्वाचार्य, रामानन्द और वल्लभाचार्य आदि ने विशेष रूप से भक्ति के दर्शन पर प्रकाश डाला। यहां उनकी संक्षिप्त रूपरेखा दी जा रही है।

(1) **रामानुजाचार्य :–** का जन्म दक्षिण भारत में सर १०१६ ईस्वी में हुआ था। रामानुज ने वैष्णव धर्म से सम्बन्धित भक्ति का प्रचार किया। रामानुज की प्रतिभा से उनके गुरू आबंदार बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया। रामानुज ने शंकराचार्य के अद्वैत के स्थान पर "विशिष्ठाद्वैत" दर्शन प्रतिपादन किया। शंकराचार्य मानते थे कि ब्रह्म और आत्मा अलग–अलग होते हुए भी एक ही है। यह संसार माया है। परन्तु रामानुज ने अपने विशिष्टाद्वैत में नया तर्क दिया।

रामानुज के विशिष्ठाद्वैत के अनुसार ब्रह्म (ईश्वर) जीव, (आत्मा) और जगत (संसार) तीनों के मिलन एवं समन्वय से ही विश्व की सृष्टि हुई है। इन तीनों में ब्रह्म (ईश्वर) तत्व श्रेष्ठ और विशिष्ट अथवा विशेष है। उसी विशिष्ट तत्व को समन्वय में सृष्टि का निर्माण होता है। ब्रह्म को विशिष्ट तत्व निरूपित करने के कारण ही रामानुजी सिद्धांत विशिष्ठाद्वैत कहलाया।

रामानुज ने "प्रभक्ति" का उपदेश दिया। उनके अनुसार ईश्वर तत्व जब विशिष्ट है तब आत्मा को उसकी भक्ति करनी चाहिये। मानव को ईश्वर के प्रति पूर्णरूपेण समर्पण करना चाहिये। सर्वतोभावेन शरणागति ही श्रेष्ठ है। रामानुज ने गीता के दर्शन को परिभाषित कर दिया। भक्ति के द्वार उन्होंने सभी के लिए खोल दिए।

(2) **माध्वाचार्य (सन् 1197– 1276) :–** रामानुज की परम्परा में ही माध्वाचार्य हुए। ये वैष्णव संप्रदाय के समर्थक थे, परन्तु इन्होंने विष्णु के लक्ष्मीनारायण रूप की उपासना व भक्ति का उपदेश दिया था। इनकी उपासना का स्वरूप भी सगुण था। इन्होंने ब्रह्म को "विष्णु" अथवा "नारायण" बतलाया। नारायण ही ब्रह्म है। जीव अथवा आत्मा और जगत उनसे अलग है। आत्मा के उद्धार के लिए नारायण ही भक्ति की शिक्षा माध्वाचार्य ने ही दी।

(3) **निम्बार्काचार्य –** इन्होंने कृष्ण भक्ति की सगुणोपासना का मार्ग अपने अनुयायियों को बताया था। वे विष्णु के अन्य अवतार कृष्ण को ही निम्बार्क ब्रह्म मानते थे। कृष्ण का लीलामय गोपियों से घिरा हुआ रूप उपासनीय माना गया। निम्बार्क ब्रह्म और जीव को अलग–अलग "द्व" अर्थात दो मानते हुए भी वे अद्वैत मानते थे। उनका सिद्धान्त द्वैताद्वैत कहलाया।

(4) **वल्लभाचार्य –** आप भी कृष्ण भक्ति मार्ग के समर्थक थे। इनका जन्म सन् 1479 ईस्वी में काशी के एक तैलंग परिवार में हुआ था। कृष्ण मूर्ति के पूजन व भक्ति के माध्यम से इन्होंने भी सगुणोपासना को उत्तम बतलाया। वल्लभ तुष्टिमार्गी थे जिसके अनुसार कृष्ण की कृपा और अनुग्रह मिलने पर ही आत्मा भक्ति मार्ग पर चल सकती है। इनके सम्प्रदाय में आठ कवि हुए, जिन्हें "अष्ठछाप" कवि कहा जाता है। इनमें सूरदास श्रेष्ठ संत थे। इनके अनुयायी वल्लभ सम्प्रदायी कहलाये। इन्होंने कृष्ण भक्ति मार्ग चलाया।

(5) **रामानन्द :–** उत्तर भारत में भक्ति के प्रचार का श्रेय रामानन्द को है। इनका जन्म एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण पुष्पसदन के यहां हुआ था। वे अत्यन्त मेधावी और प्रतिभावान थे। अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर ये वैष्णव बन गए। इन्होंने रामानन्दी सम्प्रदाय की नींव डाली। जाति–पाति और छुआछूत के बन्धनों को तोड़कर रामानुज ने भक्ति और मोक्ष के द्वार सभी के लिए खोल दिए। भगवान के भक्त किसी भी जाति के होने पर भी समान है। उनका उपदेश था, "जाति–पाति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे, सो हरि का होई।" उन्होंने विष्णु के अवतार राम की भक्ति को प्रतिपादित किया। इनके तेरह शिष्य हुए, इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध कबीर, रैदास (चमार) पन्ना (जाट), सैन (नाई) थे।

## 3.6 भक्ति आन्दोलन के संतों की देन एवं उनका प्रभाव

रामानुज, वल्लभ आदि ने भक्ति के दार्शनिक चिन्तन की धारा को प्रशस्त किया था। परन्तु मध्ययुगीन संत भक्तों ने बिना अधिक दार्शनिक विवाद की चिन्ता किए ईश्वर भक्ति, शरणागति का प्रतिपादन किया। यदि उन्होंने कभी कहीं दर्शन की चर्चा की भी तो उसका ऐसा सरलीकरण कर दिया था कि जनसाधारण की समझ में वह तुरन्त आ गया। इस काल के सन्तों में प्रमुख चैतन्य, दादू, नानक, नामदेव, रैदास और मीराबाई थे तुलसी ने रामोपासना का प्रचार किया था।

(1) **सन्त कबीरदास –** रामानंदी शिष्यों में कबीर सार्वधिक प्रतिभावान संत थे। उनकी तेजस्विता के कारण संत परम्परा में उनका स्थान शीर्ष है। कबीर की जन्म तिथि व प्रारम्भिक जीवन की जानकारी विवादास्पद है, फिर भी यह माना जाता है कि वे एक विधवा ब्राहमणी की कोख से उत्पन्न पुत्र थे। नीरू नामक एक जुलाहे ने उनका पालन पोषण किया। उनका विवाह लोई नामक स्त्री से हुआ। कमाल नामक उनके एक पुत्र भी था। उन्होंने अपना पैतृक व्यवसाय अपनाया।

कबीर प्रारम्भ से ही साधु मनोवृत्ति के थे, अत: उन्होंने गुरू की खोज की। रामानन्द की विद्वता से प्रभावित होकर उन्हें अपना गुरू बना लिया। वे रामभक्त हो गए, परन्तु उनके राम का स्वरूप निर्गुण था। अवतारवाद में उनका विश्वास नहीं था। वे आत्मा परमात्मा में भेद नहीं मानते थे। आत्म ब्रहम की अभिन्नता को कितने सरल भावों एवं शब्दों में उन्होंने प्रस्तुत किया था :–

"जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जल ही समाना, यह तत कहयो गियानी।।"

कबीर हिन्दू मुसलमानों में व्याप्त झूठे आडम्बर और पाखण्ड के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने जात–पात, ऊँच–नीच, छुआछूत आदि सभी कुरीतियों का विरोध किया। सामाजिक अनाचार उन्हें नापसन्द था। उसका उन्होंने निर्भिकतापूर्वक सामना किया:

"अरे इन दोऊ राह न पाई।
हिन्दू अपनी करे बड़ाई, गागर छुवन न देई।
वैश्या के पाएं तले सोए, देवी हिन्दू आई।।
मुसलमान के पीन ओलिया, मुर्गा मुर्गी खाई।
खाला मेरी बेटी ब्याहे, घर ही में करे सगाई।।"

मध्ययुगीन धर्म साधना में फैल रही बुराइयों का कबीर ने घोर प्रतिरोध किया। वे पण्डा पुजारियों और मुल्ला मौलवियों की कट्टरता और धार्मिक अन्ध विश्वास के कट्टर आलोचक थे। कबीर ने धर्म के मर्म को इनसे अधिक समझा था। धर्म के नाम पर किये जाने वाले अत्याचार और रूढ़ियों को उन्होंने निन्दनीय माना।

"कांकर पाथ जोडि के, मस्जिद–चुनाय।
तो चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा रहा खुदाय।
पाहन पूजे हरि मिले, तो मै पूजूं पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।"

सरल, भाव पूर्ण और औजस्वी भाषा में कबीर ने जो संदेश और भक्ति का स्वरूप प्रस्तुत किया था वह अनुपम है। हजारों की संख्या में हिन्दू मुसलमान उनके शिष्य बन गए। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता में समन्वय और मैत्री की नींव डाली। नानक, दादू और रैदास ने इसे परिपुष्ट किया।

नानक देव (सन् 1469 – 1538) :– कबीर के समान नानक भी निर्गुण संत थे। इनका जन्म तलवंडी (लाहौर संभाग में स्थित वर्तमान ननकाना) में श्री कालूचन्द खत्री के यहां

हुआ था। ये प्रारम्भ से ही साधु सत्संग पसन्द करते थे। उनका विवाह सुलखनी के साथ हुआ था। उर्दू, फारसी और हिन्दी का नानक ने अध्ययन किया। इनके बहनोई के कारण उन्हें एक सरकारी नौकरी भी मिल गई। परन्तु उनका अधिकांश समय धार्मिक अध्ययन, ध्यान, दान, गरीब सेवा में ही व्यतीत होता था। थोड़े समय बाद उन्होंने नौकरी छोड़ दी और वे देशाटन पर निकल पड़े। समस्त भारत का भ्रमण करने के बाद वे सिंहल और मक्का मदीना भी गए। उन्होंने भक्ति का प्रचार आरम्भ कर दिया।

नानक ईश्वर के निर्गुण स्वरूप के उपासक थे। वे उसे सर्वशक्तिमान, सच्चिदानन्द और निराकार मानते थे। उन्होंने हिन्दू–मुसलमानों की संकुचित साम्प्रदायिकता का कट्टर विरोध किया। वे मूर्तिपूजा और बहुदेववाद को भी नापसन्द करते थे। उन्होंने सदाचारी जीवन, दान दया और सत्य और निष्ठा का प्रचार किया। जाति–पाति व छुआछूत को नानक ने अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था कि गुरू बिना ज्ञान नहीं व ज्ञान बिना भक्ति एवं ईश्वर प्राप्ति सम्भव नहीं। नानक के भजन "गुरूग्रन्थ साहब" में संकलित है।

**नामदेव :–** तेरहवीं सदी में दक्षिण भारत के महाराष्ट्र प्रान्त में इनका जन्म हुआ था। ये ज्ञानदेव के समकालीन थे। भक्ति की निर्गुणवादी धारा ने इन्हें भी प्रभावित किया। इन्होंने अपने भजनों से समूचे महाराष्ट्र को ओत–प्रोत कर दिया। इनके अनुयायी प्रत्येक धर्म व जाति के थे।

**दादूदयाल :–** दादू ने भी कबीर के समान लोकप्रियता पाई थी। आप भी निर्गुण, निराकर ईश्वर की उपासना के प्रचारक थे। गुजरात में जन्में इस सन्त ने अपना अधिकांश जीवन नरायना (राजस्थान) में बिताया था। दादू ने जाति धर्म वर्गों के भेद भाव का विरोध किया। सभी धर्मों के लोग इनके अनुयायी थे। इन्हें दादू कहा जाता है। ईश्वर प्रेम और मानव प्रेम का प्रचार ही दादू का उद्देश्य था। ईश्वरार्पण कर देने से मानव व आत्मा को मार्ग मिलता है।

**रैदास :–** रामानन्द के शिष्यों में सभी जातियों के संत थे। रैदास जाति से चमार और अस्पृश्य थे। परन्तु ईश्वर की भक्ति और उसके प्रति शरणागति किसी बंधन को नहीं मानती। रैदास ने इसे सिद्ध करके दिखाया। जाति और तन की शुद्धता की अपेक्षा रैदास मन की सात्विक पवित्रता पर अधिक बल देते थे। इन्होंने काशी में ही वास किया। उन्होंने प्राणी मात्र में निराकार ब्रह्म के दर्शन किए।

**मलिक मुहम्मद जायसी :–** निर्गुणोपासक शाखा की उप शाखा प्रेम मार्ग के प्रतिनिधि कवियों में जायसी का स्थान शीर्ष पर है। मलिक मुहम्मद जायसी, प्रेम मार्गी, सूफी संत, भक्त थे। ये अवध के जायस कस्बे के निवासी थे। प्रसिद्ध ग्रन्थ "पद्मावत" में इन्होंने ईश्वर प्रेम का श्रेष्ठ व सर्वोत्तम निरूपण किया। प्रेम तत्व ईश्वरीय भक्ति के लिए अनिवार्य है। भक्त को उसे अपनाना चाहिये।

**अन्य कवि :–** प्रेम मार्ग के अन्य कवियों में कुडबन, मंझन और उस्मान का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने भी जायसी के प्रेम तत्व का समर्थन किया था। प्रेममार्गी भक्त की गुण

की महिमा और ईश्वर के निर्गुणावादी स्वरूप के उपासक थे। काव्य के माध्यम से इन्होंने अपने ईश्वरीय प्रेम का प्रचार किया।

**कृष्ण भक्ति शाखा :–** ब्रह्म को कृष्ण मानकर उसकी भक्ति का उपदेश निम्बार्क और वल्लभ दोनों ने दिया था। कृष्ण के लीलामय एवं जनरंजक स्वरूप ने भक्तों को आकर्षित किया। भागवत पुराण में वर्णित उनका लोकोत्तर स्वरूप, जनता की निधि बन गया। कृष्ण मार्गियों ने सर्वश्रेष्ठ संत व साहित्य भारतीय संस्कृति को प्रदान किया।

**चैतन्य देव :–** समानन्दी भक्त परम्परा की उपशाखा कृष्ण सम्प्रदाय में चैतन्य का नाम उच्च स्थान पर है। चैतन्य वल्लभाचार्य के समकालीन थे। इन्होंने बंगाल में कृष्ण भक्ति की धारा बहाई। आप नदिया (नव द्वीप) के रहने वाले थे। चैतन्य ने वैष्णव सम्प्रदाय में प्रचलित कुरीतियों का विरोध किया। उन्होंने कृष्णावतार के प्रति सच्चे प्रेम का प्रचार किया। वे भी जाति–पाति के बन्धनों के विरूद्ध थे। चैतन्य ने कई वैष्णव तीर्थों की यात्रा की। वे नृत्य, संगीत और भजन में इतने तल्लीन हो जाते थे कि भक्तों को उनमें ईश्वर की दिव्य ज्योति के दर्शन होने लगे। उनके अनुयायी उन्हें महाप्रभु और कृष्ण का अंश मानने लगे। चैतन्य महाप्रभु की सगुणोपासक कृष्ण भक्ति से बंगाल ओत–प्रोत हो गया।

## 3.7 परवर्ती भक्त

भक्ति आन्दोलन का प्रचार–प्रसार समूचे भारतवर्ष में हुआ था। आन्दोलन ने पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र बंगाल और दक्षिण भारत के कई भागों को प्रभावित किया था। परिणाम स्वरूप भारतीय जीवन, संस्कृति और साहित्य पर इसका प्रभाव पड़ा।

(१) प्रचलित हिन्दू धर्म में सुधार हुआ, क्योंकि सभी संतों ने मूर्ति पूजा, बहुदेववाद, बाह्य दिखावा, कर्मकाण्ड जाति प्रथा, ऊँच–नीच की भावना, पुरोहित वर्ग का धर्म और समाज में प्रभुत्व, धर्मान्धता, धार्मिक पक्षपात आदि का घोर विरोध किया था। उन्होंने सात्विक, सदाचार पूर्ण सादा और सरल जीवन पर बल दिया था। परिणाम स्वरूप समाज में सुधारों की लहर दौड़ गई और धार्मिक कुप्रथाओं का विरोध होने लगा। सभी धर्मों की समानता, एकेश्वरवाद का सिद्धांत और भक्ति भाव का प्रसार इसी आन्दोलन की देन है। ईश्वर की किसी भी नाम एवं रूप में भक्ति, उपासना का मार्ग, भक्ति आन्दोलन ने ही दिखाया था। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में धार्मिक पुनर्जागरण हुआ।

(२) भक्ति आन्दोलन के कतिपय संतों (कबीर, नानक व सूफी संतों) ने हिन्दू–मुसलमानों के बीच पारस्परिक कटुता को दूर करने का प्रयास किया। भक्ति आन्दोलन के संतों की वजह से ही हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सहयोग, समन्वय और एकीकरण का वातावरण निर्मित हुआ था जिसकी परिणति मुगल सम्राट अकबर के शासन काल में हुई।

(३) पूर्व मध्यकाल में हिन्दू समाज में निराशा, उदासीनता और क्षुब्धता का जो वातावरण फेल गया था और जिसकी वजह से अधिकांश हिन्दू निराशावादी और भाग्यवादी बन गये थे। उनमें पुन: आत्मविश्वास नैतिक बल और स्वाबलम्बन की भावनाऐं भक्ति आन्दोलन के कारण ही जागृत हुई, थी। इसीलिए प्रारम्भिक मुस्लिम सुल्तानों के धार्मिक अत्याचार और दमन के बावजूद हिन्दू जीवन, धर्म और संस्कृति सुरक्षित बची रही।

(४) भक्ति आन्दोलन ने विशेष रूप से समाज के निम्न वर्ग के लोगों में बल और आत्मविश्वास उत्पन्न किया था। जाति प्रथा के विरोधी संतों ने ऊँच–नीच की भावनाओं का घोर विरोध किया और बताया कि ईश्वर भक्ति और निष्ठा के द्वारा अछूत भी मोक्ष और स्वर्ग प्राप्त कर सकता है। निम्न वर्ग के अछूत इसलिये हिन्दू धर्म और संस्कृति का परित्याग करके पृथक नहीं हुए। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन ने सामाजिक समानता स्थापित की।

(५) पंजाब में सिक्खों का उदय और महाराष्ट्र में मराठों का उदय तथा प्रान्तीय भाषाओं का विकास भक्ति आन्दोलन की देन है।

भक्ति के कारण समस्त भारतीय संस्कृति को मध्यकाल में एक नया दिशा निर्देश मिला। मध्ययुगीन भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता है। भक्ति ने सारे देश को एकसूत्र में बांधकर उसे भक्ति के माध्यम से राष्ट्रीय एकता प्रदान की। जो काम इस काल के महान शासक, सम्राट नहीं कर पाए, उसे कबीर, तुलसी, सूर रसखान ने पूरा कर दिया था। अपने स्मरणीय योगदान के कारण भक्ति भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि सिद्ध हुई।

## 3.8 उपसंहार

प्रो. अवधबिहारी पाण्डेय, आधुनिक इतिहासकारों में पहले और अन्तिम विद्वान है, जिन्होंने सल्तनत कालीन धार्मिक आन्दोलनों पर विस्तार से विचार विमर्श किया है। इनका कथन है कि कोई भी धार्मिक आन्दोलन सांसारिक कष्टों को दूर करके स्थायी शान्ति प्राप्त करने के लक्ष्य को लेकर चलता है। धार्मिक आन्दोलन के प्रणेता जन्म–मरण से मुक्ति, ब्रह्मानन्द और चिरंतमाद की प्राप्ति को लक्ष्य बनाकर मानव के जीवन को आदर्श बनाने का संदेश देता है लेकिन आन्दोलन के प्रारम्भ होने के बाद कुछ ही समय पश्चात् इसमें ईर्ष्या, कुटिलता, स्वार्थपरता, और मिथ्यावादिता प्रविष्ट हो जाती है। अतएव धर्म अधर्म का रूप धारण कर लेता है। उस समय साधु और सन्त गीता का स्मरण कराते है जिसमें श्रीकृष्ण ने कहा था कि अधर्म के विनाश के ही मैं युग युग तक अवतार लेता रहूंगा।

कोई भी आन्दोलन प्रारम्भ करने से पहले सन्त महात्मा और पैगम्बर मनुष्य को सन्मार्ग दिखाने के लिए मानव को गृहस्थी छोडकर वानप्रस्थ अथवा सन्यास ग्रहण करने की शिक्षा देते है। वानप्रस्थ अथवा सन्यास मनुष्य के जन्म और विकास के लिए उपयुक्त बताया गया है। पहले लोग गृहस्थी छोडकर भाग जाते है। फिर जीवनयापन में घोर कठिनाई अनुभव करते हुये भी झूठे वैराग्य की सराहना करते है। प्रो. पाण्डेय का कथन है कि "जीवन को सन्तुलित तथा संयमित रूप से चलाने की आवश्यकता और ईर्ष्या व्याधि, शोक मृत्यु आदि बाधाओं से मुक्ति प्राप्त करना वैराग्य जीवन की तुलना में कहीं अधिक उत्तम है।" मनुष्य शरीर इसलिए सही नहीं है कि उसे त्याग और तपस्या के द्वारा नष्ट कर दिया जाए। मनुष्य जीवन की रक्षा का उपाय स्वयं नहीं खोज सकता उसे गुरु का सहारा लेना चाहिये। जो लोग स्वयं अपने आपको ईश्वर का रूप कहकर पुकारते हैं वे मानव समाज का अहित करते हैं। स्वयं इधर–उधर भटकते फिरते है। वे आत्मा और शरीर से विलग रहने के लिए नहीं उसे परमाणु की शक्ति के रूप में विकसित करके ब्रह्माण्ड के पिण्ड के रूप में स्वीकार करते है। स्वयं अमरत्व का दान मांगते है और अमरत्व की मृगमरीचिका अन्य अशान्त लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करते

है। इसलिये चिरशान्ति का मार्ग दिखलाने वाले दो प्रमुख आन्दोलन – भक्ति आन्दोलन और सूफीमत चिरस्थायी प्रभाव स्थापित करने में असफल रहे।

## 3.9 संदर्भ ग्रन्थ


1. बी. एन लूणिया : भारतीय संस्कृति लेखक स्वर्गीय प्रिंसिपल
2. डॉ. वी. एस. भार्गव : मध्य युगीन भारत की समस्याएँ
3. डॉ. वी. एस. भार्गव : भारतीय इतिहास (प्राचीन काल से १७५७ तक)
4. डॉ. आशिर्वादी लाल श्रीवास्तव : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति
5. Dr. Yusuf Hussain : Glimpses of Medieval Indian Culture.
6. Dr. Tara Chand : Influence of Islam on Indian Culture.
7. Dr.A. L. Srivastava : Medieval Indian Culture.

# इकाई – 4

# इस्लाम का भक्ति आन्दोलन पर प्रभाव

**इकाई की रूपरेखा**


4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 तसव्वुफ़ की परिभाषा

4.3 भक्ति आन्दोलन

4.4 सन्त कबीर

4.5 मलिक मोहम्मद जायसी

4.6 मीरा

4.7 गुरू नानक का भक्ति दर्शन

4.8 रामभक्ति व कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय

4.9 मुस्लिम शासकों के समय के सूफी संतों पर भक्ति आन्दोलन का प्रभाव

4.10 सारांश

4.11 संदर्भ ग्रन्थ


## 4.0 उद्देश्य

इस्लाम के भक्ति आन्दोलन के प्रभाव के संदर्भ में विस्तार में गजनवी और सल्तनत काल की इस्लामी तुर्की सल्तनत की स्थापना, परिणाम व स्वरूप, इस्लाम धर्म में इस्लामी दर्शन, सूफी– इज्म और हिन्दू भक्ति आन्दोलन का जायजा लिया गया है। इतिहासकार इस मत पर सहमत है कि सूफी मत का भक्ति आन्दोलन पर प्रभाव पड़ा। सूफीमत के समावेश और निकटतम आने पर भक्ति का स्वरूप और विचारधारा में बड़ा परिवर्तन आया है। इस्लामिक सूफी संतों के प्रभुत्व के एकेश्वरवाद के दर्शन ने भक्ति आन्दोलन को एक नई दिशा दी है। उसका मार्गदर्शन किया है। ईश्वर की प्राप्ति, उसमें विलय (बस्ल) या मोक्ष, संसार को त्याग कर भक्ति द्वारा ही सम्भव है। इस पथ पर जोगी या गुरू या संत के बिना प्रभू के दर्शन नहीं हो सकते। इस इकाई में सूफी मत और भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

## 4.1 प्रस्तावना

यूँ नो हिन्दू धर्म में ईश्वर (इलाहियत:) (Divinity) और संसार की रचना के संबंध में विचार मिलते हैं। बाल्मिकी ने अपनी रचना रामायण के पैरा में लिखा है कि इस संसार की रचना ईश्वर द्वारा की गई है, प्रभु ही हर वस्तु में विराजमान है। वो ही उसका रचियता है जो निराकार है वो वाहिद (एकमात्र) रचनाकार है। रामायण के वाक्य का ज्ञान वाल्मीकि ऋषि को रामायण की घटना से पूर्व चार हजार साल पहले एक रोया (स्वप्न) द्वारा वर्णित और लिखे गये। बाद में सृष्टि के कार्य का जिक्र करते हुए बहु प्रभुत्व के (Plusality of Gods) नजरिये का

वर्णन करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश सृष्टि का अलग–अलग कार्य करते है वेदान्त और ईश्वरीय भक्ति और कर्म के भाव प्रकट किये गये हैं। परन्तु भक्ति के विचार पूर्व में एक मूवमेंट एक तहरीक और एक विचारधारा के रूप में उभर कर सामने नहीं आये। नवीं, शताब्दी पहले गजनबी व सल्तनत काल में इस्लामिक थ्यौरी और सूफीवाद, भक्ति के, एकेश्वरवाद और ईश्वर प्राप्ति के विचार, गुरु की महिमा, धार्मिक आडम्बरों के एक तहरिक (आन्दोलन) की शक्ल में उभर कर सामने आये।

हम यहां सूफीमत का अध्ययन करेंगे और यह भी कि सूफी मत ने आन्दोलन के किन–किन विचारों को प्रभावित किया है।

महमूद गजनवी के दौर में सूफी इल्म के वली–ए–कामिल सैयद अली हिजवेरी दाता गंज बक्श लाहौर आये। यह शरयम (इस्लामिक विधि) और तरीकत के इमाम (पूर्ण ज्ञाता) थे। परमात्मा का दर्शन किये हुये थे। आत्मा और परमात्मा और वली के उसकी जात लीन होने के समस्त दर्जे (सूलूक) तय किये हुए थे 'आपकी प्रसिद्ध पुस्तक कश्फ–अलमहजूब है आप गजनून (गजनी) के करये (गांव) जल्लाबव हिजवेर के रहने वाले थे। इसी कारण वह जलाबी और कभी हिजवेरी कहलाये। उनका मजा़र लाहौर में है। प्रोफेसर खलिक निजामी के शब्दों में – शेख हिजवेरी की इस किताब ने एक तरफ तो तसब्बूफर से संबंधित गलत फहमियों को दूर किया और दूसरी तरफ तरक्की की राहें खोल दी।" (तारीख मशईख–ए–चिश्त)

प्रोफेसर निकलसन (Orientalist) लेखक तारीख–ए–अदबियात अरब (अरबी साहित्य का इतिहास) ने 1911 ई. में कशफअल महजूब का अंग्रेजी में अनुवाद किया। प्रोफेसर जौकाफकी ने कश्फल महजब के पुराने नुस्खे की तलाशी की। यह मारफत (आत्म ज्ञान) पर पूर्ण पुस्तक है और ऐसे संत द्वारा लिखी गई है जो ईश्वर भक्ति में लीन और पहुंचे हुए थे।

भारत में सल्तनत काल से पूर्व शेख ख्वाजा मुइनुद्दीन आये। चिल्ला खेंचकर दाता गंज बख्श के मजार से फेज–ए–रूहानी (आत्म ज्ञान) प्राप्त किया। सल्तनत काल में हजरत मुईनुद्दीन चिश्ती सूफी मत में सर्वश्रेष्ठ थे और उन्हें सुल्तान–उल–हिन्द के लकब से याद किया जाता है। सूफी संतों में उनके मुरीद (शिष्य) बख्तियार काकी महरौली (देहली) शेख फरीदुद्दीन गंज–ए–शकर उनके शिष्य निजामुद्दीन ओलिया चिशतिया सिलसिले के महान सूफी संत है। यहां दूसरे सूफी संत मौहम्मद गौस ग्वालियरी शेख सलीम चिश्ती, शाहइनायत और उनके मुरीद बुल्लेशाह का जिक्र ना मुनासिब नहीं होगा। सुहरवर्दी सम्प्रदाय में शेख हमीदुद्दीन नागोरी भारत में मारफत यानी ईश्वर ज्ञान और आत्म ज्ञान में चश्में (स्रोत) है। जिनके इस्लामिक तसव्वुफ़ ने समस्त भक्ति आन्दोलन विचार धारा को प्रभावित किया। भक्ति तहरिक के जो प्रभावित हुए उनमें वर्णित किये जाने योग्य है : मलिक मुहम्मद जायसी, कबीर दास, मीराबाई और गुरूनानक व अन्य भक्त कवि गण जिनका वर्णन हम आगे करेंगे। सूफी संतों ने अपने उपदेश यहां की सरल भाषा में दिये। समागान के अतिरिक्त कविता के माध्यम और कव्वाली द्वारा अपने उपदेश जनता को दिये और भारतीय जीवन और संस्कृति में एक बड़ा परिवर्तन (इंकलाब) आया। सोच में परिवर्तन आया भक्ति आन्दोलन के भक्त कवियों ने कविता और गान द्वारा सूफी संतों की भांति भक्ति का प्रसार किया। भक्त संतों ने अपने उपदेश का स्थानीय भाषा और

खड़ी बोली अवधी व ब्रज भाषाओं में अपनी वाणियों में प्रवचन किया। हम यहां विस्तार से अध्ययन करते है कि सूफी इज्म है क्या? और उसने भक्ति आन्दोलन को किस तरह प्रभावित किया? सूफी वो होता है जो तसव्वुफ़ द्वारा ईश्वर ज्ञान रखता है। हम सूफियों के तसव्वुफ़ का अध्ययन आवश्यक समझते हैं।

## 4.2 तसव्वुफ की परिभाषा

यह शब्द "सूफ" से निकला है। जिसका अर्थ है ऊन "पश्मीना" ऊन मुलायम साफ **शफ्फाफ** होती है। मोटी खुरदरी भी होती है। सूफी का दिल साफ होता है। कदूरत किणा, फरेब से पाक साफ। जब ही वह ईश्वर (खुदा) का तसव्वुर कर सकता है लोग ईश्वर के प्रकाश को देख सकता है सूफी लोग इसीलिए मोटे कपड़े पहनते हैं1 सादा जीवन व्यतीत करते हैं। इस्लाम के दो पहलु हैं :–

(1) शरिअत

(2) तरिकत

तरिकत के लिए शरिअत का होना जरूरी है अलमजाजओं किन्तरा तुल हकिकत (तरिकत हकिकत तक पहुंचने के लिए एक पुल है कुछ लोग ऐसे होते है जो ईश्वर के नशे में उसके दर्शन में मस्त और मगन रहते है जिन्हें होश व हवास तक नहीं रहता है वह जुनून की कैफियत में रहते है और उन्हें मजजूब कहा जाता है उन पर शरियत का हुक्म नहीं रहता है यह वह लोग है जिन्हें ईश्वर खुद चाहता है। और मजजुबिअत पर शरियत का इतलाक नहीं होता है।

हम बात कर रहे थे तसव्वुफ़ की – तसव्वुफ़ के बारे में ख्याल यह भी है कि यह शब्द सफा शब्द से है। सफा का अर्थ है पाक, बेदाग, खरा, सिकल किया हुआ। दिल की (केफीयत) मिसल आईना होती है आईने में साफ दिखाई देती है दूसरी तरफ यह मत भी है कि यह यूनानी शब्द सोफिया से लिया गया है जिस का अर्थ है ज्ञान मगर यह मान्य नहीं। सूफियों के नजदीक यह वहदतअल बजूद (आत्मा परमात्मा की एकता) का मसला भी अहम रहा है वह समस्त मौजुदात में खुदा–ए–ताला ही का वजूद मानते है मासवा (ईश्वर के अतिरिक्त) का वजूद महज् इतबारी समझते हैं। हर मौजूदात में खुदा की वहदत (एकता) को लाजिम जाने गैर ईश्वर का तसव्वुर होगा तो ईश्वर को वह कैसे पा सकता है वह पहले अपनी जात, अहितम को फना (नष्ट) कर देता है यह फना फिल्ला का दर्जा है फिर फना फिश्शेख का दर्जा होता है। यानी मुरिद अपनी जात को अपने शेख या गुरू के अहकाम में लीन कर देता है, फिर फना–फिर–रसूल का दर्जा होता है। इन दर्जात से गुजर कर वह ईश्वर को देख सकता है इसका तरीका यह है कि सूफी पहले जिक्र करता है। यह हवास की फिक्र (Meditation) के लिए जिक्र लाजिम है फिक्र या जिक्र ईश्वर दर्शन (Visibility of God) यानी ईश्वर को हाजिर देखने के लिए आवश्यक है शहूद (Contemplative vision of God) के लिए फिक्र लाजिम है ईश्वर्यलीन होना शहुद की बाद की मंजिल है। सूफी (Mystic) की मंजिल यही वस्ल (ईश्वर) में लीन होना है।

इस्लामिक सूफिइज्म के बारे में एक विचार यह है कि यह ईसाईयत, हिबरू या हेलेनिस्ट (यूनानी) से लिया गया है ईसाई में ईश्वर प्राप्ति के लिए तीन श्रेणियों से गुजरना पड़ता है दूसरा दर्जा (Illumination) का है कि अगर महसूसात से दिल दूर होता है और वह ईश्वर को आत्मा को सौंप देता है इसके लिए फिक्र खरी है और ईश्वर में गहरे विचार (Contemplation) के बाद ही आत्मा ईश्वर में समावेश पाती है और उसमें लीन हो जाती है "परन्तु ऐसा विचार गलत है। सूफिइज्म पूर्णत: इस्लामी (Original) है पैगम्बर इस्लाम हजरत मोहम्मद सा. के पास उन के भक्तों की एक जमाअत (गिरोह) अहले सूफफा की थी सूफफा का अर्थ है चबूतरा। हजरत मोहम्मद सा. के मकान के सामने चबूतरे पर ईश्वर का जिक्र करने वालों, फिक्र करने वालों की एक जमाअत थी वह भुखे रहते थे, बड़े सब्र करने वाले रियाज़त और इबादत करने वाले लोग थे यह ईश्वर भक्ति में लीन रहते थे खुदा का दिन रात जिक्र करते थे और रूहानी (मदारिज) दर्जे प्राप्त करते थे। पैगम्बर इस्लाम खुद गारेहिरा में जाकर तन्हाई में इबादत करते थे। तसव्वुफ़ का सिलसिला इस्लाम के इसी अहले सूफ्फा गिरोह से था जो कि पैगम्बर इस्लाम की निगरानी में इबादत करते थे।

सूफी मत में मुरिद (शिष्य अपने मुरशिद, गुरू) ईश्वर को पहचानने की और वस्ल की मंजिल तय करता है। मुरशिद, या गुरू की हिदायत फेज से मुरीद अपनी मंजिल पाता है ″

सूफी का अपने प्रभु से प्रेम या इश्क होता है प्रेम का वलिहानापन पहले मजाज से हकीकत की, मारफत की ओर होता है। इश्क के यहां दो पहलू होते है एक तो इस्लामियत के दो पहलू है एक शरियत दूसरा तरिकत। शरियत की पाबंदी के बाद तरिकत यानी सलूक का ही रास्ता है जिससे पथिक को ईश्वर ज्ञान और वस्ल की प्राप्ति होती है। इस्लामियत में हिन्दू धर्म से दो बातें भिन्न होती हैं।

(1) मुसलमान हयात बाद–अल–मौत (मौत के बाद जीवन) में विश्वास रखते है, दुनिया की जिन्दगी आरजी है।

(2) वह मरने के बाद जन्म में यकीन नहीं रखते है उनके यहां आवागमन नहीं है।

जो सूफी हो जाता है, ईश्वर में लीन हो जाता है वे दुनिया उसकी विलायत हो जाती है और वह उस विलायत का वली होता है।

सूफी भक्त (Mystic) की नजर से हिजाबात के परदे उठ जाते है उसे कश्फ होता है वह मस्ती (वज्द) की हालत में ईश्वर और हर वस्तु को देखता है यह इरफान (ज्ञान) का आला दर्जा होता है यहां ईश्वर का रूप निरंकारी रूप है। यह सत्य है। ईश्वर निराकार है उस का इरफान अनुभव की स्थिति है। ईश्वर जमाँ और मकाँ की कैद से आजाद है वह ला मकाँ और लाजमाँ है (Spaceless & Time less) वह आला नूर (प्रकाश ही प्रकाश है)। Spengler ने अपनी पुस्तक Decline of the West (पश्चिम के पतन) में इसी विचार को प्रकट किया है: "God's body is spaceless and timeless. It is not Space–Time itself"

हिन्दू मत में काल पर जोर दिया जाता है इस्लाम में भी काल को खुदा कहा गया है हदिस इब्ने माजा और बुखारी में मुसतनद (ठोस) हदिस है : जुमाने को बुरा मत कहो कि

जमाना खुदा है (Time is God) यानी जमाने में जो कुछ हो रहा है वह ईश्वर से ही पृथ्वी और ब्रह्माण्ड में हो रहा है।

एक मसअला कजा व कद्र (Destiny) का है। कजा और कद्र मिन जानिव अल्ला है (ईश्वर की ओर से है) मनुष्य इख्तियार–ए–कुल नहीं सर्व सम्पन्न नहीं (इख्तियार महज है)। समस्त प्राणियों में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसमें चेतना है और वह अपने अमल का इख्तियार रखता है और इसलिए अपने समस्त कार्यों के लिए जिम्मेदार है सजा और जजा़ इसी का परिणाम है।

लाहुत "सूलूक" का वह मकाम है जहां फना फिल ला का दर्जा है वह जीवन जो समस्त वस्तुओं में जारी और सारी है।

सूफियों के नजदीक ईश्वर के साथ मनुष्य का एक मुहादा है प्रभु ने कहा – क्या मैं तुम्हारा ईश्वर नहीं हूँ, कहा, हाँ (कुरान, अलसतुविरब्बुकुम कहा कालूबला। सूफी–इज्म ईश्वर की वहदानियत को मानता है वह मूर्ति पूजा के विरूद्ध और मूर्ति पूजा का खण्डन करता है।

## 4.3 भक्ति आन्दोलन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल का समय सम्वत 1375 से सम्वत 1700 तक माना है। यह ईसाइयत की उपज नहीं है जैसा कि पाश्चात्य विद्वान प्रोफेसर ग्रियर्सन ने सिद्ध करना चाहा। यह इस देश की सदियों से चली आ रही धार्मिक और सांस्कृतिक धारा का अंग है। जो भगवत धर्म की असीम धारा है जिस पर सूफी मत और दर्शन का गहरा प्रभाव है। अत: मध्य युग की विशेषता भक्ति आन्दोलन है जो एक मुवमेंट एक तहरिक एक विचार धारा के रूप में उभरी। इस में एकेश्वरवाद पर बल दिया गया। मूर्ति पूजा का विरोध किया गया है जन्म के स्थान पर कर्म पर जोर दिया गया आडम्बरों पर व्यंग है सामाजिक समानता का प्रसार किया गया इससे मानवतावाद का जन्म हुआ। भक्ति के साथ ज्ञान व कर्म को मोक्ष–प्राप्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। इस्लामिक प्रभाव को हम भक्ति आन्दोलन के अलग–अलग अंगों में अध्ययन करेंगे और भक्त कवियों की विचारधारा को देखेंगे।

## 4.4 संत कबीर

भक्तिकाल की ज्ञानाश्री निपूर्ण शाखा के कवियों में कबीर का स्थान है। ईश्वरीय शक्ति के दो रूप है। एक निर्गुण, दूसरा सगुण। कबीर की ईश्वर भक्ति का निर्गुण वही रूप है।

प्रचलित है कि कबीर को एक विधवा ने जन्म देकर छोड़ दिया और उसका लालन पालन मुस्लिम जुलाहे नीरू ने किया कबीर ने इसी पेशे को अपनाया काशी में कबीर रामानन्द के शिष्य बने और ज्ञान की प्राप्ति की, उनका अधिकांश जीवन बनारस में व्यतीत हुआ। उन्होंने गृहस्थ जीवन में रहकर भक्ति मार्ग अपनाया। कबीर एकेश्वरवादी थे ईश्वर को वह कई नामों राम, हरी, गोविन्द, अल्ला, करीमा आदि से पुकारते हैं।

कबीर ने औपचारिक पूजा, मूर्तिपूजा, तीर्थस्थानों का विरोध किया है वह मुल्ला और पंडित की औपचारिकता इबादत और पूजा पर व्यंग्य करते हैं। शुद्ध आचरण और भक्ति का उपदेश देते है। कई–कई तरीकों और उपमाओं से भक्त रूप की सत्यता को समझाते हैं।

कबीर सन्त पहले थे और कवि बाद में। काव्य शास्त्र द्वारा अपने रहस्यवाद का प्रवचन करते है। कबीर सूफी सन्तों की भांति गुरू (पीर) की महिमा का गान करते है वह प्रभु स्मरण को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं। अहम और असत्य पर चोट करते हैं। ईश्वर भक्ति के लिए हृदय की पवित्रता पर जोर देते हैं। सब से बढ़कर एकेश्वरवाद उनकी भक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपदेश हैं।

कबीर द्वारा रचित अनेक पुस्तकों का उल्लेख मिलता है तथापि उनकी प्रमाणिक रचनाऐं "बीजक" मानी जाती है जिसे उनके शिष्य धर्मदास ने लिपिबद्ध किया। बीजक के तीन भाग है साखी, सबद और रमैनी। साखी शुद्ध रूप है साखी का, जो अनुभूत सत्य का परिचायक है। इसमें गुरू अपने उपदेश शिष्य को प्रदान करता है शब्द को प्रदान करता है। शब्द में प्रेम की अनुभूति के ये पद हैं। रमैनी दौहे और चौपाई में लिखी गई रचनाऐं हैं उन्होंने सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया है जिसमें ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी भाषाओं का विचित्र मिश्रण है।

कबीर का जन्म सम्वत 1455 में हुआ और मृत्यु सम्वत 1575 में मगध में हुई। कबीर भक्ति का एक स्कूल है जो "कबीर पंथी कहलाता है और कबीर के उपदेशों में" कबीर वाणी है। कबीर के यहां सहज स्वाभाविक आख्यान है जो उनके काव्य की कमजोरी नहीं वरन विशेषता है जब कबीर का देहान्त हुआ तो उनका शरीर फूलों का ढेर बनकर रह गया जिसको उनके मुसलमान और हिन्दू शिष्यों ने आपस में बांट लिया।

## 4.5 मलिक मोहम्मद जायसी

मलिक मोहम्मद जायसी भक्ति काल की प्रेममार्गी सूफी काव्य धारा के प्रमुख भक्त कवि है। वह सर्वधर्म समन्वयी संस्कृति और मानवतावादी विचारधारा के महानतम दूत हैं उन्होंने लोक कथाओं को लेकर प्रेम तत्व पर आधारित सूफी दर्शन का समावेश किया है "पद्मावत" उनका महाकाव्य है। सूफी दर्शन में आत्मा को पुरुष और परमात्मा को नारी रूप में देखा गया है "पद्मावत" में पद्मावती परमात्मा है। राजा रतनसेन आत्मा है जायसी "प्रेम और पीर के भक्त कवि माने जाते है उनके यहां श्रृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का समन्वय हुआ है।" उनके यहां गुरू महिमा पर भी जोर है।

जायसी के काव्य की भाषा अवधी है।

पद्मावत दौहा चौपाई छन्दों में मसनवी शैली में लिखा गया महाकाव्य है उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग है।

रतनसेन का मंत्री राघवसेन सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी माया है राजा रतनसेन (आत्मा) रानी पद्मावती (परमात्मा) को प्राप्त करना चाहता है। किन्तु राघव सेन और अलाउद्दीन (माया) उसके मार्ग में बाधा है जायसी प्रेम–मार्गी सूफी शाखा के सर्वश्रेष्ठ भक्तकवि है।

मलिक मोहम्मद जायसी का जन्म सम्वत् 1550 में ग्राम जायस रायबरेली जिले में हुआ। इसीलिए यह जायसी कहलाये। मलिक जायसी को नवाबों की उपाधि (नरेश का पुत्र रत्न) प्राप्त हुई। तत्कालीन शासक जायसी का बड़ा सम्मान करते थे।

जायसी की पाँच रचनाऐं उपलब्ध हुई है।

(1) पद्मावत

(2) अखरावत

(3) आखिरी कलाम

(4) कहरनाम

(5) चित्रलेखा

## 4.6 मीरा

मीरा का जन्म 1498– 1546 में राजस्थान में मेड़ता कस्बे के कुड़की, ग्राम में हुआ। मीरा मेड़ता के राव रत्न सिंह की पुत्री थी। उनका विवाह राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ। सात–आठ वर्ष बाद ही भोजराज की मृत्यु हो गई।

कृष्ण–भक्तों में मीरा का प्रमुख स्थान है। कृष्ण का मीरा के नज़दीक भगवान रूप है। कृष्ण प्रेम के अतिरिक्त मीरा के काव्य में गुरू–महिमा, सत्संग, संसार की निस्सारता का वर्णन है वह भी मुस्लिम सूफी संतों की भांति गुरू को भक्ति मार्ग दर्शन के लिए जरूरी समझती है।

प्रेम में रंगी मीरा कभी उन्हें रिझाती है कभी उनके प्रेम में तन्मय होकर उनके सामने नाचने लगती है उनका प्रेम लौकिक न होकर आलौकिक है मीरा दर्द–दिवानी है मीरा के प्रभु गिरधर गोपाल हैं मगर मीरा ने कृष्ण को परम पति सगुण रूप में और निर्गुण रूप में विभक्त कर अपनी भक्ति भावना का परिचय दिया है। मार्फत में इश्क–ए–इलाही की एक पहचान यह भी है कि इश्क वो आग है जो सब को जलाकर खाक कर देती है मासवा महबूब के अरबी अल इश्क नारून तखररूबो मासिवा अल महबूब। मीरा का प्रेम कृष्ण की भक्ति में उन्हें व्याकुल बना देता है और वह संसार से नाता तोडकर उनमें लीन हो जाती हैं।

मीरा को उनके पति भोजराज के सौतेले भाई विक्रमादित्य ने विष देकर मारना चाहा। मीरा विष पी भी लेती है मगर बच जाती है। अन्त में मीरा द्वारिका में अपनी आराध्य देव रणछोड़ दास के मन्दिर में जल समाधि ले लेती है। विद्वानों के अनुसार उनका निधन सम्वत् 1603 और 1613 में माना जाता है।

## 4.7 गुरू नानक का भक्ति दर्शन

गुरूनानक का जन्म 1469 ई. में रावी नदी के तट पर ननकाना गांव में खत्री परिवार में हुआ। उनका मन इस व्यवसाय में नही लगा। वह तो बचपन से ही रहस्यवादी दर्शन में रूचि रखते थे और अधिकांश समय साधु संतों की संगत में गुजारते थे। संत कबीर की भांति गुरू नानक उपदेशक बन गये। वह एकेश्वरवाद में यकीन रखते थे। प्रभु की वहदत (एकता) पर विश्वास रखते थे उस में उनका विश्वास रखते थे। प्रभु वह मोक्ष का एक मात्र मार्ग एक भगवान की पूजा को मानते थे। वह नरित्र की शुद्धता को आवश्यक मानते है वह गुरू की आवश्यकता पर भी जोर देते हैं। वह मूर्ति पूजा का खण्ड करते थे। भक्त उनके नजदीक गृहस्थ–जीवन में रहकर भी भक्ति कर सकता है वह बराबर शेख फरीद की संगत में रहे और बारबार ग्रन्थ साहिब में उसका जिक्र मिलता है वह जाति व्यवस्था के विरूद्ध थे उनके उपदेशों से एक नया समुदाय उत्पन्न हुआ जो सिक्खवाद कहलाता है।

गुरू नानक के ग्रन्थ साहिब में हज़रत मोहम्मद साहब और शेख फरीद (पाक पट्टन पंजाब) का बारबार जिक्र मिलता है इससे उन पर इस्लाम और सूफीवाद का प्रभाव साफ स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

गुरू नानक मक्का व मदीना भी गये वहाँ उन्होंने खा़ना काबा की जियारत की। गुरू नानक इराक में अब्दुल कादिर जिलानी (गौस आजम) के मजार पर भी गये। वह बहदतुल वजूद में यकीन रखते थे उनकी मृत्यु 1538 ई. में ननकाना में हुई। यह अब पाकिस्तान में है।

सत्य (ईश्वर) (Reality) की खोज में संत कबीर और गुरू नानक दोनों कामयाब थे। बाबा फरीद शंकरगंज की शिक्षाओं का असर गुरू नानक पर गहरा था। सिख पंथी शेख फरीद को नतमस्तक करते हैं।

## 4.8 रामभक्ति व कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय

भक्ति आन्दोलन में राम भक्ति और कृष्ण भक्त कवियों का अध्ययन करेंगे भक्ति में मीरा भक्त सूरदास और रसखान का नाम काबल–ए–गोर है और राम भक्ति के बारे में महाकवि तुलसीदास का अध्ययन भी आवश्यक है।

सूरदास का जन्म सम्वत् 1535 में हुआ और मृत्यु सम्वत् 1631 में हुई। वह बल्लभगढ़ के निकट सीही ग्राम में पैदा हुए उनके परिवार के संबंध में विद्वानों में मतभेद है कुछ लोग उन्हें सारस्वत ब्राहमण बताते है और कुछ लोग उन्हें चन्द्र, वंशज मानते है बचपन से ही वह भक्ति की ओर झुके। रूनुकता ग्राम जिला मथुरा में सूरकुटी बनाकर भक्ति में लीन हो गए।

वल्लभाचार्य से सूरदास ने वल्लभ समुदाय की दीक्षा ली। वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप आठ भक्त कवियों में उनकी गणना की जाने लगी सूरदास सगुणोपासक थे वह कृष्णा की बाल अवस्था का वर्णन करते है उनके भक्ति भाव में

(1) दास भाव

(2) सखा भाव मिलते है दास भाव में आत्म समर्पण की भावना है सखा भाव में हरि लीला का वर्णन है सूर के कृष्ण अलौकिक पूर्ण है विष्णु का अवतार है।

सूर की शैली रीति काव्य की शैली है प्रत्येक पद किसी न किसी राग रागिनी पर आधारित है। सूर की भाषा भी बज भाषा है सूर की प्रसिद्ध प्रमाणिक रचना सूरसागर है।

अब हम तुलसीदास का भक्त कवि के रूप में अध्ययन करते है तुलसीदास का जन्म सम्वत् 1554 में हुआ और मृत्यु सम्वत् 1680 में हुई। तुलसीदास राम के भक्त थे रामचरितमानस उनकी राम भक्ति पर आधारित प्रसिद्ध रचना है उपमा उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार के सम्राट कहे जाते है उनके यहां राम की भक्ति प्रतीक है।

जब शिक्षा समाप्त कर लेने के बाद तुलसीदास राजापुर गये तो दीनबन्धु पाठक की रूपवती कन्या रत्नावली से उनका विवाह हुआ। गृहस्थ जीवन के पांच वर्ष के बाद अपनी पत्नी के व्यंग से तंग आकर वह बैरागी हो गये, उन्होंने तीर्थ स्थानों की यात्राऐं की। विद्वान भक्त साधु संतों के सत्संग में रहे शास्त्रों का अध्ययन भी किया और राम भक्ति में लीन हो गये। अयोध्या तथा काशी में रहकर उन्होंने भक्तिपूर्ण काव्य की रचनाऐं की। उनके पदों में राम गुण

प्रभु की राम कृपा से संत जीवन की उपलब्धि मुख्य विषय है उनके चौपाई, दौहे, सवैया, सौठा, बरवै, छप्म्य आदि सफल काव्य शैलियों में लिखे गये हैं।

वह राम को विष्णु के रूप में मानते थे तुलसीदास की रचनाओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

| | |
|---|---|
| (1) महाकाव्य | रामचरितमानस। |
| (2) खण्ड काव्य | रामलीला नहछू, जानकी– मंगल, पार्वती–मंगल, |
| (3) मुक्तक | गीतावली कृष्णा– गीतावली, दौहावली, वैराग्य संदीपनी, कवितावली बरवै,रामायण, रामाज्ञा प्रश्न, विनय पत्रिका। |

उनकी भाषा ब्रज और अवधि है उनको दोनों भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। तुलसी का भक्त रस ग्रंथ पदों में उल्लेखनीय है कि वह अपने प्रभु श्री राम में कितना लीन थे। उनकी भाषा में फारसी अरबी शब्द भी मिलते है। जिसमें इस्लामी प्रभाव स्पष्ट झलकते हैं।

भक्ति आन्दोलन का यह रूप हमने उत्तर भारत में देखा जिस पर अधिकांश सूफी मत प्रभाव देखा जा सकता है। भक्ति के रूप हम पश्चिम बंगाल और तेलुगु में भी संक्षेप में देखेंगे हम देख चुके है कि भक्ति आन्दोलन में राम व कृष्ण की विष्णु अवतार के रूप में पूजा की गई इस युग की भक्ति की यह चरम सीमा थी व्यक्तिगत आत्मा सर्वोच्च आत्मा में लीन होती थी इसी भक्ति विचार धारा के प्रमुख भक्त पश्चिम बंगाल में चैतन्य महाप्रभु थे। उनका जन्म बंगाल मैं नदिया नामक स्थान पर हुआ जो वैदिक दर्शन का अध्ययन केन्द्र था। वे 22 वर्ष की आयु में ईश्वरी सुत प्रेरणा से कृष्ण भक्त सम्प्रदाय में शामिल हो गये और साधु का जीवन व्यतीत करने लगे अन्तत: उड़ीसा में पुरी स्थल में रहकर श्री कृष्ण का जाप करते और कभी समाधि में चल जाते थे। उन्हें सिद्धि प्राप्त थी।

उन्होंने संगीत और कीर्तन द्वारा भक्ति की। वह धार्मिक ग्रन्थों व मूर्ति पूजा के विरोधी नहीं थे वह जाति व्यवस्था के प्रति सहनशील थे। परन्तु धार्मिक आडम्बरों के विरूद्ध थे।

दूसरे प्रमुख तेलुगू ब्राहमण संत वल्लभाचार्य (1479– 1531ई.) थे उनका प्रारम्भिक जीवन बनारस में बीता दक्षिण में उन्होंने वैष्णव धर्म को लोकप्रिय बनाया। वह आत्मा व परमात्मा के अस्तित्व को मानते थे उन्होंने क्षण की आराधना श्री नाथ जी के रूप मैं की। "सुबोधनी व सिद्धान्त रहस्य उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वे कृष्ण के भक्त थे और उसके लिए उनकी भक्ति भावनात्मक भी थी। वे कृष्ण को अवतार के रूप में मानते थे और कृष्ण के ब्रहम अवतार में विश्वास रखते थे उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने उनके भक्ति आराधना करके आगे बढ़ाया। सम्राट अकबर ने उन्हें जागीर प्रदान की।"

## 4.9 मुस्लिम शासकों के समय के सूफी संतों पर भक्ति आन्दोलन का प्रभाव

मुसलमान शासकों ने भी वेदान्त और भक्ति काल में दिलचस्पी, लेनी शुरू की। सम्राट अकबर के आदेश से रामायण का अनुवाद फारसी भाषा में अब्दुल कादर बदायूँनी और अन्य उलैमाओं द्वारा किया गया। महाभारत का अनुवाद रज्मनामा के नाम से किया गया जिसकी

हस्तलिखित प्रतियां महाराजा जयपुर के चन्द्रमहल म्यूजियम में हैं जिन पर मुग़ल सम्राटों की मोहरें हैं और दिनांक है उनका अध्ययन उनके द्वारा किया गया। शहंशाह शाहजहां के ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह ने फारसी भाषा में उपनिषदों का अनुवाद किया और इस तरह भारतीय दर्शन में अपनी रूचि दिखाई। दारा वेदान्त में यकीन रखता था और वह स्वयं अन्य दरवेशों के अलावा मियाँ मीर का मुरीद था। दारा शिकोह का यह मानना था कि भारत वर्ष में भी कोई पैगम्बर आया है और यही कारण है कि भारतीय दर्शन में ईश्वरीय एकता के विचार मिलते हैं। दारा शिकोह ने मजमा उल बहरेन जो उपनिषदों का फारसी अनुवाद है 102 के 56– 57 पर लिखा है : –

"हजरत मोहम्मद सा. की पैरवी करने वाले संत थे जिन्होंने तनजिह (दिल की सफाई) और तसविह को अपनाया। दारा शिकोह के नजदीक वह पूर्ण भक्त थे ऐसे लोगों की सूची में दारा शिकोह ने चारों खलीफाओं, हसन और हु सैन सहाबा और सूफी संतों की गणना की है इसी सूची में दारा शिकोह ने अपने अहद में मियाँ मीर, मियाँ बारी, मुल्ला शाह, शाह मुहम्मद दिलरुबा और शेख सैयद अहमद सरहिन्दी का शुमार किया है। हिन्दू नामों में बाबा लाल बैरागी को शामिल किया।" (मजमा–अल–बहरेन पृष्ठ 101/56–57)। ईश्वर के जमीन पर मुशहिदे की सूफी थ्यौरी जिस पर मुताजिला व शिआहज़रात ने एतराजात किये दारा शिकोह ने उनका खण्डन किया। वह कहते थे कि भक्त लोग ईश्वर को नही देख सकते यहां तक के जन्नत में भी। दारा शिकोह खुदा के मुशाहिंदे को मानते थे वे वहदत–अल–वजूद का सिद्धांत मानते थे। प्रभु को सम्पूर्ण अधिकार है कि वह जिस रूप मैं जहां चाहे भक्तों को दर्शन दे ईश्वर दर्शन के सूफी विचारों को दारा शिकोह ने वेदों के आधार पर तसलीम किया। महा प्रलेय और मुसलमानों के कयामत के नजरिये में समानता को दारा शिकोह ने खूबसूरती से माना है उसके नजदीक मनुष्य अपनी आयु होने पर मुक्ति प्राप्त करेंगे और ब्रह्म में समा जायेंगे जो सर्वसम्पन्न है।" (Absolute)

इस प्रकार गौस ग्वालियरी ने अपनी पुस्तक "जवाहर–ए–खमसाँ में अल्लाह के नामों को पुकार कर भक्ति करने की हिदायत की है सिंधी मुस्लिम सूफी कवि शाह अब्दुल लतीफ की मसनवी, वारिस का उपदेश है बुल्लेशाह की काफिया पंजाबी सराईकी में है वे औरंगजेब के दौर में शाह इनायत के मुरीद थे बुल्लेशाह की काफियों में भक्ति कवि सूरदास के राधा कृष्ण और हीर रांझा, सोनी मेहवाल, सीता, सससी के माध्यम से वह सन्त प्रेम का वर्णन करते है और ईश्वरीय ज्ञान से ईश्वर की भक्ति में लीन होकर ईश्वर को देख पाते हैं। यह भी याद रखने योग्य है कि संत शेख अब्दुल वाहिद बिलग्रामी की सभा की महफिलों में भक्तिकाल के कवि सूरदास और संत कबीर के विशनपद गाये जाते थे।"

## 4.10 सारांश

भक्ति आन्दोलन कई हिन्दू संतों और सुधारकों का मोक्ष प्राप्ति के लिए ईश्वर भक्ति का मार्ग था जो एक आन्दोलन के रूप में सल्तनत काल में उभर कर सामने आया। प्राचीन भारतीय हिन्दू दर्शन में ईश्वर की भक्ति मैं लीन होने की और ज्ञान कर्म और भक्ति द्वारा मोक्ष की प्राप्ति सदैव प्रारम्भ से रही थी परन्तु धर्म आडम्बर जाति व्यवस्था जाहिरी भक्ति

मूर्ति पूजा में सिमट कर रह गया। उधर सूफीवाद के दर्शन से सम्पर्क हुआ तो यह धार्मिक आडम्बरों और मूर्ति पूजा के बीच भक्ति आन्दोलन विचारधारा बनी जिसका लक्ष्य एक ईश्वर की सच्ची भक्ति का स्वरूप बना।

इस भक्ति आन्दोलन की उत्पत्ति के बारे में विवाद है, कुछ का मानना है कि यह प्राचीन हिन्दू वैदिक दर्शन वाद का प्रतिफल है। मूर्ति पुजा का विरोध हिन्दू ग्रन्थों में उल्लेख था और ईश्वरीय एकता के विचार भी मिलते है, इसलिए यह प्राचीन विचारधारा से जुड़ी हुई प्रतिक्रिया थी। कुछ इतिहासकारों के अनुसार भक्ति आन्दोलन की उत्पत्ति हिन्दू धर्म के इस्लाम के सम्पर्क में आने से हुई इस मत के समर्थक डॉ. ताराचन्द और युसुफ हुसैन वैसे तो मानव विकास से ही मनुष्य ईश्वर को शक्ल में मारता रहा है फिर प्राचीन हिन्दू वैदिक दर्शनवाद मानव इतिहास में सम्पूर्ण ईश्वर भक्ति विचार के रूप में आया जिसमें एक ईश्वर की भक्ति पर बल था यह रोशनी धार्मिक आडम्बरों और जाहिरा भक्ति में बदल गई। जब भक्ति आन्दोलन प्रकाशमय हुआ तो धार्मिक आडम्बरों का और मूर्ति पूजा का खण्डन और विरोध किया गया।

संत कबीर, मीरा, गुरूनानक, तुलसीदास, सूरदास, चैतन्य, वल्लभाचार्य, रामानुजम संत सम्प्रदाय धार्मिक रूढ़ियों और आडम्बरों के विरूद्ध एक आन्दोलन के रूप में आये और उन्होंने ईश्वर की और मोक्ष का मार्ग दर्शन करके उपदेश ओर प्रवचन दिये। भक्त कवियों ने भक्ति काव्य धारा में प्रचार किया।

इस्लाम के सूफीमत ने सल्तनत काल में एकेश्वरवाद का संदेश दिया। ईश्वरी भक्ति में दूजे के विचार से ईश्वर प्राप्ति नहीं हो सकती। ईश्वर की भक्ति में लीन होने के लिए हृदय पवित्र होना चाहिए जब ही तो ईश्वर का दर्शन संभव है। दिल ईश्वर की गुजरागाह है ईश्वर दर्शन के लिए हृदय साफ और पवित्र होना आवश्यक है। भक्ति सूफीमत अहीम का खण्डन करता है। वह तो ईश्वर को संपूर्ण समर्पण पर बल देता था उनका यहां मूर्ति पूजा का खण्डन है। इस्लाम में सूफी मत का भक्ति मार्ग मुस्लिम शासक वर्ग से अलग भक्ति का मार्ग था। ईश्वर प्राप्ति का मानव को संदेश जिसमें कोई जातीय भेदभाव नहीं था उसकी रूहानी सिद्धियां और उपलब्धियां प्रभावित थीं। सूफीमत के संतों का जीवन सीधा सादा चरित्र था, उसने भारत में भक्ति आन्दोलन को प्रभावित ही नहीं किया बल्कि मार्ग दर्शन किया। भक्ति मार्ग और आन्दोलन की सत्यता पर सूफीमत ने सत्यता की मोहर लगा दी। भक्ति आन्दोलन में दृढ़ता और विश्वास पैदा हुआ। भक्ति आन्दोलन पर इस्लाम के प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

## 4.11 संदर्भ ग्रन्थ


1. वाल्मीकि : रामायण, पृष्ठ 1
2. अली हजवेरी दातागंज बख्श : कश्फ–उल–महजूब, पृष्ठ 63
3. मौलवी अब्दुल हक देहलवी : उर्दू भाषा के विकास में सूफिया–ए–क्राम का हिस्सा, पृष्ठ 1 –27
4. डोम कथबर्ट बटलर : वेस्टर्न मिस्टिसिज्म
5. मौलाना रूप : मसनवी
6. हाफिज शिराजी दीवान (Anthology) : पृष्ट।

7. मोहिउद्दीन इबने अरबी : फुसूस उल हक्म (काहिरा 1309– 132 ए.एच. पृष्ठ 70–74)
8. मलिक मुहम्मद जायसी : पद्मावत
9. प्रो ० लाजवन्ति, : पंजाबी सूफी कवि, रामाकृष्ण, नई दिल्ली 1973 पृष्ठ 79
10. बुल्लेशाह : काफियाँ
11. दारा शिकोह : मजमाउल बेहरेन, पृष्ठ 96–97/50–5
12. शेख मुहम्मद गोस, ग्वालियर : ज़वाहर–ए–खमसा
13. मीरखुर्द : सियार उल ओलिया, पृष्ठ 45
14. सैयद अतहर अब्बास रिजवी : A history of Sufism in India

# इकाई – 5
# भक्ति संतों की विशेषताऐं

**इकाई की रूपरेखा**


5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 प्रमुख भक्ति संतों की विशेषताऐं

- 5.2.1 रामानुज
- 5.2.2 निम्बार्क
- 5.2.3 माध्वाचार्य
- 5.2.4 रामानन्द
- 5.2.5 वल्लभाचार्य
- 5.2.6 चैतन्य महाप्रभु
- 5.2.7 मीराबाई
- 5.2.8 संत कबीर
- 5.2.9 गुरू नानक
- 5.2.10 संत दादू
- 5.2.11 सूरदास
- 5.2.12 तुलसीदास

5.3 सारांश

5.4 संदर्भ ग्रंथ


## 5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पाठ्यक्रम में शामिल करने के पीछे हमारा उद्देश्य मध्यकालीन भक्ति संतों की विशेषताओं का अध्ययन करना है। इस उद्देश्य हेतु हमने इकाई में महत्वपूर्ण संतों की शिक्षाओं को बताते हुए उनमें सारगर्भित विशेषताओं का अध्ययन किया है। इससे हमारे समाज पर क्या प्रभाव पड़े उनका भी अध्ययन किया गया है।

## 5.1 प्रस्तावना

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में भक्ति आन्दोलन एक बहुत बड़ी महत्वपूर्ण घटना है। इस धार्मिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में इस्लाम का हाथ है। भारत में इस्लाम का प्रवेश और मुस्लिम राज्य की स्थापना भारतीय धर्म और संस्कृति के बहुत से मूल्यों और मान्यताओं को कड़ी चुनौती थी। हमारे देश की उस समय की धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताएं व व्यवस्थाएं उस चुनौती का मुकाबला करने में असमर्थ रही। अत: भारतीय जनता का प्रचलित धार्मिक सम्प्रदायों से विश्वास हटने लगा। निराशा के इस वातावरण में भक्ति आन्दोलन ने जनसाधारण को आत्मिक शांति प्रदान की। यद्यपि इससे पूर्व भक्ति आन्दोलन की चिनगारी दक्षिण भारत में आलवार संतों के रूप में सुलग चुकी थी, जिसकी प्रज्वलित लपटें तत्कालीन वातावरण में थोड़े समय में ही सम्पूर्ण देश के कोने–कोने में फैल गई

और पूरे भारत को अपने में समेट लिया। इस आन्दोलन के अन्तर्गत देश के विभिन्न भागों में अनेक संत हुए जिन्होंने हिन्दू धर्म के आडम्बर, जातपात तथा रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह किया और जनसाधारण को धर्म का सच्चा प्रकाश दिखाया। उन्होंने ज्ञान व कर्मकाण्ड के स्थान पर भगवान की भक्ति को मोक्ष का सरल सर्वश्रेष्ठ साधन बताया। यह समाज सुधार के लिए जन आन्दोलन था। इसे ब्राह्मण धर्म तथा समाज में ब्राह्मणों के विरूद्ध आन्दोलन कहना अनुचित नहीं होगा। इस कारण डॉ. युसुफ हुसैन ने भक्ति आन्दोलन को रूढ़िवादी, सामाजिक तथा धार्मिक विचारों के विरूद्ध हृदय की प्रतिक्रिया तथा भावों का उद्‌गार बताया है। इस आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में रामानन्द, कबीर, नानक, वल्लभाचार्य, तुलसीदास, सूरदास, चैतन्य, मीरा, दादू आदि संतों का प्रमुख योगदान रहा।

## 5.2 प्रमुख भक्ति संतों की विशेषताऐं

भक्ति आन्दोलन के संतों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। (1) सगुणवादी संत (2) निर्गुणवादी संत। सगुणवादी संतों में रामानुज, रामानन्द, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, मीरा, सूरदास व तुलसीदास प्रमुख थे। इनका मानना है कि ईश्वर का निश्चित रूप होता है तथा वे उसको विष्णु, राम, कृष्ण आदि नामों से सम्बोधित करते थे। निर्गुणवादी संतों में कबीर, नानक, दादू, रैदास आदि प्रमुख संत थे जिनका मानना था कि ईश्वर निराकार और घट–घट में मौजूद है और वे उसे राम, रहीम, कृष्ण, करीम, विष्णु आदि विभिन्न नामों से पुकारते थे। इस भक्ति आन्दोलन में जिन प्रमुख संतों ने योगदान किया, उसका वर्णन इस प्रकार है –

### 5.2.1 रामानुज

रामानुज मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन के प्रथम महान् वैष्णव संत थे जो 12वीं शताब्दी

रामानुज ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया उसको "विशिष्टाद्‌वैत" के नाम से जाना जाता है। उनका मानना था कि ब्रह्म के ही विभिन्न रूप है आत्मा भक्ति के द्‌वारा ही परमात्मा को प्राप्त कर सकती है। रामानुज ने "प्रपत्ति" का मार्ग भी बताया। प्रपत्ति का मार्ग भक्ति मार्ग में सबसे सरल मार्ग है क्योंकि इसके लिए ज्ञान विद्‌याध्ययन या योग साधना की कोई आवश्यकता नहीं है। ईश्वर में पूर्ण विश्वास कर इसे पूर्ण आत्म–समर्पण कर देना ही प्रपत्ति है। उनका यह मार्ग सभी के लिए खुला था। रामानुज ने बताया कि शूद्र भी अपने गुरू की इच्छा के आगे पूर्ण समर्पण कर मोक्ष प्राप्त कर सकते है। इससे लाखों शूद्रों और अन्त्यजों के लिए भी हिन्दू धर्म में आशा की किरण का संचार हुआ। अब उन्हें धार्मिक तथा आध्यात्मिक सन्तोष के लिए दूसरा मार्ग ढूंढने की आवश्यकता न रही। उन्होंने वर्ष में एक निश्चित दिन शूद्रों को मन्दिरों में प्रवेश की भी छूट दी। रामानुज के ये विचार शीघ्र ही उत्तर और दक्षिण भारत में लोकप्रिय हो गये और इस प्रकार उन्होंने भक्ति आन्दोलन की नींव रखी। उनके अनुयायियों की संख्या उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में अधिक है। उनका मत "श्री संप्रदाय" कहलाता है।

### 5.2.2 निम्बार्क

भक्ति आंदोलन के दूसरे महान् संत निम्बार्क थे। वे रामानुज के ही समकालीन थे और आयु में उनसे छोटे थे। ये तेलंग ब्राहमण थे। ये बचपन से ही कृष्ण के बड़े भक्त थे। दक्षिण में विद्याध्ययन करने एवं सन्यास ग्रहण करने के बाद वे बहुत समय तक भारत का भ्रमण करते रहे और अन्त में वृन्दावन को अपना निवास स्थान बनाकर रहने लगे। इन्होंने "भेदाभेद" अथवा "द्वैताद्वैत" के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके भक्ति की विचार धारा को और आगे बढ़ाया। उनके मतानुसार जगत, आत्मा व परमात्मा एक दूसरे से भिन्न तथा अभिन्न दोनों ही है। भिन्न इस अर्थ में कि ये तीन पृथक तत्व है एवं आत्मा तथा जगत का स्वरूप तथा गुण ब्रहम के स्वरूप और गुणों से भिन्न है। अभिन्न इस अर्थ में है कि आत्मा व जगत पूर्णत: परमात्मा (ईश्वर) पर ही निर्भर है और उनका ईश्वर के बिना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। इसलिए उनका न केवल शंकराचार्य से बल्कि विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज से भी बहुत मतभेद था।

साधना पक्ष में निम्बार्क ने भी परमात्मा के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण पर ही जोर दिया। इनका कहना है कि श्री कृष्ण के चरणारविन्द को छोडकर अन्य गति मनुष्य की नहीं है। जिस भाव से भक्त भगवान की उपासना करता है, भगवान भक्त को उसी भाव से मिलते है। उन्होंने सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली श्री कृष्ण के वामांग में विराजित तथा सहस्त्रों सखियों से सेवित श्री राधा की स्तुति करने पर भी बल दिया है। इस प्रकार निम्बार्क कृष्ण और राधा के उपासक थे तथा उन्होंने कृष्ण और राधा की उपासना पर बल दिया। निम्बार्क के लिए कृष्ण ही उनके ईश्वर है और उनके प्रति प्रेम पूर्ण भक्ति और आत्म समर्पण की भावना से मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है।

### 5.2.3 माध्वाचार्य

माध्वाचार्य 13वीं सदी में भक्ति आन्दोलन के एक अन्य महत्वपूर्ण संत हुए। इनका जन्म 1199 ई. में कन्नड़ जिले में उडिपी नामक स्थान पर हुआ। उन्होंने न तो शंकर के अद्वैतवाद को स्वीकार किया और न रामानुज के विशिष्टा–द्वैतवाद को। उन्होंने भागवत पुराण के आधार पर स्पष्ट "द्वैतवाद" के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार ईश्वर आत्मा और जगत से पूर्णत भिन्न है। ईश्वर ही आत्मा और जगत को नियन्त्रित करता है। परमात्मा और आत्मा के बीच सम्बन्ध स्वामी और सेवक की भांति होता है।

माध्वाचार्य विष्णु के उपासक थे और विष्णु की ईश्वर के रूप में भक्ति करते थे। वे भक्ति पूर्वक विष्णु की उपासना का उपदेश देते थे। इनके अनुसार सच्ची भक्ति से ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन हो सकते है अत: इनके सम्मुख आत्म समर्पण कर देना चाहिए। उसी की अनुकम्पा और भक्ति से मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों विद्वानों के विपिन दार्शनिक सिद्धान्तों का भारत के चिन्तनशील हिन्दुओं की विचारधारा पर बड़ा प्रभाव पड़ा और इन तीनों ही विद्वानों ने जन्म–मरण के बंधन से मुक्ति का अथवा मोक्ष प्राप्ति का एक ही मार्ग–ईश्वर की भक्ति का मार्ग बताया। चूंकि उपर्युक्त तीनों ही संतों ने अपने उपदेश संस्कृत भाषा में दिये। अत: उनके विचारों

का जनसाधारण पर विशेष प्रभाव नहीं हुआ। उत्तर भारत में भक्ति की व्यापकता का श्रेय युगदृष्टा रामानन्द को है जिन्होंने हिन्दी के माध्यम से अपने उपदेश दिये।

### 5.2.4 रामानन्द

रामानुज, निम्बार्क और माध्वाचार्य ने भक्ति मार्ग की प्रेरणा दी परन्तु अभी तक यह मार्ग बहुत लोकप्रिय न बन सका था। रामानन्द ने भक्ति मार्ग को लोकप्रिय बना दिया। रामभक्ति को प्रचारित कर जनधर्म बनाने का श्रीगणेश भी रामानन्द ने ही किया। प्रमाणों के अभाव में उनका जीवनकाल निश्चित करना बहुत कठिन है परन्तु इतना निश्चित है कि वे चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से लेकर पन्द्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक रहे होंगे। उनका जन्म प्रयाग में एक कान्याकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने प्रयाग और बनारस में शिक्षा पायी थी और भारत के कई भागों में भ्रमण किया था। बहुत ही छोटी आयु में वे रामानुज सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे और अपने गुणों के बल पर धर्मगुरू के पद पर पहुंचे। वे रामानुज के विशिष्ट दर्शन में आस्था रखते थे और अपने गुरू के विचारों का समस्त उत्तरी भारत में प्रचार किया। यद्यपि रामानुज चारों वर्णों और अनेक जातियों की एकता में विश्वास नहीं करते थे परन्तु रामानन्द का दृष्टिकोण संकुचित नहीं था और देश के सभी भागों का भ्रमण करने से तथा विभिन्न मतों और सम्प्रदायों के लोगों के सम्पर्क में आने से उनके विचारों में उदारता आ गई थी। उन्होंने जाति–पाति, ऊँच–नीच का भेद नही माना और शूद्रों, मुसलमानों तथा स्त्रियों को भी अपना शिष्य बनाया। उनके पूर्व स्त्रियों को धार्मिक विचार–विमर्शों और कार्यो में भाग लेना वर्जित था। रामानन्द ने इस अवरोध को भी नहीं माना। उनकी मान्यता थी कि राम के भक्त बिना भेदभाव के एक साथ खा–पी सकते है। भगवान के भक्तों के लिए वर्णाश्रम का बन्धन व्यर्थ है। परमेश्वर का एक गोत्र और परिवार है, अत: सभी भाई–भाई है और सबकी एक जाति है। इस सार्वभौम मानववाद के आधार पर रामानन्द ने समाज के सभी तत्वों को एकता के सूत्र में पिरोने का प्रयास किया। उनके शिष्यों में सभी जातियों के लोग थे। भवानन्द, सुखानन्द, आशानन्द, सुरसुरानन्द, परमानन्द, महानन्द और श्री आनन्द – ये सभी ब्राह्मण थे। रैदास चमार, कबीर जुलाहा, धन्ना जाट, सेमा नाई, सदना कसाई और पीपा राजपूत थे। पद्मावती और सुरसरी उनकी मुख्य शिष्याएँ थीं ओर गंगा नामक एक वेश्या ने भी उनसे दीक्षा ली। इस प्रकार, रामानन्द ने जाति, वर्ग और लिंग भेद से रहित तथा समानता और बंधुत्व पर आधारित नई सामाजिक व्यवस्था का सूत्रपात किया।

रामानन्द ने वैष्णव संप्रदाय और भक्ति आन्दोलन को मुख्यत: तीन प्रकार से प्रभावित किया। प्रथम, उन्होंने राम–सीता की भक्ति पर बल दिया। द्वितीय, उन्होंने हिन्दी के माध्यम से अपने उपदेश दिये। इस क्षेत्र में उनके पहले के धर्म–गुरुओं ने संस्कृत का प्रयोग किया था और इसलिए उनके सन्देश संस्कृत समझने वाले लोगों तक ही पहुंच पाये थे। लेकिन चूंकि रामानन्द ने हिन्दी में उपदेश दिये थे, इसलिए उनके सन्देश जनसाधारण तक पहुंचे। इसका दोहरा लाभ हुआ। एक तो यह कि उनके उपदेश जनसाधारण की सीधी पहुंच में आये और दूसरा यह कि इसके साथ ही देश में हिन्दी साहित्य का विकास हुआ। तृतीय, उन्होंने व्यावहारिक दृष्टि से सभी स्तुतियों और स्त्री–पुरुषों को समान स्थान दिया। उनके प्रयत्नों से भक्ति आन्दोलन

और वैष्णव–संप्रदाय लोकप्रिय बना, निम्न जातियों का स्तर बढ़ा और स्त्रियों के सम्मान में वृद्धि हुई। इसीलिए यह कहा जाता है कि मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन रामानन्द से आरम्भ होता है।

### 5.2.5 वल्लभाचार्य

यदि रामानन्द ने रामभक्ति का प्रचार किया तो वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। वल्लभाचार्य का जन्म तैलंग ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता एक उच्चकोटि के विद्वान थे और बनारस को ही उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बना रखा था। 13 वर्ष की आयु में ही वल्लभ सभी धर्म–ग्रन्थों में प्रवीण हो गये। भागवत में इनका अटूट विश्वास था और कृष्ण–भक्ति का उन्होंने उत्तर और दक्षिण भारत में पूरी तन्मयता के साथ प्रचार किया।

वल्लभाचार्य के विचारों पर विष्णु स्वामी के भक्ति सिद्धान्तों का अधिक मात्रा में प्रभाव पड़ा। वल्लभ ने उनके विचारों को अधिक सुस्पष्ट कर उनका प्रतिपादन किया। उन्होंने 'पुष्टि मार्ग' की स्थापना की। उनकी प्रेरणा से स्थान–स्थान पर श्रीभागवत का पारायण होने लगा। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भागवत और गीता को अपने पुष्टि मार्ग का प्रधान साहित्य घोषित किया। उन्होंने प्रेम लक्षण भक्ति पर विशेष बल दिया। उन्होंने वात्सल्य रस से ओत–प्रोत भक्ति पद्धति की शिक्षा दी। भगवान के यश लीलागान को वे अपने पुष्टिमार्ग का क्षेत्र मानते थे। वल्लभाचार्य ने शंकराचार्य के मायावाद का विरोध करके सिद्ध किया कि जीव उतना ही सत्य है जितना कि ब्रह्म है। फिर भी वह ब्रह्म का अंश और सेवक ही है। उन्होंने कहा कि जीव भगवान की भक्ति के बिना शान्ति ही नहीं पा सकता। भगवान के अनुग्रह होने पर जीव का पोषण होता है। भगवान श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है। उनकी सेवा ही जीव का परम कर्तव्य है। संसार की अहंता और ममता का त्याग करके श्रीकृष्ण के चरणों में सर्वस्व समर्पण कर भक्ति के द्वारा उनका अनुग्रह पाना ही ब्रह्म सम्बन्ध है।

वल्लभाचार्य के जीवन का अधिकांश समय ब्रज में व्यतीत हुआ। उनके परमप्रिय शिष्य सूरदास थे। वल्लभाचार्य दर्शन शास्त्र के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। उनका मत "शुद्धाद्वैतवाद" कहलाता है। उनकी मुख्य रचनाएँ अणुभाष्य, सिद्धान्त रहस्य और भागवत टीका सुबोधिनी है। इनमें उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों की व्याख्या की है। उनकी मान्यता थी कि आत्मा और जड़ जगत ब्रह्म के ही स्वरूप है। ब्रह्म बिना किसी वस्तु अथवा शक्ति की सहायता से विश्व का निर्माण करता है। वह सगुण है और सच्चिदानन्द है। अविद्या के कारण हमें जगत ब्रह्म से पृथक जान पड़ता है। इस अविद्या से मुक्ति पाने का मार्ग है भक्ति। यह भक्ति ईश्वर की प्रेम–पूर्ण उपासना और सेवा है। ईश्वर के प्रति इस प्रकार की अनुरक्ति तभी सम्भव है जब अन्य सभी वस्तुओं से विरचित हो जाय क्योंकि प्रेम में एक से अधिक का स्थान नहीं है। वल्लभ का लक्ष्य मुक्ति नहीं है, वह अपने आराध्यदेव कृष्ण के पास पहुंच कर सदैव के लिए उनकी सेवा में रत रहना चाहते हैं। वल्लभ के अनुयायियों में अष्टछाप के कवि हुए जिन्होंने कृष्ण भक्ति का अपनी रचनाओं द्वारा जनता में प्रचार किया।

### 5.2.6 चैतन्य महाप्रभु

चैतन्य महाप्रभु भक्ति आन्दोलन के महानतम सन्त थे। उनका जन्म नवद्वीप के एक ब्राह्मण परिवार में 1485–86 ई. में हुआ था। उस समय इस्लाम के आतंक से भयभीत वैष्णव भक्त बंगाल के विभिन्न स्थानों से भाग कर नवद्वीप में ही शरण ले रहे थे। अत: नवद्वीप में वैष्णव भक्ति की धारा अबाध गति से बह रही थी। चैतन्य ने गाँव की पाठशाला में ही संस्कृत, व्याकरण और काव्य का अध्ययन किया और फिर घर पर ही भागवत तथा अन्य पुराणों का अध्ययन किया। चूंकि उनके बड़े भाई विष्णु रूप ने सन्यास ले लिया था, इसलिए उनकी माता ने इनका विवाह कर दिया। परन्तु अपने पिता की मृत्यु के बाद जब चैतन्य उनका श्राद्ध करने गये तो वहां उन्होंने सन्यास ले लिया। वापस आने पर उनका अवधूत नित्यानन्द से सम्पर्क हुआ जिसने चैतन्य में आध्यात्मिक प्रेम की अग्नि प्रज्जवलित की। नवद्वीप से चैतन्य पुरी गये और वहां से दक्षिण का भ्रमण कर वृन्दावन गये और शेष जीवन पुरी में ही व्यतीत किया।

कहा जाता है कि वेदों और उपनिषदों के अध्ययन से भी जब चैतन्य की जिज्ञासा शान्त न हुई तो उन्होंने उन्हें समुद्र में फेंक दिया। उन्होंने भक्ति तथा प्रेम के माध्यम से ही ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग अपनाया। उनका कहना था कि ईश्वर कई रूप धारण करता है परन्तु उनमें सबसे मोहक और आकर्षक रूप कृष्ण का है। वे कृष्ण को ईश्वर का अवतार न मानकर स्वयं ईश्वर मानते थे। उनके विचार से सबसे ऊँची भक्ति और प्रेम का सबसे घनिष्ठ स्वरूप पति और पत्नी के सम्बन्ध से मिलता है जिसमें किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होता और कोई सीमा नहीं होती। इसी प्रकार का सम्बन्ध भक्त और ईश्वर के मध्य होना चाहिए। इसीलिए राधा और कृष्ण की कल्पना की गई है। कृष्ण परम ब्रह्म है और उसके भक्त राधास्वरूप है। इसलिए भक्त का कृष्ण के प्रेम में विहल होना स्वाभाविक है। चैतन्य आत्मविभोर हो अपना अस्तित्व भूलकर अपने आराध्य देव में लीन हो जाते थे और इसके लिए उन्होंने संगीत और नृत्य का सहारा लिया जो संकीर्तन कहलाता था। मथुरा–वृन्दावन से लेकर पूर्वी–बंगाल तक संकीर्तन की परम्परा शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई। इसमें व्यक्ति सामूहिक रूप से मिलकर गाते–बजाते हुए कृष्ण का नाम लेते और भजन गाते थे। चैतन्य आर उनके अनुयायी सड़कों पर भजन–कीर्तन करते हुए नाचते–गाते थे और इतने मस्त हो जाते थे कि उनमें से अनेक मूर्छित अथवा अर्ध–पागल की स्थिति में पहुंच जाते थे। स्वयं चैतन्य भक्ति के आवेश में कभी मूर्छित और समाधिस्थ हो जाते थे।

चैतन्य ने लोगों को कला भक्ति का मंत्र दिया । उनका धर्म रस्मों और आडम्बरों से मुक्त था। इसमें प्रेम, भक्ति, कीर्तन और नृत्य ही उपासना का स्वरूप था। प्रेमावेश में ही भक्त परमात्मा से साक्षात्कार का अनुभव करता है। चैतन्य का कहना था कि यदि कोई जीव कृष्ण पर श्रद्धा रखता है, अपने गुरू की सेवा करता है तो मायाजाल से मुक्त होकर कृष्ण के चरणों को प्राप्त करता है। चैतन्य ने ज्ञान के स्थान पर प्रेम और भक्ति को मुख्य बताया। परन्तु राधा–कृष्ण के प्रेम का दुरुपयोग न हो सके, इसके लिए उन्होंने स्त्रियों को पुरुषों से पृथक रहने का आदेश दिया था। वे मूर्ति–पूजा और धर्म ग्रन्थों का विरोध नहीं करते थे परन्तु कर्मकाण्ड और आडम्बरों से उन्हें घृणा थी। जाति प्रथा के प्रति उनका दृष्टिकोण मध्यम मार्गी था। वे

सभी को कृष्ण–भक्ति के योग्य तो मानते थे परन्तु मन्दिरों में मुसलमानों और निम्न जातियों के प्रवेश को उचित नहीं मानते थे। परन्तु सभी के प्रति प्रेम और उदारता उनके लिए प्रमुख थी और उनके संकीर्तन में सभी वर्गो एवं समुदायों के लोग सम्मिलित हो सकते थे।

### 5.2.7 मीराबाई

मीराबाई जिसकी गिनती मध्यकालीन भारत के महान् संतों में की जाती है, का जन्म 1498 ई. में कुड़की (नागौर) नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम रतनसिंह था जो मेड़ता के शासक राव दूदा के द्वितीय पुत्र थे। अल्पायु में ही मीरा की माँ का देहान्त हो गया। अत: वह अपने दादा के पास मेड़ता रहने लगी। उनके पिता, दादी व दादा सभी चारभुजा के उपासक थे, अत: इसका मीरा पर गहरा प्रभाव पड़ा था और उनकी आस्था भी कृष्ण भक्ति में हो गई थी।

18 वर्ष की आयु में मीरा का विवाह मेवाड़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ कर दिया, परन्तु मीरा का वैवाहिक जीवन अधिक लम्बा नहीं चला और थोड़े वर्ष बाद ही उनके पति की मृत्यु हो गई और इस प्रकार मीरा पति–सुख से वंचित हो गई। उसका मन संसार से उचट गया और वह अपना अधिकांश समय कृष्ण भक्ति तथा साधु संतों के साथ सत्संग में व्यतीत करने लगी। अगले कुछ वर्षों में उनके पिता रतनसिंह और श्वसुर सांगा भी चल बसे। एक के बाद एक इन दु:खद घटनाओं ने मीरा को वैराग्य से भर दिया। भौतिक जीवन की इस नश्वरता ने उनकी आध्यात्मिक साधना व भक्ति भावना का अधिक प्रगाढ़ कर दिया। मीरा की मुक्त सत्संग तथा भजन कीर्तन मेवाड़ के राणा विक्रमादित्य को पसन्द नहीं आया और उन्होंने मीरा को नाना प्रकार के कष्ट दिये। विवश होकर मीरा चित्तौड़ से अपने पीहर मेड़ता आ गई। अब मेड़ता में मीरा का समय भजन कीर्तन तथा सत्संग में व्यतीत होने लगा। परन्तु दुर्भाग्य से इसी समय जोधपुर के शासक मालदेव ने आक्रमण कर मेड़ता पर अधिकार कर लिया और उनके ताऊ वीरमदेव को मेड़ता छोड़ना पड़ा। अब मीरा का रहा–सहा धैर्य भी जाता रहा और वह एक तरह से बेघर की सी हो गई। ऐसी स्थिति ने मीरा को और भी अधिक वैराग्य की भावना से भर दिया। अब वे अपने इष्टदेव कृष्ण के प्रति और भी अधिक अनुरक्त हो गई। मीरा अब मेड़ता से वृन्दावन और फिर द्वारिका चली गई। उन्होंने अपना शेष जीवन द्वारिका में रहते हुए कृष्ण की भक्ति में व्यतीत किया और वही 1547 ई. में उनकी मृत्यु हो गई।

मीरा की कृष्ण भक्ति में गहरी आस्था थी। वह हमारे लिए कृष्ण भक्ति पर एक समृद्ध साहित्य छोड़ गई है जिसे उन्होंने रच–रच गाया और उसके द्वारा अपना ही नहीं अन्य भक्तों के मार्ग को भी स्पष्ट किया। उसके काव्य में सांसारिक बंधनों का त्याग तथा ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव मिलता है। मीरा की दृष्टि में यह सारा संसार असत्य है और यदि कोई सत्य है तो एक मात्र गिरधर गोपाल, जो उनके भवसागर को पार उतारने वाले खेवनहार है। मीरा की मान्यता थी कि संसार छोड़ देने से व ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण से ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है।

मीरा की भक्ति में किसी प्रकार के आडम्बर पूर्ण पूजा पाठ, रूढ़ियों और बाह्य उपकरणों के लिए कोई स्थान न था। वह दिखावों, ढोंग और परम्परागत मिथ्या मान्यताओं से

परे थी। उसकी समस्त चेतना केवल एक ही बिन्दु पर केन्द्रित थी जोकि भक्ति भाव से ओत–प्रोत थी। गिरधर गोपाल के अतिरिक्त मीरा के लिए इस लौकिक और पारलौकिक संसार में कुछ भी नहीं था। एक शब्द में कहा जा सकता है कि वह "भक्ति से परिपूर्ण" अथवा "भक्ति से सरोबार" थी। मीरा की भक्ति की यह विशेषता थी कि इसमें ज्ञान पर इतना बल नहीं था जितना भावना और श्रद्धा पर था।

रामानुज, निम्बार्क, माध्वाचार्य, रामानन्द, वल्लभाचार्य आदि सभी धर्मसुधारक सन्त विद्वान व्यक्ति थे। उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया था और उनके सिद्धान्तों में विशेष हेर–फेर की आवश्यकता न समझकर समाज की आवश्यकता के अनुकूल ही उनका अर्थ निकालने की चेष्टा की थी। उपनिषदों और शास्त्रों के सिद्धान्तों में आमूल परिवर्तन करने का न तो उनमें साहस था और वे इसकी आवश्यकता ही समझते थे। यह काम कबीर और नानक ने किया। ये दोनों ही स्वतन्त्र विचारक थे।

### 5.2.8 संत कबीर

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में किवदन्तियाँ है। सामान्य मान्यता यह है कि वे एक हिन्दू विधवा के पुत्र थे जिसने लोक–लज्जा के भय से उन्हें नवजात अवस्था में बनारस के एक तालाब के किनारे छोड़ दिया था। नीरू नामक एक मुसलमान जुलाहा उस नवजात शिशु को उठाकर अपने घर ले आया और उसका पुत्रवत पालन किया । बाद में कबीर का विवाह भी कर दिया। कबीर की पत्नी का नाम लोई था। उससे उन्हें एक पुत्र कमाल और एक पुत्री कमाली हुई। गृहस्थ जीवन में रहते हुए तथा अपना पैतृक व्यवसाय करते हुए कबीर साधु–सन्तों की सेवा करते थे और उनसे ज्ञान प्राप्त करते थे। कबीर अनपढ़ थे, किन्तु उनमें ज्ञान प्राप्ति की तथा सही मार्ग ढूंढने की तीव्र उत्कण्ठा थी। बाद में वे रामानन्द के शिष्य बन गये। उनके विचारों से प्रकट होता है कि उन्हें हिन्दू–मुस्लिम दोनों धर्म ग्रन्थों का ज्ञान था।

कबीर ने भक्ति आन्दोलन को एक नया मोड़ दिया। उन्होंने गृह त्याग किये बिना ही आध्यात्मिक विकास किया और अपने आस–पास के लोगों को धर्म का असली अर्थ समझाया। उनके उपदेशों के दो मुख्य लक्ष्य थे – एक, धर्म के बाह्याडम्बरों से मुक्त होकर आध्यात्मिक विकास करना और दूसरा, हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच में सद्भावना का वातावरण बनाना। कबीर एकेश्वरवादी थे और वेद और कुरान दोनों का सम्मान करते थे परन्तु वे ब्राह्मणों अथवा मुल्लाओं की श्रेष्ठता को स्वीकार नही करते थे। उन्हें धर्म के बाहयाडम्बर पसन्द नहीं थे। वे हिन्दू और मुस्लिम दोनों के अर्थहीन आडम्बरों और रस्मों के विरूद्ध उपदेश देते थे। वे जाति–पाँति, ऊँच–नीच की भावना तथा मूर्ति–पूजा के भी कट्टर विरोधी थे। वे मुसलमानों की नमाज, रमजान के उपवास, मकबरों तथा कब्रों की पूजा आदि के भी घोर निन्दक थे। उन्होंने एकेश्वरवाद, प्रेम मार्ग और भक्ति पर जोर दिया। उनके धर्म की परिभाषा भी अलग थी। वे ईश्वर और मानवता के प्रति प्रेम को ही धर्म मानते थे। और भक्ति के बिना कोई धर्म नहीं हो सकता। उन्होंने भी अपने गुरू रामानन्द की भांति बोल–चाल की भाषा में ही अपने उपदेश दिये।

कबीर की वाणी संग्रह "बीजक" के नाम से प्रसिद्ध है। बीजक के तीन भाग है– (1) रमैनी, (2) सबद (3) साखी। कबीर की भाषा खिचड़ी है जिसमें पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, पूर्वी ब्रजभाषा इत्यादि अनेक भाषाओं का पंचमेल है। भाषा साहित्यिक न होने पर भी बहुत जोरदार है। कबीर सत्य, अहिंसा, सदाचार इत्यादि सदगुणों के उपासक थे। उन्होंने ईश्वर को कभी मित्र, कभी माता–पिता और कभी पति के रूप में देखा है। कभी वे कहते है "हरि मोर पिउमै राम की बहेरिया" और कभी कहते हैं "हरि जननी, मैं बालक तोरा।" कबीर के अनुसार ईश्वर की सच्ची भक्ति से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है और भक्ति के लिए गुरू का होना परमावश्यक है। वे गुरू को ईश्वर से भी अधिक महत्व देते है। उन्होंने कहा :

"गुरू गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाइँ।
बलिहारी गुरू आपकी, जिन गोविन्द दिया बताई।"

कबीर निर्गुण संत थे । उनका ईश्वर सर्वव्यापी था। वह केवल एक ही है। वह कभी अवतार नहीं लेता। वह मन्दिर में नहीं रहता, वह मस्जिद में नहीं है, न ही वह काबा में निवास करता है और न काशी में। वह तो हमारे भीतर ही विद्यमान है। इसीलिए कबीर मूर्ति पुजा के विरोधी थे। उनका कहना था कि यदि पत्थर की पूजा, करने से ईश्वर प्राप्त हो सकता है तो मैं एक पहाड़ को पूजूंगा। बाहयाडम्बरों की खिल्ली उड़ाते हुए उन्होंने कहा कि यदि जल में स्नान करने से निर्वाण प्राप्ति सम्भव होती तो सबसे पहले यह मेढकों को प्राप्त होती है। यदि नग्न घूमने से "हरि" प्राप्त हो जाता तो सबसे पहले इसे हरिण प्राप्त करते। अनेक पुस्तकें पढ़कर भी एक व्यक्ति पण्डित नहीं हो सकता। परन्तु ढाई अक्षर के शब्द "प्रेम" को समझने वाला पण्डित बन सकता है। उन्होंने पण्डितों और मुसलमानों को उनके अनुचित कार्यों और पाखण्डों के लिए खूब फटकारा है।

कबीर का सबसे बड़ा काम हिन्दू–मुसलमानों में सद्भावना उत्पन्न करना था। इसलिए उनका कहना था कि राम, रहीम, कृष्ण, करीम आदि उसी एक परमेश्वर की अभिव्यक्तियाँ है। विभिन्न धर्मों और ईश्वर में केवल नाम का अन्तर है। सोना एक समान होता है। उसके जेवर बन जाने के पश्चात नाम अलग–अलग हो जाते है। धर्म के कारण झगड़ा करने वाले अज्ञानी होते है। नामों के विवाद को छोडकर भक्ति और प्रेम से ईश्वर को याद करो। वही सत्य है और वही निर्वाण प्राप्ति का मार्ग है। इसके लिए आसन लगाना, आंखें मूंदना, डण्डा–मुद्रा धारण करना, खप्पर, सिंगी, जगौटा आदि योगी का वेश ग्रहण करना, जप–तप और मंत्र तंत्र में लीन रहना तथा घर–बार और काम धन्धा छोड़कर मठों, अखाडों और सम्प्रदायों में शामिल होना सब बेकार है।"

"कबीर की वाणी सामाजिक संघर्ष की ज्वाला है। वे शास्त्रीयता, प्रदर्शन, पाखण्ड और उपचार के शत्रु हैं। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को खरी–खरी सुनाई। उनके धार्मिक आडम्बरों पर कठोर आघात किये है। उनकी दृष्टि में भगवान एक है अत: मानवता भी एक है और उसमें आचार और उपचार के आधार पर भेद करना भ्रान्ति है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के नाम पर मनुष्यों के बीच भेदभाव की दीवारें खड़ी करना अक्षम्य अपराध है। प्रत्येक मनुष्य को अपने आचरण की स्वतन्त्रता है। एक मनुष्य का आचार उतना ही ठीक है जितना दूसरे का।

इस विषय में अपना मत दूसरे पर बलात् लादना अनुचित है।" इस प्रकार हिन्दू और इस्लाम में समन्वय करने का सर्वप्रथम प्रयास कबीर का था। हिन्दू समाज की निम्न जातियों के लोगों पर कबीर के उपदेशों का गहरा प्रभाव पड़ा और उनमें से बहुतों ने उन्हें अपना गुरू मान लिया। उनकी शिक्षाओं से बाद में एक सम्प्रदाय स्थापित हो गया जो "कबीर पंथ" कहलाया।

### 5.2.9 गुरू नानक

कबीर के बाद नानक एक दूसरे प्रमुख निर्गुण संत थे। नानक का जन्म 1469 ई. में एक खत्री परिवार में तलवंडी में हुआ था जो अब ननकाना के नाम से जाना जाता है तथा पाकिस्तान में शेखपुरा जिले में है। कबीर की तरह नानक भी गृहस्थ जीवन को आध्यात्मिक उन्नति के बीच बाधक नहीं मानते थे। इसलिए उन्होंने गृहस्थ जीवन का परित्याग नहीं किया और उनके परिवार में उनकी पत्नी और दो पुत्र थे। उनके एक पुत्र का नाम श्रीचन्द और दूसरे का नाम लक्ष्मीचन्द था। गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए भी वे अपना सारा समय साधना, उपदेशों और मानव सुधार के कार्यो में लगाते थे। उन्होंने बहुत–से प्रेरणादायक पदों और गीतों की रचना की जिन्हें बाद में सिक्खों के पाँचवें गुरू अर्जुन ने एक ग्रंथ के रूप में संकलित कर दिया जो "गुरू ग्रंथ साहिब" के नाम से जाना जाता है।

कबीर के विपरीत नानक एक सुशिक्षित व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी मातृभाषा पंजाबी के अतिरिक्त फारसी और हिन्दी का भी अध्ययन किया था। गाथाओं के अनुसार नानक ने भारत के प्रमुख तीर्थ–स्थानों की तो यात्रा की ही थी, इसके अलावा अपने जीवन के अंतिम 4० वर्षो में उन्होंने कई देशों, जैसे – लंका, ईरान और अरब का भी दौरा किया था। इस दौरान वे विभिन्न सम्प्रदायों के संतों के सम्पर्क में आये जिनसे उन्होंने अध्यात्म के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास किया।

कबीर की तरह नानक भी वेदों और कुरान को नहीं मानते थे तथा कबीर की भाँति ही उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में प्रचलित अन्धविश्वासों और आडम्बरों की कटु आलोचना की तथा पंडित और मुल्ला दोनों को समान रूप से फटकारा। उनका उद्देश्य था – हिन्दू–मुस्लिम एकता की स्थापना करना। अत: उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों और यहां तक कि अछूतों को भी अपना शिष्य बनाया था।

नानक एक निराकार ब्रह्म में आस्था रखते थे। उनका मानना था कि ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण कर उसका नाम जपने से मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। वे मुक्ति को ही मानव–जीवन का अंतिम लक्ष्य समझते थे। मुक्ति मिलने से यह तात्पर्य है कि आत्मा का अलग अस्तित्व समाप्त हो जाता है और वह परमात्मा में लीन हो जाती है। नानक के उपदेशों में नैतिकता, नम्रता, सत्य, दान और दया को प्रमुख स्थान प्राप्त था। नानक कर्म और पुनर्जन्म में भी विश्वास रखते थे। नानक के शिष्यों ने धीरे–धीरे एक अलग सम्प्रदाय का रूप ग्रहण कर लिया था और कालान्तर में वह "सिक्ख धर्म" के रूप में परिवर्तित हो गया था।

### 5.2.10 संत दादू

16वीं शताब्दी में दादू भी भक्ति आन्दोलन के एक महान् सन्त हुए। इनका जन्म 1544 ई. में अहमदाबाद में हुआ था। उनकी जाति के विषय में विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत मिलते है। दादू पंथी उनकी कुछ भी जाति न बताकर यह मानते हैं कि उनका पालन–पोषण लोदीराम नामक नागर ब्राह्मण द्वारा किया गया था। उनके बारे में यह प्रसिद्ध है कि जब दादू दयाल एक शिशु के रूप में साबरमती नदी में बह रहे थे तब लोदीराम नामक ब्राह्मण ने इन्हें बचा लिया और उनका पालन–पोषण किया। दादू के गुरू का नाम ब्रह्मानन्द था। उन्हीं से उन्होंने दीक्षा ली। इसके बाद उन्होंने अनेक स्तनों का भ्रमण किया जिनमें सिरोही, सांभर, अजमेर, आमेर आदि प्रमुख थे। अंत में 1602 ई. में वे नारायण में जाकर रहने लगे। नरायणा जयपुर से 41 मील पश्चिम में जयपुर–अजमेर रेलवे लाइन पर स्थित है। यही 1603 ई. में उनकी मृत्यु हो गयी।

दादू के द्वारा स्थापित पंथ "दादू पंथ" के नाम से जाना जाता है। दादू के अनेक शिष्य हुए किन्तु 52 शिष्य मुख्य माने जाते है। दादू के ये 52 शिष्य बावन थाम्बे (स्तम्भ) कहलाते हैं। इन शिष्यों में भी सुन्दरदास जी और रज्जब जी विशेष उल्लेखनीय हैं। दादू पंथ की प्रधान गद्दी नरायणा है।

दादू के विचार "दादू दयाल री वाणी" तथा "दादू दयाल रा दूहा" नामक ग्रंथों में सुरक्षित है जिनका उनके शिष्यों द्वारा संकलन किया गया है। इन ग्रंथों के अध्ययन से हमें दादू के विचार और सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त हो जाती है। कबीर की तरह दादू भी ब्रह्म को परब्रह्म, स्वयंभू, परम ज्योतिरूप और निराकार मानते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर अत्यंत दयालु है और वह सर्वत्र समाया हुआ है। उनके अनुसार जीव वस्तुतः ब्रह्म का ही एक रूप है किन्तु माया में संलग्न होने के कारण वह ब्रह्म से अत्यन्त दूर एवं पृथक हो गया है। किन्तु जीव जब माया के आवरण से मुक्त हो जाता है तब वह ब्रह्म में लीन हो जाता है। दादू ने भी कबीर की भांति गुरू की महिमा पर बड़ा बल दिया है। उनके अनुसार उस निराकार एवं सर्वव्यापी ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए गुरू ही मार्गदर्शक होता है और वही अपनी ज्ञानरूपी नौका द्वारा शिष्य को भवसागर से पार उतारता है।

### 5.2.11 सूरदास

भक्ति आंदोलन के महान् संतों में सूरदास का अपना एक विशिष्ट स्थान है। सूरदास एक उच्चकोटि के महान् कवि और भक्त थे। वे 16वीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा 17वीं सदी के आरम्भ में पैदा हुए थे। इनके जीवन की मुख्य–मुख्य घटनाओं की बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है। सूरदास सगुण भक्त थे और कृष्ण उनके आराध्य देव थे इन्होंने कृष्ण के बाल्यकाल के विषय में बहुत कुछ लिखा है। अन्धे होते हुए भी श्रीकृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं का जो स्वाभाविक चित्रण इन्होंने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके पदों में प्रेम, भजन. भाव तथा हृदयस्थ भावों की मार्मिक अभिव्यंजना है। सूरदास पर श्रीमद भागवत का विशेष प्रभाव था। अतः उनकी भक्ति भावना साहित्य के माध्यम से मुखरित हुई है। इनके काव्य में भक्ति,

वात्सल्य और श्रृंगार तीनों रसों की त्रिवेणी का सुन्दर संगम हुआ है। इनकी प्रमुख रचनाओं में सूर सारावली, साहित्य लहरी, सूर पच्चीसी, सूरदास के विनय पद और सूर सागर प्रसिद्ध रचनाएँ है। इनमें से सूर सागर इनकी प्रेम और भक्ति से ओत–प्रोत रचना है। सूरदास ने इसमें निष्ठावान भक्त की भगवद भक्ति के साथ ही बाल–मनोविज्ञान का श्रेष्ठतम ज्ञान प्रदर्शित किया है। सूर के ग्रंथों और पदों ने लोगों को बहुत प्रभावित किया है और ईश्वर की भक्ति के मार्ग पर उन्हें अग्रसर किया है।

### 5.2.12 तुलसीदास

सूरदास की भांति तुलसीदास भी हिन्दी के एक महान् कवि और भक्त थे। उनका जन्म 1532 ई. में एक सरयूपारी ब्राह्मण परिवार में हुआ था । उनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम तुलसी था। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने अपनी पत्नी रत्नावली के व्यंग के कारण संन्यास ले लिया था। उन्होंने अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ रामचरितमानस की रचना 1574 ई. में प्रारम्भ की थी और उसे 1577 ई. में पूर्ण कर लिया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई और ग्रंथों की भी रचना की जिनमें मुख्य गीतावली, कवितावली, विनय–पत्रिका आदि हैं।

रामचरितमानस तुलसीदास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है। सर जॉर्ज ग्रियर्सन और वी. ए. स्मिथ जैसे आधुनिक विद्वानों ने रामचरितमानस की एक ऐसी सुन्दर कलाकृति और रचना के रूप में भूरि–भूरि प्रशंसा की है, जिसने कि सारे उत्तरी भारत में लाखों हिन्दुओं के धार्मिक विचारों और चरित्र को गढ़ा है। वे रामायण को हिन्दू धर्म की बाइबिल मानते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ–ही–साथ रामचरितमानस सामाजिक और नैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इसमें तुलसीदास द्वारा राम को मनुष्य का रूप देकर उनसे शिव की आराधना करवाई गई है यद्यपि तुलसीदास ने बार–बार यह भी कहा है कि राम सदा शिव के हृदय में निवास करते हैं। इस प्रकार उन्होंने शैव और वैष्णव सम्प्रदायों को संयुक्त कर दिया है। इसके अलावा उन्होंने विभिन्न वर्गों के कर्तव्यों का भी विश्लेषण कर दिया है। उनकी दृष्टि में राम केवल अवतार ही न थे बल्कि वह युग पुरुष के आदर्श भी थे। ब्रह्मस्वरूप होते हुए भी तुलसी के राम मानव–जीवन के दु:ख–सुख का भोग करते हैं, सन्तों की रक्षा करते हैं और दुष्टों का दमन करते हैं। तुलसीदास एक आदर्श पुरुष का जीवन चित्रित करना चाहते थे और राम के माध्यम से इस उद्देश्य की पूर्ति में उन्हें अद्वितीय सफलता प्राप्त भी हो गई। सगुण भक्ति के मूल तत्वों का उन्होंने स्वाभाविक रूप प्रदर्शित किया है। उनकी यह धारणा है कि कलयुग में मोक्ष का केवल एक ही साधन है और वह है – "राम नाम का जप और राम की शरणागति"। तुलसीदास ने चतुरता से अपने रूढ़िवादी विचारों पर प्रगतिवाद का आवरण डाल दिया है। इस प्रकार रामचरितमानस और अपने स्वयं के जीवन के उदाहरण द्वारा तुलसीदास ने भक्ति आन्दोलन के उत्थान और विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने यद्यपि किसी अलग सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की थी किन्तु फिर भी उन्हें भी महान् वैष्णव संत और आचार्य माना जाता है।

## 5.3 सारांश

भक्ति आन्दोलन के संतों ने अपने जो उपर्युक्त विचार और सिद्धान्त जनता के सामने रखे थे, वे यद्यपि एक जैसे नहीं थे किन्तु फिर भी उनके विचारों मे मौलिक समानता थी। उनकी शिक्षाओं में जो समान विशेषताएँ रही हैं, जिनका हम यहां उल्लेख करेंगे।

(1) भक्ति आन्दोलन के प्राय: सभी संतों ने धर्म के बाह्य आडम्बर और कर्मकाण्डों का खण्डन किया। उनका मानना था कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए इनकी कोई उपयोगिता नही है। इसके लिए उन्होंने चरित्र, आचरण और भावों की शुद्धता पर विशेष बल दिया। इनका मोक्ष प्राप्ति के एकमात्र साधन में अटूट विश्वास था और इसके लिए ईश्वर की प्रेमपूर्वक शरणागति को साधन बताया।

(2) सभी संतों ने बहुदेववाद का खण्डन करते हुए एकेश्वरवादी विचारधारा का प्रचार किया। यह बात दूसरी है कि उनमें से कोई निर्गुण ब्रह्म उपासक था तो कोई सगुण ईश्वर का। सगुण ईश्वर के उपासकों में भी कोई राम को अपना आराध्यदेव मानता था तो कोई कृष्ण को। परन्तु सभी संत किसी न किसी रूप में एक सर्वशक्तिमान ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते थे। एकेश्वरवाद इन संतों की शिक्षाओं का मूलमंत्र था।

(3) भक्ति आन्दोलन के संतों ने सामाजिक समानता पर जोर दिया। उन्होंने जाति–पॉति और ऊँच–नीच की भावना का खण्डन किया और प्राणी मात्र की समानता पर बल दिया तथा उन्हें मोक्ष का अधिकारी ठहराया। वे जाति प्रथा को ईश्वरीय इच्छा के प्रतिकूल समझते थे और सब मनुष्यों को एक ही ईश्वर की संतान मानते थे। इसलिए उन्होंने सभी जातियों के लोगों को बिना किसी भेदभाव के अपनी शिष्य मण्डली में स्थान दिया। "जात–पॉत पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि को हाई " – यह उनका लोकप्रिय नारा था।

(4) भक्ति आंदोलन के अधिकांश सन्त किसी भी संप्रदाय अथवा अन्धविश्वास के कट्टर अनुयायी न थे। उन्होंने अपनी साधना तथा चिन्तन की स्वतन्त्रता के द्वारा अपना आध्यात्मिक विकास किया था। इसी कारण कुछ संतों जिनमें कबीर, नानक, दादू आदि प्रमुख थे, ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया और पत्थर को पूजना निरर्थक बताया। इन संतों ने अपने स्वतन्त्र चिन्तन व मनन के द्वारा जो ठीक लगा, उसकी स्वतन्त्र और व्यावहारिक व्याख्या जनता के सामने प्रस्तुत की।

(5) कबीर, नानक, दादू आदि संतों ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच की खाई को पाटने का भी प्रयास किया। इन्होंने हिन्दू व इस्लाम धर्म में प्रचलित आडम्बरों का विरोध किया तथा हिन्दुओं और मुसलमानों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए यह प्रतिपादित किया कि हिन्दुओं और मुसलमानों का परम–पिता एक ही है, भले ही उसे राम और रहीम, कृष्ण और करीम, अल्लाह और ईश्वर आदि विभिन्न नामों से क्यों न पुकारा जाय। इस तरह इन संतों ने एक विशुद्ध आडम्बरहीन लोक धर्म लाने की कोशिश की जो मानवता और विश्वबंधुत्व की भावना से ओत–प्रोत था।

(6) इन संतों ने अपनें विचार तथा शिक्षाओं का प्रचार सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा में किया जिससे उनकी शिक्षाएँ बड़ी लोकप्रिय हुई। कुछ आचार्य संस्कृत के विद्वान होते हुए भी उन्होंने अपनी रचनाएं लोक भाषाओं में की तथा उन्हीं के माध्यम से अपने विचारों का प्रचार किया।

(7) भक्ति आंदोलन के संतों ने निवृत्ति मार्ग का विरोध किया। इनका कहना था कि मोक्ष प्राप्ति के लिए सन्यास लेने की आवश्यकता नहीं है। उनकी मान्यता थी कि गृहस्थ जीवन बिताते हुए भी मनुष्य शुद्ध आचरण तथा भक्ति साधना द्वारा ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर प्राप्ति में गृहस्थी कहीं बाधक नहीं है। यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि कबीर, नानक, दादू, रैदास आदि संतों ने सांसारिक जीवन बिताते हुए भक्ति की साधना की थी।

(8) सभी संतों की विशेषता थी कि मोक्ष के तीन साधन – कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग में से सभी ने भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्ति का संदेश समाज के सभी वर्गों तक पहुंचाया। इनका मानना था कि सच्चे मन से ईश्वर की भक्ति करने वाला व्यक्ति जीवन मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है।

(9) ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति के लिए सभी संत गुरू की सहायता को भी आवश्यक मानते थे। इनकी मान्यता थी कि बिना गुरू के मुक्ति सम्भव नहीं है। गुरू–भक्ति के साथ ही इन संतों ने साधु संगति पर भी बल दिया। इनके विचारों से समाज में एक ऐसा आध्यात्मिक स्तर स्थापित हो सका जिससे अशिक्षित जिज्ञासु के लिए भी शांति का मार्ग सुलभ हो गया।

## 5.4 संदर्भ ग्रन्थ


1. B. N. Lunia : Life and Culture in Medieval India.
2. Sushmita Pandey : Bhakti movement
3. Tara Chand : Influence of Islam on Indian Culture.
4. A. Rashid : Society and Culture in Medieval India.
5. Yusuf Hussain : Glimpses of Medieval Indian Culture.

# इकाई – 6
# संत कबीर का जीवन एवं शिक्षाऐं

**इकाई की रूपरेखा**


6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था

6.3 एकेश्वरवादी विचारधारा का जन्म

6.4 इस्लामिक विचारधारा एवं भारतीय समाज

6.5 नवीन सामाजिक वर्गों का उदय

6.6 कबीर का काल

6.7 कबीर के उपदेश (शिक्षाऐं)

6.8 कबीर पंथ

6.9 कबीर पंथियों की संख्या

6.10 संदर्भ ग्रन्थ


## 6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पाठ्यक्रम में शामिल करने के पीछे हमारा मकसद मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के एक महत्वपूर्ण संत के बारे में जानकारी देना है। कबीर ने अपने उपदेशों एवं अपनी पंथ के जरिये भारतीय समाज, धर्म की महत्वपूर्ण सेवा की है। इस इकाई में आप यह भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे कि कबीर ने आडम्बर, अविश्वास, छुआछूत, मूर्तिपूजा इत्यादि की कटु आलोचना करके सभी धर्मों में सामंजस्य पैदा करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया।

## 6.1 प्रस्तावना

संत कबीर भारतीय संस्कृति की एक अनोखे धरोहर हैं। इनके जन्म और माता–पिता के सम्बन्ध में तरह–तरह की अटकल–बाजियाँ लगाई जाती हैं। कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलने के कारण तरह–तरह की किवदन्तियाँ प्रचलित हो गई। ऐसी स्थिति में इनके जन्म और माता–पिता के सम्बन्ध में सही जानकारी का अभाव है। इतिहासकारों ने यह माना है कि कबीर का जन्म पन्द्रहवीं सदी के अन्त में हुआ था। जब सिकन्दर लोदी का शासनकाल था। कुछ विद्वान यह मानते है कि कवि एक ब्राह्मण विधवा के लड़के थे। जिनका लालन–पालन एक जुलाहे के घर हुआ। और कबीर ने खुद कहा है (हम घर सूत तनह नित ताना) इनका जन्म स्थान बनारस या इसके आसपास का इलाका था।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस काल को भक्ति काल कहा जाता है। अनेक प्रकार की भाषाऐं, संस्कृति, धर्म इन सबका सम्मिश्रण इस काल में मिलता है। संगीत साहित्य कला, भवन निर्माण की शैली सभी क्षेत्रों में एक अजीब शास्त्रीय संस्कृति का समिश्रण (भक्ति काल) इस काल में पाया जाता है। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस्लाम और हिन्दू

धर्म दोनों के मिश्रण से एक नई संस्कृति पैदा होती है जिसे हम समन्वयवादी संस्कृति कहते हैं। जौनपुर से शुरूआत होकर इस समन्वयवादी संस्कृति का प्रभाव क्षेत्र लगभग पूरे हिन्दुस्तान में छा जाता है।

## 6.2 तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था

शरकी वंश (1393– 1479) – शरकी वंश की हार के बाद जौनपुर, कन्नौज, अयोध्या और काशी में इस समन्वयवादी संस्कृति की जड़ें जम गई थी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि समन्वयवादी संस्कृति रातोंरात पैदा हो गई और जाति प्रथा समाप्त हो गई। इसके पीछे एक लम्बा इतिहास है। कबीर कालीन समाज में मुस्लिम और हिन्दू कट्टर पंथियों का बोलबाला था। जहां एक ओर पठान और जुलाहे थे वहीं दूसरी ओर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। इनके अलावा अनेक प्रकार के छोटे–छोटे किंगडम थे, और बहुत सारी जातियां आ गई थी। संभव है कि सामाजिक विकास के साथ–साथ इन जातियों की उत्पत्ति हुई। क्योंकि हर व्यवसाय एक खास जाति से जुड़ गया था। जातियों के विकास में बाधाऐं तब आई जब हर जाति के मुखिया अपनी–अपनी जाति के गुण गाने लगे। एक जाति दूसरी जाति पर अपना आधिपत्य दिखाने लगी। ऐसी परिस्थिति ने एकेश्वरवाद को जन्म दिया। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसी ही परिस्थिति में बहुत सारे निम्म वर्गीय जातियों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार किया परन्तु जाति और धर्म परिवर्तन जोर जबरदस्ती से नहीं किया गया था। लोभ धन सम्पदा और सुख शान्ति के लिए धर्म और जाति परिवर्तन होने लगा। सामाजिक विकास की इसी प्रक्रिया के अन्त में संत कबीर का प्रादुर्भाव हुआ।

कोई भी इतिहासकार किसी धर्म या धार्मिक विश्वासों को तथ्यात्मक रूप से सत्य या असत्य, अथवा बिल्कुल असली या ईश्वर प्रदत्त नहीं मान सकता, जिसकी कोई मिसाल न हो, जिस पर कोई प्रभाव न पड़ा हो, और न ही उसमें कोई परिवर्तन आया हो, या विकास हुआ हो। किसी भी धर्म या धार्मिक पद्धति को, उसकी ऐतिहासिक महत्ता के लिए उसके धर्म विज्ञान से अलग करके देखना होगा। यह देखना होगा कि अलग–अलग काल में इसके अनुयायी (या उसके विभिन्न गुट) और अन्य लोग उस धर्म को किन अर्थो में ग्रहण करते थे। वर्तमान में धर्मावलम्बी उसे किस रूप में समझते है, यह केवल समकालीन इतिहास के लिए प्रासंगिक है। पूर्ववर्ती कालों के लिए नहीं।

## 6.3 एकेश्वरवादी विचारधारा का जन्म

उन परिक्रियाओं के संदर्भ में पंद्रहवी शताब्दी के अन्त में और सोलहवी शताब्दी के शुरू में आरम्भ हुए एकेश्वरवादी आन्दोलनों को समझना के लिए आवश्यक है। इन सामान्य सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिए बहुत ही सरल धारणा का जिक्र करना आवश्यक होगा कि धर्म के रूप में हिन्दू धर्म बहुत पहले ही शुरू हो गया था। भारतीय भाषाओं में हिन्दू शब्द का प्रयोग मध्ययुगीन अरबी, और फारसी से लिया गया है, जो सिंध के लिए प्राचीन फारसी शब्द (सिंधु) से निकला है, जहां से ग्रीक इण्डिया निकला है। एक ऐसे व्यक्ति को परिभाषित करने के लिए संस्कृत या देशीय भाषा में कोई शब्द नहीं है, जिसके धार्मिक विश्वास आज के हिन्दुओं जैसे हैं। उदाहरण के लिए 400 ईस्वी में एक ऐसे भारतीय के लिए जो बौद्ध या जैन नहीं है,

यदि संस्कृत या देशीय भाषाओं में कोई वैकल्पिक शब्द नहीं था तो इससे यह जाहिर होता है कि हिन्दू धर्म या हिन्दू की अवधारणा, प्राचीन काल पर लागू नहीं होती। जब अशोक धार्मिक व्यक्तियों का उल्लेख करता था तो वह उन्हें श्रमण व ब्राह्मण कहता था।

ब्राह्मण वाद जो विभिन्न मतों के ब्राह्मण, पुजारियों और दार्शानिकों के विविध विकारों का संगम है, भारतीय धार्मिक इतिहास का मूल तत्व था, यह बौद्ध धर्म व जैन धर्म, या पश्चिम के पारसी धर्म से बिल्कुल अलग था। लेकिन धर्म या आचरण के लिए नियमों को परिभाषित करने वाले कारक थे, वर्ण व्यवस्था और सामाजिक रीति–रिवाज व्यवहारिक दृष्टि से इनकी लपेट में सभी आ जाते थे, फिर चाहे वे ब्राह्मणों के अनुयायी और संरक्षक हों या बौद्ध अथवा जैन। इसमें से जो एक धर्म के रूप में हिन्दू धर्म की उत्पत्ति हुई वह मध्ययुगीन शताब्दियों में हुई एक प्रक्रिया थी हालांकि एक तरह से इसका अन्तिम रूप आधुनिक काल में बना या हुआ।

हिन्दू धर्म के अन्दर कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन वर्तमान सहस्त्राब्दि की प्रारंभिक शताब्दियों में हुए। हालांकि अलवरूनी (1030 ई.) ने ब्राह्मण विद्वानों तक पहुंच के जरियें बहुत सारा संस्कृत साहित्य पढ़ा था। परन्तु उसने भी वेदान्त शब्द के बरे में कोई जानकारी नहीं की है और न ही शंकराचार्य का कोई उल्लेख किया है। उसमे भागवत गीता जैसे धर्म ग्रन्थों को पढ़कर यह अनुमान लगाया कि भारत में एकेश्वरवाद था। इसी तरह भारतीय दर्शन में एकेश्वरवाद का पता भी उसने गीता से ही लगाया।

वह शंकराचार्य की विस्मृत व्यवस्था से बिलकुल अनभिज्ञ था, जिन्होंने माया के सिद्धान्त के जरिये एकेश्वरवाद को मूर्तियों और अनुष्ठानों में विश्वास से जोड़ने का यत्न/प्रयत्न किया, जो परस्पर विरोधी भाव लगते है। एक सुविज्ञ परिवेक्षक के अनुसार 17वीं सदी तक शंकराचार्य ने जो शब्द के मनिषियों में श्रेष्ठ थे, हिन्दूवाद पर तो नहीं, लेकिन वेदान्त पर अपनी मुहर लगा दी थी। (गोविन्द की सन् 1653 में मुकम्मिल हुई कृति दविस्तान–ए–मजाहिब)। काफी लम्बे अरसे तक यह माना जाता रहा था कि शंकराचार्य के विचारों का उनके अपने जीवन काल (800) में दूर–दूर तक फैले उनके मठों के माध्यम से तेजी से प्रचार हुआ था।

यदि 11 वीं सदी तक उनके विचार उत्तर भारत तक प्रभाव पूर्ण ढंग से नहीं पहुंचे थे तो जाहिर है कि उनका प्रचार काफी धीमी गति से हुआ होगा और उन्हें व्यापक स्वीकृति 17वीं सदी से कुछ समय पहले ही मिली होगी। वास्तव में उनके विचारों से प्रभावित ग्रन्थों की संख्या मध्य युग के उत्तरार्ध में ही बढ़ी। इनमें सदानन्द का वेदान्त सार (1500) काफी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें शंकराचार्य के वेदान्त का सांख्य दर्शन के साथ सामंजस्य बैठाने का प्रयास किया गया है। इससे एक प्रश्न पैदा होता है जो पहले ताराचन्द ने, कुछ अलग तरह से उठाया था। हालांकि यह सम्भव नहीं लगता कि शंकराचार्य के दर्शन पर इस्लाम का अप्रत्यक्ष प्रभाव भी पड़ा होगा फिर भी यह बहस की जा सकती है कि शंकराचार्य के दर्शन का जो व्यापक प्रचार हुआ, उसके पीछे एक छोटा सा कारण यह भी रहा होगा कि इस्लाम ने बहुईश्वरवाद के सामने एकेश्वरवाद की अवधारणा को चुनौती पूर्ण ढंग से खड़ा कर दिया होगा। ऐसी स्थिति में जो व्यवस्था दोनों वादों के सह अस्तित्व को सही ठहराती हो, वह बहुत प्रासंगिक बन सकती थी।

शंकराचार्य की वेदान्त की मीमांसा को 17वीं सदी से पहले सर्वोच्च स्थान नहीं मिला था, यह दिखाने के पीछे मेरा मन्तव्य शुरू में ही केवल यह बता देना है कि 15वीं और 16वीं सदी लोकप्रिय एकेश्वरवाद का स्रोत शंकराचार्य का दर्शन नहीं हो सकता, और इसका कोई प्रभाव इस वाद पर पड़ा हो यह भी सम्भव नहीं लगता।

## 6.4 इस्लामिक विचारधारा एवं भारतीय समाज

जहां तक इस्लाम की बात है, बहुत समय से उसके आधुनिक धर्म खण्डकों का एक बड़ा सरल सा विचार यह रहा है कि समान धर्म के बावजूद धर्म व्यवस्था और जातियों में बढ़े इस समाज में इस्लाम समानता की ताजी हवा लेकर आया था। यहां तक आर. सी. मजूमदार ने भी कहा है कि मुसलमानों के लोक तान्त्रिक विचार, जिनसे एक ही धर्म को मानने वालों में समानता की शानदार भावना पैदा हुई, हिन्दुओं की जाति व्यवस्था और छुआ–छात के बिल्कुल विपरीत थे। (हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल) परन्तु उस काल के धर्म विज्ञानियों और विद्वानों की पुस्तकों में ऐसी समानता के प्रति प्रतिबद्धता का कोई चिन्ह नजर नहीं आता। मिन्हाज़–सिराज़ जो स्वयं एक प्रख्यात धर्म विज्ञानी था, ने इस बात के महत्व पर बल दिया है कि शासक वर्ग में शूद्र वंश परम्परा के तुर्क हो या चुनिन्दा वंश के ताजिक हों। सौ साल बाद जिया बरनी ने, जो कट्टर पंथी और इस्लामी धर्म विज्ञान और इतिहास का बहुत बड़ा विद्वान था, ने अविचल श्रेणी विभाजन की मुखर और गैर–समझौतावादी व्याख्या की थी, जिसे दुर्भाग्य से पूरी तरह व्यवहार में उतारा नहीं जा सका था। इसीलिए यह उल्लेखनीय है कि जहां एक ओर हिन्दुओं को काफिर, बहु–ईश्वरवादी और मूर्तिपूजक कह कर उनकी निन्दा की जाती थी, वहीं दूसरी ओर मध्य युग के समूचे इस्लामी साहित्य में जाति प्रथा छुआ–छूत और अछूतों के दमन की कोई आलोचना नहीं की गई। जब कि ये सारी बुराईयां मध्य युगीन हिन्दू धर्म में मौजूद थीं।

सौलहवीं शताब्दी में अब्दुल कादिर बदायूंनी ने धर्म विज्ञान पर अपने एक लेख में मुसलमानों के सामाजिक नैतिक शास्त्र को अन्यों से श्रेष्ठ नहीं बताया, बल्कि यह स्वीकार किया गया है कि मुसलमानों में और भी बुराईयां थी, जिसमें स्वतन्त्र लोगों को गुलाम बनाकर बेच देना भी शामिल था। हालांकि वह यह भी दावा करता है कि उसके समय में यह प्रथा काफी कम हो गई थी। वास्तव में इस्लामी कानून में पूर्ण गुलामी को जो स्वीकृति थी उसके चलते, इस्लाम में समानता की जो बात की जाती है, उसमें भारी संशोधन करना होगा।

परन्तु इस्लामी कानून और व्यवहार में मान्य सामाजिक असमानता में और भारतीय प्रथा में एक अन्तर था। हालांकि दोनों में अलग–अलग सीमा तक निचले से ऊँचे वर्ग में जाना प्रतिबन्धित था, परन्तु उल्लेखनीय यह है कि जाति प्रथा ने एक ही वर्ग में भिन्न–भिन्न शिल्पों या व्यवसायों में परस्पर आवागमन को बाधित किया जाता था, जबकि इस्लामी समाज में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था। सम्भव है कि इस तुलनात्मक लचीलेपन का कुछ प्रभाव खलीफाओं और उसके बाद के शासकों पर पड़ा हो तथा इसने उनकी अर्थव्यवस्था को उनकी तकनीकी परिवर्तनों के लिए खोल दिया गया हो, जिन्हें हस्तशिल्प के दायरे में लाना संभव रहा होगा। इसके अलावा

इस्लाम में गुलामी प्रथा को जोड़कर श्रेणी बद्धता मुख्य रूप से धन एवं राजनैतिक सत्ता सम्पन्न होने पर निर्भर थी। स्वराज और जन्म की भूमिका मुख्यत: विरासत का आधार होने पर की थी। स्वराज और एकताओं की संस्थाओं यानि कर शुल्क और राजस्व के अस्थाई प्रबन्धों के कारण राज्यतंत्र की इच्छा पर निर्भरता बढ़ी, जबकि शायद प्राचीन काल में भारतीय सामंतवाद के ढ़ाचे में ऐसा नहीं था। जहां सामन्त वंश परम्परा से बनते चलते आते थे।

इसीलिए दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही कुछ सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए। चूंकि जाति प्रथा के कारण निचली और पिछड़ी हुई जातियों की जीविका पर होने वाले खर्च और उनकी आय को कम कर दिया जाता था और इससे राजस्व में वृद्धि होती थी, इसीलिए यह किसी भी शासक के हित में नहीं था कि वह जाति प्रथा को समाप्त करने का बीड़ा उठाता। फिर चाहे वह शासक किसी भी धर्म का हो। सिन्ध में अरब शासकों ने मोहम्मद बिन कासिम (713–14) के समय में ही सिंध के ग्रामीण जाटों पर वे सब निर्योग्यताऐं, और असमानजनक व्यवस्थाऐं लादी जो उनसे पहले ब्राह्राण शासकों ने लाद रखी थी। (चाचनामा–उमर बिन मुहम्मद दाददपोत द्वारा सम्पादित) प्रोफेसर मोहम्मद हवीब का विचार है कि गौरी के हमलों ने एक तरह से निम्न जाति के दस्तकारों को मुक्ति दिलाई थी, परन्तु ऐसा कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता कि जाति पर आधारित पुराने नियमों को नये शासकों ने जानबूझकर उखाड़ फेंका हो। वास्तव में अलाउद्दीनन खिलजी (1296–1316) में ग्रामीण निम्न वर्ग बालाहार से उसकी छोटी–सी, जो योग्य भूमि पर शुल्क में दी गई रियायतें, तक वापस ले ली थी। (बरनी पूर्वाद्धता) इसमें साफ जाहिर है कि निचली जातियों को न केवल अपनी औकात में रहने के लिए विवश किया जाता था, बल्कि वे अपने जीवन निर्वाह के लिए सदा से मिलती आई रियायतों की मांग भी अब नहीं कर सकती थी।

## 6.5 नवीन सामाजिक वर्गों का उदय

परन्तु जाति प्रथा में संरक्षण के साथ ही मुसलमान समुदाय के विचारों की प्रतिक्रिया भी जारी थी और इन समुदायों में मुस्लिम जाति श्रेणी बद्धता का आधार नहीं हो सकती थी। प्रारम्भ में मुस्लिम आबादी अप्रवासियों के जाने से बढ़ी और इनमें मध्य एशिया और ईरान से आने वाले लोग ही नहीं थे, बल्कि सिंध और पंजाब से जाने वाले लोग भी थे। पंजाब से हिन्दुओं के सम्पन्न और महत्वपूर्ण मुल्तानी समुदाय के लोग भी आये। मुस्लिम देश से आने वाले अधिकतर अप्रवासियों की जाति पर आधारित पृष्ठ भूमि नहीं थी। इसके अलावा गुलाम बना दिये बन्दी भी बहुत बड़ी संख्या में थे। जिनका संवर्धन 13वीं और 14वीं सदी में होने वाली एक सतत् परिक्रिया थी। अपनी मूल जातियों और स्थानों से कटे इन गुलामों से मजदूरों, शिल्पकारों और घरेलू नौकरों का काम लिया जाने लगा, गुलाम बना दिये जाने के साथ ही उन्हें मुसलमान बना दिया या बना लिया गया था। बाद में उन्हें आजाद कर दिया गया था। मुसलमानों में उनकी महत्वपूर्ण संख्या रही होगी। जब उन्हें शुरू में गुलाम बनाया गया था, तब उन्हें जाति से भी मुक्ति मिल गई थी। जैसा कि बदायूंनी ने सोलहवीं सदी के अन्त में लिखा था, तब गुलामों का व्यापार उतार पर था। इस उतार का और मुगल साम्राज्य में गुलाम प्रथा की महत्वहीन स्थिति का कारण यह भी हो सकता है कि जब बड़ी संख्या में स्वतन्त्र कारीगर

मिलने लगे ओर उन शिल्पों और दस्तकारों/दस्तकारियों को अपनाने लगे जो या तो पहले थी ही नहीं, या अधिक प्रयोग में नहीं थी, सो गुलामों से काम लेना पहले जैसा लाभदायक नहीं रहा होगा। अप्रवासियों और गुलामों की इस जाति प्रथा से मुक्त मुस्लिम आबादी में फिर स्वेच्छा से धर्म परिवर्तन करने वाले भी आ मिले होंगे। संभवत: वे ऐसे समुदाय के रूप में आये होंगे, जिनके नेताओं ने धर्म ग्रहण कर लिया होगा। दुर्भाग्य से यह सारी प्रक्रिया अब भी अस्पष्ट है और बाद के बड़े गुटों या समुदाय के धर्म परिवर्तन की परंपरा (या काल्पनिक संयुक्त उत्प्रवास) को हम अपने अनुमान के पक्ष में विश्वसनीय प्रमाण नहीं मान सकते। यदि सामूहिक धर्म परिवर्तन हुए भी होंगे, तब भी जाति प्रथा और बन्धन बने रहे होंगे, जब तक कि कुछ समय बाद शरियत के प्रसार से उपजे दबाव ने इन प्रथाओं को कमजोर करना शुरू नहीं कर दिया होगा। यह तर्क भी दिया जा सकता है कि सन् 1500 ई. के आस–पास कबीर एक ऐसी ही जुलाहा जाति के रहे होंगे। जो उस समय परिवर्तन दौर से गुजर रहे हों। मस्लन उनका स्वयं को निरपेक्ष भाव से कोली या जुलाहा कहना इसका प्रमाण हो सकता है। (देखिये हजारी प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक कबीर)

## 6.6 कबीर का काल

कबीर को 16वीं सदी में सूफी या बैरागी, मुसलमान या हिन्दू के रूप में नहीं, बल्कि मुख्य रूप से एकेश्वरवादी (मुवाहिद) के रूप में मान्यता मिली थी। यह उस वार्तालाप का अभिप्राय है, जो अब्दुल हक के अनुसार, उनके बाबा और पिता के बीच सन् ई. 1522 में हुआ था। अब्दुल कादिर में कबीर के बारे में 1595 ई. में दो चर्चित उल्लेख दिये थे।

उनकी वाणी से बहुत से सत्य और उनके कार्यों की जानकारी, लोगों के बीच घूमती रहती है। उनका रास्ता खुला है और उनकी दृष्टि ऊँची है। वह हिन्दू और मुसलमानों से दोनों से प्यार करते थे। जब उन्होंने अपनी नश्वर देह त्यागी तो ब्राह्मण उसके पार्थिव शरीर को जलाने के लिए ले जाने आये और मुसलमान उसे कब्र ग्रह ले जाना चाहते थे।

## 6.7 कबीर के उपदेश (शिक्षाऐं)

उनके उपदेशों का एक प्रारम्भिक सार नाभाजी कृत भक्त माल (16वीं सदी) में मिलता है।

संत कबीर ने वर्णाश्रम और छह (ब्राह्मण) को मानने से इन्कार कर दिया था। उनका कहना था कि भक्ति बिना धर्म अर्धम है। योग, उपवास, और दान, बिना प्रेम (भजन) के व्यर्थ है।

रैमनी, शब्द और साखियों के जरिये, उन्होंने हिन्दू और मुसलमान (तुर्की) दोनों को उपदेश दिये। वे किसी के साथ पक्षपात नहीं करते थे। और सबके भले के लिए उपदेश देते थे। वे अपनी बात निडर होकर कहते थे, और दुनिया को खुश करने के लिए कुछ कहने की कोशिश उन्होंने कभी नहीं की।

संत कबीर के उपदेशों के बारे में यह सब उन लोगों ने कहा है जिनकी पहुंच उनकी मृत्यु के सौ साल के भीतर उनके काव्य तक थी। लगभग समकालीन और बहुत सही इन

व्याख्याओं के पक्ष में कबीर काव्य से उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु इन आन्दोलनों के जरिये संत कबीर के विचारों का स्रोत किसी एक परंपरा में नहीं खोजा जा सकता। फिर भी कबीर के पूर्ववर्ती चिंतकों को खोजने के बहुत प्रयास हुए है। एक लोक प्रिय पूर्ववर्ती संत थे नामदेव जो महाराष्ट्र में कपड़ों की रंगाई और छपाई का काम करते थे। उनके दोहों को गुरू ग्रन्थ साहब में लिया गया है।

वे 16वीं सदी की परम्परा के एकेश्वरवादी थे और उनका चिंतन बहुत कुछ कबीर से मिलता–जुलता है। इससे यह जाहिर होता है कि कबीर का दर्शन उनका अपना था। 17वीं सदी में पहले यह कहानी सुनाई जाती थी कि संत कबीर रामानन्द जी के शिष्य थे, जिनके कारण दबिस्तान–ए–मजाहिब के लेखक ने उन्हें वैष्णव बैरागी माना है। वैष्णव मत की ओर उनका झुकाव था। यह मानने का एकमात्र कारण यह है कि उन्होंने ईश्वर को राम वंश माना है। परन्तु उनके काव्य में राम के परिवार या वैष्णव देवताओं का कोई उल्लेख नहीं मिलता। कबीर के राम की प्रतिभा से उतनी ही निकटता है जितनी मुसलमानों के अल्लाह की मक्का के खुदा से है। कबीर को शैवनाथ योगी परंपरा धारा या उसकी पुनर्स्थापना से जोड़ने की प्रवृत्ति, जिस पर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी बहुत जोर दिया है। हाल ही में बनी है। जहां कबीर ने अपने विचारों और तब लोक प्रिय योग परंपरा से लिये गये जिन शब्दों का जो इस्तेमाल उन्होंने किया, उसके बीच अन्तर करना बहुत जरूरी है। ये शब्द और उनके और उनका उपदेश सुनने वालों के लिए जाने–पहचाने शब्द थे। उनके अपने विचारों में योग या तंत्र का तत्व दिखाई नहीं पड़ता, सिवाये इसके कि कबीर ने ब्राह्मणों को अस्वीकार किया। दूसरी और योगियों द्वारा दिये गये दावों की कबीर ने रोषपूर्ण अवहेलना की है। इस पर और अधिक चर्चा करना यहा आवश्यक नही है– क्योंकि वाइबिले ने इस पर काफी काम किया है। (कबीर आक्सफोर्ड 1974) हमें इस अनुमान पर भी चर्चा करने की जरूरत नहीं है कि शंकराचार्य के वेदान्त का कोई प्रभाव पड़ा था क्योंकि जैसा कि हम देख चुके है, तब तक संभवत: उसे लोक प्रियता नहीं मिली थी। कबीर के काव्य पर भी इसकी कोई छाया दिखाई नहीं देती। वहां माया के छलावे के स्थान पर पहले की तरह लालसा माना गया है।

वास्तव में कबीर ऐसे एकेश्वरवाद की स्थापना करते हैं जिसमें ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण तो है परन्तु सारे धार्मिक अनुष्ठानों को नकारा गया है।

कबीर के लिए ईश्वर से एकाकार होने का अर्थ मनुष्यों का एक होना है और इसलिए वहां शुद्धता और छुआ–छात की प्रथा को पूर्ण रूप से स्पष्ट शब्दों में नकारा गया है। तथा सब तरह के अनुष्ठानों को अस्वीकार किया गया है। कबीर के काव्य में ही नहीं, बल्कि उनसे जुड़ी किवदन्तियों में भी छुआ–छात के विरोध का स्थायी भाव मौजूद है।

कबीर की विचार धारा के विभिन्न संदर्भों और स्रोतों का पता लगाना महत्वपूर्ण है। उतना ही जरूरी यह देखना भी है कि उनका व्यवहार पुरानी सभ्यता में मौजूद असमानताओं को नकारता है और उसमें केवल उसके विभिन्न तत्वों का समावेश नहीं है।

आज कबीर हिन्दू के लिए वैष्णव, मुस्लिम के लिए पीर, सिख के लिए भगत माने जाने लगे, जबकि कट्टरपंथी कबीर पंथी के लिए भगवान के अवतार हो गये है। अत: यह आवश्यक है कि कबीरपंथी सम्प्रदाय का ऐतिहासिक विवेचन किया जाये।

## 6.8 कबीर पंथ

यद्यपि कबीर का उद्देश्य किसी नये पंथ की नींव डालना नहीं था अपितु उनका प्रधान उपदेश प्रचलित धर्मों के अनुयायियों की विधि विडम्बनाओं की आलोचना करके उनका ध्यान मूल प्रश्न की ओर आकृष्ट करना था। जिससे उन्हें अपनी भूल का ज्ञान हो सके, इसी कारण कबीर साहब के जीवन काल तक किसी भी पंथ अथवा सम्प्रदाय का उदय नहीं हुआ और न ही ऐसे संगठन की स्थापना के प्रति रूचि उत्पन्न हुई। उनके स्वयं नाम पर प्रचलित किये गये कबीर पंथ अथवा उनके प्रमुख शिष्यों की ओर से स्थापित समझे जाने वाले एवं उनकी विभिन्न शाखाओं तक का आरंभ उनकी मृत्यु के पश्चात हुआ। कबीर की मृत्यु के पश्चात् कबीर पंथ के नाम से अनेक संस्थायें चल पड़ी और उनके मठ भी स्थापित होने लगे। कबीर पंथ में अनेक शाखाओं का विवरण मिलता है। कतिपय शाखायें उद्भव काल से ही स्वतंत्र थी। और कुछ शाखायें उन स्वतंत्र शाखाओं से संबद्ध थी। इनमें से कुछ ने कालान्तर में अपना सम्बन्ध–विच्छेद कर अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। कुछ ऐसी शाखायें भी थी जिनका सम्बन्ध कबीर पंथ से नहीं था। परन्तु वे कबीर की शिक्षाओं से प्रभावित थीं।

कबीर पंथ की सबसे प्रमुख शाखा उत्तर प्रदेश में काशी की कबीर चौरा शाखा है। कबीर पंथ के धर्मावलम्बियों की यह धारणा है कि कबीर चौरा वाली शाखा अन्य समस्त शाखाओं से पुरानी है। इस शाखा के प्रवर्तक सूरत गोपाल माने जाते हैं। विशप रे. वेस्टकाट ने काशी की कबीर चौरा शाखा के गुरूओं की तालिका दी है जिसमें सूरत गोपाल को चौथे स्थान पर रखा है। परन्तु गुरू महात्म्य के अनुसार कबीर के अनन्तर पहले आचार्य सूरत गोपाल ही थे। वेस्टकाट की विचार धारा जनश्रुति पर आधारित है। न अत: उनकी धारणा सत्य से काफी दूर है। पंथ में प्रचलित मान्यता के आधार पर सूरत गोपाल ही कबीर चौरा के प्रथम आचार्य हैं।

कबीर चौरा के दो भाग हैं। प्रथम नीरू टोला कहा जाता है। जहां नीरू और नीमा का घर था। दूसरा कबीर चौरा जहां एक मन्दिर बना हुआ है। यहां कबीर साहब बैठकर उपदेश देते थे। नीरू टोला के पूरब में एक धर्मशाला है। जो कबीर महाविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है। मठ की व्यवस्था के लिये दीवान, अधिकारी, कोषाध्यक्ष, भण्डारी और पुजारी इत्यादि रहते हैं जिनकी सहायता से प्रधान महंत मठ की व्यवस्था करता है। इस मठ के तत्वाधान में एक मेला भी लगता है। इस अवसर पर कबीर पंथ में नये व्यक्ति सम्मिलित भी किये जाते हैं। कबीर पंथ की कबीर चौरा शाखा काशी की प्रसिद्ध उपशाखाओं में लहरतारा, मगहर, तथा कबीर बाग की गणना होती है। लहरतारा कबीर चौरा काशी से दो मील उत्तर पश्चिम की ओर स्थित है। अनुश्रुति के अनुसार वहीं कबीर साहब नीरू और नीमा को प्राप्त हुए थे। वहां की व्यवस्था कबीर चौरा काशी की देख–रेख में होती थी। इस स्थान पर अब केवल एक पुजारी ही रहता है।

मगहर गोरखपुर से 16 मील पश्चिम की तरफ आमी नदी के तट पर बसा हुआ है। आमी नदी के पश्चिमी किनारे पर कबीर पंथ के दो मठ है। एक तो मुस्लिम कबीर पंथी मठ दूसरे को हिन्दू कबीर पंथी मठ कहा जाता है। दोनों मठों के बीच में एक ऊँची दीवार खड़ी कर

दी गयी है। कहा जाता है कि पहले हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही समाधि पर फूल माला चढ़ाते थे। परन्तु संघर्ष हो जाने के कारण हिन्दू कबीर पंथियों ने अपने लिये अलग कबीर पंथ का निर्माण कर लिया।

मुस्लिम कबीर पंथी मठ में कबीर की समाधि पर एक रोजा (मजार) बनवाया गया है। रौजे के भीतरी भाग में एक छोटा कमरा है। जिसमें कबीर साहब की समाधि पर पड़े हुए फूल धूप इत्यादि संचित करके रखी जाती है। कबीर की समाधि के बगल में कमाल की समाधि है। यहां के मुस्लिम पुजारियों की कोई सूची नहीं मिलती है। इस मठ के लिये मध्यकाल में मुसलमान राजाओं द्वारा बलुआ में भूमि दी गयी थी, जिसकी आय से मठ का संचालन किया जाता है।

हिन्दू कबीर पंथी मठ विशाल रूप से दिखलाई पड़ता है। इस मठ के आंगन में एक पक्का कुआं है। कुएं के पास ही कबीर की समाधि है। इस मठ का नवीनीकरण आचार्य गुरू प्रसाद साहब ने ई. 1898 में किया था। ई. 1953 में सेवक दास जी बघेला ने मन्दिर का जीर्णोद्धार किया। इस मठ को भी करमुआ में जमीन दी गयी थी। जो आज भी मठ की प्रधान सम्पत्ति मानी जाती है। 1933 में अंग्रेज कमिश्नर आर.सी. ए. एस. होर्वा द्वारा मेले का आयोजन किया गया था।

यह मठ पूर्ण रूप से कबीर चौरा काशी के अधीन है। यहां के लिये वहीं से पुजारी नियुक्त किया जाता है। यह प्रथा बहुत पुरानी है। इस मठ के बगल में एक अन्य कबीर पंथ का मठ है। यहां एक भूमिधरा बनाया गया है और यह विश्वास किया जाता है कि कबीर दास वही ध्यानस्थ होते थे। यहां पर विशाल मेले का आयोजन किया जाता है। कबीर चौरा शाखा काशी की "कबीर बाग" वाली उपशाखा में राम रहस दास निवास करते थे। इनका पूर्व नाम रामरम छिटेया था इनका जन्म सन्. 1782 में टेकरी नामक गांव में हुआ था। सन्. 1866 में इनकी मृत्यु हुई थी इसके अतिरिक्त वाराणसी से लगभग 60 कि. मी. दूरी पर पश्चिम की तरफ वरूणा नदी के किनारे पर जौनपुर जनपद के अन्तर्गत बडैया गद्दी स्थित है। यह स्वतंत्र गद्दी के नाम से प्रसिद्ध है। इस शाखा के आचार्य मदन साहब माने जाते हैं। इनका जन्म जौनपुर से आठ कि. मी. दूरी पर खरौना नामक गांव में कायस्थ परिवार में हुआ था। कबीर पंथ में ये उच्चकोटि के भक्त एवं जिज्ञासु के रूप में प्रसिद्ध हैं। नाम प्रकाश नामक ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है। आचार्य दुलभपति साहब विवेकपति साहब और गुरूशरण पति साहब की समाधियां बडैया में हैं।

झूंसी में भी कबीर साहब का आगमन हुआ था। झूंसी में शैखतकी सुहर्वीदया सम्प्रदाय के प्रसिद्ध सन्त थे। रे. वेस्ट काट ने तो इन्हें कबीर का गुरू बतलाया है। परन्तु झूंसी में कबीर नाला का उदाहरण मिलता है। कबीर दास भ्रमण करने के उद्देश्य से झूंसी आये थे। यहां पर माघ मेला या गंगा नदी में स्नान करने आये हुये यात्रियों को उपदेश देकर शिष्यता ग्रहण कराना एवं अपने विचारों से जनता को अवगत कराना चाहते थे। विशाल जन समुदाय के बीच में उपदेश देते थे।

कड़ा मानिक पुर में भी शेख तकी का निवास था। इस संबंध में यह कहा जाता है। ये चिश्तिया सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अतः कबीर के समकालीन नहीं थे। परन्तु समकालीन

पुस्तकों में स्पष्ट विवरण नहीं मिलता है। रमैनी 63, में विवरण दिया गया है कि ये कबीर के समकालीन थे।

कबीर दास अपने उपदेशों के माध्यम से अपने विचारों को हिन्दुस्तानी जनता के समक्ष रखने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्य प्रेदश, उड़ीसा, गंगटोक, अहमदाबाद इत्यादि प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया। क्योंकि मगहर, रसनपुर, जगन्नाथपुरी में कबीर की कब्र बनी हुई है। इससे यह सिद्ध होता है कि इन्होंने देश के प्रत्येक क्षेत्र की यात्रा की थी। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने अपनी पुस्तक कबीर की विचारधारा में "हज करने का विवरण दिया है। परन्तु तर्क संगत नहीं मालूम पड़ता है। समाज में घोर असन्तोष का वातावरण देखकर बहुत से लोगों ने कबीर की विचारधारा से प्रभावित होकर उनकी शिष्यता ग्रहण की। परन्तु यह कहना कठिन है कि कबीर द्वारा विधिवत शिष्य बनाया जाता था या नहीं।" दादू पंथी राघव दास ने नव व्यक्तियों को कबीर का शिष्य स्वीकार किया है जो प्रमुख है।

कमाल, कमाली, पद्मनाम, रामकृपाल, नीरधीर ज्ञानी धर्मदास और हरदास। तत्वा और जोवा को भी कबीर का शिष्य बताया गया है। कबीर पंथ की साम्प्रदायिक मान्यतानुसार बीरसिंह, नवाब बिजलोखां, सुरतगोपाल, धर्मदास, तत्वा, जीवा, जगूदास, भगूदास, ज्ञानजी, मलूकदास, गरीब दास इत्यादि कबीर के प्रमुख शिष्य थे। इनके अतिरिक्त शिवनारायण, रतन बाई, नानक, कमला नन्द, नित्यानन्द, रामदेव, साहब दास, भुवनाचार्य, निजानन्द, अखण्डानन्द, गुरूवास शीलनीधि, मलूकदास, सरोवरदास, आदि व्यक्तियों को कबीर का शिष्य कहा जाता है।

उत्तर प्रदेश में कबीर पंथ का प्रचार कार्य अधिक सफल न रहा। सन् 1891 की जनगणना के आधार पर उत्तर प्रदेश में कबीर पंथियों की संख्या 955 थी। उत्तर प्रदेश में, सहारनपुर, हरिद्वार, चुर्जा, कानपुर, झांसी, फरूखाबाद, बुलन्दशहर, आगरा, अलीगढ़, गाजीपुर में मठ पाये जाते है। उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में एवं विदेशों में जैसे त्रिनीडाड, मोरिसस, डेमरारा फिजी, लंका, बर्मा, भूटान, नेपाल आदि में कबीर पंथ का विस्तार हुआ। सन् 1901 की जनगणना के अनुसार 8,50,000 कबीर पंथी देश में पाये गये।

1891 ई. की जनगणना के आधार पर उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में कबीर पंथियों की संख्या निम्न थी –

| जनगणना का वर्ष | जिलों का नाम | कबीर पंथियों की संख्या | योग |
|---|---|---|---|
| 1891 | देहरादून | 34 | 34 |
| | मुजफ्फर नगर | 6 | 6 |
| | बुलन्दशहर | 258 | 258 |
| | अलीगढ़ | 114 | 114 |
| | आगरा | 8 | 8 |
| | फरुखाबाद | 2 | 2 |
| | बरेली | 15 | 15 |
| | बिजनौर | 2 | 2 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | मुरादाबाद | 36 | 36 |
| | शाहजहांपुर | 57 | 57 |
| | पीलीभीत | 72 | 72 |
| | कानपुर | 18 | 18 |
| | फतेहपुर | 9 | 9 |
| | हमीरपुर | 8 | 8 |
| | इलाहाबाद | 12 | 12 |
| | झांसी | 8 | 8 |
| | जालौनपुर | 3 | 3 |
| | गाजीपुर | 209 | 209 |
| | गोरखपुर | 40 | 40 |
| | बस्ती | 8 | 8 |
| | तराई | 4 | 4 |
| | लखनऊ | 16 | 16 |
| | फैजाबाद | 16 | 16 |
| 1891 | 23 | 955 | 955 |

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि कबीर पंथी और उसकी शाखायें उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में फैली हुई थी और उनका प्रभाव क्षेत्र भी व्यापक था। समाज के किस वर्ग पर इन कबीर पंथियों का प्रभाव विशेष रूप से अधिक था के सम्बन्ध में यद्यपि तथ्य नहीं मिलते हैं, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर पंथियों का प्रभाव श्रमिक–शिल्पकार वर्ग पर अधिक रहा होगा। क्योंकि इसी वर्ग में नव मुसलमान तथा हिन्दू मुस्लिम समाज की जटिलता, जाति–पॉति, भेदभाव, छुआछूत तथा रूढ़िवादी परम्परायें एवं संस्कारों से अपने को मुक्त रखना चाहता था। इस वातावरण से मुक्त होने का उसके सम्मुख एक ही मार्ग था वह यह कि वह कबीर के विचारों एवं वाणियों से अनुभूति ग्रहण करते हुये तथा उनसे प्रेरणा प्राप्त करते हुए अपने कार्यों में रत रहे। इस प्रकार जिस किसी शहर में श्रमिक–शिल्पकार वर्ग विद्यमान था। वहीं कबीर के अनुयायियों की संख्या बढ़ी व कबीर वाद का प्रचार अधिक हुआ। दूसरे उस युग में अधिकांश खेतिहर भी निम्न वर्ग के थे। उन पर भी कबीर की विचारधारा का प्रभाव पड़ा। कबीर की विचार धारा उनके लिए सरल एवं उनकी मनोवृत्ति के अनुकूल थी। संक्षेप में कबीर एवं उनके अनुयायियों द्वारा चलाया आन्दोलन इस प्रदेश में नितान्त सफल रहा।

## 6.10 संदर्भ ग्रन्थ


1. Yusuf Hussain : The influence of Islam on the culture of Bhakti in Medieval India
2. G.H. Wast Cott. : Kabir and Kabir Panth
3. Tara Chand : Influence of Islam on Indian Culture.

4. E.F. Keay : Kabir and his followers
5. Sushmita Pandey : Bhakti movement
6. B.N. Lunia : Life and Culture in Medieval India.

# इकाई – 7

# I— नानक एवं उनकी शिक्षाएं खालसा पंथ : उत्पत्ति, विकास, सिद्धांत व दर्शन

**इकाई की रूपरेखा**


7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 गुरूनानक का जीवन वृत

7.3 गुरूनानक का उपदेश

7.4 खालसा पंथ का विकास

7.4.1 गुरू अंगद (1539–1552)

7.4.2 गुरू अमरदास (1552–1574)

7.4.3 गुरू रामदास (1574–1581)

7.4.4 गुरू अर्जुन (1581–1606)

7.4.5 गुरू हरगोविन्द (1606–1645)

7.4.6 गुरू तेग बहादुर (1664–1675)

7.4.7 गुरू गोविन्द सिंह (1675–1708)

7.5 खालसा पंथ का निर्माण

7.6 सिद्धान्त दर्शन अथवा खालसा पंथ की विशेषताऐं

7.7 मुख्य शब्द

7.8 संदर्भ ग्रन्थ


## 7.0 उद्देश्य

इस पाठ में ' पंजाब' शब्द की विवेचना की गई है एवं नानक के समय की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त इस पाठ में गुरूनानक की शिक्षाऐं तथा खालसा पंथ की उत्पत्ति का वर्णन है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित विषयों को समझ सकेंगे :

1. गुरूनानक का जीवन
2. उनकी शिक्षाऐं
3. खालसा पंथ का विकास निम्न गुरूओं के मार्गदर्शन में –
   (i) गुरू अंगद (1539–1552)
   (ii) गुरू अमरदास (1552–1574)
   (iii) गुरू रामदास (1574–1581)
   (iv) गुरू अर्जुन (1581–1606)

(v) गुरू हरगोविन्द (1606–1645)

(vi) गुरू हर राय (1645–1661)

(vii) गुरू हर कृष्ण (1661–1664)

(viii) गुरू तेग बहादुर (1664–1675)

(ix) गुरू गोविन्द सिंह (1675–17०8)

4. खालसा का निर्माण
5. खालसा पंथ के विचार की चर्मोवस्था
6. खालसा पंथ के सिद्धान्त और दर्शन या उसकी मुख्य विशेषताऐं।

## 7.1 प्रस्तावना

दो फारसी शब्दों से पंजाब शब्द बना है। ' पंज' और 'आब' अर्थात् 'पाँच' और 'आब' का अर्थ तो पानी या नदी से है। अत: इस विशाल भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिम के क्षेत्र को पंजाब के नाम से जाना जाता है। यहां बहने वाली पाँच नदियों के नाम हैं – (1) सतलुज (2) व्यास (3) रावि (4) चेनाब (5) झेलम। वैदिक काल में यह भू–भाग ' सप्तसिंधू' के नाम से जाना जाता था। दूसरे शब्दों में कहें तो यह सात नदियों का मुल्क है, क्योंकि पाँच नदियों के अतिरिक्त यहां दो नदियाँ और भी थी – सरस्वती तथा सिंधू।

**राजनीतिक व्यवस्था :**

सोलहवीं सदी के आरम्भ में पंजाब तीन शक्तियों के संघर्ष का अखाड़ा बन गया था। ये तीन शक्तियाँ थी – (1) मुगल (2) दिल्ली का सुलतान, इब्राहिम लोदी (3) पंजाब के अफगान सामन्त। इस त्रिकोणीय संघर्ष में विजय श्री मुगलों को प्राप्त हुई। बाबर ने न केवल पंजाब के पठान (अफगान) सामन्तों को ही हराया बल्कि उसने तो भारत में मुगल साम्राज्य की नींव तक डाली। साम्राज्य निर्माण हेतु उसने पानीपत के प्रसिद्ध युद्ध (1526) में इब्राहिम लोदी को हराया। संघर्ष, विद्रोह और युद्ध काल में पंजाब को बहुत नुकसान उठाना पड़ा। गुरूनानक उस समय पंजाब में मौजूद थे। उन्हें अपने देशवासियों का यह कष्ट देखकर अत्यन्त दुख हुआ। नानक ने अपने एक काव्य प्रसंग में सईदपुर की एक दुखान्तिका का वर्णन किया –

> "भारत को दुल्हन बनाने के घृणित इरादे से ही बाबर बारात बनाकर काबुल से भारत की ओर बढ़ा था। बाबर भारत की भूमि को जबरदस्ती प्राप्त करना चाहता था। शराफत और धर्म गायब हो चुका था। तथा चारों तरफ झूठ का आलम छा गया था। लोग मौत के ताण्डव के गीत गा रहे थे। अपनी मौत की सम्भावनाओं को निश्चित जानकर वहां के निवासियों ने अपने आप को शहीदी के केसरिया रंग से लीप लिया था।"

हिन्दुस्तान को जीतने के लिए बाबर ने पाँच बार हमले किये। सन् 1519 से 1526 की सम्पूर्ण अवधि में पंजाब के लोग बाबर की लूट खसोट तथा खून–खच्चर के शिकार रहे। किसी भी वर्ग की सम्पत्ति तथा जीवन सुरक्षित नहीं था। पंजाब में आक्रमणकारियों के हाथों बहुसंख्यकों की मौत का दृश्य दिखाई दे रहा था।

**सामाजिक व्यवस्था :**

सोलहवीं सदी के आरम्भ में पंजाब की हालत किसी प्रकार से भी अच्छी नहीं थी। समाज दो मुख्य भागों में विभाजित था हिन्दू और मुसलमान। हिन्दू लोग 'जिम्मी' के नाम से जाने जाते थे। उनसे एक विशेष कर जजिया वसूल किया जाता था, उन्हें इस्लाम में परिवर्तित करने के हर सम्भव प्रयास किये जाते थे। सिकन्दर लोदी (1488–1517) दिल्ली का सुलतान बना तो उसने हिन्दुओं पर और भी अधिक प्रतिबन्ध लाग किए।

मुस्लिम समाज तीन उपखण्डों में विभाजित था – (1) उच्च वर्ग (2) निम्न मध्यम वर्ग तथा (3) गुलाम। प्रथम खण्ड वाले तो विशेष सुविधा प्राप्त मुस्लिम थे। दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत कनिष्ठ अधिकारी, सिपाही तथा उद्यमी और व्यापारी थे। तीसरी श्रेणी के अंतर्गत बहुत बड़ी संख्या में गुलाम आते थे। मगर गुलामों की स्थिति कुछ ओर किस्म की थी। जो एक दफा गुलाम बन गया वह हमेशा के लिए गुलाम नहीं रहता था। वह शासकों की अनुकम्पा तथा कठोर परिश्रम से उच्च पदों को भी प्राप्त कर सकता था।

उन दिनों आम जनता के लोगों में हिन्दू लोग आते थे। ये लोग बहुत कठिनाई में थे। उनका जीवन स्तर गरीबी से परिपूर्ण था। सामाजिक दृष्टि से वे अनेक जातियों और उपजातियों में विभाजित थे। ब्राह्मण दूसरी सब हिन्दू जातियों का शोषण करते थे। ब्राह्मण हर अवसर पर हिन्दुओं को गुमराह करते थे और उनसे पैसा छीनते थे। उन्होंने हिन्दू समाज व धर्म की गरिमा को कुछ रीति–रिवाजों में बदल रखा था जिसका आधार अंधविश्वास था। उन्होंने छुआछूत के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था।

इस शोचनीय अवस्था पर गुरू नानक ने समीक्षात्मक टिप्पणी की है –

"धर्म के तो पर लग गए है ओर वह उड़ गया है। झूठ और अंधकार सर्वत्र व्याप्त है और सच्चाई का चन्द्रमा कहीं पर भी दिखाई नहीं देता है।"

इन्द्र भूषण बनर्जी का कथन है – "हिन्दू और मुसलमान लड़ते थे। ब्राह्मण और मुल्ला लोगों को गुमराह करते थे। राजनीतिक तथा सामाजिक असमानता सर्वत्र व्याप्त थी तथा हर जगह झगड़े और आपसी झगड़े ही दिखाई देते थे। जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र में से कोई भी क्यों न हो एक वही नजारा नजर आता था।"

स्त्रियों की अवस्था तो और भी अधिक अधम थी। वह प्राय: परदे में ही रहती थी। सती प्रथा एक दूसरी बुराई थी जो उस समय प्रचलित थी।

**धार्मिक अवस्था :**

हिन्दू धर्म की अच्छाइयों का स्तर गिर चुका था, अंधविश्वास और बुद्धिहीन धारणाओं ने हिन्दुओं को सत्य से वंचित कर दिया था। गोकुल चंद नारंग ने ठीक ही कहा, "अर्थहीन धार्मिक रिवाजों, आधारहीन धार्मिक विश्वासों, पुजारियों की स्वार्थपूर्ण भावनाओं और जनता में व्याप्त भेदभाव के विचारों ने तो धर्म के मुख्य स्रोत को ही अवरूद्ध कर दिया था।"

इस्लाम की बात तो बिल्कुल दूसरी ही थी। वह तो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करता था। इस्लाम तो एक मानव – मानव की समानता को मानता था। अत: इस्लाम के इस सरल संदेश ने अनेक हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन करने में बहुत बड़ा सहयोग किया। अधिकतर लोग हिन्दू समाज की जात–पॉत की कुप्रथा से व्यथित थे क्योंकि इस प्रथा ने उनको 'अछूत '

शब्द से कलंकित कर रखा था। हिन्दू धर्म के कुछ लोगों ने इस सामाजिक व्यथा को चुनौती के रूप में लिया। उन्होंने बहुत गम्भीरता से निर्णय लिया कि उन्हें सबसे पहले अपने ही घर को अपने धर्म को बचाने के लिए ठीक कर लेना चाहिए। उन्होंने सोचा और बताया कि 'भक्ति' ही केवल एक रास्ता है जिसके माध्यम से हिन्दू धर्म में व्यापत गंदगी को साफ किया जा सकता है। इसके साथ ही उन्हें इस्लाम धर्म ग्रहण करने से बचाया जा सकता है। रामानन्द, कबीर, चैतन्य और नानक ने भक्तिवाद को अपनाया, अपने समय में इन्होंने भक्ति को विभिन्न प्रकार से प्रतिपादित किया। भक्ति के माध्यम से उन्होंने भगवान की भावनात्मक उपासना का उपदेश दिया तथा गुरू भक्ति और 'स्वयं समर्पण' के भाव को भी समझाया। एक तरफ भक्ति के दर्शन पक्ष की व्याख्या उन्होंने की तो दूसरी तरफ उन्होंने जातिवाद, क्रियाकर्म और अंधविश्वास की बेकार और फालतू बातों पर भी प्रकाश डाला। पंजाब में इस संदेश को गुरूनानक ने दिया, जिसका जादू की तरह असर हुआ। उन्होंने इस क्षेत्र के लोगों की विचारधारा को बदल दिया।

गुरूनानक का जन्म तलवण्डी में सन् 1469 ई. में हुआ। (तलवण्डी ननकाना साहिब के नाम से जाना जाता है जो आजकल पाकिस्तान में है) उनके पिता का नाम मेहता कालूचन्द था जो बेदी जात के खत्री थे। वह पटवारी के पद पर कार्य करते थे। इन्हें गाँव के आय लेखा लिपिक के नाम से सभी जानते थे। नानक की माता का नाम त्रिपता था। नानक को गाँव के स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया तब उनकी उम्र 7 वर्ष की थी। उसके अध्यापक ने बच्चे की बहुत तारीफ की थी। नानक स्कूल में अधिक नहीं टिकते थे। उन्होंने बहुत कुछ साधु और सन्यासियों से सीखा था जो कि उनके गाँव और अड़ौस–पड़ौस में आया करते थे। नौ वर्ष की आयु में उन्होंने पवित्र जनेऊ पहनने से इंकार कर दिया था। उन्होंने कहा कि जब तक आदमी इन्द्रियों का गुलाम है तब तक जनेऊ पहनना व्यर्थ है। उन्होंने कहा कि मैं तो उस धागे को पहनना चाहता हूँ जो मनुष्य मन को ईश्वर से जोड़ता है।

अपने बच्चे के चरित्र निर्माण की दृष्टि से नानक के पिता अत्यन्त दु:खी थे। उन्होंने उसको बदलने के लिए विभिन्न धंधों में लगाया। जैसे अपनी जमीन पर भैंस चराना और व्यापार करना परन्तु सब कुछ व्यर्थ गया। नानक तो अधिक से अधिक समय ध्यान एकाग्रता में लगाते थे। चौदह वर्ष की आयु में नानक का ध्यान दुनियादारी में लगाने हेतु उसके पिता ने उसकी शादी सुलखबी के साथ कर दी। समय के नियमानुसार नानक को दो पुत्रों की प्राप्ति भी हुई। उनके नाम थे श्रीचन्द और लक्ष्मीदास। नानक अधिक समय संतों की संगत में ही गुजारते रहे। अंत में नानक के पिता ने नानक को सुल्तानपुर लोदी के पास भेजने का निर्णय लिया जहां उनके दामाद नवाब दौलत खाँ की फौजदारी के क्षेत्र में नियुक्त थे। यहां उनको भण्डारी का कार्य करने को दिया गया जिसे उन्होंने बखूबी सरकार की प्रतिष्ठा के अनुकूल निर्वाह किया। मगर नानक कभी भी अपने मुख्य लक्ष्य को भूले नहीं। उन्हें आत्म साक्षात्कार यही पर उस समय हुआ जब नानक सुल्तान पुर के पास बहती नदी ' बाईन' में स्नान कर रहे थे। इसी समय और इसी स्थान पर उन्होंने अपनी भगवान के साथ ऐकात्मकता होने की अनुभूति की। इस पावन अवसर के समय उनकी आयु 30 वर्ष की थी।

आत्म साक्षात्कार के पश्चात् उन्होंने उदासी जीवन आरम्भ कर दिया। अपने सहयोगियों से वे कहा करते थे, "यहां कोई हिन्दू नहीं यहां कोई मुसलमान नहीं" इन शब्दों का प्रयोग करने

के पीछे उनकी भावभिव्यक्ति यह थी कि भगवान की दृष्टि में सभी मानव समान है। हिन्दू और मुसलमान के मध्य कोई भेदभाव नहीं है। मगर बहुत कम लोगों के समझ में यह बात आई कि नानक के कथन में सब दु:खों को मिटाने वाली रामबाण औषधी है तथा उनके द्वारा दिखाया मार्ग ही सबके लिए सुखदाई होगा।

**उदासियां या नानक की यात्राऐं :**

गुरूनानक ने अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया और अपना संदेश जगत को देने हेतु निकल पड़े। उन्होंने सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया। उन्होंने पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण पूरे देश की यात्रा की। नानक तो लंका, मक्का, मदीना और बगवाद भी गए। जहां कहीं भी वे गये वहां उन्होंने पवित्र जीवन, जो आडम्बर व अंधविश्वास से शून्य हो, जीने की सलाह दी। वे चाहते थे कि सभी जाति–पॉति के बंधन से मुक्त हों तथा उन्होंने विश्व बंधुत्व का मार्ग दर्शन किया। उन्होंने उन्हें भगवान की ऐकात्मकता का उपदेश भी दिया। उन्होंने लोगों को अपने उपदेश उन्हीं की भाषा में दिए। उन्होंने श्रम की महानता का संदेश भी लोगों को बतलाया।

सुल्तान पुर छोड़ने के तुरन्त बाद ही गुरू नानक ने अपनी प्रथम यात्रा आरम्भ कर दी। उनके साथ यात्रा में उनका भक्त शिष्य मरदाना भी साथ था। वह लोगों के इकट्ठे हो जाने पर उनके सम्मुख अपने गुरू के गीतों को गाकर सुनाता था। उनकी प्रथम यात्रा सईदपुर की थी जिसे अमीनाबाद के नाम से भी जाना जाता था। यहीं पर उनको ' लालो' खाती मिला जो उनका शिष्य बन गया। गुरू नानक लालो से प्रभावित हुए क्योंकि वह अपनी रोजी रोटी कठिन परिश्रम से कमाता था कस्बे के मुखिया 'भागो' की तुलना में नानक ने लालो के यहां भोजन करने को प्राथमिकता समझी क्योंकि मुखिया 'भागो' भ्रष्ट साधनों के माध्यम से भाग्यवान बना था। उन्होंने लक्ष्य प्राप्ति का प्रथम केन्द्र सईदपुर को ही बनाया तथा इस केन्द्र का संचालक लालो को ही बनाया।

गुरू नानक की अगली यात्रा तलुम्बा की थी, जो मुल्तान के पास स्थित है। यहां उनकी मुलाकात एक जाने माने ठग 'साजन' से हुई। उसके ऊपर गुरू नानक का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह तो गुरू का भक्त बन गया। उसका सम्पूर्ण जीवन परिवर्तित हो गया। उसी समय से उस धर्मशाला को जिसमें साजन रहता था एक आराधना स्थल में परिवर्तित कर दिया गया।

सूर्य ग्रहण के अवसर पर उनकी यात्रा का अगला स्थल कुरुक्षेत्र था। यहां उन्होंने बहुत लोगों से बातचीत की जिसमें संत, फकीर तथा ब्राह्मण सम्मिलित थे। उन्होंने उनको समझाया कि किसी को इस बात से चिन्तित नहीं होना चाहिए कि वह क्या खाता है और कैसे रहता है। उन्होंने कहा कि इन मामूली बातों की परवाह न करते हुए हमें तो पवित्र जीवन, प्रेम, सत्य और ईमानदारी को अपनाना चाहिए। जब वे हरिद्वार की यात्रा पर थे तब उन्होंने लोगों से कहा कि अपने दिवंगत पूर्वजों के लिए पिंडदान करना व्यर्थ है। पानीपत में वे शेख शरीफ से मिले और उसे उन्होंने अपने विचारों के अनुकूल बना लिया। बहुत लम्बे सफर के उपरान्त गुरूनानक बनारस पहुंचे। यहां नानक ने एक प्रसिद्ध ब्राह्मण चतरदास को अपना भक्त बना लिया। यहां से नानक गोरख माता गये जिसे आजकल नानक माता कहते हैं। यहां उन्होंने जोगियों अथवा सिद्धों को राजी कर लिया और उन्होंने अपनी वर्तमान जीवन पद्धति बदल दी। यहां नानक ने उनको उपदेश दिया कि "जीवन की विषमताओं के मध्य आप केवल पवित्रता का ही पालन कीजिए।"

यहां से गुरू नानक पूर्व में आसाम (कामरूप) भी गये। यहीं पर उनका संपर्क नूरशाही से हुआ। उस नूरशाही ने नानक को सम्मोहित करने का भरसक प्रयास किया। उसके प्रभाव को निष्क्रिय करने हेतु गुरू नानक ने एक साखी का गान किया। उस गायन से नूरशाही इतनी प्रभावित हुई कि वह उसी क्षण से ईश्वर नाम की भक्त बन गई। अब गुरू ने उड़ीसा में पुरी की यात्रा की वहां के लोगों को उन्होंने तर्क देकर समझाया कि भगवान के नाम की पूजा उसके प्रतीकों की पूजा से कई गुना श्रेष्ठ है।

पूरी से गुरू नानक लौटकर अजोघन आये जो आजकल पाक पाटन कहलाता है। यहां वे शेख इब्राहिम से मिले जिनके साथ उन्होंने अपने विचारों का आदान–प्रदान किया। अपने सिद्धान्तों का बारह वर्ष प्रचार करने के बाद गुरू नानक वापस तलवण्डी आए।

मुश्किल से कतिमय मास तलवण्डी में गुजारे होंगे कि उन्होंने द्वितीय उदासी के लिए (यात्रा हेतु) तलवण्डी छोड़ दी। इस यात्रा के दौरान उन्होंने दक्षिण के मुख्य धार्मिक स्थलों का दौरा किया। गुरूनानक लंका भी गए तथा वहां के राजा शिवनाथ से भी मिले। यात्रा के तीसरे चक्कर में उन्होंने हिमालय का भ्रमण किया। वे मानसरोवर और तिब्बत भी गये। गुरूनानक कुल्लु, मण्डी, सुकेत और चम्बा गये। इस उदासी के दौरान उनकी बातचीत योगी सिद्ध पुरुषों से हुई तथा उन्होंने उन्हें अपने दृष्टिकोण के अनुकूल बनाया। कश्मीर में गुरूनानक पंडित ब्रह्मदास से मिले तथा उसको अपने उपदेशों से प्रभावित किया।

चतुर्थ उदासी की अवधि में गुरू नानक ने मक्का, मदीना और बगदाद की यात्रा की। इन स्थानों पर उन्होंने पीरों एवं फकीरों से बातचीत की। बगदाद में तो नानक वहां के मुखिया से भी मिले और उसने उनकी आदरपूर्वक सेवा की। यात्रा से लौटते समय गुरू नानक ने हसन अब्दल (पंजा साहिब) में खान कंधारी से मुलाकात की। गुरू ने खान कंधारी को भी अपने विचारों में सम्मोहित किया।

गुरू नानक की अंतिम यात्रा (पाँचवी उदासी) तो पंजाब तक ही सीमित रही। उन्होंने पाक पाटन, दीपालपुर और कसूर पट्टी की यात्रा की। सईदपुर तो वे दुबारा गए और अपने पुराने शिष्यों से मिले। यह इसी समय की बात है जब नानक ने आक्रांता बाबर के बारे में सुना। बाबर ने सईदपुर पर हमला कर लूटपाट की तथा अनेक लोगों को मौत के घाट उतार दिया। गुरू नानक ने बड़े जोश के साथ बाबर के जुल्मों की भर्त्सना की। यह भी कहा जाता है कि गुरू नानक और उनके भक्त मरदाना को वहां कैद कर लिया गया था। परन्तु एक मुस्लिम अफसर मीरखान के परामर्श पर उन्हें बाद में मुक्त भी कर दिया गया था।

**करतारपुर में गुरू नानक का ठहराव :**

यद्यपि उन्हें अब भी पंजाब में कई स्थानों पर जाना था तथापि उन्होंने करतारपुर नामक एक नये शहर की नींव भी डाली। यह वही जगह है जहां गुरू नामक ने अपने जीवन के शेष दिन एक गृहस्थ के रूप में व्यतीत करने का निर्णय लिया था। करतारपुर में ही उन्होंने अपने शिष्य को पावन जीवनयापन की शिक्षा दी। उन्होंने कहा कि प्रात: जल्दी उठना, भगवान की स्तुति करना तथा बाद में अपने धन्धे में दिन भर व्यस्त रहना चाहिए। उन्होंने यहां लंगर की व्यवस्था (जिसे नि:शुल्क रसोई भी कहा जाता है) आरम्भ की। यहां गुरू के पास आने वाले गुरू भक्त तथा गरीब लोग भी भोजन करते थे। अधिक संख्या में लोग गुरू की वाणी सुनने के

लिए आने लगे थे। अब तक उन्हें जो संतोष नहीं मिला था, वह अब उन्हें गुरू की वाणी से मिलने लगा था। इन्हें गुरू के उपदेश में जीवन दर्शन मिला तथा दर्शन प्राप्ति हेतु दिशाऐं भी प्राप्त हो गई।

**गुरू के उत्तराधिकारी :**

गुरूनानक को आभास होने लगा था कि अब उनका अन्त दूर नहीं है तब उन्होंने अपना ऐसा उत्तराधिकारी नियुक्त करने का निर्णय लिया जो उनके सिद्धान्तों को आगे चला सके। गुरू नानक का एक भक्त ' लहना' था और उसी के व्यक्तित्व में अपनी वास्तविक शक्ति दृष्टिगोचर हुई। अपने दो लड़कों की तुलना में उन्हें लहना ही पसन्द आया। इस उत्तराधिकारी का नाम उन्होंने अंगद रखा क्योंकि वे उसे अपने शरीर का ही एक अंग या भाग मानते थे। गुरू के शिष्य सिक्ख कहलाने लगे अत: सिक्ख धर्म की उत्पत्ति हुई। गुरू नानक ने ही खालसा पंथ की नींव डाली थी। इसके बाद दूसरे गुरूओं ने इस पर चिनाई का काम किया तथा दसवें गुरू गोविंद सिंह ने खालसा पंथ या कॉलन वेल्थ (सार्वजनिक सम्पत्ति) रूपी इमारत का निर्माण कार्य पूर्ण किया।

## 7.3 गुरू नानक के उपदेश

दुनिया के साधु संतों के मध्य गुरू नानक का बहुत बड़ा स्थान है। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उनका नाम बुद्ध, ईश और अल्लाह के पैगम्बर मोहम्मद साहब के साथ आता है। उनके उपदेशों ने जनता के मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ी है। सच तो यह है कि उनका दर्शन समझने व क्रियान्वित करने में सरल था। उनके मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित है –

**एक ईश्वर में विश्वास :**

गुरूनानक ने एक ईश्वर के अस्तित्व पर ही बहुत जोर दिया। उन्होंने कहा कि वही एकमात्र शक्ति है और उसके मुकाबले और कोई दूसरी शक्ति दुनिया में नहीं है। वह परमात्मा सर्व शक्तिमान है तथा सर्वत्र है। मगर हिन्दू अनेक भगवानों की पूजा करते हैं हिन्दू उस प्रेम को आदमी के रूप में राम, कृष्ण और शंकर कहकर पूजते हैं। परन्तु नानक का भगवान तो दोनों गुण रखता है –(1) वह अन्तवर्ती अवस्था में तो भीतर रहता ही है (2) परन्तु अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने हेतु बाहर भी प्रकट हो जाता है। नानक के अनुसार परमात्मा दयालु है। वह अपने भक्तों से दूर नहीं होता। उसे किसी मंदिर या अन्य धार्मिक स्थलों में सीमित नहीं किया जा सकता है। वह प्रत्येक मानव के दिल में निवास करता है। भक्त को भगवान प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रभु इच्छा से समर्पित कर देना पड़ता है। स्वयं समर्पण का अभिप्राय है – पाँचों बड़े दुश्मनों (इन्द्रियों) का समग्र खात्मा। ये पाँच दुश्मन हैं (1) काम (2) क्रोध (3) लोभ (4) मोह (5) अहंकार । इन दुश्मनों से जब मस्तिष्क मुक्त होता है तभी प्रभु साक्षात्कार हो जाता है।

**सतनाम में अलौकिक शक्ति :**

गुरूनानक ने जोर देकर कहा कि प्रभु के 'सतनाम' जप से ही पूर्ण समर्पण की प्राप्ति सम्भव है। जो मस्तिष्क इन पांच दुश्मनों में से किसी एक से ग्रस्त है वह सतनाम की ओर

उन्मुक्त नहीं हो सकता है। सतनाम का उच्चारण ही किसी मस्तिष्क को दुनिया की बुराईयों से हटाकर ईश्वर में संलग्न कर सकता है। सतनाम सभी बुराईयों और बिमारियों का इलाज है।

**गुरू का महत्व :**

सच्चे गुरू की कृपा से ही सतनाम की प्राप्ति सम्भव है। बिना गुरू कृपा के किसी ने भी प्रभु प्राप्ति नहीं की है। गुरू तो एक लिफ्ट है या सीढ़ी है जो उसे अपने प्रभु के द्वार पर पहुंचा देती है। परन्तु सच्चे गुरू की प्राप्ति के लिए भी प्रभु की कृपा होना आवश्यक है। जैसे ही किसी को सच्चा गुरू मिल जाता है वैसे ही उसको बड़ी लगन से अपने गुरू द्वारा दर्शाये पथ पर चलना चाहिए

**क्रियाक्रम एवं अंधविश्वास का परित्याग :**

गुरूनानक ने जोरदार शब्दों में थोथे धार्मिक क्रियाक्रमों का विरोध किया है। इसके साथ ही उन्होंने तपस्या, तीर्थस्थल तथा सभी प्रकार के अंधविश्वासों का परित्याग करने को भी कहा है। ये सब रीति–रिवाज झूठे और बेकार हैं। परमात्मा की अनुकम्पा केवल उन्हीं पर होती है जो केवल सच्ची परम्पराओं को निर्वाह करते हैं। अपने अनुयायियों को नानक का संदेश था "दुनिया की विषमताओं का परित्याग कर पवित्रता को अपनाओ।" नानक की इच्छा थी कि उनके अनुयायी वैराग्य और सन्यास को छोड़ दें। इसके बदले उन्होंने कहा कि गृहस्थ जीवन व्यतीत करना चाहिए। उन्होंने जोर देकर कहा कि दुनियादारी में भी सम्पूर्ण शुद्धता के जीवन का अनुसरण करना चहिए। मन, वचन, कर्म से उसे शुद्ध ही रहना चाहिए। ' कर्मवाद ' में उनका अटूट विश्वास था। भाग्यशाली वही है जिसने उस समाज के लिये कल्याणकारी कार्य किए है, जिस समाज में वह रहता है। नानक का कहना है कि बिना अच्छे कर्मों के मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती है। जम तक समाज के संदर्भ में कार्य नहीं होते उनके औचित्य की धारणा का कोई तात्पर्य नहीं है।

**जातिप्रथा का बहिष्कार :,**

भगवान से प्रेम का अभिप्राय है सम्पूर्ण मानव समाज से प्रेम। मगर हिन्दू समाज में व्याप्त जाति प्रथा तो इस अवधारणा के बिलकुल विपरीत थी। गुरू नानक ने कड़े शब्दों में असमानता के सिद्धान्त का विरोध किया, जो जाति प्रथा में व्याज था। उन्होंने तो वर्ण व्यवथा तक का भी विरोध किया। उन्होंने स्पष्ट एवं प्रभावोत्पादक शब्दों में कहा कि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही भगवान की संतान है। अत: उन्हें चाहिए कि वे आपस में प्यार व भाईचारे में रहें। गुरू नानक ने विश्व बंधुत्व के सिद्धान्त को भी प्रतिपादित किया।

**मूर्ति पूजन का खण्डन :**

परमात्मा के किसी रूप या स्वरूप में उनका विश्वास नहीं था। उनका भगवान तो अन्तर्निष्ठ नारायण है और वह श्रेष्ठता प्रकट करने हेतु नर रूप भी धारण करता है उनका भगवान किसी मंदिर या अन्यत्र धार्मिक स्थान तक ही सीमित नहीं है। वह तो सर्वशक्तिमान है। उन्होंने कहा कि प्यारा प्रभु तुम्हारे से दूर नहीं है, उनको अपने मन व दिल में ही तलाश करो। अत: वह मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करते थे और केवल ' सतनाम ' जप पर ही अधिक जोर देते थे।

**गुरू नानक की शिक्षाओं का प्रभाव :**

गुरूनानक की शिक्षाओं को ध्यान से अध्ययन करने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी शिक्षाऐं अन्य मध्यकालीन संतों की शिक्षाओं से अधिक भिन्न न थी। परन्तु इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि उन्होंने कठोरता के साथ तत्कालीन हिन्दू धर्म की परम्पराओं का खण्डन किया। उन्होंने न केवल जातिप्रथा का बहिष्कार किया बल्कि उस बुराई को समाज से हटाने के लिए रचनात्मक कदम भी उठाए। उन्होंने लंगर प्रथा (नि:शुल्क रसोई) भी शुरू की, जहां प्रत्येक जाति के लोग साथ बैठकर भोजन करते थे। ऐसे सामूहिक भीड़ भरे अवसरों पर सभी तबके के आदमियों का स्वागत था। उन्होंने पूर्ण रूप से सन्यास एवं वैराग्य वृति का बहिष्कार किया तथा स्वयं ने गृहस्थ प्रणाली अपनाई। हिन्दू धर्म में अनेक देवी देवताओं को पूजने की प्रथा प्रचलित थी और गुरू नानक की शिक्षाऐं भी रामानुज, रामानन्द तथा अन्य भक्तों से मेल नहीं खाती थी। इसका कारण यह था कि वे मूर्तिपूजा, थोथे कर्मकाण्ड तथा अन्धविश्वासों के खिलाफ बोलते थे। इस प्रकार नानक एक क्रांतिकारी सुधारक थे। उनके सिद्धान्तों का समाज पर बहुत बड़ा असर पड़ा। उन्होंने बतलाया कि इन सब बुराईयों का कारण यह है कि आदमी का नैतिक पतन हो चुका है। उन्होंने कहा कि उन्हें अच्छी तरह अहसास हो गया कि जब तक लोग अज्ञान और भ्रष्टाचार में डूबे हुए है तब तक उनके कल्याण के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता है। जो कुछ सुधार नानक सुझाते थे, वे उन्हें स्वयं अपने जीवन में करके दिखाते थे।

नानक ने भय से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। उन्होंने विदेशी हमलावरों के जुल्मों की खुलकर आलोचना की थी। नानक नारी मुक्ति के लिए भी सदा तैयार रहते थे। उन्होंने पर्दा प्रथा और सती प्रथा का विरोध किया। केवल इतना ही नहीं था कि उनकी शिक्षाऐं केवल उस समय अद्‌वितीय प्रभाव दर्शाती थी वरन् आज की परिस्थितियों में भी उनके उपदेश प्रासंगिक है। उनके सिद्धान्तों के समाज पर प्रभाव को इंगित करते हुए गोकुल चन्द नारंग ने लिखा है–

"गुरू नानक पंजाब के हिन्दुओं को उनकी पूर्व दशा के मुकाबले बहुत ही अच्छी हालत में छोड़कर सिधारे थे। उनकी विचारधारा महान बन गई, उनकी पूजा पद्धति पवित्र हो गई, उनकी जातीय कट्टरता बहुत कुछ नरम हो गई, उनके मस्तिष्क बंधनमुक्त हो गये तथा अब वे अपने प्राकृतिक विकास पथ पर चरित्र निर्माण हेतु सुयोग्य बन गये थे। अब उन्हें गुरू नानक के उत्तराधिकारियों का मार्गदर्शन प्राप्त करने का सुअवसर भी मिलेगा। "

## 7.4 खालसा पंथ का विकास

गुरू नानक के कार्य को आगे बढ़ाया गया तथा उनके नौ उत्तराधिकारी गुरूओं (1539–1708) ने इस कार्य को पक्का किया। दसवें गुरू गोविंद सिंह के तत्वावधान में इस क्रम की चर्मोत्कर्षी सफलता 'खालसा पंथ' के निर्माण में हुई। सिक्ख धर्म के विकास हेतु जो कार्य विभिन्न गुरूओं ने किए, उनका संक्षिप्त अध्ययन हमें गुरू नानक द्‌वारा आरम्भ किए आंदोलन को समझने हेतु एक सुन्दर दृष्टिकोण प्रदान करता है।

### 7.4.1 गुरू अंगद (1539–1552)

भाई लहना, जिन्हें अंगद नाम दिया गया, को गुरू नानक का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया। इसके पीछे उस विचारधारा की प्राप्ति का लक्ष्य था, जो धारा गुरू नानक ने एक बार बहा दी थी। इन्द्र भूषण बनर्जी के अनुसार – "गुरू गद्दी के लिए अंगद का मनोनयन होना सिक्ख इतिहास में उच्चतम महत्व की सच्चाई है। उत्तराधिकार के इस चयन ने आंदोलन को एक स्पष्ट एवं सुनिश्चित संचालन और नियन्त्रण के अंतर्गत ला दिया। आंदोलन को निर्विवाद नेतृत्व के मार्गदर्शन में ला दिया तथा आंदोलन को उसके शुरूआत में ही स्पष्ट गति प्रदान कर दी गई।"

गुरू अंगद ने न केवल अपने गुरू के धर्म का प्रचार प्रसार ही किया बल्कि उसको रचनात्मक रूप प्रदान करते हुए कुछ स्पष्ट एवं विशिष्ट कदम उठाए, जिससे सिक्ख जाति ने अपनी एक अलग पहचान बना ली। बहुत अधिक महत्व की बात तो यह है कि गुरू अंगद के समय में पंजाबी लिपि को अपनाना अच्छा समझा जिन्हें गुरूओं ने स्वयं प्रयोग में लिया हो। सबसे बड़ी बात जो गुरुमुखी की प्रसिद्धि का कारण बनी वह ये कि गुरुमुखी, संस्कृत भाषा, जो अभी तक एकमात्र धार्मिक भाषा बनी हुई थी के मुकाबले बहुत सरल थी। इस कार्य ने पुजारी वर्ग को बहुत बड़ा झटका दिया। गुरू ने इस भाषा के माध्यम से अनेकानेक लोगों को उपदेश दिये। इन उपदेशों का वस्तुत: बहुत लोगों पर प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव ने सिक्ख धर्म को लोकप्रिय बनाया तथा हिन्दू धर्म पर यह प्रभाव भिन्न प्रकार था।

गुरू नानक के आजीवन साथी भाई बाला की सहायता से गुरू अंगद ने गुरू नानक के गीतों का संकलन कर एक स्तर पदीय गुरूनानक की जीवन कथा लिखी। नानक की लंगर प्रथा का गुरू अंगद ने न केवल निर्वाह किया बल्कि उन्हेंने लंगर प्रथा का और भी अधिक विस्तार किया। ज्ञातव्य है कि गुरू नानक स्वयं अपने जीवन निर्वाह के लिए स्वयं के परिश्रम से रोजी कमाते थे। उन्होंने न केवल गरीबों की सुरक्षा की बल्कि गुरू नानक के संदेश के प्रचारार्थ प्रसिद्धि का साधन भी बनी। जब गुरू अंगद को लगा कि उनका अंत निकट है तो उन्होंने गुरू गद्दी अमरदास के सपुर्द कर दी। अमरदास गुरू गद्दी को गोइंदवाल ले गए। अब अमरदास ने गुरू के बन्दों का यहीं से भाग्य निर्माण करना शुरू किया।

### 7.4.2 गुरू अमरदास (1552–1574)

जब गुरू अमरदास ने गुरू गद्दी सम्भाली तो उन्हें अनेक दुश्मनों का मुकाबला करना पड़ा तथा वे इस मुकाबले में सफल सिद्ध हुए। उन्होंने गोंइदवाल में एक लम्बी 'बावड़ी ' का निर्माण करवाया जिसमें 84 पांवड़िये थे। उन्होंने अपने अनुयायियों को उद्‌बोधन किया कि जो कोई इन सीढ़ियों पर जप करेगा वह 84 के जन्म–मरण के चक्कर से मुक्त हो जाएगा। आजकल गोंइदवाल सिक्ख धर्म का मुख्य स्थल माना जाता है।

सिक्ख धर्म के संचालन की दृष्टि से गुरू अमरदास का समय काफी महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने सिक्ख धर्म के प्रचारार्थ 22 केन्द्रों की स्थापना की। इन 22 केन्द्रों को 'मांजी व्यवस्था' के नाम से जाना जाता है। इन केन्द्रों के अध्यक्ष सिक्ख धर्म में गुरू की वाणी का प्रचार–प्रसार लोगों में करते थे।

गुरू अमरदास सभी सिक्खों को बैसाख और माघ के प्रथम दिन इकट्ठा करते थे तथा दिवाली पर भी बुलाते थे। अत: गुरू के अनुयायियों ने हिंदू त्यौहारों को मानना आरम्भ किया परन्तु मनाने का भाव कुछ दूसरा ही था।

गुरू ने अपने अनुयायियों को यह भी आदेश दिया कि मृत क्रियाक्रम के अवसर पर तथा खुशी प्रदर्शन के कार्यक्रमों में हिन्दू पंड़ितों को न बुलाया जाए। उन्होंने ऐसे अवसरों परे निश्चित साखियों को पढ़ने का रिवाज: बनाया। इस संदर्भ में इन्द्रभूषण बनर्जी का कथन है –

"यह गुरू अमरदास का ही समय था कि हिन्दू और सिक्ख का अंतर उभर कर सामने आया। सिक्खों ने हिन्दू परम्परावाद या अंध परम्परावाद से स्वयं को अलग कर लिया था। इस प्रकार उन्होंने बंधुत्व पर आधारित अपनी एक नई जाति बना ली थी।"

गुरू अमरदास ने अपने दामाद को, रामदास को, अपना उत्तराधिकारी बनाया था।

### 7.4.3 गुरू रामदास (1574–1581)

गुरू रामदास के काल की सबसे बड़ी उपलब्धि रामदासपुर शहर की स्थापना है जिसे हम आजकल अमृतसार के नाम से जानते हैं। यहां उन्होंने दो तालाबों संतोखसर और अमृतसर को खोदने का काम शुरू करवा दिया, परन्तु इन कामों के लिए बड़ी रकम की आवश्यकता थी। इस रकम प्राप्ति के लिए गुरू ने अपने दूत भेजे, ये दूत 'रामदासिये' कहलाए, जो बाद में मसन्दों के नाम से भी जाने जाने लगे। अपनी मृत्यु के पूर्व ही रामदास ने अपने पुत्र अर्जुन मल को अपना उत्तराधिकारी बना दिया। गुरू रामदास ने उन कामों को बहुत मजबूत कर दिया जो उनके पूर्वज गुरूओं ने आरम्भ किए थे।

### 7.4.4 गुरू अर्जुन (1581–1606)

गुरू गद्दी के पच्चीस वर्ष के काल में गुरू अर्जुन की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय है। उन्होंने न केवल अपने पिता के चलाए कार्यों को पूर्ण ही किया बल्कि नई योजनाऐं भी आरम्भ कर दी।

सबसे पहले उन्होंने दो तालाबों की खुदाई का कार्य सम्पन्न कराया। ये थे संतोखसर और अमृतसर। तालाबों के बन जाने के बाद उन्होंने अमृत के सागर वाले तालाब में 'हरीमंदिर' बनाने का काम छेड़ दिया। ये मंदिर 1589 में बनकर तैयार हुआ। यह हरमंदिर बाद में स्वर्ण मंदिर के नाम से पुकारा जाने लगा। गुरू ने सिक्खों को इस शहर में आकर बसने का निमन्त्रण दिया। यहां बसने के लिए गुरू ने उन्हें बहुत सुविधाऐं प्रदान की। गोकुल चंद नारंग के अनुसार, "गुरू अर्जुन की दूरदर्शिता और प्रतिभा के कारण अमृतसर सिख पंथ की राजधानी बन गया। यह शनै:शनै: और शांतीपूर्वक सिख समाज की राजधानी बन गया।"

गुरू अर्जुन ने तरण तारन नामक कस्बे की भी स्थापना की थी। अमृतसार और तरन तारन सिख धर्म के प्रसार के लिए मुख्य केन्द्र सिद्ध हुए। बहुत अधिक संख्या में इस क्षेत्र के जाटों को धर्म परिवर्तन कर सिक्ख बनाया गया। इन लोगों ने सिक्ख इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जालन्धर दो आब के मध्य उन्होंने करतारपुर शहर भी बसाया।

हाथ के कामों को पूरा करने के लिए गुरू अर्जुन ने निश्चित निर्देश दिए तथा 'मसन्द व्यवस्था' का निरूपण किया जो पहले ' रामदासी ' नाम से जाने जाते थे। गुरू के प्रतिनिधि

मसन्दों के नाम से जाने जाते थे। अब सिक्खों को अपनी आय का दसवां हिस्सा गुरू के लिए देना पड़ता था। ये दसवां हिस्सा मसन्द लोग इकट्ठा करते थे और बाद में अमृतसर के गुरू खजाने में जमा करा देते थे। मसन्द गुरू के विश्वासपात्र सिक्ख ही हुआ करते थे। मसन्द लोग पैसा इकट्ठा करने के अलावा अपने क्षेत्र में सिक्ख धर्म का प्रचार का काम भी करते थे। सिक्ख धर्म की छोटी अवस्था में ही काफी पैसा अमृतसर के खजाने में जमा हो गया था। मगर समय की प्रगति के साथ ही मसन्द की ख्याति दिन–प्रतिदिन कम होती चली गई। क्योंकि बहुत से मसन्द पैसों के कारण भ्रष्ट हो गए थे। पैसों के नशे में उन मसन्दो ने सिक्ख धर्म के खिलाफ भी काम करना शुरू कर दिया था। इन मसन्दों की भ्रष्टता को देखकर गुरू गोविन्द सिंह ने तो इस प्रथा को बंद ही कर दिया था।

**आदिग्रन्थ का संकलन :**

गुरू अर्जन के समय की बहुत महत्वपूर्ण उपलब्धि है आदिग्रन्थ का संकलन। उन्होंने न केवल अपने पूर्व के गुरूओं के काल की साखियों का संग्रह किया बल्कि भक्तिकालीन संतों को भी संग्रह में सम्मिलित किया गया। अत: आदिग्रन्थ में पाँच प्रथम गुरूओं की साखियाँ अथवा भजन संग्रहित है। गुरू तेग बहादुर की साखियें भी बाद में जोड़ दी गई थी। सोलह भक्तों की वाणी इसमें है, जिसमें कबीर, फरीद, नामदेव, रविदास के भजन है तथा कुछ भजन भाटों के भी जोड़े गए हैं। ये सभी गीत गुरुमुखी लिपि में लिखे गए हैं। इन गीतों की वाणी में हिन्दी, संस्कृत, फारसी, गुजराती तथा मराठी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

यह ग्रन्थ सिक्ख पूजन पद्धति का मुख्य बिन्दु है। जिस प्रकार ईसाइयों के लिए बाइबिल, मुसलमानों के लिए कुरान, हिन्दुओं के लिए वेद, रामायण और महाभारत है, उसी प्रकार सिक्खों के लिए आदिग्रंथ है।

यह एक पवित्र बुद्धिसंगत पुस्तक है। मध्यकालीन पंजाब के लोगों के आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन पर यह एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक सामग्री भी प्रदान करती है।

**गुरू अर्जुन की शहीदी :**

अकबर एक उच्च कोटि का उदार मुगल शासक था। उसकी दृष्टि में गुरू अर्जुन का बहुत ऊँचा स्थान था। लेकिन जैसे ही जहाँगीर मुगल गद्दी पर बैठा तो वह गुरू अर्जुन के क्रियाकलापों को सहन नहीं कर सका। वह यह बात खासकर के बर्दाश्त नहीं कर सका कि गुरू अर्जुन के अनुयायी अनेकाअनेक बन गए थे। जहाँगीर ने गुरू अर्जुन पर आरोप लगाया कि उन्होंने खुसरों को शरण दी थी, जिसने कि अपने पिता जहाँगीर के विरूद्ध विद्रोह कर दिया था। इस आरोप के तहत जहाँगीर ने गुरू को मृत्युदण्ड दिया। इस प्रकार सिक्ख इतिहास में गुरू अर्जुन की शहीदी बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस घटना ने सिक्खों को लड़ने के लिए हथियार धारण करवा दिए। उन्हें विश्वास हो गया था कि खालसा पंथ की रक्षा के लिए संघर्ष आवश्यक था।

### 7.4.5 गुरू हरगोविन्द (1606–1645)

मुगल बादशाह द्वारा गुरू अर्जुन का दुखान्तिक देहान्त, तथा गुरू की मृत्यु के लिए अपनाए गए तिरोहित करने वाले तरीकों ने सिक्खों को न केवल तुरन्त ही कुछ करने का पाठ पढ़ाया बल्कि उन्हें अपनी सुरक्षा के लिए कदम उठाने पर भी मजबूर कर दिया। अत: छठे गुरू हरगोविन्द जी का काल एक 'परिवर्तन का युग' जाना जाता है। जिसमें सिक्ख धर्म को एक पवित्र भाईचारे तथा भक्ति के भाव से हटाकर एक संत सिपाही का रूप प्रदान कर दिया गया। कोई आश्चर्य की बात नहीं की अब गुरू ने युद्ध की वेशभूषा धारण कर ली तथा दूसरी आध्यात्म शक्ति की प्रतीक थी। सच्ची प्रतिबद्धता और प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने हथियारों, उपकरणों तथा घोड़ों का संग्रह किया और अपने लोगों को युद्ध लड़ने की विधि सिखाने के लिए व्यवस्थित एवं नियमित युद्ध प्रशिक्षण व्यायाम शालाऐं चलाई। गुरू हरगोविन्द ने हरमंदिर के सामने एक नये भवन 'अकाल तख्त' का भी निर्माण करवाया। इस भवन में गुरू हरगोविन्द राजनीतिक और सामरिक समस्याओं को सुलझाने की बातें किया करते थे तथा हरमंदिर के अनुयायियों के लिए धार्मिक कार्यक्रम चलते रहते थे। गुरू के रहने का सलीका जहाँगीर को पसन्द नहीं आया, अत: उसने गुरू को गिरफ्तार कर ग्वालियर के किले में कैद कर लिया। गुरू हरगोविन्द की ग्वालियर से मुक्ति से लेकर जहॉगीर की मृत्यु तक गुरू तथा मुगल बादशाहों के सम्बन्ध अच्छे बने रहे। शहाजहाँ सन् 1627 ईस्वी में मुगल शासक बना। गुरू की सामरिक नीति ने फिर मुगलों के साथ झगड़े पैदा कर दिए। यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं कि गुरू को कुछ क्षेत्रीय युद्ध भी लड़ने पड़े। इन क्षेत्रीय युद्धों के अवसर पर उन्होंने अपनी सामरिक कुशलता का भी परिचय दिया। बहादुरी के नेतृत्व की परम्परा इसी समय से शुरू हुई।

सिक्ख पंथ के लिए तुलनात्मक दृष्टि से गुरू हर राय (1645–1661) और गुरू हर किशन (1661–1664) का काल शान्त ही जाना जाता है।

### 7.4.6 गुरू तेग बहादुर (1664– 1675)

शूरवीरता की जिस परम्परा की नींव छठे गुरू ने रखी थी उस परम्परा को नवें गुरू तेग बहादुर ने और भी अधिक समृद्ध किया। गुरू हर गोविंद के काल तक इस दिशा में जो सिर्फ सुरक्षात्मक नीति अपनाई गई थी अब उसका विस्तार उन सब लोगों तक होने लगा जो बादशाह औरंगजेब के जुल्मों से तिरोहित तथा कट्टर सिद्धांतों की मार से बेसहारा हो गए थे। गुरू तेग बहादुर औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता के शिकार बन गए क्योंकि उन्होंने कश्मीरी ब्राह्मणों का पक्ष लिया, जिन्हें कश्मीर में वहां का मुगल सूबेदार शेर अफगन जबरदस्ती मुसलमान बना रहा था। इस बात पर गुरू तेग बहादुर को कैद कर लिया गया तथा दिल्ली में उनका सिर धड़ से अलग कर दिया गया। 1675 में गुरू तेग बहादुर की शहादत सिक्ख पंथ के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण घटना है। सर्वत्र सभी हिन्दुओं द्वारा भी इस घटना को एक हिन्दू धर्म के खातिर गुरू का बहुत बड़ा त्याग माना गया। अब तो सिक्खों के गुस्से की सीमा टूट गई। गुरू गोविंद सिंह ने सिक्खों का एक काफिला तैयार किया जिसे खालसा के नाम से पुकारा गया। उन्होंने कहा कि खालसा का कार्य लोगों द्वारा किए गए असत्य को सत्य करना है। यह कार्य तब तक चलता रहेगा जब तक मानव गरिमा पुन: स्थापित न हो जाए।

### 7.4.7 गुरू गोविन्द सिंह (1675–1708)

गुरू तेग बहादुर की शहीदी के अवसर पर उनका इकलौता पुत्र केवल नौ वर्ष का था। पिता की दर्दनाक शहीदी ने बालक गोविंद के मस्तिष्क पर गहरा असर किया। उन्होंने पिता के वध के लिए बदला लेने का दृढ़ संकल्प किया। इसके साथ ही उनके दिमाग में देश के साथ जो अन्याय हुआ उसका स्मरण भी था। सच तो यह है कि वह जगह पावटा (अभी हिमाचल प्रदेश में है) ही थी जहां पर ठहरकर युवा गुरू ने विचार मंथन किया था तथा दो निर्णयों पर पहुंचे थे। उन्होंने स्वीकार किया था कि उनके देश के लोग दो प्रकार के जुल्मों से ग्रसित हैं – (1) प्रथम जुल्म तो विदेशी राज्य द्वारा राजनीतिक जुल्म है तथा (2) दूसरा जुल्म पुरोहित वर्ग द्वारा धार्मिक जुल्म है। राजनीतिक जुल्म तो बहुत स्पष्ट था तथा कभी–2 होता था। परन्तु धार्मिक जुल्म तो लगातार और बहुत अधिक था। वह प्रतिदिन रसोईघर में होता था, गाँव के कुंओं पर तथा मंदिरों में होता था और ऐसी सब जगह जुल्म देखा जा सकता था जहां पर आपसी, कार्य अंजाम देते थे। गुरू गोविंद सिंह ने बहुत गहराई से सोचा तथा इन दोनों जुल्मों का अन्त करने का संकल्प किया।

अपने आपको संघर्ष के लिए समर्थ और अग्रणी करने के लिए उन्होंने पुराने ग्रंथों का अध्ययन किया। तथा अपने सिक्खों को भी अध्ययन करने को कहा। उन्होंने हर प्रकार के मानवीय कार्यों का प्रयोग किया जैसे – घुड़सवारी, शिकार, तैरना, तीरन्दाजी और तलवार चलाना। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने अनुयायियों को भी ऐसे ही तैयार होने का आदेश दिया। उन्होंने बहादुरी के साथ पहाड़ी राजाओं के साथ लड़ाईयाँ लड़ी तथा उसी बहादुरी ने उन्हें मुगल राजाओं के साथ धर्मयुद्ध लड़ने का विश्वास प्रदान किया। उनका उद्देश्य एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करने का था जो अपने मनोबल के वेग से अपने आपको पुरोहितों और शासकों के जुल्म से मुक्त कर सके। इसके साथ उनकी भावना यह भी थी कि वह राष्ट्र इतना शक्तिशाली भी हो जो कि अपनी इस आजादी के आगे सुरक्षा भी बनाए रख सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उन्होंने खालसा पंथ का निर्माण किया।

## 7.5 खालसा पंथ का निर्माण

सन् 1699 की बैसाखी के दिन उन्होंने अपने अनुयायियों को आनन्दपुर में इकट्ठे होने का आदेश दिया। आदेशानुसार बहुत बड़ी संख्या में लोग निर्धारित तारीख पर इकट्ठे हो गए। गुरू गोविंद सिंह ने आमंत्रित लोगों को अपने उद्देश्य का मतलब समझाया। उन्होंने उनको अपने धर्म के लिए अपनी जान न्यौछावर कर देने के लिए आगे बुलाया। बार–बार बुलाने पर लाहोर का खत्री दयाराम, दिल्ली का जाट धर्मदास, द्वारका का घोबी मोखमचन्द, जगन्नाथपुरी का रसोड़दार हिम्मत और बिदर का नाई साहिब चन्द एक के बाद एक आगे आए। सम्पूर्ण संगत में सनाटा छा गया। गुरू ने उन्हें धर्म दीक्षा दी। उन्होंने उन्हें 'सिंह' के नाम से सम्मानित किया तथा उन्हें दीक्षित कर खालसा घोषित कर दिया। गुरू ने उन्हें अपने उद्देश्य से अवगत कराकर प्रचलित अन्याय से लड़ने का उद्बोधन किया। स्वयं गुरू गोविंद सिंह को उनके पंच प्यारों ने दीक्षा प्रदान कर दी। इसी अवसर पर उन्होंने उच्च सुरों में सुनाया "खालसा ही गुरू है और गुरू ही खालसा है।" उन्हें एक ईश्वर में विश्वास करने की शिक्षा दी गई। उन्होंने कहा कि सब

समान होना चाहिए, नीचे ऊँचे सभी समान हैं। जातिवाद को तो भूल ही जाना चाहिए। उन्हें साथ बैठकर एक ही बर्तन में भोजन करने के निर्देश दिए गए। ताकि वे सब अपने को समान समझें। उन्हें अब ' सिंह' या ' शेर' कह कर पुकारा जाने लगा। पावित्रता और शान्ती के साथ–साथ बहादुरी भी अब उनके धर्म का अंग बन गई। अब उन्हें तम्बाकू नहीं पीना था। और न ही अपने बाल कटवाने थे। अब उन्हें अपने पूर्व धन्धे (कृतनाश) अपने परिवार सम्बन्ध (कुलनाश), अपने पुराने धर्म विचार (धर्मनाश) और अपनी पुरानी परम्पराओं और रिवाजों (कर्मनाश तथा रीतनाश) का परित्याग करना था। अब उन्हें तलवार धारण करनी थी तथा गुरू के आदेशों का पालन करना था। सभी सिक्खों को भिन्न पहचान प्रदान की गई। सभी सिक्खों को हुक्म है कि वे पाँच 'क' को धारण करें ये हैं – (1) केश (खुले बाल) (2) कच्छा (अन्डरवियर) (3) कंघा (4) कड़ा (लोहे की चूड़ी) (5) कृपाण (एक कटार)। गुरू गोविन्द सिंह की प्रतिभा का सबसे बड़ा वरदान था उनके द्वारा प्रदत्त 'खालसा पंथ'। इसमें मातृत्व भावना का उदय किया, जिसने समय के साथ परिपक्व होने पर ऐसे बहादुर पैदा किए जिनके मुकाबिल कहीं अन्यत्र नहीं मिलते और ऐसे निराले भक्त भी हुए जिनके त्याग भावना का जवाब नहीं है। खालसा पंथ के लोगों को गुरू ने एक पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रेरित किया था, जिसका अभिप्राय दुनिया के असत्य को सत्य करना था। उन्होंने यह भी कह दिया कि इस उद्देश्य के क्रियान्वयन में दुनिया की किसी भी शक्ति से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। खालसा में वो जादू था कि मानवता का वह तबका जिसे समाज की तलछट (गन्दगी) कहा जाता था, एक जादुई तरीके से समृद्ध एवं सशक्त तबके में परिवर्तित हो गया। इस प्रकार के सामाजिक सुधार के दर्शन लोगों ने पूर्व में नहीं किए थे। कनिघम ने कहा है कि, "खालसा पंथ का निर्माण कर गुरु ने निराश लोगों की सुख शक्ति को जागृत कर उन्हें एक आशाप्रद जीवन प्रदान किया जिससे कि वे सामाजिक स्वतंत्रता और राष्ट्र उत्थान के योग्य बन सकें।" इस प्रकार का परिवर्तन करते हुए गुरू गोविंद सिंह ने कभी भी अपने पूर्वज गुरूओं के मार्ग की अपेक्षा नहीं की। राजनीतिक सत्ता प्राप्ति हेतु गुरू ने खालसा के हाथों तलवार नहीं थमाई थी। वरन् वे तो गरीब और पिछड़े तबके का उद्धार करना चाहते थे तथा कुण्ठित एवं अत्याचारी सरकार का अंत चाहते थे। गुरू गोविन्द सिंह ने धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा दार्शनिक क्षेत्र में अपने पूर्व गुरूओं का अनुसरण किया तथा उन्हीं की जोत में अपनी जोत लगाई। खालसा पंथ का विचार वैसे तो प्रारम्भ में गुरू नानक के द्वारा ही दिया गया था परन्तु गुरू गोविंद सिंह के हाथों वह अपनी चरम अवस्था को पहुंच गया था।

## 7.6 सिद्धान्त दर्शन अथवा खालसा पंथ की विशेषताएँ

खालसा पंथ की मुख्य–2 विशेषताओं को निम्न प्रकार से अंकित किया गया है :–

(1) गुरू नानक तथा उनके उत्तराधिकारियों ने दुनिया को परमात्मा का निवास स्थल माना था। इस दर्शन ने निश्चित रूप से मानवतावादी दृष्टिकोण प्रदान किया था। इस दर्शन में तपस्या और वैराग्य वृति के लिए कोई स्थान नहीं है।

(2) इस दर्शन में यह भी बताया गया कि मानव जीवन के सभी आधारों के पीछे आध्यात्म और शिष्टाचार परिलक्षित होना चाहिए। भगवान के प्रति सजगता, नि:स्वार्थ प्रेम, सत्य,

ईमानदारी, पवित्रता, दया, उदारता, जन सेवा की भावना, दान शीलता, मोह शून्यता, विनम्रता, सहनशीलता।

(3) (3) सभी गुरूओं के हृदय में समानता का सिद्धान्त सबसे ऊपर था। उनकी समानता सर्वत्र और मानव बंधुत्व के लिए थी। समानता का क्षेत्र अपने अनुयायियों तक ही सीमित नहीं था। दूसरे धर्म के लोगों को भी समान ही मानते थे । उन्होंने सर्वधर्म बंधुत्व का संदेश दिया था।

(4) उन्होंने जातिवाद और जातिवाद के भेदभाव का बहिष्कार किया। सबके लिए समान संविधान चाहे कोई ऊँचा हो या नीचा, का सिद्धान्त उनको रास आया। इसी तत्य को उन्होंने दृढ़ता से प्रतिपादित भी किया। बंधुत्व की भावना विभिन्न मानव संबंधों की मुख्यधारा बन चुकी थी, जिसमें से प्यार, सहनशीलता और निष्पक्षता की खुशबू आ रही थी।

(5) न्याय की अवधारणा गुरूनानक और उसके, उत्तराधिकारियों के सिद्धान्तों में परिलक्षित हो रही थी। उनका परिचयात्मक घनिष्ठ सम्बन्ध समाज शोषित और पिछड़े वर्ग से ही रहा। उनके कल्याण और उद्धार से गुरूओं का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। उन्होंने सामाजिक न्याय को प्राथमिकता दी है।

(6) सभी प्रकार के शोषण, अन्याय तथा विभिन्न जुल्मों को जग जाहिर कर उसकी निन्दा की जाती थी। अन्याय और जुल्म से समझौता करना पाप माना जाता था। इससे लड़ना और संघर्ष करना निर्भीकता और शूरवीरता के गुणों में माना जाता था।

(7) गुरू गोविन्द सिंह के लेखों में इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते है कि उनकी विचार धारा और उनके पूर्व गुरूओं की विचारधारा में ऐकात्मकता थी। अगर कुछ भिन्नता दृष्टिगोचर होती थी तो वह केवल विशिष्ट परिस्थितियों के फलस्वरूप में विशेष सिद्धान्त पर केवल जोर देने की दृष्टि से होता था।

(8) गुरू गोविन्द सिंह शक्ति के प्रयोग को मुख्य आधार प्रदान करते थे और इसी को 'धर्मयुद्ध' की संज्ञा दी जाती है। मगर इस सिद्धान्त को सैनिकवाद से नहीं जोड़ना चाहिए जहां शक्ति का प्रयोग शक्ति प्राप्ति के लिए होता है तथा दूसरों पर हमला कर निजी अधिनायकवाद की स्थापना करना होता है। उनका धर्मयुद्ध का लक्ष्य उचित और श्रेष्ठ की प्राप्ति था – इसके अतिरिक्त शक्ति का प्रयोग तब ही अंत में किया जाता था; जहां शांति साधन अयोग्य सिद्ध हो जाता था और हिंसा का साधन ही एकमात्र साधन रह जाता था।

खालसा पंथ की स्थापना को समझने के लिए ये सब दार्शनिक पक्ष बहुत महत्वपूर्ण है। ऊपर गिनाए गये सब महत्वपूर्ण विशेषताएँ हमें यह निर्णय आसानी से करने को प्रेरित करती है कि खालसा पंथ एक राजनीतिक–सामाजिक व्यवस्था थी जिसका आधार आध्यात्मिक और नैतिकता था। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते है कि खालसा पंथ जनता की एक सामूहिक संरचना थी। जिसने धर्म से शक्ति और प्रेरणा प्राप्त की जिसका उद्देश्य एक राजनीतिक तथा सामाजिक क्रांति की रचना करना था जिसकी मुख्य व्यवस्था समानता – न्याय और स्वंतत्रता के द्वारा की जा सकती है।

## 7.7 मुख्य शब्द

| | |
|---|---|
| सिक्ख | शिष्य |
| लंगर | नि:शुल्क रसोड़ा |
| मंजी व्यवस्था | प्रवचन के केन्द्र |
| सरोवर | तालाब |
| मसंद | गुरू के दूत |
| दसवंश | आय का दसवां भाग |
| बैसाखी | त्यौहार जो बैसाख माह में उल्लास पूर्वक मनाया जाता है। यह फसल काटने की ऋतु का भी प्रतीक है। |
| खालसा | शुद्ध |
| पंथ | दर्शन |
| खालसा | पंथ सिक्ख धर्म का दर्शन |

## 7.8 संदर्भ ग्रन्थ


| | | |
|---|---|---|
| इन्द्रभूषण बनर्जी | : | ईवोल्युशन ऑफ द खालसा, भाग I & II |
| तेजा सिंह, गंडा सिंह | : | ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ सिक्खस् |
| जी. सी. नारंग | : | ट्रांसफोरमेशन ऑफ सिक्खिज्म |
| हरी राम गुप्ता | : | ए हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस् |
| जे. एस. ग्रेवाल | : | न्यू केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ दी इंडिया – सिक्खस् ऑफ दी पंजाब |
| खुशवंत सिंह | : | ए हिस्ट्री ऑफ दी सिक्खस् Vol. I |

# इकाई – 8

# भक्ति आन्दोलन के अन्य संत एवं उनकी शिक्षाऐं

**इकाई की रूपरेखा**


8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 शंकराचार्य

8.3 रामानुजाचार्य

8.4 रामानन्द

8.5 माध्वाचार्य

8.6 निम्बार्क

8.7 वल्लभाचार्य

8.8 चैतन्य महाप्रभु

8.9 नामदेव

8.10 दादू

8.11 रैदास

8.12 मीरा बाई

8.13 सन्त धन्ना

8.14 सन्त पीपा

8.15 जयदेव

8.16 संदर्भ ग्रन्थ


## 8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन इस उद्देश्य हेतु कराया जा रहा है कि नानक व कबीर के अलावा भी अन्य भक्ति संत हुये है जिनका इस आन्दोलन से काफी योगदान रहा है। इसके साथ ही देश के कोने–कोने में इन अन्य संतों ने जाकर भक्ति का विकास किया एवं समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों को दूर करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

## 8.1 प्रस्तावना

जिस भक्ति की व्याख्या गीता में की गई थी वह कर्म तथा ज्ञान द्वारा प्राप्त होती है। इन्द्रियों को वश में करके बुद्धि को स्थिर करना तत्पश्चात निष्काम कर्म करते हुये सर्वस्व को ईश्वर के प्रति अर्पित कर देना ही इसकी प्राप्ति की क्रिया है। इसमें प्रेम का अंश कम है त्याग पर अधिक बल दिया गया है। हमारे देश में मोक्ष की चाह सबको रही है चाहे वह विद्वान हो या मूर्ख। उसकी प्राप्ति हेतु अनेक साधनों का सहारा लिया जाता है।

उत्तरी भारत में कबीर एवं नानक, जिनका अध्ययन हमने दो पृथक–पृथक अध्यायों में किया है, ने भक्ति मार्ग का सहारा लिया और इन दोनों संतों की वाणी एवं कर्मो से यहां पर यह आन्दोलन काफी प्रगति कर चुका था। लेकिन इनके अलावा भी अनेक ऐसे संत थे जो इस

आन्दोलन को आगे बढ़ाने में संलग्न थे जिनका उल्लेख न करना इस आन्दोलन के साथ विद्वेषतापूर्ण व्यवहार करना होगा।

भक्ति आन्दोलन सर्वप्रथम दक्षिणी भारत में आरम्भ हुआ, परन्तु धीरे–धीर सारे देश में फैल गया। यह एक योजनाबद्ध तरीके से चलने वाला आन्दोलन नहीं था। समय–समय पर कई धर्म–सुधारक होते रहे, जिन्होंने धर्म में व्याप्त बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया। इन सभी सुधारकों के प्रयत्नों को सामूहिक रूप से भक्ति आन्दोलन की संज्ञा दी जाती है भक्ति आन्दोलन के मुख्य सन्तों के जीवन का विवरण इस प्रकार है –

## 8.2 शंकराचार्य

दक्षिणी भारत में भक्ति आन्दोलन के प्रथम प्रवर्तक शंकराचार्य थे, जिनका जन्म 788 ई. मैं मालाबार में काल्दी नामक स्थान पर हुआ था। वे एक ब्राहमण परिवार में पैदा हुए थे। शंकराचार्य ने छोटी–सी आयु में वेदों और उपनिषदों का अध्ययन कर लिया था और वे उच्चकोटि के विद्वान बन गए। जैन धर्म और बौद्ध धर्म के विद्वानों को उन्होंने शास्त्रार्थ में पराजित किया और वेदों तथा उपनिषदों को अपनी शिक्षा का आधार बनाया। उन्होंने "अद्वैतवाद दर्शन" का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार ब्रहम और जगत् एक ही है। भारी सृष्टि का निर्माण ब्रह्मा ने किया है और यह उसी में लीन हो जायेगी। उन्होंने भगवत् गीता पर टिप्पणी लिखी। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक बौद्ध फिर से हिन्दू धर्म के अनुयायी बन गए।

शंकराचार्य एक दार्शनिक होने के साथ–साथ उच्चकोटि के सुधारक भी थे। उन्होंने देवी पूजा से संबंधित कई बुराईयों को दूर किया। इसके अतिरिक्त पूर्व में जगन्नाथपुरी, पश्चिम में द्वारका. उत्तर में बद्रीनाथ और दक्षिण में श्रृंगेरी, इन चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की । हिन्दू धर्म की सेवा करते हुए 32 वर्ष की अल्पायु में अमरनाथ (काश्मीर) नामक स्थान पर उनकी मृत्यु हो गई। श्री के. एम. पन्निकर ने लिखा है कि, "शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठों तथा उनके अधीन काम करने वाली छोटी–छोटी संस्थाओं और उनके अधिकारियों ने हिन्दू धर्म के प्रभाव को कई शताब्दियों तक भारत वर्ष में जीवित रखा।"

शंकराचार्य के अद्वैतवाद मैं प्रेम और भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं था। इसलिए उनके विचार जन–साधारण के लिए अनेक लाभदायक सिद्ध नहीं हुए। इससे दक्षिण भारत की जनता में निराशा छा गई। इस निराशा को रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, निम्बार्क, वल्लभाचार्य और रामानन्द आदि वैष्णव आचार्यों ने दूर किया। उन्होंने वेदान्त सूत्र की नई व्याख्या कर भक्ति परम्परा को दार्शनिक आधार प्रदान किया।

## 8.3 रामानुजाचार्य

रामानुजाचार्य को दक्षिण के वैष्णव आचार्यों का प्रमुख और मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का जन्मदाता माना जाता है। उनका जन्म 1017 ई. में दक्षिण में मद्रास के पास श्री रंगम के आचार्य परिवार में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात वेदान्त की शिक्षा प्राप्त करने के लिए ये कांजीवरम पहुंचे। यहां उन्होंने यादव प्रकाश को अपना गुरू

बनाया। वेदों की रचनाओं के अर्थ को लेकर उनका अपने' गुरू से मतभेद हो गया इसलिए वे गुरू को छोड़कर चल दिये। कुछ दिनों तक गृहस्थ जीवन बिताने के बाद ये सन्यासी बन गये। रामानुज ने सम्पूर्ण भारत के धार्मिक स्थानों का भ्रमण किया और सभी धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। इसके पश्चात् उन्होंने पांच ग्रन्थ लिखे, जो इस प्रकार हैं –।

(1) वेदान्त सारम् (2) वेदान्त संग्रहम् (3) भगवद् गीता की टीका, (4) वेदान्त दीपक और (5) ब्रह्मसूत्र की टीका आदि। ब्रह्मसूत्र में रामानुज ने विशिष्ट दर्शन का प्रतिपादन किया है। यह ग्रन्थ "श्री भाष्य" के नाम से भी प्रसिद्ध है।

रामानुज ने शंकराचार्य के द्वैतवाद में कुछ संशोधन कर एक नये मत का प्रतिपादन किया, जिसे "विशिष्टा द्वैत" कहते हैं। इस मत के अनुसार ब्रह्म, जगत, जीव, तीनों ही एक–दूसरे से भिन्न है, परन्तु उनके शरीर और आत्मा की तरह निकट संबंध है। तीनों ही सत्य और अनादि है उनके अनुसार जीव और जगत् ईश्वर पर आधारित है। रामानुज ने कहा कि ईश्वर सर्वगुण सम्पन्न, सर्वज्ञ, सर्वत्र और सर्वशक्तिमान है उसी ने सारी सृष्टि का निर्माण किया है। रामानुज ने सगुण ईश्वर की भक्ति पर बल दिया। जगत् जीव और ईश्वर के बीच विशिष्ट संबंध के कारण ही उनका मत "विशिष्टाद्वैत" के नाम से प्रसिद्ध है।

रामानुज ने कहा कि मनुष्य भक्ति और प्रपत्ति इन दो मार्गों पर चलकर मोक्ष को प्रापत कर सकता है। भक्ति का आधार उपनिषदों में निर्देशित ज्ञान योग कर्म योग एवं भक्ति योग है। प्रपत्ति के मार्ग के अनुसार कोई भी व्यक्ति ईश्वर में पूर्ण विश्वास कर यदि अपने को उसके सामने समर्पित कर दे, तो उसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है। रामानुज ने कहा कि शूद्र और नीच जातियों के लोग भी इस मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त कर सकते है। यह सिद्धान्त बहुत सरल था। अब शूद्र तथा नीची जाति के लोग भी उच्च वर्गों के साथ वैष्णव धर्म में आने लगे। अब उन्हें कोई दूसरा मार्ग ढूंढने की आवश्यकता नहीं रही। रामधारी सिंह "दिनकर" ने लिखा है कि, "भक्ति पर आधारित बृहत मानवता तथा वर्णाश्रम धर्म के बीच एक प्रकार का समझौता था।" डॉ. युसूफ हुसैन के अनुसार –"रामानुजाचार्य मध्यकालीन भक्त सन्तों के पथ–प्रदर्शक थे। समाज–सुधार की दृष्टि से उनका विशेष महत्व है।"

रामानुज की मृत्यु 1137 ई. में हुई। दक्षिण भारत में उनके विचार बहुत लोकप्रिय हुए। रामानुज ने तिरूपति को वैष्णव धर्म का प्रमुख केन्द्र बनाया। इनका सम्प्रदाय श्री सम्प्रदाय कहलाता है।

## 8.4 रामानन्द

डॉ. ताराचन्द के अनुसार – "रामानन्द भक्ति आन्दोलन के क्षेत्र में उत्तर व दक्षिण के बीच एक कड़ी एवं सेतु के समान थे।" रामानंद ने भगवान राम की भक्ति का प्रचार किया। उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन के प्रसार का श्रेय रामानन्द को है। उनका जन्म 1299 ई. में प्रयाग में एक कन्याकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने प्रयाग तथा बनारस में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भारत के विभिन्न भागों का भ्रमण किया। इन्होंने रामानुज को अपना गुरू बनाया। उत्तर भारत में राम–भक्ति का प्रचार करते हुए अपने वैष्णव धर्म को लोकप्रिय

बनाया। इनके द्वारा स्थापित सम्प्रदाय "रामावत सम्प्रदाय" कहलाता है। इन्होंने अपने गुरू के विचारों का समस्त उत्तरी भारत वर्ष में प्रचार किया।

रामानन्द यद्यपि ब्राह्मण थे, फिर भी ऊँच–नीच के भेद–भाव में विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने जाति व्यवस्था की स्पष्ट रूप से कभी आलोचना नहीं की। उनके विचार काफी उदार थे। उन्होंने शूद्रों और मुसलमानों को भी अपना शिष्य बनाया। उस समय स्त्रियां धार्मिक कार्यो में भाग नहीं ले सकती थी, फिर भी रामानन्द ने उनको अपनी शिष्या बनाया। उन्होंने कहा कि भगवान राम के लिए सभी जाति के व्यक्ति बराबर हैं। इसलिए सभी भाई–भाई है। भगवान् राम के भक्त बिना किसी भेद–भाव के एक साथ जी सकते है और नीची–से–नीची जाति के व्यक्ति भी भगवान राम की भक्ति के माध्यम से मोक्ष प्राप्त कर सकते है। इस प्रकार उन्होंने समाज की सभी जातियों के व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास किया। उनके शिष्यों में सभी जातियों के लोग थे। भवानन्द, सुखानन्द, आशानन्द आदि ब्राह्मण थे। रैदास चमार, कबीर जुलाहा, धन्ना जाट, सदना कसाई और पीपा राजपूत थे। पद्मावती और सुरसरी आदि स्त्रियां उनकी मुख्य शिष्याऐं थी। रामानन्द ने गंगा नामक एक वैश्या को भी अपनी शिष्या बनाया था। इस प्रकार उन्होंने जाति–पॉति और भेदभाव से रहित समानता और विश्व–बंधुत्व पर आधारित एक नई सामाजिक व्यवस्था का सूत्रपात किया।

रामानन्द ने भक्ति आन्दोलन को तीन प्रकार से प्रभावित किया। प्रथम, राम की भक्ति का प्रचार किया। द्वितीय, उन्होंने सामाजिक समानता पर जोर दिया और सभी जाति के व्यक्तियों एवं स्त्रियों को अपना शिष्य बनाया। स्त्रियों और पुरुषों को बराबर का दर्जा दिया। इन्हीं के प्रयासों से भक्ति आन्दोलन और वैष्णव सम्प्रदाय की लोकप्रियता बढ़ीं निम्न जातियों का स्तर ऊँचा उठा और स्त्रियों के सम्मान में वृद्धि हुई। तृतीय, इन्होंने संस्कृत के स्थान पर हिन्दी, भाषा में अपने उपदेशों का प्रचार किया। इससे पहले के धर्म–सुधारकों ने संस्कृत भाषा में अपने उपदेश दिए थे, जो जन साधारण की समझ में नहीं आये। इससे दो लाभ हुए – पहला तो यह कि इनके उपदेश जन–साधारण के समझ में आ गए और दूसरा यह कि देश में हिन्दी–साहित्य का विकास हुआ।

इसलिए यह कहा जाता है कि मध्यकाल में रामानन्द के समय से भक्ति आंदोलन शुरू होता है। इन्होंने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए साधुओं का एक नया संगठन स्थापित किया, जिसे वैरागी" कहते हैं। इस संगठन के मुख्य केन्द्र अयोध्या और चित्रकूट में थे।

रामानन्द की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायी दो वर्गों में विभाजित हो गए। पहले वर्ग में वे भक्त थे, जो वेद तथा वर्णाश्रम के समर्थ थे। इस वर्ग के प्रसिद्ध सन्त तुलसीदास और नाभादास आदि हुए। दूसरे वर्ग में वे भक्त थे, जो वर्णाश्रम व्यवस्था में विश्वास नहीं करते थे, किन्तु रामानन्द के भक्ति मार्ग को अपना आदर्श मानते थे। इस वर्ग में प्रसिद्ध सन्त कबीर और दादू आदि थे। डॉ. ताराचन्द के शब्दों में – "रामानन्द के उपदेशों ने धार्मिक विचारधारा के दो सम्प्रदायों को जन्म दिया, एक अनुदार और दूसरा उदार। पहले संप्रदाय ने प्राचीन विश्वासों में आस्था रखी और धार्मिक सिद्धान्तों तथा विधियों में केवल बहुत मामूली परिवर्तन किए। दूसरे ने अधिक स्वतंत्र मार्ग का अवलम्बन और ऐसे धर्म का निर्माण करने का प्रयास किया, जो

विभिन्न धर्मों के मनुष्यों को विशेष रूप से हिन्दुओं और मुसलमानों को स्वीकार हो। पहले सम्प्रदाय में सर्वश्रेष्ठ नाम तुलसीदास का और दूसरे में कबीर का है।

## 8.5 माध्वाचार्य

इनका जन्म 1199 ई. में कन्नड़ जिले के उड़िपी नगर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये 25 वर्ष की आयु में सन्यास ग्रहण करके निकल पड़े तथा इन्होंने शास्त्रार्थ में अनेक विद्वानों को परास्त किया। वे वाद–विवाद में प्रवीण थे। इन्होंने अद्वैतवाद का खण्डन कर द्वैतवाद का प्रतिपादन किया। वे विष्णु के उपासक थे। उन्होंने जीव तथा जगत को ईश्वर पर आधारित माना। उन्होंने ईश्वर को सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापी माना तथा भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम बताया।

## 8.6 निम्बार्क

निम्बार्क रामानुज के समकालीन थे। इनका जन्म मद्रास के बेलारी जिले में हुआ था। ये मध्यममार्ग के समर्थक थे। अत: इन्होंने अद्वैतवाद का खण्डन करते हुए द्वैताद्वेतवाद का प्रतिपादन किया। इनका मानना था कि जीव जगत एवं ईश्वर में भेद है और नहीं भी। भेद इसलिए है क्योंकि वह ईश्वर पर निर्भर है। यह भेदाभेद का सिद्धांत भी कहलाता है। निम्बार्क ने कृष्ण की साकार भक्ति पर बल दिया। वे अवतारवाद के समर्थक थे। उनका मानना था कि पुनर्जन्म का कारण अविद्या तथा अज्ञान है, अतः इससे बचने के लिए मनुष्य को कृष्ण की भक्ति करनी चाहिए।

## 8.7 वल्लभाचार्य

वल्लभाचार्य का जन्म 1481 ई. में तैलंग ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये आरंभ से ही उद्कृष्ट विद्वान थे। ये कृष्ण के उपासक थे तथा इन्होंने उसकी भक्ति का प्रचार किया। भागवत धर्म में इनकी बहुत श्रद्धा थी। इन्होंने विष्णु स्वामी के विचारों को सुस्पष्ट कर पुष्टि मार्ग का प्रतिपादन किया। इसका आधार गीता तथा ब्रह्मसूत्र था। इन्होंने प्रेम पर बल दिया तथा ब्रह्म के समान जीव को भी सत्य माना। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को श्रीकृष्ण की भक्ति करनी चाहिए। यही आत्मिक शांति का साधन है। प्रसिद्ध कवि सूरदास उनके शिष्य थे। वल्लभाचार्य ने "अणु भाष्य सिद्धांत रहस्य" तथा भागवत टीका सुबोधिनी आदि दार्शनिक ग्रंथ लिखे। उन्होंने अविद्या को पुनर्जन्म का कारण बताया तथा इससे बचने के लिए कृष्ण की भक्ति पर बल दिया। उन्होंने भक्ति का उद्देश्य मुक्ति के स्थान पर कृष्ण प्राप्ति को बनाया।

## 8.8 चैतन्य महाप्रभु

चैतन्य महाप्रभु महान् बंगाली सन्त थे। इनका जन्म 1585–86 ई. में नवद्वीप के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इन्होंने धर्म–ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा कुछ समय गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। इसके बाद ये नित्यानन्द से आध्यात्मिक चर्चा करने लगे। नवद्वीप से ये चैतन्यपुरी तथा तत्पश्चात् दक्षिण, वृन्दावन होते हुए पुरी पहुंचे व वहीं शेष जीवन व्यतीत किया।

चैतन्य की ज्ञान–पिपासा वेदों तथा उपनिषदों से शांत नहीं हुई। वे कृष्ण के भक्त थे तथा उन्हें ईश्वर मानते थे। उन्होंने मोक्ष प्राप्ति के लिए कृष्ण की भक्ति पर बल दिया है और वृन्दावन को भूमि पर स्वर्ग माना है। उनके एक भजन का अर्थ इस प्रकार है – "हे प्रभो। मैं आपसे न धन, न विद्या और न ही काव्य शक्ति मांगता हूं। मैं आपसे केवल अपनी आत्मा के लिए आपके प्रति थोड़ी–सी भक्ति चाहता हूं....। अभिमान से कभी भी कोई लाभ नहीं हो सकता।" चैतन्य ने कहा था, "श्री कृष्ण के प्रति आसवत होना ही भक्ति है और यह भक्ति ज्ञान, कर्म वैराग्य और अभिलाषा से शून्य होनी चाहिए। चैतन्य तन्मय होकर कृष्ण की भक्ति करते थे। उन्होंने भक्ति में संगीत एवं नृत्य का भी सहारा लिया, जो संकीर्तन कहलाया। संकीर्तन मथुरा–वृन्दावन से पूर्वी बंगाल तक प्रचलित हो गया। इसमें लोग सामूहिक रूप से सड़क पर कृष्ण के भजन गाते हुए तथा नृत्य करते हुए मस्ती में कई बार मूर्छित हो जाते थे।

चैतन्य धर्मग्रन्थों तथा मूर्तिपूजा के समर्थक थे, किन्तु उन्होंने धार्मिक आडम्बरों एवं कर्मकाण्डों का विरोध किया। जाति–प्रथा के संबंध में उन्होंने मध्यम मार्ग अपनाया। वे मन्दिरों में निम्न वर्गों तथा मुसलमानों के प्रवेश के विरूद्ध थे, किन्तु उन्होंने कृष्ण भक्ति तथा संकीर्तन के लिए सभी को योग्य माना। वे सामाजिक बुराइयों को दूर करने के प्रति उदासीन रहे। उनका मानना था कि ईश्वर की दृष्टि में सभी समान है। उन्हें कृष्ण का अवतार माना जाने लगा। वर्तमान में भी बंगाल में उनके हजारों अनुयायी है। के. एम. पन्निकर के अनुसार, "चैतन्य के इस आंदोलन के परिणामस्वरूप संस्कृत भाषा में बहुत–सी रचनायें रची गयी और भारतीय विचारधारा पर भी उनके आंदोलन का गहरा प्रभाव पड़ा।"

## 8.9 नामदेव

डॉ. भण्डारकर के अनुसार नामदेव का जन्म तेरहवीं सदी में महाराष्ट्र में एक दर्जी परिवार में हुआ था। ये गृहस्थ थे। इन्होंने मोक्ष प्राप्ति के लिए भक्ति पर बल दिया। वे जाति–प्रथा, मूर्ति पूजा तथा ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरोधी थे एवं एकेश्वरवाद के समर्थक थे।

## 8.10 दादू

दादू का जन्म अहमदाबाद में हुआ, किन्तु इनका अधिकांश समय जयपुर के नारायणा नामक स्थान पर बीता। ये निर्गुण उपासना के समर्थक थे। वे अकबर के समकालीन थे। इन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए "ब्रह्म संप्रदाय" की स्थापना की। वे जाति प्रथा, भेद–भाव, मूर्ति पूजा आदि के विरूद्ध थे तथा एकेश्वरवाद के समर्थक थे। दादू ने ईश्वर की प्राप्ति के लिए भक्ति का मार्ग बताया। उन्होंने लोकसेवा तथा सादे जीवन पर बल दिया। उनका पंथ दादू पंथ कहलाता है। इनके अधिकतर अनुयायी गृहस्थ या व्यवसायी थे। उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों को अपना शिष्य बनाया। जब अकबर उनसे मिलने आया, तो उन्होंने उससे कहा, "मेरा यह शरीर ही एक पुस्तक है, दयानिधान भगवान अपने संदेश लिखते है, मेरा जीवन ही मेरा पांडित्य है, मेरे ही भगवान का मंदिर है, जहां में निर्विघ्न रूप से प्रार्थना में लीन रहता हूं।'

## 8.11 रैदास

रैदास चमार थे तथा इनका जन्म काशी में हुआ था। ये कबीर के समकालीन थे। रैदास निर्गुण उपासना के समर्थक थे। इनके गुरू रामानन्द थे। वे तन्मय होकर ईश्वर की भक्ति करते थे। इन्होंने बाहरी आडम्बरों का विरोध किया तथा मन की शुद्धता एवं मानव प्रेम पर बल दिया। इनका मानना था कि सब हरि में है तथा हरि सब में है। इनके प्रभाव से भक्ति आंदोलन निम्न वर्गों में भी लोकप्रिय होने लगा।

## 8.12 मीरा बाई

मीरा कृष्ण की भक्त थी। उसका जन्म जोधपुर के मेड़ता क्षेत्र में रतन सिंह के यहां हुआ था। मीरा का विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ, किन्तु विवाह के कुछ ही वर्षों बाद वह विधवा हो गयी। अब वह कृष्ण की भक्ति में गयी। वह कृष्ण को अपना पति मानती थी। वह कृष्ण की मूर्ति के सामने नाचने गाने लगी। इससे रूष्ट होकर राणा परिवार ने उसे मरवाने के प्रयास किये, जो असफल रहे।

कृष्ण प्रेम में पूर्ण रिक्त मीरा को जब मेवाड़ में चैन से नहीं रहने दिया तो वह पुष्कर मेड़ता होती हुई वृन्दावन चली गई। यहां पर मीरा ने रूप गोस्वामी के दृढ़ निश्चय को कि वह स्त्रियों का मुख नहीं देखेगा तुड़वाया, वृन्दावन पहुंचने से वह अनेकों संतों के सम्पर्क में आ चुकी थी किन्तु वृन्दावन में आकर उसका भक्ति एक नवीन एवं मौलिक रूप ग्रहण करने लगा। मीरा को मधुर भक्ति के मार्ग पर चलने का सुअवसर अब मिल चुका था। मीरा को जब यह ज्ञात हुआ कि कृष्ण तो वृंदावन छोड़कर द्वारिका जा बसे है तो कलियुग की यह गोपिका उनसे मिलने द्वारिका जा पहुंची। राजा ने अनेक पुरोहितो को मीरा को वापिस चित्तौड़ लाने हेतु भेजा परन्तु मीरा नहीं आई। उसने सुबह उठकर, स्नान किया और मगसर सुदी 5, सम्वत् 1604 को सशरीर परलोक सिधार गई। मंदिर से अदृश्य होने पर उसका पता नहीं चला।

## 8.13 सन्त धन्ना

धन्ना का जन्म 1415 ई. में टोंक जिले के एक जाट परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही धन्ना ईश्वर भक्ति में लीन रहता था अतएव काशी जाकर संत रामानन्द को अपना गुरू बनाया। इसके बाद इनकी भक्ति भावना में सर्वाधिक परिवर्तन निर्गुण भक्ति के रूप में हुआ। गुरू में दृढ़ आस्था रखते हुए ईश्वर प्राप्ति के लिए गुरू भक्ति पर विशेष बल दिया तथा बाह्य आडम्बर का विरोध करते हुए काम व लोभ को ईश्वरीय कार्य में बाधक बताया। उन्होंने जातिगत ऊँच–नीच के भेदभाव का विरोध करते हुए ईश्वर भक्ति पर सर्वाधिक बल दिया।

## 8.14 सन्त पीपा

संत पीपा राजस्थान की गागरौन रियासत के खींची राजा थे। इनके जन्म के विषय में विद्वानों में मतभेद है लेकिन सामान्यतया यह माना जाता है कि इनका जन्म 1360 ई. के मध्य हुआ था। बाल्यकाल से ही भक्ति की ओर प्रवृत थे अतएव उन्होंने अपना राज्य अपने छोटे भाई को देकर काशी के सन्त रामानन्द के शिष्य बन गये। कहा जाता है कि सन्त रामानन्द ने इनको सांसारिक मोह को छोड़कर अपने घर पर ही भक्ति करने और साधु संतों की सेवा करने को कहा। पीपा ने गुरू के आदेश की पालना की। कई वर्षों तक बार–बार पीपा के

आग्रह पर संत रामानन्द अपने कई शिष्यों के साथ गागरौन आये और कुछ समय रहने के बाद जब वे द्वारिका गये तो सन्त पीपा ने भी गृह त्याग करके गुरू के साथ हो गये। देश–विदेश घूमकर फिर वापिस गागरौन आये और एक गुफा में रहने लगे। संत पीपा ने गुरू भक्ति पर सर्वाधिक बल देते हुए बताया कि ईश्वर प्राप्ति से ही मोक्ष संभव है। ये पूजा पद्धति के दिखावे एवं मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते थे। साथ ही समाज में व्याप्त ऊँच–नीच से दूर हटकर सभी को समान मानने पर जोर देते थे।

## 8.15 जयदेव

बंगाल की वैष्णव भक्ति कई मामलों में उत्तर और प्राचीन दक्षिण भारत की भक्ति से अलग थी। इसे दो विभिन्न परम्पराओं ने प्रभावित किया। एक तरफ बंगाल की भक्ति भागवत पुराण की वैष्णव भक्ति परम्परा और कृष्ण लीला के महिमा बखान से प्रभावित थी दूसरी तरफ सहजिया बौद्ध और नाथ पंथियों की परम्परा से। जयदेव से लेकर बाद के अन्य भक्त कवियों में वैष्णव भक्ति का यह प्रभाव झलकता है। जयदेव ने गीत गोविंद की रचना संस्कृत में की थी। उन्होंने मैथिली भाषा में भी गीत रचे थे। इसे बाद में बंगाल की वैष्णव भक्ति परम्परा में समेट लिया गया। उन्होंने राधा एवं कृष्ण के प्रेम को श्रृंगारिक अलौकिक स्वरूप प्रदान किया। इस समय बिहार और बंगाल में सहजिया बौद्ध और नाथपंथी जैसे गैर वैष्णव सम्प्रदाय भी अस्तित्व में थे। ये पंथ धर्म के गूढ़ और भावात्मक तत्वों को आसान एवं स्वाभाविक बनाकर पेश किया करते थे। चण्ड़ीदास और विद्यापति जैसे वैष्णव भक्ति कवि इन गैर वैष्णव पंथों से प्रभावित हुए। बंगला कवि चण्ड़ीदास और मैथिल कवि विद्यापति ने राधाकृष्ण संबंध को महिमा मंडित किया। इनके गीत बंगाल के वैष्णव भक्ति–आन्दोलन के अंग के रूप में विकसित हुए। चैतन्य खुद सहजिया सिद्धान्त से प्रभावित नहीं थे। यह संभव है कि चण्ड़ीदास एवं विद्यापति के माध्यम से बंगाल के भक्ति आन्दोलन पर इन रहस्यवादी पंथों का प्रभाव पड़ा हो पर निश्चित रूप से इस भक्ति आन्दोलन पर मूल प्रभाव भागवत पुराण का ही था।

## 8.16 संदर्भ ग्रन्थ


1. Sushmita Pandey : Medieval Bhakti Movement
2. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय
3. B.N. Lunia : Life and Culture in Medieval India.
4. A.Rashid : Society and Culture in Medieval India.

# इकाई – 9
# सांस्कृतिक संश्लेषण और भक्ति आन्दोलन

**इकाई की रूपरेखा**


9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 भक्ति आंदोलन की उत्पत्ति और विकास

9.3 मध्यकालीन भक्ति आंदोलन और भागवत पुराण

9.4 मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के प्रमुख उन्यायक

9.5 मध्यकालीन धार्मिक वातावरण और भक्ति आंदोलन की आवश्यकता

9.6 कबीर की भक्ति का दर्शन

9.7 हिन्दू व मुस्लिम समाज पर पारम्परिक प्रभाव

9.8 सारांश

9.9 संदर्भ ग्रन्थ।


## 9.0 उद्देश्य

भारत का मध्यकालीन इतिहास अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है। मध्यकालीन भारत में राजनीतिक शक्तियों के अभ्युद्य के साथ–साथ सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर अनेक ऐसी नवीन धाराऐं प्रवाहित हुई थी जिन्होंने एक ऐसी संस्कृति को भारत में विकसित किया जो भारत में समाज में समरसता लाने में सहायक हुई। इस दृष्टि से भक्ति आंदोलन मध्ययुगीन सांस्कृतिक धारा का एक प्रमुख अंग था जिससे संतों और आचार्यों ने हिन्दु समाज में आई जटिलता और असमानता को अपने उपदेशों और सिद्धान्तों से दूर करने का प्रयत्न किया। विभाजित हिन्दु समाज को एक समान धरातल पर लाने का प्रयत्न किया। भक्त, संत कवि तो और एक कदम आगे चले गए और उनहोंने उस समय के प्रधान धर्मों हिन्दू व इस्लाम दोनों के आडम्बरों की कटु आलोचना करके एक ऐसे समाज निर्माण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जिसमें समान दार्शनिक, आध्यात्मिक आधार का निर्वहन करते हुए हिन्दू व मुस्लिम एक साथ रह सकते थे। उक्त उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए भक्ति आंदोलन का अध्ययन किया जाना इस इकाई का उद्देश्य है।

## 9.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते होंगे कि भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से ही अनेक धार्मिक सुधारवादी आंदोलन होते रहे हैं। इस श्रृंखला में बौद्ध, जैन, धर्मों के अतिरिक्त श्री कृष्ण द्वारा "गीता" में दिए गए उपदेशों को भी रखा जा सकता है। इन धार्मिक आंदोलनों का उद्देश्य धर्म के सिद्धान्तों को समयानुरूप तत्कालीन समाज की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित संशोधित करना था। संभवतः इसीलिए एक समान भाव से श्री कृष्ण, बुद्ध, महावीर द्वारा इस संस्कृति का विरोध किया गया था।

इसी श्रृंखला में मध्यकालीन भारतीय धार्मिक आंदोलनों भक्ति और सूफी मत को देखा जाना उचित होगा। उक्त दृष्टि को मद्देनजर रखते हुए इस में भक्ति आंदोलन का अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है कि इस आंदोलन के द्वारा किस प्रकार से सांस्कृतिक संश्लेषण की प्रक्रिया सशक्त हुई जिसकी सफल परिणिति महान अकबर थे।

आगे के पृष्ठों में भारतीय संस्कृति की इस समन्वयवादी दृष्टि को समझने का प्रयत्न किया गया है। इस दृष्टि से भक्ति आंदोलन और सूफीवाद नवीन आंदोलन नहीं थे अपितु यह समय के अनुरूप धर्म को ढ़ालने का प्रयत्न मात्र था। सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप धर्म के संदर्भ को, मूल उद्देश्यों को बिना परिवर्तित किए, परिवर्धित करना भारतीय धर्म और संस्कृति की विशेषता रही है, इसी पृष्ठभूमि को केन्द्र में रखकर इस इकाई का निरूपण किया गया है।

## 9.2 भक्ति आंदोलन की उत्पत्ति और विकास'

सामान्यत: भक्ति आंदोलन को मध्यकाल में विकसित हुआ स्वीकार किया जाता है लेकिन यदि भारतीय बाग्ड्मय का दिग्दर्शन करने का प्रयत्न किया जाय तो ज्ञात होता है कि भक्ति का स्वरूप प्राचीन काल से ही विद्यमान रहा है। संस्कृत साहित्य में भग, भगवत, भागवत तथा भक्ति चार शब्द अधिकांशत: प्राप्त होते हैं। यहां पर सर्वप्रथम उन पर विचार कर भक्ति आंदोलन की प्राचीनता को जानने का प्रयत्न किया जायेगा।

वैदिक साहित्य में "भग" का विवरण आता है, पुराण इंडेक्स से भग की उत्पत्ति "भ" और "ग" से बतलाई गयी है। पुराणों के अनुसार "भ" से तात्पर्य पालनकर्ता से है और "ग" का अर्थ नेता से है। ऋग्वेद के अनुसार "भग" विरुद्ध आदित्य को प्राप्त था जो भग की तरह से मानवों को सुख प्रदान करता था। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में "भगवत्" का उल्लेख आदर सूचक शब्द की तरह आया है। भगवत् उसे कहा जाता है जो आध्यात्मिक शक्तियों को समाहित किए हुए हो। इसी तरह से भगवत् का अर्थ कृष्ण और विष्णु के लिए आया है, यह दोनों ऐसे देवताओं की तरह वर्णित है जो यज्ञ से अधिक महत्व पूजा को प्रदान करते थे।

"भक्ति" शब्द से सामान्य तात्पर्य समर्पण, पूजा से लिया जाता है। भक्ति "भज" धातु से बना है जिसका तात्पर्य स्नेहपूर्ण समर्पण से है। इस तरह से "भक्ति "भागवत्" और भगवत् से तात्पर्य भक्ति मार्ग से है जिसमें स्नेहपूर्ण समर्पण से आराध्य की आराधना करने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। Heimann ने भक्ति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि भक्ति केवल आराध्य के प्रति समर्पण ही नहीं है अपितु भक्ति से तात्पर्य पारस्परिक सहभागिता से है। उनका मत है कि भक्ति "भज" धातु से निर्मित हुआ है तथा भज का अर्थ ही सहकारिता से है।

भक्ति का अत्यन्त प्रारम्भिक स्वरूप ऋग्वेद में भी देखने को मिलता है। ऋग्वेद की दो ऋचाओं में, जिसमें वरूण के नाम है जिसमें वरूण से प्रार्थना की गयी है कि वह अपने भक्तों के आपत्तिजनक कार्यों को क्षमा कर दें। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि भक्ति का विचार भारतीय दर्शन एवं धर्म में अति प्राचीन काल से ही विद्यमान रहा है तथा जिसका सम्पूर्ण विकसित स्वरूप भगवत् गीता में देखने को मिलता है।

भगवत् गीता के अनुसार कि केवल यज्ञ से ही मुक्ति प्राप्त होती है, उचित नहीं है, अपितु निष्काम कर्म और ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रसाद से ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता

है। गीता में कृष्ण का यह कथन यदि कोई 'मुझे श्रद्धा अथवा भक्ति से एक पत्ती, पुष्प जल भर प्रदान करता है तो मैं उसे स्वीकार करता हूं। भक्ति के स्वरूप को समझने में सहायक होता है। गीता की तिथि को लेकर विद्वानों में विवाद है, कुछ इसको चौथी शताब्दी ई. पू. के आसपास निर्धारित करते हैं तो कुछ विद्वान इसका समय तृतीय शताब्दी ई. तक ले जाते है लेकिन निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी के पूर्व या समकालीन समय में भारत में "भक्ति आंदोलन" सम्प्रदाय का आविर्भाव पूर्णत: हो चुका था।

## 9.3 मध्यकालीन भक्ति आंदोलन और भागवत पुराण

जैसा कि हम जानते है कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषता इसका जातिविहीन होना था। अनेक विद्वानों ने इस आधार पर मध्यकालीन भक्ति आंदोलन पर विदेशी धर्मों के प्रभाव को देखने का प्रयत्न किया है लेकिन यदि भारतीय वाङ्गमय के महत्वपूर्ण ग्रन्थ भागवत का अध्ययन किया जाय तो यह भ्रांति निर्मूल सिद्ध हो जाती है। भागवत् पुराण की सामाजिक शिक्षाऐं गीता के ही समान हैं। भागवत् पुराण में एक स्थल पर श्री कृष्ण उद्धव को कहते है – न ही योग, न ही सांख्य या धर्म या वेदों का अध्ययन या धार्मिक तप द्वारा मुझे साधा जा सकता है, मैं.... केवल सम्पूर्ण भक्ति भाव से प्राप्त हो सकता हूं। मेरे प्रति भक्ति से श्वपाकों को भी मुक्ति प्राप्त हो जाती है।" यहां श्वपाक उन्हें कहा गया है जो कुत्तों का मांस भी पका कर खा लेते है। इस प्रकार से भागवत् पुराण का यह कथन उस सामाजिक समानता का द्योतक है जिस पर भक्ति धर्म का बीजारोपण हुआ तथा यही भावना आगे चल कर मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का मुख्य आधार बनी। एक अन्य स्थान पर भागवत् पुराण में कृष्ण रूकमणी से कहते है "हम गरीब (निष्किंच्चन) हैं तथा हम इसलिए सदैव गरीबों द्वारा स्नेह पाते हैं। इसलिए समर्थगण, वास्तव में, मेरे पास आश्रय हेतु आते ही नहीं हैं।

इस तरह भक्ति आंदोलन जिसका विकास भगवद्गीता में देखने को मिलता है तथा जो भगवत पुराण के समय तक आते हुए अपनी चरम अवस्था, में आ गया था। धर्म के क्षेत्र में एक ऐसा प्रयोग था जिसने भारतीय समाज की रूढ़ियों और अवरोधों को दूर करने का प्रयत्न किया था।

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का सामाजिक संश्लेषण की प्रक्रिया में क्या योगदान था इसका अध्ययन करने से पूर्व तत्कालीन उन व्यक्तियों के सिद्धान्तों और विचारों को जानना बहुत आवश्यक है जिनके कारण यह आंदोलन प्रभावी हो सका।

## 9.4 मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के प्रमुख उन्यायक

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन प्रमुख रूप से तत्कालीन आचार्यों और सन्तों की देन है जिनके सिद्धान्तों और उनके प्रचार–प्रसार से तत्कालीन हिन्दू समाज का प्रमुख वर्ग इस आंदोलन से जुड़ गया था। ऐसे प्रमुख आचार्यों में रामानुज, माधव, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य और मधुसूदन सरस्वती प्रमुख हैं। इसी प्रकार से तत्कालीन संतों में ज्ञानदेव और नामदेव, कबीर, नानक, मीरा, सूरदास, तुलसी और एकनाथ का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। यहां पर हम इन आचार्यों और संतों द्वारा भक्ति के सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन नही करके केवल सामाजिक

पक्ष का ही अध्ययन करेंगे जिसके कारण भक्ति आंदोलन तत्कालीन समाज को एक सूत्र में रखने का कार्य कर सका था।

रामानुज भक्ति आंदोलन के प्रमुख सूत्रधारों में एक थे। आप ने दक्षिण भारत में व्याप्त सामाजिक विषमता को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। आर. सी. मजूमदार ने तत्कालीन स्थिति का विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि उस समय उपलब्ध असीम समृद्धि और विलासिता ने धार्मिक स्थलों को भी भ्रष्ट आचरण का केन्द्र बना दिया था जिसके कारण तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक जीवन पतनोन्मुख हो गया था। दूसरी ओर "जगत माया" के सिद्धांत ने तत्कालीन समाज को घोर निराशावादी बना दिया था जिस कारण भारतीय समाज उस समय के आक्रान्ताओं का सामना करने में भी अक्षम हो गया था। ऐसे समय में रामानुज ने ब्राह्मण होने के पश्चात भी एक अ–ब्राह्मण कांची पूर्ण से दीक्षा ली। अपने गुरू के सम्मानार्थ उन्होंने अपनी पत्नी का त्याग किया तथा तत्कालीन समाज में व्याप्त अस्पृश्यता को समाप्त करने के निर्मित उन्होंने अस्पृश्यों को "उच्च अथवा योग्य उत्पत्ति के व्यक्ति" कह कर संबोधित ही नहीं किया अपितु स्नान करने के पश्चात् अपने शूद्र शिष्य के कंधों पर हाथ रखकर आने के कारण ब्राह्मण शिष्य के द्वारा आक्षेप करने पर यह कहा "कि कावेरी का जल केवल मेरे शरीर को साफ करता है लेकिन मेरा मस्तिष्क धर्मदास जैसे पुजारी के स्पर्श से स्वच्छता प्राप्त करता है।" इस तरह से रामानुज ने अपने समय में कार्य और भावना को वास्तविकता प्रदान की जो उस समय की आवश्यकता थी।

रामानुज की इस परम्परा का प्रभाव उसके पश्चात् और समकालीन सभी भक्ति आचार्यों पर प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है, माधव ऐसे आचार्यों में प्रमुख थे। माधव ने भक्ति के विचार को अधिक व्यापक केनवास प्रदान किया तथा उसने अपने सिद्धांतों के द्वारा यह प्रतिपादित किया कि उदार परम्पराओं के अन्तर्गत एक गतिशील, जागरूक सुधारक है, क्रांतिकारी नहीं है उन्होंने शूद्रों को वेदाध्ययन करने के प्रश्न को विवादास्पद नहीं कर उन्हें ईश्वर भक्ति का मार्ग बताया तो स्त्रियों के संबंध में "उत्तमस्तीणाम तू न शूद्रावत" कहकर तथा पशु यज्ञ को नकार कर सामाजिक समन्वय के मार्ग को ही पुष्ट किया। निम्बार्क ने, कि शूद्र वेदाध्ययन नहीं कर सकते है, के संदर्भ में और प्रगतिशील विचार प्रस्तुत किया कि "भक्ति ईश्वर प्राप्ति का केवल सर्वोत्तम मार्ग ही नहीं अपितु यह एक ऐसा उच्च मार्ग है जो समाज के सभी वर्गों के लिए मुक्त है।" ईश्वर की आराधना या पूजा सभी के द्वारा की जा सकती है? ब्राह्मणों से लेकर सभी जाति बाहर लोग ईश्वर पूजा के योग्य है, कहकर भक्ति को अधिक उदार बनाया।

भक्ति आचार्यों में चैतन्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है, चैतन्य का काल रानीतिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्व का था। इस समय दिल्ली सल्तनत की शक्ति तैमूर के आक्रमण से क्षीण हो गयी थी। ऐसे समय में चैतन्य ने पूर्वी भारत में भक्ति का एक ऐसा सन्देश दिया जो हिन्दू धर्म और संस्कृति का पुनर्जागरण कहा जा सकता है। चैतन्य ने शक्ति के सिद्धांत की प्रतिष्ठा की। उनके अनुसार शक्ति के तीन प्रकार स्वरूप शक्ति, माया शक्ति और जीव शक्ति है। चैतन्य ने यह भी प्रतिपादित किया कि भक्ति साधन और साध्य दोनों है। ईश्वर प्राप्ति के

साधन के रूप में यह ज्ञान और कर्म दोनों से श्रेष्ठ है। इस तरह से चैतन्य ने भक्ति को ज्ञान और कर्म से विलग किया।

भक्ति आंदोलन के प्रभाव को ऊपर वर्णित आचार्यों ने एक नवीन आयाम प्रदान कर भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का एक सर्वमान्य सिद्धान्त बनाने का प्रयत्न तो किया ही था, साथ ही ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में जो बाधाएं पूर्व मध्ययुगीन स्मृतिकारों ने जातिगत आधार पर निर्मित कर दी थी, उन्हें भी दूर करने का प्रयत्न किया था। भक्ति आचार्यों के समान ही यह कार्य भक्ति संतों द्वारा भी किया गया। सन्त साहित्य का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि मध्यकालीन संत परम्परा की भी दो प्रमुख धाराएं – परम्परागत और अपरम्परागत थी। प्रथम परम्परा के प्रतिनिधि तुलसीदास थे जो आचार्य परम्परा का प्राकृतिक विकास कर रहे थे। अपराम्परागत धारा के प्रतिनिधि कबीर और नानक थे जिन्होंने मूर्तिपूजा, जातिप्रथा, वेदों की सार्वभौमिकता आदि का विरोध किया।

तुलसीदास की परम्परा के संतों में विद्यापति और चण्डीदास भी प्रमुख कवि हैं। वास्तव में, यह धारा हिन्दुत्व के उस रूप का प्रतिनिधित्व करती है जो हिन्दू संस्कृति का मौलिक रूप है, लेकिन इस परम्परा के संत कवियों ने मध्यकाल में आई इस्लाम की धारा को अपने में समाहित नहीं किया। इन्होंने हिन्दुत्व के मूल रूप को भक्ति प्रसंग में लाकर उसे नवीन अर्थ प्रदान किया। भक्ति के विचार को परिपक्व करने वाले सन्तों के ज्ञानदेव और नामदेव का स्थान भी महत्वपूर्ण है। ज्ञानदेव ने भक्ति को एक ऐसा माध्यम बताया जिसके द्वारा किसी भी प्रकार का पापी भी अपने पाप कर्मों से मुक्त हो सकता है। ज्ञानदेव ने इसी के साथ यह मत भी अभिव्यक्त किया है कि ईश्वर भक्ति में जाति और वर्ग का कोई भेद नहीं है। ज्ञानदेव के अनुसार जाति और लिंग का भेद उसी अवस्था तक रहता है जब तक भक्त ईश्वर का अनुभव नहीं प्राप्त कर लेता है। ईश्वर का अनुभव होते ही जाति और लिंग का भेद मिथ्या हो जाता है। ईश्वर का अनुभव होते ही भक्त के लिए ईश्वर, भक्त और संसार के मध्य कोई भेद नहीं रहता है। ज्ञानदेव के समान ही नामदेव भी भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते हैं लेकिन ईश्वर का उसका अनुभव विविध पक्षीय है। नामदेव के अनुसार ईश्वर हजारों सूर्यों की चमक के समान है। नामदेव संतों के सानिध्य को अत्यंत लाभकारी मानते हैं। इस तरह से यह कहा जा सकता है कि ज्ञानदेव और नामदेव ने भक्ति के सैद्धान्तिक पक्ष को जानने व ईश्वर से एकाकार होने आदि विषयों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखा था। भक्ति सामाजिक समरसता में किस प्रकार लाभदायक हो सकती है? यह इनका विषय नहीं रहा।

## 9.5 मध्यकालीन धार्मिक वातावरण और भक्ति आंदोलन की आवश्यकता

मध्यकालीन भारत में हिन्दू व इस्लाम धर्म प्रमुख थे। हिन्दुओं के धर्म के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व तुलसीदास, विद्यापति, चण्ड़ीदास और सूरदास जैसे कवि कर रहे थे। इनका प्रयत्न जनता की आँखों के सामने हिन्दू धर्म के ऐसे स्वरूप को उजागर करना था जिसे विदेशी प्रभाव से मुक्त रखना था। दूसरी ओर जायसी, खबर और मंझन जैसे प्रेममार्गी सूफी कवि थे, यह भी सूफी मत का प्रचार करते हुए हिन्दू व इस्लाम धर्म के मध्य एकता के संबंध में मौन थे। इन

कवियों ने सूफीमत का ज्ञान हिन्दी कविता में लाकर केवल हिन्दी को समृद्ध ही करने का कार्य ही किया, इससे आगे यह नहीं गये। इस तरह से इस समय दोनों धर्मों के अन्तर्गत एक ऐसे माध्यम की तलाश थी जो समरसता का कार्य कर सके। इस कार्य को एक बहुत बड़ी सीमा तक भक्ति आंदोलन ने पूरा किया। राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में कुछ तो इस्लाम का धक्का खाकर और कुछ सूफियों के प्रभाव में आकर, हिन्दुत्व जगा और जगकर अपने रूप को सुधारने लगा। वास्तव में इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य कबीर ने किया।

## 9.6 कबीर की भक्ति का दर्शन

कबीर के भक्ति दर्शन को समझना अत्यंत दुरूह है क्योंकि कबीर की सभी मान्यताएं एवं विचार उनके शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध किए गये थे। कबीर की समस्त रचनाओं में बीजक सर्वाधिक महत्व के है जिसके संबंध में यह माना जाता है कि इसके अंतर्गत संकलित सामग्री को कबीर ने अपने शिष्य भगवानदास को बोलकर लिखवाया था।

भक्त माल में कबीर की शिक्षाओं का सर्वोत्तम संकलन किया गया है। इसके अनुसार "कबीर ने जाति भेद को अथवा हिन्दू दर्शन के छह सिद्धान्तों की सत्ता को अस्वीकार कर दिया, और ना ही उन्होंने चार वर्णश्रमों को स्वीकार किया। उन्होंने यह घोषणा की कि भक्ति के अभाव में धर्म भी अधर्म हो जाता है और घनघोर तप, व्रत तथा भिक्षा भजनों के अभाव में निरर्थक है। उन्होंने शब्द और साब्दी के माध्यम से हिन्दुओं और तुर्को को समान रूप से धार्मिक उपदेश प्रदान किए। वह एक निश्चय व विश्वास से बोले और उन्होंने संसार को प्रसन्न करने की कभी चिन्ता नहीं की।" वास्तव में कबीर ने किसी मौलिक विचार को जनता के सम्मुख नहीं रखा था, इसके पूर्ववर्ती सहजभावी, नाथ तथा ज्ञानदेव आदि भी जाति आदि भेदों को नकार चुके थे परन्तु कबीर ने जिस साहस से हिन्दू और मुस्लिमों के सम्मुख 15वीं शताब्दी में अपने विचारों को प्रदर्शित किया, वह स्वयं में प्रशंसनीय और मौलिक था।

कुछ विद्वानों ने कबीर के दर्शन की समानता उपनिषदों के दर्शन से करने का प्रयत्न किया है, उनका मत है कि उपनिषदों के ऋषियों ने जिस दर्शन को द्वन्द्व और तर्क से प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया था, कबीर ने उसे प्रत्यक्षत: कह दिया। कबीर के अनुसार भक्ति सहज साधन के समान है जो नेत्र बंद करने से अथवा किसी विशिष्ट मुद्रा अथवा आसन से नहीं होती है अपितु यह एक प्राकृतिक विधि से भी की जा सकती है। कोई भी अप्राकृतिक मार्ग जो ईश्वर भक्ति के लिए किया जाता है, स्वयं को छलने अथवा उन्माद के अतिरिक्त कुछ नहीं है। भक्ति से तात्पर्य ईश्वर का नाम निरन्तर जपने से है जो भक्ति का मुख्य भाव है।

कबीर के समन्वयवादी स्वरूप को समझने के लिए उनके द्वारा प्रतिपादित ईश्वर के रूप को जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है। कबीर की यह एक विशेषता है कि उन्होंने अपनी धार्मिक चेतना को दार्शनिक आडम्बर नहीं प्रदान किया है अपितु उनकी धार्मिक चेतना उनके अनुभवों पर आधारित है। उन्होंने ईश्वर को सभी गुणों की सीमा से बाहर मानकर उसको प्रेम का सर्वाधिक आंतरिक संबंध स्थापित करने वाला कहा है। उदाहरण के लिए जब कबीर कहते हैं कि उनकी भक्ति का मुख्य केन्द्र राम है तो कबीर द्वारा वर्णित राम ऐतिहासिक नहीं है, अपितु वह उनकी भक्ति का माध्यम है। कबीर के ही शब्दों में ' जहा–जहां भक्ति कबीर की तहां–तहां राम

निवास।' से यह ध्वनि निकलती प्रतीत होती है कि कबीर का राम वेदान्तियों का परब्रह्म है जो द्विगुण है। कबीर के राम–कृष्ण वेदान्तियों का परबह्म है जो द्विगुर्ण है। कबीर के राम का स्वरूप भौतिक जगत से वेदों अथवा समय की सीमा से, गुणावगुणों से परे है।

कबीर भक्त को अवनत होने अथवा समर्पण का मार्ग दिखाते प्रतीत होते हैं। कबीर के भक्त का भाव स्वयं के समर्पण का है, यथा –

मै गुलाम मोही बेचा गोसाईं
तन मन धन मेरा रामजी का ताईं।
कबीर कुत्ता राम का, मुतिआ मेरा नाउं
गले राम की जेबडी, जित खइचें तित जाऊं।

इसके आगे कबीर कहते है –

सौ चादर सुर नर मुनी ओड़ी ओड़ी के मैली कीनी चदरिया
दास कबीरा जतन से ओड़ी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

उक्त दौहे में भक्त के विश्वास का भाव कबीर द्वारा प्रदर्शित किया गया है। किसी साधु की प्रत्येक श्वास मदिरा के प्याले की भांति है। यह एक सूफीवादी प्रभाव है। अधेलिखित दौहे में कबीर "हमारा है इस्क मस्ताना" कहकर ईश्वर के प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हुए सूफीवाद से प्रभावित होते हैं।

यद्यपि कबीर की भांति नानक ने बाह्य आडम्बरों को नकारा, परन्तु नानक कबीर के समान सामाजिक संश्लेषण की प्रक्रिया को प्रारंभ नहीं कर सके जैसे कि पहिले कहा जा चुका है कि कबीर ईश्वर भक्ति के प्रचार को करते हुए सामाजिक ताने–बाने को मजबूत करने वाले संत कवियों में अग्रणी थे। कबीर जैसा ही करने वाले अन्य निर्गुण संतों में नामदेव, मलूकदास, दादूदयाल और रज्जब जी थे। कबीर से पहिले नामदेव ने यह कहकर "हिन्दू पूजे देहरा, मुसलमान मसीत, नाम सोई सेविया, जहां देहरा न मसीत," हिन्दू मुस्लिमों के संश्लेषण की प्रक्रिया को प्रारंभ कर दिया था।

कबीर ने हिन्दू व मुस्लिम दोनों धर्मों के आडम्बरों पर चोट करके सरल निर्गुण भक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया जिसे दोनों ही धर्मों के लोग स्वीकार कर सकते थे इसका एक उदाहरण अधोलिखित है –

पंडित। बाद बदौ सो झूठा।
जनेऊ पहिरि ब्राह्मण जो होना मेहरी को क्या पहराया?
वो जन्म की सुद्रिन परसं तुम पाँडे क्यों खायाद्य
सुन्नत करि मुस्लिम जो होना, औरत को क्या कहिए?
अरध सरीरी नारि बखानी ताते हिन्दू रहिए।

इस तरह से यह सभी निर्गुण संत उस समय प्रचलित सभी धर्मों के बाह्माचारों की आलोचना करके एवं उनसे घृणा उत्पन्न कर उस समान दृष्टि को विकसित करना चाहते थे जो समस्त धर्मों का मूल है।

इस धार्मिक समन्वय की प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ कि उस समय के विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट अकबर ने यह मंतव्य व्यक्त किया, "साम्राज्य में, जिसका एक शासक हो, यह अच्छा नहीं है कि प्रजा एक दूसरे के विरोधी मतों में विभाजित रहे। इसलिए हमें उन सबको मिलाकर एक करना चाहिए। किंतु इस प्रकार की वे एक भी जो हो जाऐं और उनेक भी बने रहें" जिसके फलस्वरूप दीने–इलाही धर्म की उत्पत्ति हुई यद्यपि वह अधिक अवधि न चल सका।

भक्ति आन्दोलन के अग्रणी निर्गुणी परम्परा के कवियों की समन्यवादी धारा का सर्वाधिक सुखद परिणाम उर्दू का जन्म था। इसके अलावा बाबर ने अपनी आत्मकथा में जिस "हिन्दुस्तानी तरीके" का उल्लेख किया है वह भारतीय हिन्दू व मुसलमानों के सामान्य लक्षणों से मिलता है। बाबर द्वारा वर्णित इस हिन्दुस्तानी तरीके की परम्परा को संत कवियों ने भी आगे बढ़ाया। यह संत एक तरह से समाज सुधारक थे और सामान्य प्रजा को पीढ़ी–दर–पीढ़ी यह समझाते रहे कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही ईश्वर की देन है, सच्चा धर्म यह सिखाता है कि जात–पॉत का भेद मिथ्या है तथा मनुष्य चाहे किसी भी धर्म को माने, मनुष्य होने के नाते वह दूसरे का भाई है।

इस तरह से निर्गुणी संतों की एकता की परम्परा, जो निर्विवादत: कबीर ने प्रारंभ की थी, का प्रभाव सूफी संतों पर भी हुआ। जो संगीत इस्लाम में वर्जित था वह सूफियों के ईश्वर की आराधना का प्रमुख अंग ही बन गया। संगीत ने न केवल सूफी संतों को ही प्रभावित किया अपितु भारतीय और ईरानी संगीत के पारस्परिक मिलन से कुछ नवीन धाराओं का सूत्रपात भी हुआ जिसके परिणामस्वरूप कव्वाली का प्रदुर्भाव भी हुआ।

संगीत व भाषा के समान ही हिन्दू–मुस्लिम एक्य की परम्परा कला में भी देखने को मिलती है। चित्रकला के क्षेत्र में अपभ्रंश शैली सल्तनत काल में भी प्रचलित रही। सल्तनत काल में अपभ्रंश शैली के चित्रों में ईरानी प्रभाव स्पष्टत: देखने को मिलता है। इसी तरह से वास्तुकला के क्षेत्र में गुलाम वंश के काल में बनी मस्जिदों में हिन्दू मंदिरों जैसी अलंकृत छतें बनी जिसका उदाहरण "कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद" है। कुरान की आयतों को सुन्दर अरबी अक्षरों में उत्कीर्ण कर अलंकृत करना तथा साथ–साथ उनके खाली भाग में अर्ध चक्र तथा कमल बनाना हिन्दू धर्म का ही प्रभाव है। इसी तरह से गयासुद्दीन तुगलक के मकबरे में मुस्लिम महाराजों के साथ–साथ भारतीय उदम्बर का प्रयोग भी किया गया है, यह मकबरा मुस्लिम और भारतीय कला के मिश्रण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

इस तरह से निर्गुण परम्परा के संत कवियों ने जिस धार्मिक एकता को भक्ति आंदोलन के द्वारा प्रसारित और सबल बनाने की चेष्टा की थी उसका प्रभाव तत्कालीन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिलता है और इसी धार्मिक संश्लेषण ने सामाजिक संश्लेषण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया और अन्ततोगत्वा उससे महान मुगल साम्राज्य की नींव स्थापित हुई जिसका प्रतिफल अकबर महान था, जब मुगल शासनों ने इस समन्वयशाली परम्परा को तोड़ने की कोशिश की तो मुगल साम्राज्य ही छिन–भिन्न हो गया।

## 9.7 हिन्दू व मुस्लिम समाज पर पारस्परिक प्रभाव

इस बिन्दु के अन्तर्गत यह देखने का प्रयास किया जायेगा कि धार्मिक एक्य के प्रयास ने हिन्दू व मुस्लिम समाज को किस प्रकार से सम्पूर्ण मध्यकाल में प्रभावित किया। पहिले हम हिन्दू समाज पर इस्लाम के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

हिन्दू–मुस्लिम पारम्परिक सम्पर्क से हिन्दुओं ने मुस्लिम समाज की अनेक बुराईयों यथा दासता, बाल विवाह और पर्दा प्रथा भी ग्रहण की तो दूसरी ओर कुछ सकारात्मक पहलू भी ग्रहण किए। उदाहरण के लिए हिन्दू लोग भी अब मुस्लिमों के समान चूड़ीदार पायजामा, शेरवानी तथा लम्बे कोट पहिनने लगे एवं दरबार के तौर–तरीकों तथा अभिवादन में मुस्लिम तरीकों को भारतीयों ने अपनाया।

इसी तरह से मुस्लिम समाज ने भी हिन्दू रस्म रिवाजों को अनेक रूपों में ग्रहण किया। हिन्दुओं के सम्पर्क से "एक पत्नीवृत" के महत्व को समझा गया और अनेक मुसलमानों ने एक पली रखने की प्रथा को व्यवहार में ग्रहण किया। अनेक मुस्लिम शासकों के हिन्दू कन्याओं से विवाह के फलस्वरूप मुस्लिम गृहों में हिन्दू रीति रिवाजों ने प्रवेश पाया, अन्तत उनका अनुकरण धीरे–धीरे सामान्य मुस्लिम घरों में भी होने लगा। सकारात्मक प्रथाओं के समान ही कुछ कुप्रथाऐं जो हिन्दू समाज में व्याप्त थीं यथा–जाति प्रथा आदि भी मुस्लिमों में प्रवेश कर गयी।

मुस्लिम धर्मावलम्बी भौगोलिक कारणों से स्नान को महत्व नहीं देते थे अब नित्य स्नान करने लगे। इसके अलावा जिस तरह से मुस्लिमों ने पान खाना प्रारंभ कर दिया था उसी प्रकार अब हिन्दू हुक्का भी पीने लगे।

मुस्लिम धर्म में धर्म के क्षेत्र में कब्रों को पूजने की प्रथा धीरे–धीरे, विकसित होने लगी तथा हिन्दुओं ने इस्लाम के एकेश्वरवाद को ग्रहण किया। जैसाकि पिछले पृष्ठों में कहा गया है कि हिन्दू व मुस्लिम समाज के पारम्परिक मेल मिलाप का सर्वाधिक सुखद परिणाम उर्दू का जन्म था । इस प्रभाव ने अनेक मुस्लिम कवियों को भी प्रभावित किया जिसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अमीर खुसरों के रचित हिन्दी लोक गीत हैं। इसी भाषाई व साहित्यिक मेल मिलाप के परिणामस्वरूप तिब्ब सिंकदरी के नाम से लोदी ने आयुर्वेद का ग्रंथ लिखवाया तो अकबर ने रज्मनामा के नाम से महाभारत का अनुवाद फारसी में करवाया।

साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक पारम्परिक संपर्क का प्रभाव वास्तु पर भी हुआ जिसके कुछ उदाहरण जौनपुर की "अटाला मस्जिद" ,बंगाल की अदीन मस्जिद, दिल्ली की जामा मस्जिद, बाज बहादुर और रूपमती के महल, आगरे का ताजमहल, आबू के दिलवाड़ा मंदिर में देखने को मिलते हैं। अकबर कालीन वास्तु पर डॉ. आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव लिखते हुए कहते हैं ".....,. यहां तक कि हिन्दुओं के मंदिर भी अकबर की राष्ट्रीय शिल्पकला के प्रभाव से नहीं बच सके थे। वृंदावन के हिन्दू मंदिरों की कुछ बनावट भी स्पष्ट रूप से बताती है कि उन पर समकालीन मुगलों की शिल्प कला का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था।"

## 9.8 सारांश

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि भक्ति आंदोलन के आचार्यों और संतों ने हिन्दू धर्म का पुनरूद्वार कर भक्ति के जिस सरल मार्ग को प्रोत्साहित किया था, लगभग वैसा ही कार्य सूफी संतों ने भी करने की कोशिश की थी। इनके प्रयत्नों से तत्कालीन समाज के विभिन्न पक्ष प्रभावित भी हुए जिसने अंतत: समकालीन राजनीति, समाज व विभिन्न कलाओं को भी प्रभावित किया था। भारतीय संस्कृति की यह एक विशिष्टता रही है कि जब–जब समाज विछिन्न होने की अवस्था में आया तो कृष्ण, और गौतम बुद्ध आदि के रूप में किसी न किसी महान व्यक्ति ने एक ऐसी धारा को जन्म दिया जिसके कारण समाज पुन: विश्रृंखलित न हो सका। यही कार्य मध्यकाल के भक्ति आंदोलन के संतों व आचार्यों ने किया जिसके परिणामस्वरूप एक ऐसी समन्वयवादी विचार धारा प्रस्फुटित हुई जिसके अवशेष वर्तमान में भी आगरे के पास के मलकाना राजपूतों में कच्छ के मेमों में देखे जा सकते है जो बंदगी में राम नाम कहते है तथा इमामशाह को ब्रहम का अवतार स्वीकारते हैं।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि समन्वय की धारा जो मध्यकाल में प्रारंभ हुई थी तथा उसका सर्वाधिक प्रभाव निर्गुणियों पर हुआ था, निर्गुणियों में भी कबीर प्रमुख थे और इस प्रभाव के प्रेरक सूफी संत थे। सूफी संतों का प्रभाव केवल कबीर पर ही हुआ हो, ऐसा नहीं है इस प्रभाव को हम दादू और नानक पर भी देख सकते हैं।

सूफी इश्क–मजाजी को इश्क–हकीकी का सोपान स्वीकारते हैं। परमात्मा को परम सौंदर्य (प्रेमिका) के रूप में भजते थे लेकिन उन्होंने अपने को परमात्मा की प्रेमिका माना। इस तरह से भारतीय भक्ति साहित्य में श्रृंगार की जो अधिकता हुई उसका प्रमुख कारण सूफी मत था और यह परम्परा कबीर, दादू, नानक, और गालिब, जोक, रसखान से लेकर आलम और मुबारक तक देखने को मिलती है। इस श्रृंगार की धारा के प्रवाह से हिन्दी कवि भी अछूते नहीं रहे। यह प्रभाव धनानन्द तक में देखे जा सकते है। उदाहरण के लिए जब मीर "वसीयत मीन ने मुझको यही की, कि सब कुछ होना तो, आशिक न होना लिख रहे थे ठीक उसी समय धनानन्द ने लिखा देह दहै, न रहे सुधि गेह की, भूलिहि नेह को नांव न लीजै।" इस तरह से साहित्य में वेदना की जिस परम्परा का प्रारंभ सूफी कवियों ने किया था वह अन्तत: निर्गुण संत कवियों कबीर, नानक से होती हुई उर्दू शायरों, हिन्दी कवियों तक आई। यह वेदना की भावना जो सूफी व भक्ति संत कवियों ने ईश्वर के प्रति प्रकट की थी वह शायरों व कवियों के लिए कला की वस्तु बन गयी और वह उसका चित्रण इसलिए करने लगे कि इससे उनकी भावुकता को संतोष होता था।

अत: यह कहा जा सकता है कि भक्ति आंदोलन के द्वारा निर्गुण संत कवियों और सूफी कवियों के द्वारा जिस समन्वयवादी धारा का प्रवाह प्रारंभ हुआ था उसने समस्त साहित्य को तथा जीवन के विविध पक्षों यथा वास्तु, कला, संगीत व सामाजिक आचार को प्रभावित कर एक ऐसी समन्वयवादी धारा को जन्म दिया जिससे महान अकबर जैसा बादशाह अपने साम्राज्य को संगठित कर सका और जिस समन्ववादी दृष्टि से दूर होने का यत्न कर कट्टरवादिता

विकसित करने का प्रयत्न किया गया तो उसकी परिणिति समाज और राजनीति दोनों के लिए विघटनकारी सिद्ध हुई।

## 9.9 संदर्भ ग्रन्थ


1. मेडिविअल भक्ति मूवमेन्ट : सुस्मिता पांडे
2. संस्कृतिक के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर
3. मध्यकालीन भारतीय इतिहास : डॉ. वी. एस. भार्गव
4. द मुगल एम्पायर : ए. एल. श्रीवास्तव

# इकाई - 10

# भक्त संतों का भारतीय समाज एवं संस्कृति में योगदान

**इकाई की रूपरेखा**


10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 दक्षिण भारत के संत

10.2.1 नयनार और अलवार संत

10.2.2 शंकराचार्य

10.2.3 रामानुज

10.2.4 निम्बार्क

10.2.5 मध्वाचार्य

10.3 उत्तर भारत के संत

10.3.1 रामानन्द

10.3.2 वल्लभाचार्य

10.3.3 चैतन्य

10.3.4 नामदेव

10.3.5 रैदास

10.3.6 कबीर

10.3.7 नानक

10.3.8 दादू

10.3.9 मीरा

10.3.10 तुलसीदास

10.3.11 तुकाराम

10.4 निष्कर्ष

10.4.1 नव सामाजिक संरचना के निर्माण का प्रयास

10.4.2 मानव मात्रा की एकता पर बल

10.4.3 मानवतावादी विचारों का पोषण

10.4.4 सात्विक आचरण पर बल

10.4.5 लोकभाषा का विकास एवं विस्तार

10.5 सारांश

10.6 संदर्भ ग्रंथ

## 10.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य भारतीय समाज एवं संस्कृति में भक्त संतों के योगदान को स्पष्ट करना है, ताकि आप यह जान सकें कि इन संतों ने मध्ययुगीन समाज एवं धर्म को किस तरह एक नई दिशा, एक नई सोच प्रदान की तथा अपनी क्षमतानुसार मध्ययुग पर अपने हस्ताक्षर की अमिट ही क्यों न रही हो। ज्ञान मार्ग, कर्ममार्ग एवं भाक्ति मार्ग में से इन संतों ने भाक्तिमार्ग को चुनकर क्या प्राप्त किया, यह भी हमें देखना है। आधुनिक पुनर्जागरण की क्या वे आधारशिला रख पाये? इसका विवेचन भी आपको आगे के प्रष्ठों में मिलेगा।

## 10.1 प्रस्तावना

मध्ययुगीन भारत में भक्ति संतों की वाणी ने जिस सांस्कृतिक नवोत्थान की धारा प्रवाहित की, वह आज भी भारत में भक्ति गीतों के स्वरों में बह रही है। इस युग में प्रवाहित भक्ति की धारा भारतीय जनता की प्राणदायिनी शक्ति बनकर प्रकट हुई। यदि यह कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भक्ति संतों की वाणी मध्ययुगीन संस्कृति की अन्तश्चेतना का पर्याय बनी। मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति को उज्जीवित करके उसे जन–जीवन की निष्ठाओं के अनुरूप अग्रसर करने में तत्कालीन भक्ति आंदोलन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। निःसंदेह भक्ति संतों के भावनात्मक एवं वैचारिक दिग्विजय का अपना ऐतिहासिक महत्व है।

भारत में भक्ति का अंकुर आद्य–ऐतिहासिक है। महाभारत एवं गीता में प्राप्त भक्ति–विषयक रूप उपनिषदों की भक्ति से मेल खाता है। विद्वान लेखक रतिभानु सिंह का कहना है कि भक्ति भावना के उदय में विशिष्ट भूमिका निभाई। भागवत धर्म में मूर्तिपूजा, मंदिर निर्माण, अवतारवाद आदि नये तत्वों के समाविष्ट होने के कारण भक्ति का नया स्परूप उभर कर सामने आया। दक्षिण के आलवार संतों ने वेद, उपनिषद, गीता आदि से विचारों को ग्रहण कर उनमें युगानुकूल तत्वों का समावेश कर भक्ति को लोकधर्म का रूप दे दिया।

## 10.2 दक्षिण भारत के सन्त

### 10.2.1 नयनार और आलवार संत

दक्षिण भारत के तमिल प्रदेश में जन्में आलवार नाम से प्रसिद्ध वैष्णव संतों में से अधिकांश की उत्पत्ति निम्न जातीय थी। ये अत्यन्त साधारण तौर–तरीकों से जीवन यापन करते थे। इनमें ईश्वर के प्रति अटूट प्रेम एवं भक्ति थी। ये संत जात–पात एवं ऊँच–नीच के भेदभाव के घोर विरोधी थे। वे सबके लिए भक्ति द्वारा मोक्ष करने का उपदेश देते थे। वे भगवान विष्णु के प्रति निष्काम प्रेम द्वारा शरणागति पर विशेष जोर देते थे। इनके विचारों और भावों में भक्ति एवं विनम्रता का अपूर्व संगम देखने को मिलता है। ' मेरा जन्म द्विजन कुल में नहीं हुआ, न मैं चारों वेदों का ज्ञाता हूँ, इस कारण हे भगवान! मुझे तुम्हारे प्रकाशमय चरणों के अतिरिक्त अन्य किसी भी शक्ति का भरोसा नहीं है।' अलवार संतों के ये भाव थे, जिनसे भक्ति–भावना के अस्तित्व में उनके विश्वास में कोई संशय नहीं रह जाता है। इन संतों

ने भक्ति के विचार को घूम–घूमकर जन सामान्य में लोकप्रिय बनाया। उनके नेतृत्व में भक्ति परम्परा ने एक जन आंदोलन का रूप धारण कर लिया। उन्होंने तमिल भाषा में भक्ति से ओत–प्रोत गीतों की रचना की, जिनका संग्रह "प्रबंधम्" नामक ग्रंथ में उपलब्ध है। भागवत पुराण की तरह यह ग्रंथ भी प्राचीन भक्ति परम्परा का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। आलवार (वैष्णव संत) एवं नयनार (शैव संत) संतों के विस्तृत आधार वाले चरित्र के कारण यह स्पष्ट हो गया है कि प्रेम–पूर्ण भक्ति का उनका संदेश किसी वर्ग विशेष के लिए ही नहीं था, अपितु उसे सभी लोग ग्रहण कर सकते थे, भले ही उनकी जाति, परिवार अथवा लिंग जो भी हो। इस संदर्भ में इन संतों का समतावादी दृष्टिकोण प्रबल था। नयनारों एवं आलवारों ने स्थानीय मिथकों एवं गाथाओं को प्रयुक्त करते हुए आम जन में एक सरल एवं सहज धर्म का प्रचार–प्रसार स्थानीय भाषा तमिल में किया। इन संतों को जनता से मिला सम्मान उनकी लोक–प्रियता का स्वयंसिद्ध प्रमाण है। इन की मूर्तियाँ आज भी दक्षिण भारत के मंदिरों में स्थापित है, जहाँ इनकी पूजा होती है और उनके रचे भक्ति गीत मंदिरों के प्रांगणों में आज भी गूँजते है। इस प्रकार इन संतों ने जन–मानस पर अपना अमिट भावनात्मक प्रभाव छोड़ा।

बौद्ध–धर्म एवं जैन–धर्म पर अपनी विजय के बाद दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन धीरे–धीरे उन्मुक्त, होने लगा एवं अपना समतावादी स्वरूप खोने लगा। संतों के प्रभाव वे कारण शासकों की अभिवृत्तियों में भी परिवर्तन हुए। शासक स्वयं भी लोकप्रिय आंदोलनों से जुड़कर अपने पद को मजबूत एवं वैध व्यापक आधार प्रदान करना चाहते थे। विद्वान लेखक प्रो. सतीश चन्द्र की मान्यता है कि मन्दिरों के उदय के कारण इनकी स्थिति और अधिक मजबूत हुई होगी, जिन्होंने समाज को स्थायित्व प्रदान करने एवं कृषि का विस्तार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और जहां तक कि व्यापार में भी भाग लिया। भूमि अनुदानों समेत शाही उपहारों के कारण मंदिरों की स्थिति मजबूत हुई एवं ब्राह्मणों ने शासकों की शक्तियों और स्थिति को वैधता प्रदान कर उन्हें मजबूत किया।

### 10.2.2 शंकराचार्य

महान शंकराचार्य ने आठवीं–नवीं शताब्दी ईसवी में दक्षिण भारत में वेदान्त के ज्ञान का प्रवर्तन किया। किन्तु उनके अद्वैत वेदान्त में भक्ति एवं प्रेम का स्थान न था। इससे दक्षिण भारत की भक्ति प्रिय जनता को निराशा हुई। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि शंकराचार्य का भक्ति आंदोलन में कोई योगदान नहीं था। शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त के ज्ञान मार्ग द्वारा मोक्ष के लक्ष्य ने सर्वत्र हलचल मचा दी। परन्तु शंकर के अनुसार बिना ज्ञान के मोक्ष सम्भव नहीं थी। समाज में शंकर के ज्ञान ने जो मोक्ष की लालसा जाग्रत की, उसकी प्राप्ति के लिए वह उतावला हो उठा। इन स्थितियों में भक्ति मार्ग ही समाज के बहुसंख्यक वर्ग की आकांक्षाओं को तुष्ट कर सकता था। फलत: समाज का मोक्ष प्राप्ति के प्रति वेग भक्ति से एकाकार परिणत हो गया।

यह स्मरण रहे कि शंकराचार्य ने भी बौद्ध विचारों को ध्वस्त करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म पर अपनी विजय के बाद दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन

धीरे–धीरे अपना उन्मुक्त एवं समतावादी चरित्र खोने लगा। यद्यपि संत अक्सर जातिगत प्रतिबधों की उपेक्षा करते थे, किन्तु जाति–व्यवस्था या ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को चुनौती नहीं देते थे।

### 10.2.3 रामानुज

भारतीय दार्शनिकों में शंकराचार्य के बाद रामानुजाचार्य का नाम अति महत्वपूर्ण है। शंकर ने धर्म के क्षेत्र में ज्ञान की धारा प्रवाहित की, तो रामानुज ने समाज की नब्ज को पहचानते हुए धर्म के क्षेत्र में नये परिवर्तनों के साथ भक्ति की धारा प्रवाहित की। ग्यारहवीं शताब्दी के इस संत ने शंकर के अद्वैत वेदान्त का वैष्णव धर्म की भक्ति परम्परा से समन्वय किया। वेदान्त सूत्र की ईश्वरवादी व्याख्या कर उन्होंने भक्ति का दर्शन तैयार किया। वैदान्त में ईश्वर की नहीं ब्रह्म की प्रतिष्ठा थी, जो न तो सृष्टि का सृजन करता है और न भक्तों की प्रार्थना पर ध्यान देता है। रामानुज ने वेदान्त के इस ब्रह्म के स्थान पर सगुण ईश्वर की प्रतिष्ठा की और उसे जगत का कर्त्ता, रक्षक तथा भक्तों पर अनुग्रह करने वाला बताया। उन्होंने शंकर के ज्ञान मार्ग की अपेक्षा भक्ति मार्ग को श्रेष्ठ सिद्ध किया। रामानुज ने शंकर के अद्वैत एवं माया के सिद्धान्त का खण्डन कर एक नया मत प्रतिपादित किया जो "विशिष्टाद्वैत' के नाम से जाना जाता है। इस मत के अनुसार ब्रह्म (ईश्वर), जीव और जगत एक दूसरे से भिन्न है और सामान्य रूप से नित्य एवं सत्य है। परन्तु भिन्न होने पर भी एक विलक्षण प्रकार का सम्बन्ध है, जो आत्मा एवं शरीर की तरह है। इस प्रकार रामानुज ने वेदान्त के ब्रह्म में ईश्वरत्व को आरोपित कर भक्ति का सैद्धान्तिक निरूपण किया और भक्ति मार्ग के प्रसार का मार्ग प्रशस्त किया।

शंकर की तरह रामानुज यह नहीं मानते कि मोक्ष की अवस्था में आत्मा का ब्रह्म में विलय हो जाता है, अपितु वह ब्रह्म के सदृश हो जाता है। इस तरह जीवात्मा ब्रह्म में विलीन नहीं होता, अपितु ब्रह्म के समान अनुभव करने लगता है। रामानुज की दृष्टि में आत्मा अणु है, जबकि परमात्मा विभु है, और दोनों कभी एक नहीं हो सकते। वस्तुत: दोनों एक है परन्तु एक होकर भी एक नहीं है।

रामानुज अपने युग के बहुत बड़े चिंतक और वैष्णवाचार्य थे। उनकी रचनाओं में तमिलग्रंथ 'प्रबंधम्', के विचार पर अलवारों का गहरा प्रभाव स्पष्ट है। रामधारी सिंह दिनकर का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि 'प्रपत्ति' तो आलवारों की शरणागति को रामानुज द्वारा दिया गया परिभाषिक नाम है। आलवारों में भक्ति के जो लक्षण थे, उन्हें अन्य भक्तों के लिए निर्दिष्ट करने को रामानुज में 'प्रपत्ति' शब्द निकाला है।

रामानुज ने भक्ति को आगे बढ़ाया। इस संदर्भ में दिनकर का दृष्टिकोण उल्लेखनीय है कि जो कार्य गीता ने किया था, बहुत कुछ वही रामानुजाचार्य ने किया, किन्तु इस भेद के साथ कि जहां गीता में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म में से किसी एक के साथ कोई अनुचित पक्षपात नहीं था, वहां रामानुज ने तीनों में से भक्ति को खुलकर अप्रतिमा प्रधानता दे दी।' इस प्रकार हम

देखते हैं कि रामानुज के प्रयास से भक्ति एक सहज विचारधारा एवं एक प्रभावकारी मार्ग से बह निकली, जिससे सबके लिए मोक्ष का विचार सम्भव हुआ।

### 10.2.4 निम्बार्क

रामानुज ने विष्णु का प्रचार किया, तो तेलंगाना के निम्बार्क ने कृष्ण भक्ति का। कालान्तर में वह वृंदावन में बस गये। वे रामानुज के समकालीन थे। उनके अनुसार जीव एवं ईश्वर व्यवहार में भिन्न है, किन्तु सिद्धान्तत: अभिन्न है। इनका सिद्धान्त 'द्वैताद्वैत' कहलाता है। निम्बार्क के अनुसार कृष्ण के प्रति प्रेमपूर्ण भक्ति और आत्म समर्पण की भावना से मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है।

### 10.2.5 मध्वाचार्य

कन्नड़ प्रदेश में जन्में बारहवीं सदी के मध्वाचार्य 'द्वैतवाद' के समर्थक थे तथा विष्णु के उपासक थे। वे जीव व जगत को ब्रह्म से पूर्ण पृथक मानते थे। उनके मत में भक्ति द्वारा भगवान का साक्षात्कार सम्भव है। वे साधना के लिए गुरू महिमा पर जोर देते थे। मध्वाचार्य में वाद–विवाद करने की अद्भूत योग्यता थी। अपने विचारों की पुष्टि के लिए उन्होंने देश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया और अनेक विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। इनकी भक्ति के रूपों में शान्त, दास्य, मैत्री और वात्सल्य की महत्ता है।

## 10.3 उत्तर भारत के संत

### 10.3.1 रामानन्द

तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में प्रयाग के कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में जन्में संत रामानन्द ने राम भक्ति को लोकप्रिय बनाने के श्रेय रामानन्द को ही जाता है। इसकी पुष्टि इससे होती है, 'भक्ति द्रविड़ उपजी लाये रामानन्द'।

रामानन्द ने वैष्णव संप्रदाय और भक्ति आंदोलन को तीन प्रकार से प्रभावित किया – (1) उन्होंने राम की भक्ति पर जोर दिया। रामानन्द ने बैकुण्डवासी विष्णु के स्थान पर मानव शरीर–धारी और राक्षसों का संहार करने वाले भगवान राम की प्रतिष्ठा की। उस काम में हिन्दू समाज को ऐसे धर्म की आवश्यकता थी, जो वीरता को उभार सके और त्याग और बलिदान की प्रेरणा दे सके। ऐसा धर्म राम के लोक–रक्षक रूप को लेकर खड़ा करना बेहतर था। भगवान राम विष्णु के अवतार के रूप में पहले ही मान्य हो चुके थे, किन्तु राम की भक्ति और उपासना का व्यापक प्रचार रामानन्द ने ही किया। उन्होंने ईश्वर के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का समर्थन किया। (2) उन्होंने हिन्दी में अपने उपदेश लोगों तक पहुँचाए। इस क्षेत्र में उनसे पूर्व के संतों– रामानुज, निम्बार्क, मध्वाचार्य आदि ने संस्कृत भाषा का प्रयोग किया था। इसलिए उनके विचार संस्कृत जानने–समझने वाले एक वर्ग तक ही सीमित रहे। लेकिन रामानन्द ने जन भाषा का प्रयोग करके अपनी वाणी को जन साधारण तक पहुँचाया। (3) उन्हें निम्नतम जाति के लोगों को भी भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी माना। उन्होंने इस बात पर जोर दिया

कि ईश्वर की दृष्टि में सभी बराबर हैं। उन्होंने नीच समझी जाने वाली जाति के लोगों को भी बिना भेदभाव के अपनी शिष्य मंडली में शामिल किया। उन्होंने घोषणा की ' जात–पांत पूछे ना कोई हरि को भजै सो हरि का होई'। यह नारा आगे चलकर भक्ति आंदोलन का प्रमुख नारा बना। इनके शिष्यों में कई निम्न जाति के लोग थे। इनमें रविदासी–मोची, कबीर–बुनकर, सेन–नाई एवं सधना–कसाई था। इनके ब्राह्मण शिष्यों में भवानन्द, सुखानन्द, आशानन्द, सुर सुरानन्द, परमानन्द आदि थे। पद्मावती और सुरसरि उनकी प्रमुख शिष्याएँ थी और गंगा नामक एक वेश्या ने भी उनसे दीक्षा ली। इस प्रकार रामानन्द ने जाति, वर्ग एवं लिंग भेद से रहित तथा समानता और बंधुत्व पर आधारित नई सामाजिक व्यवस्था का सूत्रपात किया। उन्होंने पहले से चली आ रही कोई बड़ी परम्परा को तोड़े बिना सामाजिक समानता को स्थापित करने का प्रयास किया। इसलिए यह कहा जाता है कि मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन रामानन्द से ही प्रारम्भ होता है।

### 10.3.2 वल्लभाचार्य

पन्द्रहवीं शताब्दी के तेलंगाना निवासी वल्लभाचार्य ने युवावस्था में वृंदावन एवं बनारस को अपना स्थायी निवास बनाया। वे वैष्णव सम्प्रदाय की कृष्ण भक्ति शाखा के महान् संत थे। वे गृहस्थ जीवन को आध्यात्मिक जीवन में बाधक नहीं मानते थे। उनके अनुसार परम ब्रह्म को हार्दिक भक्ति से ही प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु इस भक्ति में ईश्वर के प्रति ऐसा प्रेम और लगाव होना चाहिये कि भक्त स्वयं को विस्मृत कर दे।

वल्लभ ने पुष्टिमार्ग का प्रतिपादन किया और ब्रह्म सूत्र, श्रीमद् भागवत और गीता को पुष्टिमार्ग का प्रमुख साहित्य घोषित किया। उन्होंने प्रेम लक्षणा–भक्ति पर विशेष बल दिया। उन्होंने शंकर के मायावाद का विरोध करके यह सिद्ध कर दिया जीव उतना ही सत्य है, जितना कि ब्रह्म। फिर भी वह ब्रह्म का अंश और सेवक ही है। वल्लभ के अनुयायियों में अष्टछाप के कवि हुए, जिन्होंने कृष्ण भक्ति का अपनी रचनाओं के माध्यम से सर्व साधारण में प्रचार किया।

### 10.3.3 चैतन्य

उत्तर भारत में जिस समय सूरदास भक्ति भाव में तन्मय होकर श्रीकृष्ण की लीलाओं का गुणगान करने में तल्लीन थे, पूर्व में बंगाल के भक्त शिरोमणि चैतन्य महाप्रभु अपने रसमाधुर्य से जनता को भाव–विभोर किये हुए थे। नदिया (अब बंगलादेश में) में जन्मे इस संत ने परमात्मा पर, जिसे वे ' कृष्ण' या ' हरि ' के नाम से पुकारते थे, पूर्ण आस्था रखने का उपदेश दिया। कहा जाता है कि वेदों एवं उपनिषदों के अध्ययन से भी जब चैतन्य की जिज्ञासा शान्त नहीं हुई, तो उन्होंने इन ग्रंथों को समुद्र में फेंक दिया था। उनका कहना था, 'अगर कोई जीव कृष्ण पर श्रद्धा रखता है और अपने गुरू की सेवा करता है, तो वह मायाजात से मुक्त होकर कृष्ण के चरणों को प्राप्त होता है। उनका मानना था कि श्रद्धा, भक्ति, कीर्त्तन तथा नृत्य के द्वारा ऐसी भावासेश्यमयी स्थिति उत्पन्न की जा सकती है। उनकी स्पष्ट मान्यता था कि ईश्वर के नाम की रट लगाये रहने से बाह्म–जगत् लुप्त हो जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने

समूचे भारत का भ्रमण किया। वृंदावन में जाकर उन्होंने कृष्ण पंथ को पुन: प्रारंभ किया। किन्तु उन्होंने अपना अधिकांश समय गया में बिताया। जनमानस पर, खासकर भारत के पूर्वी भागों में, उनका काफी प्रभाव पड़ा था और बहुत सारे लोग उनके अनुयायी बन गये थे। इनके अनुयायियों में कुछ मुसलमान एवं निम्न जातियों के लोग भी थे। अपने अनुयायियों पर चैतन्य का प्रभाव इतना गहरा था कि वे उन्हें कृष्ण का ही रूप मानने लगे थे। उन्होंने जो उपदेश दिये, वे सीधे जनता के हृदय में उत्तर गये। डॉ. आशीर्वादी लाल श्री वास्वत के शब्दों में 'पीड़ित मानवता को उनका परमात्मा के प्रति प्रेम का संदेश मरहम–सा लगा और उसने सिद्ध कर दिया कि मानव हृदय राजनीतिक एवं सामाजिक विषमताओं के बीच भी ऊँचा उठ सकता है। चैतन्य महाप्रभु ने जीवन को स्फूर्ति, साहित्य को रचनात्मक शक्ति और मानव सम्बन्धों को पवित्रता प्रदान की।

संकीर्तन को लोकप्रिय बनाने में उनकी भूमिका प्रमुख रही। इसमें व्यक्ति सामूहिक रूप से मिलकर गाते–बजाते हुए कृष्ण का नाम लेते हुए संगीत की लय के साथ भजन गाते थे। एक बार भक्ति के उन्माद में चैतन्य इतने निमग्न हो गये कि अपना बाह्म अस्तित्व भी खो बैठे और दौड़कर समुद्र में घुस गये। इस तरह सचमुच में अपने बाह्म शरीर का त्याग कर दिया। उस समय वे केवल 48 वर्ष के थे।

### 10.3.4 नामदेव

महाराष्ट्र के संतों में नामदेव का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। वह दर्जी परिवार में जन्मे थे। पण्डरपुर को अपनी कर्मस्थली बनाते हुए उन्होंने जन–साधारण को प्रेम एवं भक्ति का पवित्र उपदेश दिया और उनके मस्तिष्क परम्परागत रीति–रिवाज और जाति–पाँति के बंधनों का प्रभाव हटाने का प्रयास किया। उनके शिष्यों में सभी जातियों एवं वर्गों के लोग थे। नामदेव एकेश्वरवादी थे और मूर्तिपूजा एवं पुरोहितों के नियंत्रण के विरूद्ध थे। नामदेव की भक्ति में निर्गुण एवं सगुण दोनों का समन्वय है। एक ओर तो हठयोग की कुण्डलिनी याग साधना और दूसरी और प्रेम भक्ति की विहलता विद्यमान है। महाराष्ट्र से लेकर पंजाब सहित समस्त उत्तर भारत में नामदेव ने अपने आराध्य विट्ठल की महिमा में कीर्तन का व्यापक प्रचार–प्रसार किया। उन्होंने धर्म के क्षेत्र में व्याप्त असमानता को मिटाने की अपील की –

हिन्दू अंधा तुरको काना, देवो तो ज्ञानी सयाना।
हिन्दू पूजे देहरा, मुसलमान मसीद नामा।
सोईं सेविया जहँ देहरा न मसीद।

### 10.3.5 रैदास

रामानन्द के शिष्यों में रैदास जाति से चमार थे और जूते बनाकर अपनी जीविका चलाते थे। उनका जन्म वाराणसी में हुआ था वह आरंभ से ही सीधे–सादे एवं धार्मिक वृत्ति के थे। उनके गीतों में नम्रता और ईश्वरेच्छा के समक्ष आत्म समर्पण का स्वर झंकृत है। कबीर की ही भांति उन्होंने भी हिन्दू–मुसलमानों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का अध्यवसाय किया। उन्होंने अपने अनुयायियों को बाह्म कर्मकाण्ड, तीर्थयात्रा, व्रत–उपवास, मुण्डन, भोग आदि की निस्सारता का उपदेश दिया। श्री हरि चरणों का अनन्य आश्रय ही उनकी साधना प्राण है। उनके

प्रभाव के कारण निम्न जातियों के लोगों में भक्ति की अविरल धारा बह चली अब हिन्दू धर्म में आकर्षण दिखायी देने लगा।

### 10.3.6 कबीर

संत कबीर रामानन्द की परम्परा के स्तम्भ थे। जाति से जुलाहे कबीर निरक्षर थे परन्तु वे अपने युग के अगुवा सिद्ध हुए। प्रेम का अढ़ाई अक्षर पढ़कर कबीर पण्डित हो गये - ' ढ़ाई आखर प्रेम को पढै सो पण्डित होय'। सम्भवत: वह एक हिन्दू के रूप में पैदा हुए और एक मुस्लिम परिवार में उनकी परवारिश हुई। कबीर का भक्ति एवं भक्ति आंदोलन के इतिहास में ऊँचा स्थान है। कबीर के जीवन का बड़ा हिस्सा काशी में बीता। इनके उपदेशों का लक्ष्य मध्यकालीन उत्तरी भारत की विभिन्न जातियों और धार्मिक समुदायों के बीच सामंजस्य एवं मेल–मिलाप का रास्ता ढूँढना और जाति–प्रथा एवं विभिन्न संप्रदायों में व्याप्त घोर अंधविश्वासों या स्वार्थगत भेदों पर आधारित मतभेदों एवं विरोधों को समाप्त करना था।

कबीर ने भक्ति आंदोलन को एक नया मोड़ दिया। कबीर ने गृह त्याग किये बिना ही आधत्मिक जीवन की ऊँचाइयों को प्राप्त किया। उन्होंने लोगों को धर्म का वास्तविक स्वरूप समझाया। उनके उपदेशों के दो मुख्य लक्ष्य थे – (1) धर्म को बाह्माडम्बरों से मुक्त करना ताकि धर्म का मर्म आम जन के समझ में आ सके और वह गरीब की कुतिटया तक में दिखायी दे सके। (11) हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच में सद्भावना एवं सामंजस्य का वातावरण बनाना ताकि अकबर युगीन विचारधारा का विकास हो सके।

सत्यान्वेषी लोगों के लिए कबीर का आह्यन था कि वे बाह्म आडम्बरों का त्याग करें तथा धर्म के स्थूल स्वरूप के स्थान पर इसके आन्तरिक स्वरूप को समझें और, उसे हृदयंगम करें। कबीर ने बाह्म साधना के स्थान पर आंतरिक साधना पर बल दिया। इस निर्भीक संत ने यज्ञ, व्रत, धार्मिक यात्रा, माला जपना, तिलक लगाना, मुण्डन कराना, रमजान के उपवास, मकबरों एवं कब्रों की पूजा, मूर्तिपूजा आदि अंधविश्वासों का घोर विरोध किया। उनकी दृष्टि में धर्म के बाह्म आडम्बरों की अपेक्षा ईश्वर के प्रति प्रेम, शुद्ध विचार व आचरण, सब जीवों के प्रति प्रेम और भ्रातृत्व का व्यवहार अधिक महत्वपूर्ण था।

ईश्वर के एकत्व में अपने विश्वास के कारण कबीर ने यह निष्कर्ष निकाला कि सभी धर्म एक ही गंतव्य पर जाने के भिन्न–भिन्न मार्ग मात्र है। अत: उन्होंने हिन्दुओं एवं मुसलमानों के बीच के अंतर को निरर्थक माना। उन्होंने पंडितों तथा मुल्ला–मौलवियों के ढोंग, पाखण्डों एवं अंध विश्वासों पर तीखा व्यंग्य प्रहार किया। उन्होंने धर्म के मौलिक रूप पर बल दिया -

"न जाने तेरा साहिब कैसा है?
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे क्या साहब तेरा बहरा है?
चींटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनता है।
सांच कहो तो मारन धावे, झूठे जग पहिचाना,
आतम मारि पलानहि पूजै, उनमें कुछ न जाना।।

बहुत देखे पीर औलिया, पढ़ै किताब कुरान
कह हिन्दू मोहि राम पियारा, तुरक कहे रहमाना।।
आपस में दोउ लरि–लरि मुये, मरम काहु नहीं जाना।।

हिन्दुओं की मूर्तिपूजा का उपहार करते हुए उन्होंने कहा –

पाहन पूजै हरि मिलै, तो मै पूजूँ पहार।
ताँते या चाकी भली, पीस खाय संसार।।

इसी प्रकार कबीर ने मुसलमानों के ढोंग तथा आडम्बरों की भी निन्दा की –

कांकर पाथर जोरि के मस्विद लई चुनाय।
तां चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।

कबीर निर्गुण भक्ति के समर्थक थे। अपने गुरू रामानन्द से कबीर ने राम नाम को जरूर ग्रहण किया, परन्तु उन्होंने राम सम्बन्धी अवधारणा बदल डाली। उनका राम न तो दशरथ पुत्र राम था और न विष्णु का अवतार। वह अजन्मा, अविनाशी और अमर ब्रह्म था, जिसे हिन्दू राम के नाम से और मुसलमान रहीम के नाम से पुकारते थे और जिसे कबीर ने ' साहब' कहा।

कबीर सदैव ही सम्मान के पात्र रहे। उन्होंने ऊँच–नीच, ब्राह्मण–शूद्र और धनी–निर्धन के आपसी भेद–भावों को त्याज्य घोषित किया। उनकी दृष्टि में जब ये सभी बर्तन एक ही मिट्टी के बने है और उनको बनाने वाला भी एक है, तब पारस्परिक भेदभाव की विषमता क्यों?' रामधारी सिंह ने ठीक ही लिखा है कि " कबीर भारत के अत्यन्त महान् क्रांतिकारी पुरूष हुए..... संस्कृति का जो नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथ में था, उसे उन्होंने निम्न वर्ग के हाथों में पहुँचा दिया।" डॉ. युसुफ हुसैन ने अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखा है कि ' उत्तरी भारत के विभिन्न वर्ग और धार्मिक समुदायों के मतभेदों का मात्र उपाय द्वारा अंत करना कबीर का प्रमुख उद्देश्य था।' गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है, "कबीर ने सामाजिक क्षेत्र में साम्यवाद की प्रतिष्ठा की।" हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी कबीर के व्यक्तित्व की भूरि–भूरि प्रशंसा की और उन्हें मिलन–बिंदु पर खड़ा बताया है।

भारतीय संतों की परम्परा में उनका व्यक्तित्व सर्वथा विलक्षण और उनकी वाणी निरालेपन का भाव संजोये हुए है। वे सार्वभौम विचारों के उदारमना महापुरुष थे। उन्होंने एक समेकित भारतीय समाज की कल्पना की और लाखों लोगों का विश्वास प्राप्त किया। उनके क्रांतिकारी और सामाजिक महत्व के दोहे व कहावतें देश भर में जन चेतना में रचे–बसे हैं और मध्यकालीन भारतीय सांस्कृतिक विरासत का एक भाग बन गयी है।

### 10.3.7 नानक

बचपन से ही शिक्षा के प्रति उदासीन नानक अंत: स्फूर्त ज्ञान से ओत–प्रोत थे। कबीर के बाद नानक ही मध्ययुगीन समाज को प्रभावित करने वाले सर्वाधिक महत्वपूर्ण संत थे। निर्गुण मार्गी संतों में नानक भद्र एवं शांत है। उनमें कबीर की खण्डन–मण्डन की वृत्ति एवं अक्खड़पन नहीं है। उन्होंने समाज के दोषों की शिष्ट एवं सम्यक् भाषा में आलोचना की है।

कबीर की तरह नानक ने भी ईश्वर के एकत्व पर बल दिया है, जिसका नाम जपकर और अगाध भक्ति रखकर व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है, चाहे उसकी जाति, धर्म या सम्प्रदाय कुछ भी हो। किन्तु नानक ने ईश्वर के पास पहुँचाने की पहली शर्त के रूप में चरित्र एवं आचरण की शुद्धता एवं मार्गदर्शन हेतु गुरू की आवश्यकता पर जोर दिया है। उनके उपदेशों में नैंतिकता, नम्रता, सत्य, दान और दया को प्रमुख स्थान प्राप्त था। सिखों के पवित्र ग्रंथ 'आदि ग्रंथ साहिब' में उच्च नैतिक आचरण पर बल स्पष्ट झलकता है। गुरू नानक ने अपने अनुयायियों से कहा कि वे नम्र बनें, मिथ्याभिमान छोड़े, ईमानदारी बरतें और बुरी भावनाओं को नियंत्रित करें। कबीर की भांति उन्होंने भी मूर्तिपूजा, तीर्थाटनों एवं विभिन्न धर्मो के औपचारिक आडम्बरों की कड़ी भर्त्सना की। प्रो. सतीश चन्द्र ने लिखा है, "उन्होंने एक मध्यमार्ग की वकालत की, जिससे आध्यात्मिक जीवन को गृहस्थ के कर्त्तव्यों के साथ मिलाया जा सकता है।"

कबीर की भांति नानक का भी मानना था कि धर्म के बाह्माडम्बरों का मण्डन और उपचार निरर्थक है और इन्हीं आडम्बरों के कारण लोगों के बीच भेद–भाव पैदा होता है और वे गुमराह होते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों की इन बाह्माडम्बरों में फंस कर इधर–उधर भटक रहे हैं। उनका उपदेश था कि मनुष्य मात्र की भलाई करो, मनुष्य मात्र से प्रेम करो तथा प्रत्येक प्राणी से भ्रात्भाव से स्नेह करो।' उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के बाह्माडम्बरों का खण्डन किया और दोनों के बीच एकता पर बल दिया। उन्होंने कहा –

बंदे इक्के खुदाय के हिन्दू मुसलमान।
दावा राम रसूल कर लड़दें बेईमान।।

नानक ने मुसलमानों से कहा, दया को अपनी मस्जिद मानों, भलाई एवं निष्कपटता को अपनी नमाज का बिछौना, जो कुछ भी उचित एवं न्याय संगत है, वही तुम्हारी कुरान है। नम्रता को अपनी सुन्नत मान ले, शिष्टाचार को अपना रोजा मान ले और इस प्रकार तू मुसलमान बन जायेगा। उन्होंने पांचों नमाजों की व्याख्या करते हुए कहा, पहली नमाज सच्चाई है, दूसरी इन्साफ है, तीसरी दया है, चौथी नेक नीयती है और पांचवीं भगवान का स्तवन है।" नानक ने हिन्दुओं से भी कहा, मैने चारों वेद पढ़े है, अड़सठ तीर्थो पर स्थान किया है, वनों और जंगलों में निवास किया है और संतों ऊपरी और निचली दुनियाओं का ध्यान किया है और मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि मनुष्य चार कर्मो द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है – भगवान से भय, उचित कर्म, ईश्वर और उसकी करुणा में विश्वास और एक गुरू में विश्वास, जो उचित मार्गदर्शन कर सके।' इस प्रकार नानक एक स्वस्थ्य एवं समतावादी समाज के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहे।

नानक कोई नवीन धर्म अथवा सम्प्रदाय के प्रवर्तक नहीं थे। उनके जीवनकाल में, जैसा कि डॉ0 राधाकृष्णन् लिखते है कि उनके जीवनकाल में सिक्ख धर्म का कोई अस्तित्व नहीं था। उनके अनुयायियों तथा शिष्यों को अवश्य सिक्ख कहा जाता था। (सिक्ख शब्द शिष्य का अपभ्रंश है)। 1538 ई. में उनकी मृत्यु के बाद सिक्खों के गुरुओं ने विशेष रूप से गुरू अर्जुनदेव

ने, इसे एक धर्म का रूप प्रदान किया। कनिंघम लिखते है, नानक ने सुधार के सच्चे सिद्धान्तों का बड़ी सूक्ष्मता के साथ साक्षात्कार किया और ऐसे व्यापक आधार पर धर्म की नींव रखी, जिसके द्वारा गुरू गोविन्द सिंह ने अपने देश वासियों में एक नवीन राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया। उत्तम सिद्धान्तों को ऐसा व्यावहारिक रूप दिया कि उनके धर्म में छोटी–बड़ी जातियों को जीवन के सभी क्षेत्रों में समान मर्यादा प्राप्त हुई।

नानक का सार्वभौम और उदार दृष्टिकोण ने शान्ति, सद्भावना एवं पारस्परिक मेलजोल का वातावरण तैयार करने के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच अंतर मिटाने का लक्ष्य औश्र प्रयास किया। नानक ने एक आदर्श राज्य की भी परिकल्पना की, जिसकी बागडोर एक दार्शनिक राजा के हाथों में हो, जो नैतिकता, न्याय एवं समानता की राह पर चलने वाला हो।

### 10.3.8 दादू

कबीर के शिष्यों की उत्तरवर्ती पीढ़ी में सबसे प्रसिद्ध संत दादू दयाल थे। अहमदाबाद में जन्मे दादू का अधिकांश समय राजपूताना में ही व्यतीत हुआ। दादू के संदेश में दया, नम्रता एवं क्षमा स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती है। दादू का संदेश हिन्दूधर्म या इस्लाम के धर्मिक पूर्वाग्रहों से सर्वथा मुक्त है। उन्होंने सभी धर्मों की आधारभूत एकता एवं भाईचारे पर बल दिया। अपने महान् गुरू कबीर की भांति दादू भी हिन्दू मुस्लिम–एकता के प्रबल पक्षधर थे और ईश्वर, धर्म, कर्मकाण्ड एवं धार्मिक औपचारिकताओं, मूर्तिपूजा, जातियों महन्तों–पंडों, अवतारवाद, तीर्थयात्रा आदि के बारे में भी उनके विचार कबीर के जैसे ही थे। उन्होंने जो पंथ चलाया, वह ' दादूपंथ' के नाम से प्रसिद्ध है। उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्यों–गरीबदास एवं माधोदास ने उनके उपदेशों का प्रचार–प्रसार का महती प्रयास किया।

### 10.3.9 मीरा

राजस्थान में सगुण भक्ति रस की अविरल धारा प्रवाहित करने वाले संतों में मीरा का नाम सर्वप्रमुख है। मेड़ता में जन्मी मीरा का वैवाहिक जीवन मेवाड़ मे व्यतीत हुआ। परन्तु सुगहाग का सुख 7 वर्ष ही मिल पाया। मीरा को इस दु:खद घटना से इतना भारी आघात लगा कि उनका मन संसार से विरक्त हो गया और वह अपना अधिकांश समय सत्संग और भजन कीर्तन में व्यतीत करने लगी।

मीरा को साहित्य में भी कृष्ण की दीवानी के रूप में चित्रित किया गया है। कृष्ण–भक्ति के प्रति उसका अनुराग बाल्यकाल से ही था। मीरा ने कृष्ण भक्ति में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था। मीरा के काव्य में सांसारिक बंधनों का त्याग कर ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव मिलता है मीरा ने कृष्ण को परमात्मा माना। उसकी भक्ति में कहीं भी आडम्बर दिखायी नहीं देता। उसकी भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है, 'भावना और श्रद्धा'। मीरा की भक्ति एक माधुर्य भाव की भक्ति थी। वह किसी सम्प्रदाय विशेष में बंधी नहीं और उसके मंदिर के द्वार सबके लिए खुले थे।

मीरा की आध्यात्मिक यात्रा तीन सोपानों से गुजरती दिखायी देती है। पहला सोपान प्रारम्भ में उसका कृष्ण दर्शन के लिए उत्कंठित होना है। और वह व्यग्र हो गया उठती है, " मै

विरहिणी बैठी जागूं, जग सोवै री आली' और कृष्ण मिलन की तड़प में बोल उठती है, दरस बिण दूखण लागै नैण।' दूसरा सोपान वह है, जब उसे कृष्ण भक्ति में उपलब्धियों की प्राप्ति हो जाती है और वह कहती है, पायोजी जी म्हाने राम रतन धन पायो'। तीसरा और अंतिम सोपान वह है, जब कृष्ण मिलन के कारण आत्म बोध हो जाता है और तब वह गाती है ' म्हारे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।' यह मीरा की भक्ति का चरमोत्कर्ष है, जब मीरा का प्रियतम (कृष्ण) से एकाकार हो जाता है ।

सोलहवीं शताब्दी के कृष्ण भक्तों में निस्संदेह मीरा का स्वर काफी ऊँचा एवं विशिष्ट था। मीरा के पदों में हृदय की तीव्र अनुभूति, गहरी पीड़ा एवं संगीतमयी भाषा की अभिव्यक्ति हुई है। मीरा के गेय पद्य सीधे हृदय पर प्रभाव डालते है, जिससे जनमानस की भक्ति को एक नई दिशा मिली। मीरा के गीत साहित्य की दृष्टि से चाहे उत्कृष्ट न हों पर उनका भाव पक्ष अत्यन्त पुष्ट है। कवयित्री महादेवी वर्मा के अनुसार, " मीरा के पद विश्व के भक्ति साहित्य के रत्न हैं।' मीरा के द्वारा कृष्ण भक्ति की माधुर्य भावना का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ।

### 10.3.10 तुलसीदास

भक्त कवि तुलसीदास ने ' राम चरित मानस' लिख करके राम की भक्ति को आम लोगों के बीच लोकप्रिय बनाया। आज भी राम चरितमानस भारतीय जन चेतना में रचा–बसा है। तुलसीदास की राम के प्रति अनन्य भक्ति बेमिसाल है। 'राम कथा' को वाल्मीकी के बाद अनेक विद्वनों ने अपने–अपने युग में विभिन्न रूपों में जनता के समक्ष रखा। परन्तु तुलसीदास ने ' सेवक स्वामी' भासे से राम भक्ति की एक ऐसी धारा प्रवाहित की, जो आज भी अविरल प्रवाहमान है। राम भक्त महाकवि तुलसीदास ने शूद्रों एवं ब्राह्मणों में भी समन्वय का प्रयास किया। वस्तुत: उन्होंने ' रामचरित मानस' के द्वारा समाज में व्याप्त जड़ता को तोड़ने का प्रयास किया और सदियों से व्याप्त जाति मतभेद भावों को मिटाने एवं समाज के सम्मुख आदर्श रखने का प्रयास किया। इस रूप में तुलसीदास न केवल एक भक्त कवि थे वरन एक समाज सुधारक भी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में गुरू भक्ति, नारी के श्रद्धा, भ्रातृ स्नेह, शासक के कर्त्तव्य आदि पर अधिक बल दिया है। तुलसीदास ने निर्गुण एवं सगुण में समन्वय का प्रयास करते हुए लिखा है, 'सगुनहि अगुनहि नहीं कछु भेदा'। उनका कहना है कि जैसे जल और तरंग को अलग नहीं किया जा सकता वैसे ही सगुण और निगुर्ण भी अलग नहीं है। तुलसी जाति के क्षेत्र में भी उदार थे। उनके भगवान श्रीराम शबरी (शुद्र) निषाद एवं केवल जैसे निम्न जातियों के लोगों से मिलते हैं, तो अहिल्या (ब्राह्मण) का भी उद्धार करते हैं। यहां तक कि प्रेम एवं भक्ति से खिलाये गये शबरी के झूठे बेर भी वे प्रेम से खाते हैं। उन्होंने समाज में व्याप्त नैतिक पतन को दूर करने के लिए राम को एक ' मर्यादा पुरूषोत्तम' के रूप में प्रतिष्ठित किया और जीवन को उन्हीं के स्थापित आदर्शों के अनुसार व्यतीत करने का उपदेश दिया। तुलसी वस्तुत: समन्वयवादी थे।

उन्होंने शास्त्र और लोक, वैराग्य और गृहस्थ, भक्ति और ज्ञान, भाषा और संस्कृति का समन्वय अपनी कृति ' राम चरितमानस' में किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा

मध्यकालीन सामाजिक जीवन में व्याप्त बुराइयों को सुधारने का भागीरथ प्रयत्न किया। तुलसी के राम वास्तव में प्रेम, भक्ति, निष्ठा और करूणा के सागर हैं। तुलसी के कृतित्व का भारतीय समाज पर सदियों के अन्तराल के बाद भी व्यापक प्रभाव उल्लेखनीय है। इतिहासकार स्मिथ ने उनके बारे में लिखा है कि, "अकबर की विजयें वास्तव में क्षणिक थी परन्तु तुलसी दास की काव्य सम्बन्धी विजय सदैव के लिए थी, क्योंकि यह जनता के हृदय की विजय थे।"

### 10.3.11 तुकाराम

महाराष्ट्र के संत तुकाराम जन्म से शुद्र थे। उन्होंने किशोरावस्था में ही सन्यास ग्रहण कर लिया था तथा अपना जीवन धर्म परायणता और सेवा में लगा दिया था। जनता में इनको व्यापक समर्थन प्राप्त था। तुकाराम के शिष्य स्वामी रामदास शिवाजी के श्रद्धेय शिक्षक थे, जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दी में मराठों की उभरती शक्ति को नैतिक एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि प्रदान की। उन्होंने मराठों में मुगलों के विरूद्ध भाव जाग्रत किये तथा उनमें स्वतंत्रता एवं स्वदेश की भावना का संचार किया। तुकाराम अपने अत्यधिक धार्मिक और पवित्र जीवन से जनता के बीच लोकप्रिय हो गये थे। इससे ब्राह्मण उनके दिनोंदिन बढ़ते प्रभाव एवं यश से जलने लगे थे और उन्हें तरह–तरह से सताने लगे थे। परन्तु उनके अनुयायियों एवं समर्थकों की संख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई।

ईश्वर के बारे में उनकी धारणा बहुत कुछ कबीर के समान ही थी। उनका कहना था कि ईश्वर का न कोई स्वरूप है और न कोई नाम है। तुकाराम के उपदेश अभंगों (महाराष्ट्री पदों) में है, जिनकी संख्या 8000 तक है। तुकाराम ने अर्थहीन समारोहों, बलिदानों, धार्मिक यात्राओं, मूर्तिपूजा, उपवासों, सामाजिक, विषमताओं आदि की आलोचना की। साथ ही कबीर की भांति उन्होंने ने भी हिन्दू धर्म और इस्लाम के बीच सुखद सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की। इस प्रकार तुकाराम न केवल धर्म के समीहा और ज्ञान के अन्वेषक थे, अपितु अपनी जन्म भूमि के योग्यतक सपूत भी थे।

## 10.4 निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते है कि मध्यकालीन सामाजिक एवं धार्मिक जीवन के एक अत्यन्त उल्लेखनीय पहलू के रूप में भक्ति संतों का 'भक्ति आंदोलन' एक ऐसा जन आंदोलन था जिससे देश में एक नई चेतना का उदय हुआ। बौद्ध धर्म के उदय के पश्चात भारत में इतना व्यापक और लोकप्रिय कोई अन्य आंदोलन नहीं हुआ था। संतों द्वारा अनुप्राणित इस आंदोलन का मूल्य और महत्व इस बात में है कि इसने मनुष्य की हृदयगत भावनाओं को पहचानते हुए उनको जगाने का एक सफल प्रयास धार्मिक तथा नैतिक आधारों पर किया। इन्हीं आधारों ने इसे शक्ति प्रदान की और इसे, घर–घर पहुंचाने में सफलता प्राप्त की। यह हिन्दुस्तानियों द्वारा किया गया वह प्रयत्न कहा जा सकता है, जिसके द्वारा उसने अंधविश्वासों से जकड़ी हुई भारत की जनता को जगाने का प्रयत्न किया और हिन्दुस्तानी अपनी गहरी नींद से अंगड़ाई लेकर उठ खड़े हुए और उसने भक्ति के प्रकाश द्वारा अपने को मुक्त अनुभव किया। एक तर्क यह भी दिया जाता है कि तुर्कीशासन से पदाक्रान्त एवं निराश हिन्दू समाज को इस आंदोलन ने ईश्वर

की भक्ति का दृढ़ अवलम्बन दिया, जिसके बल पर वह आक्रमणकारियों एवं जबरदस्ती से घुस आयी ताकतों से अपनी रक्षा कर सकें। इन संतों की वाणी से हिन्दू धर्म के बाह्मआडम्बरों एवं कर्मकाण्डों को भारी धक्का लगा। चाहे उनका अंत न हुआ हो, परन्तु उनकी निस्सारता जग जाहिर हो गयी। हिन्दू धर्म के प्रचलित रूप में सुधार के सोच ने ही भक्त संतों को अग्रगामी एवं युगान्तकारी बना दिया। लोगों के दृष्टिकाण को व्यापक बनाने में इनकी भूमिका के आगे कोई प्रश्न–चिन्ह नहीं लगा सकता। वासुदेव शरण अग्रवाल की दृष्टि में इन संतों के प्रयत्न भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण को चिन्हित करते हैं।

अंत में हम इन संतों के भारतीय समाज एवं संस्कृति के क्षेत्र में योगदान को निम्न बिंदुओं में पुनर्रावृति से बचने के लिए सारांश में इस प्रकार स्पष्ट कर सकते है –

### 10.4.1 नव सामाजिक संरचना के निर्माण का प्रयास

नव सामाजिक संरचना के निर्माण का प्रयास इन भक्त संतों का एक प्रबल पक्ष रहा। संतों की इस घोषणा ने, कि भगवान की दृष्टि में सब बराबर है तथा नीची जाति में जन्म होना मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में बाधक नहीं है, उनके जीवन में आशा का संचार किया तथा ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था को चोट पहुंची। रामधारी सिंह दिनकर लिखते है, कि कबीर, नानक, दादू जो कुछ बोल रहे थे, वह विशाल जनता के हृदय की आवाज थी। ऊँची जाति वालों को ' जात–पात पूछै नहि कोई, हरि को भजै जो हरि को होई ' की शिक्षा नहीं रूची। परन्तु जो सच्चाई है, उसे द्विज वर्ग भी काट नहीं सकता था। अतएव वैष्णव व्यवस्थाकारों एवं उनके अनुयायियों ने भी जाति–पांति की व्यर्थता को स्वीकार किया। रामानन्द ने कबीर और रैदास को शिष्य बनाया और गोसाईं बिट्ठल नाथ ने रसखान को शिक्षा दी। चैतन्य के शिष्य हरिदास अछूत थे। इसी प्रकार नामदेव के शिष्य चोखमेला भी अछूत थे। इन संतों ने लोगों को नई सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए जाति–व्यवस्था के चंगुल से बचने का मार्ग दिखाया। रविदास कहते है, मेरी जाति निम्न, मेरा कर्म निम्न और मेरा व्यवसाय निम्न, इस निम्न स्थिति से ईश्वर ने मुझे उठाया है ऊपर ऐसा कहते है रविदास चमार।' इस प्रकार जाति–पांति का बंधन ढीला हुआ। इस युग के अधिकांश संत सामाजिक समानता के समर्थक सिद्ध हुए।

### 10.4.2 मानव मात्र की एकता पर बल

मध्यकालीन भक्त संतों ने मानव मात्र की एकता पर बल दिया। उनकी दृष्टि में राम और रहीम में काई भेद नहीं है। कबीर, नानक, दादू, नामदेव आदि संतों ने हिन्दू–मुस्लिम समन्वय की बात कही। संत कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित करने के लिए कहा था, ' वही महादेव वही मुहम्मद, ब्रहमा आदम कहिये। को हिन्दू, को तुरक कहावै, एक जिमी पर रहिये।' किन्तु हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करने का उनका उद्देश्य पूर्ण न हो सका, तथापि इन संतों की वाणी के फलस्वरूप दोनों धर्मावलम्बियों के बीच द्वैष तथा घृणा कम हुई और दोनों सम्प्रदायों के बीच धार्मिक सहनशीलता की भावना का उदय हुआ। भक्ति आंदोलन ने धार्मिक सहिष्णुता की जो पृष्ठभूमि तैयार की, उसी पर आगे चलकर अकबर ने राष्ट्रीय शासन

का ढांचा खड़ा किया। भक्ति आंदोलन की उदार शिक्षाओं का अकबर, दारा शिकोह जैसे सुसंस्कृत मुसलमानों पर भी प्रभाव पड़ा।

### 10.4.3 मानवतावादी विचारों का पोषण

भक्ति आंदोलन के संत पक्के मानवतावादी थे। उनके विचारों में मानव मात्र के प्रति करुणा की गंगा बहती थी। उनकी मान्यता थी कि मानव मात्र के प्रति सच्चा प्रेम ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति है। भक्त संतों का मानव सेवा में अटूट विश्वास था। उनकी दृष्टि में धर्म एवं जाति के बाह्म आडम्बरों का त्याग कर मानव को बराबर मानकर सबकी सेवा करनी चाहिये। कबीर तीर्थो का विरोध करते हुए कहते है, ' मन ही मथुरा है, दिल ही द्वारिका है, काया ही काशी है, शरीर के दशों द्वार ही देव मंदिर के द्वारा है, उसी में परम ज्योति को पहचानो। ' भक्त संत मानते थे कि मनुष्य–मनुष्य मे कोई भेद नहीं है और ईश्वर भी अलग–अलग नहीं है और ईश्वर से जो शुद्ध हृदय से प्रेम करता है, उसे मोक्ष मिल जाती है।

### 10.4.4 सात्विक आचरण पर बल

भक्त संतों ने आचरण की पवित्रता जैसे सार्वभौमिक तत्व पर बल दिया। तन मन की पवित्रता को संत कवि रैदास इस प्रकार कहते है, ' मन रहे चंगा, तो कठौती में गंगा।' उल्लेखनीय है कि सभी संत संन्यास के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि गृहस्थ रहते हुए भी ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। नानक, कबीर आदि संत गृहस्था थे। परन्तु इन सभी संतों ने चरित्र की शुद्धता पर बहुत जोर दिया। उन्होंने निर्जीव पूजापाठ के स्थान पर मन की पवित्रता को ऊँचा स्थान दिया। उन्होंने व्यवहार में शील को अधिक महत्व दिया। संतवाणी संग्रह में उल्लिखित है, ' सीलवन्त सबसे बड़ा सर्व रतन की खान। तीन लोक की सम्पदा रही सील में आनि।' कबीर ने कहा कि 'जो तोको कांटा बुवै ताहि बोव तू फूल। तोहि फूल के फूल है वाको है तिरसूल।' सत्य ही बुरे के प्रति भी सद्व्यवहार करके न केवल उसे आत्म मंथन को विवश किया जा सकता है, बल्कि उसमें सकारात्मक परिवर्तन भी लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कबीर जैसे संतों ने अनावश्यक धन संग्रहे अनुचित माना। उपयोग से अधिक संग्रह को वे पाप मानते थे। कहा भी है, ' साईं इतना दीजिये, जामे कुटुम समाय। मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय।' इस प्रकार इन संतों ने शुद्ध आचरण एवं शील के द्वारा समाज को सन्मार्ग पर चलाने का प्रयास किया।

### 10.4.5 लोक भाषाओं का विकास एवं विस्तार

महात्मा बुद्ध की तरह भक्ति आंदोलन के संतों ने भी अपने उपदेशों का माध्यम आम बोल चाल की भाषाओं को ही बनाया। इससे न केवल संस्कृत का एकाधिकार समाप्त हुआ बल्कि प्रादेशिक भाषाओं के विकास एवं विस्तार का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। इन भक्त संतों के द्वारा लोक भाषाओं एवं लोक साहित्य को समृद्ध बनाने में किये योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। प्रकारान्तर से इससे हिन्दी भाषा एवं उसके साहित्य की भी श्रीवृद्धि हुई। रामानन्द, कबीर, जायसी, तुलसी, दादू, सूरदास, रसखान और अष्टछाप के कवियों ने हिन्दी

भाषा में अपनी भक्ति रस से ओत–प्रोत रचनाएं की। बृज, अवधी तथा खड़ी बोली तीनों में ही साहित्य लिखा गया। महाप्रभु चैतन्य तथा चंडीदास ने बंगला भाषा एवं उसके साहित्य समृद्ध बनाया, तो विद्यापति ने मैथिली भाषा में नव–जीवन का संचार किया।

महाराष्ट्र के संत नामदेव, ज्ञानदेव, तुकाराम व रामदास के अभंगों ने मराठी भाषा के साहित्य को नव–जीवन प्रदान किया। नानक की शिक्षाओं के कारण ही पंजाबी भाषा एवं गुरूमुखी लिपि का विकास सम्भव हुआ। राजस्थानी भाषा के भक्ति साहित्य का वास्तविक आरंभ, मीरा के भक्तिमय पदों से ही हुआ है। गांधी जी के प्रिय भक्त कवि नरसी महतो की कविताओं ने गुजराती के साहित्य को समुन्नत किया।

## 10.5 सारांश

भक्त संतों की वाणी ने भक्ति को लोकप्रिय बनाया तथा मध्ययुगीन विचारधारा को मोड़ देने का प्रयास किया, यद्यपि वे अपनी कोशिश में सफल नहीं हुए। कुछ संतों ने साझा मंच तैयार किया, जिस पर विभिन्न संप्रदायों और धर्मों के लोग मिल सकते थे। इन संतों के प्रयासों से ही क्षेत्रीय भाषाओं में उच्च कोटि की रचनाएं लिखी गयी। इन संतों ने समाज एवं धर्म में व्याप्त रूढ़िवादी तत्वों को पहचाना तथा लोगों के सामने उन्हें बेपर्दा किया तथा उदार एवं रूढ़िवादी प्रवृत्तियों के बीच संघर्ष को तीव्र किया। यद्यपि रूढ़िवादी ताकतें कमजोर न हो सकी, परन्तु लोगों ने सिक्के के दूसरे पहलू को भी देखा। ये संत जाति व धर्म की सीमाओं एवं बंधनों से परे साबित हुए और इसी कारण इनको व्यापक समर्थन भी मिला। इन संत कवियों का दृष्टिकोण मानवतावादी थी। उन्होंने सर्वोच्च मानव भावनाओं – सभी रूपों में सुन्दरता एवं प्रेम की भावनाओं – पर बल दिया।

## 10.6 संदर्भ ग्रंथ


| | | |
|---|---|---|
| संस्कृति के चार अध्याय | : | रामधारी सिंह दिनकर |
| कला और संस्कृति | : | वासुदेव शरण अग्रवाल |
| भारतीय संस्कृति और कला | : | वाचस्पति गैरोला |
| मध्यकालीन भारत का वृहत इतिहास, खण्ड–3 | : | फणीन्द्र नाथ ओझा |
| मध्यकालीन धर्म साधक | : | हजारी प्रसार द्विवेदी |
| मध्यकालीन भारतीय संस्कृति | : | आर्शीवादी लाल श्री वास्तव |
| भक्ति आंदोलन का अध्ययन | : | रति भानु सिंह नहर |
| मध्यकालीन भारत | : | सतीश चन्द्र |

# इकाई 11

# भारत के बाहर सूफीमत की उत्पत्ति और विकास

**रूपरेखा**


11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 अर्थ

11.3 परिभाषा

11.4 उत्पत्ति

11.5 विकास

11.6 सूफियों का प्रथम वर्ग

11.7 सूफियों की दूसरी पीढ़ी

11.8 सूफियों की तीसरी पीढ़ी

11.9 10 वीं शताब्दी में सूफीमत

11.10 11 वीं शताब्दी में सूफीमत

11.11 12 वीं शताब्दी में सूफीमत

11.11.1 इमाम गजाली

11.11.2 शेख अब्दुल कादिर जिलानी

11.11.3 शेख मुहीउद्दीन इब्ने अरबी

11.11.4 शेख शहाबुद्दीन उमर सुहरावर्दी

11.12 13 वीं शताब्दी में सूफीमत

11.13 निष्कर्ष

11.14 संदर्भ ग्रन्थ


## 11.0 उद्देश्य

यह इकाई इस्लाम में सूफीमत के विचार, उसके विकास और मुस्लिम समाज पर उसके भाव से संबंधित है। सूफीमत में विभिन्न विचारधाराओं से बहस इसका लक्ष्य है। यह इकाई प्रकाश डालती है कि किस प्रकार सूफीमत ने इस्लामी समाज में प्रवेश किया और इस्लामी इतिहास की अवस्थाओं में सूफियों ने आम लोगों पर किस प्रकार प्रभाव डाला। इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य निम्न है:–

सूफीमत (रहस्यवाद) का अर्थ समझना और उसका विकास

इस्लाम में सूफीमत की विभिन्न विचारधाराओं का अध्ययन

इस्लाम में कुछ मुख्य सूफियों का आलोचनात्मक अध्ययन

भारत से बाहर सूफीमत का पुनरावलोकन

## 11.1 प्रस्तावना

सूफीमत (सूफी इज्म) इस्लाम में प्रारम्भ से विचार का एक मुद्दा रहा है। हालांकि इस्लाम बुनियादी तौर पर एक धर्म है जो मानव जाति के लिए एक प्राकृतिक और साधारण धर्म की घोषणा करता है लेकिन इस्लाम के अरब प्रदेश भूमि की सीमा से बाहर इस्लाम के प्रसार ने या तो दूसरे धर्म को प्रभावित किया या उन प्रदेशों के विदेशी कुछ विचारों को अपनी सादगी के होते हुए ग्रहण किया।

आरम्भ में पैगम्बर इस्लाम की जिंदगी में मुसलमानों के बारे में माना जाता था कि वह पैगम्बर के मुंह से निकले शब्दों को सुनकर एक हुक्म की हैसियत के मानेगें और पैगम्बर के आदेशों को अपना दिमाग लगाकर या वगैर सोचे मानते थे लेकिन इस्लामी सीमा के फैलने पर नये ख़यालात (विचारों) जैसे यूनान में अफलातून के विचार या अफलातून से प्रभावित मिश्र के विचारों, ईरान में जरथुस्त्र के विचारों से, भारत के धर्म के, और हिन्दू धर्म के विचारों और यूरोप के देशों में ईसाइयों के धर्म के सम्पर्क में आये।

स्वाभाविक था कि मुसलमानों ने इन विचार धाराओं (Ideology) को अपनी बुद्धि और तर्क के अनुसार कबूल किया और इसके फलस्वरूप उन्होंने सिद्धियों या अनुभव से कुछ विचारों को माना। यह नये विचार जिन्होंने इस्लाम में प्रवेश किया। सूफीमत के अंकुरण कहे जाते हैं। परन्तु दूसरी ओर कुछ विद्वान हैं जो इस राय के हैं कि सूफीमत के सिद्धान्त पैगम्बर स्वयं के जीवन में पाये जा सकते है।

उसके अनुसार यह गलत है कि इस्लाम में सूफीमत का विचार बाहर से आये लेकिन इस्लाम सूफीमत की (जन्मदाता) मां है। वह अपने तर्क में कुरान की विभिन्न आयतें प्रस्तुत करते है सूफी इस्लामी विचारधारा के रास्ते से भारत की दहलीज पर पहुंचे और उनके बढ़ने के लिए वातावरण को अनुकूल पाया।

जब से भारत संसार में सूफीमत का मुख्य केन्द्र बन गया। कभी ऐसा मालूम होता है कि भारत से बाहर दुनिया में सूफीमत का कोई वजूद नहीं और इसीलिए यह जानना और अध्ययन करना आवश्यक है कि यह कैसे भारत के बाहर फैला।

## 11.2 अर्थ

अन्तिम सत्य क्या हो? कौन दुनिया पर शासन करता है? जो प्रार्थना हम करते है किस तरह प्रार्थना करना ईश्वर को खुश करता है। यह प्रश्न है जो मानव की बुद्धि या समझ के बजाय आत्मा से संबंध रखते हैं। दूसरे प्राणियों की अपेक्षा बुद्धि मानव में ऐसा गुण है जो उसको उनसे सर्वश्रेष्ठ बनाती है। जैसे मानव शरीर, शरीर और आत्मा का सुन्दर मिश्रण है। जैसे शरीर की वृद्धि के लिए रखरखाव और पोषण की जरूरत होती है इसी प्रकार आत्मा की वृद्धि के लिए भी देखभाल आवश्यक है। आदमी जब अपने नफ्स पर नियंत्रण नहीं रखता है तो वह परेशान होता है यही परेशानी उसे नर्क के रास्ते ले जाती है। मानव व्यक्तित्व दो प्रकार का है। एक तो नैतिक शिक्षा जो, खाने पीने, सोने चलने इत्यादि की भांति उसके व्यवहार पर नियन्त्रण रखती है या आदमी नैतिकता का नियंत्रण करता है। दूसरी जो आत्मा को पवित्र करती है वह उससे माता–पिता की भांति प्रेम करता है। वह उनकी देखभाल करता है। उनकी खुशी और गम

में उनका साझेदार है और अपने समस्त कार्य में वह नम्र विनीत(सभ्य) और सज्जन रहता है। वह ईश्वर की प्रार्थना (इबादत) करता है। वह ईश्वर के सामने मस्तिष्क झुकाता है। और उससे मिलने की इच्छा करता है, इत्यादि। करीब–करीब आठ तरह की विचारधाराऐं (ideologies) है जो सूफी शब्द की उत्पत्ति को बतलाती है –

1. कुछ इस राय के हैं कि सूफी शब्द अरबी शब्द "सफा है" से निकला है। जिसका अर्थ है हृदय की सफाई और पवित्रता।
2. दूसरे वह हैं जो यह सोचते हैं कि यह शब्द "सुफ्फा" से लिया गया है। जिसका अर्थ है "चबुतरा" इस खयाल के मानने वाले यह तर्क देते है कि इस्लाम के नबी के युग में मदीने में मस्जिद नबवी के सामने एक चबुतरा था जहां पैगम्बर के कुछ साथी बैठते थे और वे लोग धार्मिक सिद्धि और ध्यान (meditation) में लगे रहते थे। मदीने के लोग उनका आदर बहुत करते थे। और उनको अहले सूफ्फा कहा जाता था।
3. एक तीसरा विद्वानों का ग्रुप इस राय का है कि सूफी शब्द अरबी शब्द सफ से निकला है जिसका अर्थ कतार से है जैसे मुसलमान रोजाना नमाज में लाइन, या कतार में खड़े होते है। लोग नमाज के समय मस्जिद में जाते है और इमाम के पीछे लाइन में खड़े होते हैं।
4. चौथा बुद्धिजीवियों का वह तबका है जो यह सोचता है कि यह "सोफा" शब्द से निकला है जो अरब में एक जाति है। यह लोग ही थे जो इच्छापूर्वक काबे के लिए अपनी सेवाएं देते थे।
5. एक दूसरी थ्योरी के अनुसार यह शब्द अरबी शब्द "सफ तुल कफा" निकला है। जिसका अर्थ है आदमी की गुद्दी पर बाल।
6. इस शब्द की उत्पत्ति के बारे में एक अन्य विचार है कि यह शब्द (ग्रीक) यूनानी शब्द सूबू–सूफिया से लिया गया है। जिसका अर्थ है ईश्वरीय बुद्धिजन।
7. ब्रह्मवाद (Theosophists) का एक ग्रुप ऐसा है जो इस शब्द का अरबी शब्द सोफेना से बतलाता है जो एक पौधे का नाम है।
8. आठवें विद्वानों का तबका सोचता है कि इस शब्द की उत्पत्ति सूफ शब्द से हुई है जो एक प्रकार की ऊन है जो पैगम्बर के साथियों के लिबास बनाने के काम आती थी जो दुनिया को छोड़ कर एकांत में बैठ गये थे।

यह जानना कठिन है कि कौन सा मत ठीक है क्योंकि हर विचारधारा ने विस्तार से बहस की है और तर्क दिये। लेकिन अलबेरुनी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक किताब–उल–हिन्द में लिखा कि शब्द सूफी अरबी शब्द नहीं है। बल्कि यह लेटिन शब्द से है जो दार्शनिक शब्द से मेल खाता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सूफी शब्द 'सूफ' शब्द से ही निकला है जिसका अर्थ ऊन है। पेगम्बरे इस्लाम के जमाने में जो लोग इस तरह की बेशभूषा पहनते थे वे अहले सूफ कहलाऐ और जो कालांतर में सूफी शब्द से संबोधित किये जाने लगे।

## 11.3 परिभाषाएं

जैसा कि पहले बताया गया है कि सूफीमत इस्लाम में विवाद का विषय है। ऐसा ही इसकी परिभाषाओं का मामला है। काजी जकरिया अन्सारी के अनुसार सूफीमत या तसब्बुफ एक

तरीका है जिसमें साफ–साफ बुद्धि के जरिये मारिफत या रहस्य ज्ञान बड़ी चतुराई से किया जा सकता है। यह रहस्यवाद का ज्ञान ही सूफीमत है। दूसरे शब्दों में सूफीमत ईश्वर के आदेशों का पालन है।

अल्लमा कुशेरी (मृत्यु 465 हिजरी) ने अपनी पुस्तक ' रिसाला' में लिखा कि जब अबूमोहम्मद अलजनेरी से सूफीमत के बारे में पूछा गया तो उन्होंने जवाब दिया कि तसव्वुफ़ अच्छी नैतिकता से जुड़ा है और बदचलनी को दूर करता है। उसके अनुसार सूफीमत नाम है तनहाई (अलग रहने) का और अपने मुर्शिद या रूहानी गुरु की निगरानी में रियाज़त (परिश्रम) करने का।

उमरबिन उसमान मक्की से जब सूफीमत के बारे में पूछा गया तो कहा "एक दास अपना कार्य जो उसे दिया गया है करता है और जो उसके कार्य पर कड़ी निगरानी रखता है। यही सूफीमत है। इसका अर्थ है कि सूफीमत गुलाम की ईश्वर से दास्यता है।

मोहम्मद बिन–अल–कसाब के अनुसार यह उच्च कोटि का स्वभाव है, जो मानव करते है वह तसव्वुफ़ है। अबुबकर माहेम्मद बिन अली बिन जा़फर की राय थी कि शायस्ता अखलाक (नैतिक सुझाव) का नाम तसव्वुफ़ है। एक व्यक्ति जो तुम्हारे बीच अच्छे स्वभाव का है अधिक प्रसिद्ध ख्याल किया जाता है और यह भी कहा कि " तसव्वुफ़ अपने आप को बचाने और सभ्य रहने का नाम है।"

इसका अर्थ है कि नियम, पाबंदी और रियाज़त सूफीमत के अंग है। माज़ जी़न ने विचार किया कि सूफीमत अन्त में ईश्वर को या सत्य को समर्पित करने का नाम है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सूफीमत में ज्यादा ध्यान अपने व्यवहार में नम्रता और सभ्यता को रखना, जिंदगी में नियमित और सभ्य रहना, जिंदगी में आवश्यक है। जिससे खुद की पवित्रता प्राप्त की जा सके।

## 11.4 उत्पत्ति

यह इस्लामी इतिहासकारों का मुख्य कर्तव्य है कि वह सूफीमत की इस्लाम में जड़ों को मालूम करें। बहुत से ईश्वर्य ज्ञान के ज्ञानी (Theosophist ब्रह्मज्ञान) ने अपने विचारों (नजरयों) को प्रस्तुत किया और इस विषय पर विचार रखे, फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि मौजूदा शताब्दी में यह इस्लामी समाज का विशेष अंग हो गया है और इससे समाज की नैतिकता के निर्माण का मुख्य कार्य किया गया। सूफीमत कब आरम्भ हुआ? यह बतलाना आसान कार्य नहीं है। विस्तार रूप में कहा जाये तो यह अकेले (अलेहयदा एकांत में) रहने और संसार के मामलों से दूर एकांत में रहना है। परंतु साथ–साथ यह भी दावा कोई कर सकता है कि यह अपवित्रता से पवित्रता का रहनुमाई का मार्ग है। यह भी कहना सही है कि सूफीमत की तहरीक इस्लाम तक ही सीमित नहीं है यह तो दुनिया के समस्त धर्मों में सामान्य रूप से समान है। अगर हम धर्मों के इतिहास का अध्ययन करें तो हमें मालूम होगा कि जब एक जाति (कौम) उन्नति की ऊंचाई पर पहुंच जाती है तो एक समय ऐसा आता है कि वह सुस्त हो जाती है और कार्यशील नहीं रहती। कठिन कार्य न करने की इच्छा उनके पतन का कारण बन जाती है।

अगर हम यूनानियों का इतिहास देखें तो देखेंगे कि पाईथागोरस पहला दार्शनिक (Philosopher) था जिसने कारमेनियन तहरीक चलाई। अफलातून की विचारधाराऐ (Theories) उसके दर्शन का आधार बनी। पाईथागोरस ने इन दार्शनिक विचारों को कार्यरता कहा और यूनानियों के सामने रखा। यही कारण है कि जब हम यूनानियों के पतन के कारणों का अध्ययन करते हैं तो हम पईथागोरस के उपदेशों को नजरअंदाज नहीं कर सकते जो एक कारण था। ऐसा ही मामला हिन्दुओं के इतिहास का है। जब यह चरमसीमा पर पहुंचा तो एक व्यक्ति ने बुद्धमत को स्वीकार किया और उसने फटे–पुराने वस्त्र पहनना आरम्भ किया जिसे संयासी का वस्त्र समझा गया। बुद्ध धर्म की शानदार (उज्जवल) संस्कृति के बावजूद यह नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता कि इससे मठों में रहने का जीवन आरम्भ हुआ। लेकिन इस्लाम एक सन्तुलित धर्म था। बुद्धमत का मठों में रहने का प्रभाव इस्लाम में दाखिल हुआ। इस संदर्भ में एक घटना वर्णन करने योग्य है। एक मरतबा हजरत उमर (दूसरे खलीफा) यरमुक की जंग में मसरूफ थे। अचानक उन्होंने देखा कि एक आदमी मस्जिद नबवी में ध्यान (meditation) में मस्त था। उन्होंने (उमर ने एक लकड़ी हाथ में ली और कहा, "ओ, बदबख्त दूसरे बरबादी के मनसूबे बना रहे है और तू ध्यान में लगा है")

जब अरबों ने भौगोलिक सीमाओं को पार किया तो मुसलमानों ने पराजित देशों के धर्मों में रुचि दिखाई। जब मुसलमान मध्य एशिया मैं पहुंचे तो वे नई अफलातूनी फिलोसोफी से परिचित हुए। नये अफलातून के फलसफे (दर्शन) ने मुसलमानों को बहुत प्रभावित किया। यहां यह आवश्यक मालूम होता है कि संबंधित प्रश्न का उत्तर जानने के लिए यह आवश्यक है कि नई अफलातून की थ्योरी (theory of Neoplatonism) क्या है?

पिलाईटोमस जो न्यूअफलातूनिफिलोंसफी का चैम्पियन था। यह अमुनिस का शिष्य था जिसने उसे कम से कम 15 साल तक फिलोसोफी (दर्शनशास्त्र) पढ़ाया। वह 305 बी. सी. में कमपेनियां में मर गया, उसकी मुख्य रचना अनिह थी। 11 साल तक अमूनिस की शागिर्दी में शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह हिन्दुस्तान आया जो थियोलोजी (धर्मशास्त्र) के अध्ययन का मुख्य केन्द्र था और बुद्ध और हिदू धर्म की कारमेथियन तहरीक के लिए लोकप्रिय था। वेदान्त के दर्शन का अध्ययन करके वह यूरोप वापस आ गया यूरोप लौटने पर उसने अपनी थ्योरी को पेश किया जो हिन्दू धर्म का पूर्व (West) का दर्शन, बुद्ध और अफलातून के पश्चिमी दर्शन का मिश्रण थी।

इस्लाम के न्यू अफलातूनी दर्शन के करीब आने से हिन्दू और बुद्धमत के सम्पर्क में आया और यह स्वाभाविक था कि इस्लाम पर इनकी विचारधाराओं (ideologies) का प्रभाव पड़ा।

न्यू अफलातूनी नज़रये ने तर्क और "अक्ल" के प्रयोग की आवश्यकता को जन्म दिया और इसके नतीजे में एक अलग जाति मुताजला जाति निकली पहला मुताजली था वासल बिन अता था उमराव बिन उवेद जो ख्वाजा हसन बसरी की मजलिसों में बैठता था। एक मरतबा उसका ख्वाजा हसन बसरी से राय का मतभेद हुआ और जिसके कारण वह ख्वाजा हसन बसरी की लगातार मजलिसों से अलग हो गया और इसलिए उसे मुताजला यानी अलग रहने वाला

(Separatist) कहा गया क्योंकि वह इस तरह दूसरे मुसलमानों से कट गया, मुताजलियों के मुख्य बुनियादी विश्वास हैं –

1. कुरआन तखलिक है।
2. देखना और सुनना अल्लाह की सिफात (विशेषतायें) है।
3. अल्लाह को स्वर्ग में भी नहीं देखा जा सकता है।
4. मानव अपनी आदतों का स्वयं निर्माता है इसलिए अच्छाई और बुराई के वह स्वयं जिम्मेदार है।
5. आकाशवाणी (प्रकट होने) से तर्क महत्वपूर्ण है।

उनकी गैर–इस्लामिक आइडियोलोजी (विचारधारा) के विपरीत एक और तहरीक वजूद में आई और वह भी अरबी लोगों की जिन्होंने मुताजला का हथिहार अपने बचाव पक्ष में इस्तेमाल किया। अबू हसन अली अल अश्अरी बिन इस्माईल, को इस तहरीक का बानी ख्याल किया जाता है। वह बसरा में पैदा हुआ आरम्भ में वह भी मुताजला था लेकिन कुरआन की रचना के सवाल पर उसने अपने गुरु का विरोध किया। अश्अरी लोग मुताजला से विपरीत धर्म के मामलों में "तर्क करते और मुखालफत करते थे उसके विपरीत उन्होंने " सुन्ना" या पैगम्बर के हवाले या रिवायत का इस्तेमाल किया और उनकी तकलीद करने का प्रयत्न किया। मुख्य अश्अरीयों की बुनियादी ऐतकाद की बातें है –

1. मानव को अपने कार्य करने की आजादी है। इसलिए वह अच्छे या बुरे के लिए उत्तरदायित्व है।
2. ईश्वर को इस दुनिया में देखा जा सकता है और यह भी यकीन है कि उसे स्वर्ग में देखा जायेगा।
3. समस्त खूबियां ईश्वर के विपरीत हैं। ईश्वर का अंग नहीं मताजला और अश्अरी की जंग ने समाज को तीन अंगों में बांट दिया और इस तहरीक ने मुसलमानों में गड़बड़ी फैलाई। इस तरह से तीन समूह पैदा हो गये जो निम्न थे –

1. कुछ लोग गड़बड़ा गये और उन्होंने राय कायम की कि अक्ल के जरिये वास्तविकता को प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। इस तरह कुछ लोगों ने अपनी मरजी के अनुसार थ्योरी पेश की। इस स्कूल की बेहतर मिसाल अल–जाइज है जो इस राय का था की "आग" "प्रकाश" ईश्वर है।
2. दूसरा ग्रुप इस राय का था कि शहादत या हक या वास्तविकता का सबूत जरूरी है और उसके बगैर वास्तविकता को सही नहीं बतलाया जा सकता। इस विचारधारा (स्कूल) के लोग है अलबेरुनी और इब्ने हसन।
3. तीसरा ग्रुप यह था जिसने सोचा कि तर्क धर्म की और धर्म में विश्वास की रहबरी नहीं कर सकता। यह बिलकुल अलग क्षेत्र है। इसलिए यह जरूरी है कि इमाम को मासूम (innocent) माना जाये। इस सेक्ट ने बाद में शिया मुस्लिम तबके की बुनियाद रखी।

इस बुद्धि की जंग के परे राजनीति की बातें भी सूफीमत की उत्पत्ति का कारण बनी जैसे उभैय्या नस्ल के हुक्मरानों के युग के खराब राजनीतिक हालात थे मदीने में जो पैगम्बर

द्वारा राज स्थापित हुआ यह सन्तुलित था और समानता का आईना था। अवाम और शासक में कोई अन्तर नहीं था। सामूहिक कार्य आपसी मश्वरे से होता था। कोई अदालतें नहीं थी। कोई नौकर नहीं और मदीने में कोई महल नहीं। गरीबों का हाल मालूम करने के लिए पैगम्बर की मृत्यु के बाद चारों खलीफा जिन के नाम थे हजरत अबूबकर, हजरत उमर, हजरत उसमान और हजरत अली, पैगम्बर द्वारा बतलाये पवित्र मार्ग पर चले लेकिन चौथे खलीफा हजरत अली की शहादत के बाद समस्त इस्लाम का राजनैतिक ढांचा जिसे खिलाफत कहा जाता था गिर गया और उमय्या और बाद में उनकी नस्ल ने शहंशाहियत को कायम किया। उम्मइद के जमाने में जीवन की विचारधारा बदल गई। इसने न सिर्फ मदीने से राजधानी को बदला। बल्कि तब्दीलियां पैदा की। सरकार के काम जो पवित्र माने जाते थे वे अब केवल दुनिया के मामलात थे और इसलिए बहुत से खास लोगों ने राजा (सम्राट) की नौकरी से अलहदेगी इख्तियार की। इसके फलस्वरूप राजनैतिक सिस्टम की कोई सहायता न रही और न पवित्र लोगों को सहायता मिली।

दूसरे उमैय्यद सख्त और व्यवहार में बहशी थे और उसने आम मुसलमानों के जज्बात को ठेस पहुंचाई।

पैगम्बर के जमाने में और खलीफाओं के समय में गर्वनरों को नियुक्ति करते समय हिदायत थी कि गरीबों और जरूरतमंदों के लिए रहम दिल रहें इसके विपरीत उमैय्यद के गर्वनर सख्त और जालिम थे। हज्जाजबिन सूसूफ़ इब्नेजियाद उम्माइद नस्ल के जालिम कमाण्डर थे। करबला की जंग और मक्का का मुहासिरा (seige) जैसे वाकिआत थे जिनसे मुसलमानों के धार्मिक लोगों को रंज हुआ और तकलीफ पहुंची।

यह न केवल अक्ल की गड़बड़ी का युग था बल्कि फतुहात (विजय) का युग था इस समय मुस्लिम फौज सीमाओं को बढ़ाने में लगी थी। मुसलमान फौज स्पेन की सीमा पर और सेन्ट्रल एशिया तक अफगानिस्तान, रूस, ईरान और भारत तक पहुंची।

इस मौके पर एक बुनियादी सवाल पूछा जा सकता है कि क्या इस्लाम ने सीमाओं की बढ़ोतरी की इजाजत दी है और शरयत के अनुसार हज्जाज का जालिमाना बर्ताव ठीक है। ऐसे सवालों ने समाज के मजहबी लोगों के दिमागों को परेशान किया। इन गड़बड़ियों को देखते हुए बहुत से स्कालर और समाज के बड़े लोगों ने दुनिया को छोड़ दिया। अगर यह सम्राट के अमीरों को ठीक करने के लिए कोशिश करते तो मुसलमान कौम को ज्यादा नुकसान की सम्भावना थी और इसलिए उन्होंने एकान्त में रहना पसंद किया।

जब यजिद बिन मबियाने से अब्दुल अशअल सान को अब्दुल्ला बिन जुबेर (जो पैगम्बर के एक साथी थे) से लड़ने के लिए भेजा और जब वह मदीना पहुंचने पर पैगम्बर के एक और साथी से मिले और फैले हुए गड़बड़ हालात पर आलोचना करने को कहा तो उसने जवाब दिया मेरे दोस्त पैगम्बर ने मुझसे कहा अगर तुम अपनी जिन्दगी में ऐसे हालात पाओं तो ओहद पहाड़ पर चले जाना और तलवार को तोड़ देना और फिर अपने घर वापस आना और तनहाई में रहना। अगर कोई तुम्हारे मकान मैं आये तो बिस्तर पर पड़ जाना और अगर तुम्हारे बिस्तर तक पहुंचे तो घुटनों के बल बैठों और उससे कहो कि नरक तुम्हारे करीब है। और मेरा और तुम्हारे गुनाह तुम्हारे शानों (कंधों) पर है और इसलिए मैने अपनी तलवार तोड़ दी है और खामोशी से मकान में पड़ा हूं।

यह एक वाकिया जानने के लिए काफी था कि समाज मैं क्या हो रहा था और यह हालात थे जिसमें सूफीमत ने मुस्लिम समाज में जन्म लिया।

हमारी राय में मुस्लिम समाज के अंदरूनी हालात बाहर के हालात से ज्यादा सूफीमत के लिए जिम्मेदार है।

## 11.5 विकास

ऊपर के तत्वों से यह नतीजा निकाला जा सकता है। प्रारम्भ में सूफीमत की और मुस्लिम समाज में रुझान रहा क्योंकि आरम्भ की स्थिति में सूफीमत मुसलमानों के लिए केवल ईश्वर की इबादत थी लेकिन बाद में सूफीमत के विषय पर विभिन्न मतभेद आये। ऐतिहासिक तौर पर यह स्थापित किया जा चुका है कि पहली शताब्दी हिजरी में तसव्वुफ शब्द आम था। पहला आदमी जो इस्लाम में पहला सूफी एक मत राय से मान गया अबूहाशिम था (मृत्यु 767 ए. डी.) जो हजरत सूफियान सूरी का समकालीन था (मृत्यु 778 ए. डी.) जो (हसरत सूरी) कहता था कि वह पहला सूफी नही था अबूहाशिम से पहले सूफी कौन था । इसके विपरीत अब्दुल रहमान जामी ने अपनी मशहूर पुस्तक 'नफहात–उल–अनफास' में लिखा अबु हाशिम से पहले बहुत से सूफी थे लेकिन यह भी सत्य है कि पहला आदमी जो इस्लाम में सूफी कहलाया वह अबु हाशिम ही था।

इस्लाम में सूफीमत की उत्पत्ति के कुछ भी वजूहात (कारण) रहे हों। लेकिन यह वास्तविकता है कि बसरा और कुफा जो गड़बड़ी के केन्द्र थे। वही सूफीमत की जन्मभूमि थी। उमैय्यद की राजधानी इन की विशेषता थी। पहली बसरा की बस्तियां उदाहरण के तौर पर वंश अरब कौम की तमीम जाति की थी, तमीम के लोग वास्तविकता पसंद थे और जिंदगी पर आलोचनात्मक दृष्टि रखते थे।

यह वास्तविक आलोचनात्मक थे। जिंदगी के बारे मैं यह वास्तविक दृष्टि कोण था। कविता में यह दृष्टि कोण साफ दिखाई देता था । वह पैगम्बर की जिंदगी और उनके अकवाल का अध्ययन करते थे तर्क और बुद्धि के आधार पर यह आमतौर पर तनहाई मैं रहने के आदी थे और अपना आजादी से जीवन अलग गुजारते थे। उनके यह हालात सूफीमत के लिए लाभदायक साबित हुए

## 11.6 सूफियों का पहला वर्ग

इस युग के पहले सूफी बसरा में इमाम बसरी (मृत्यु 110 हिजरी 727 ए. डी.) हजरत मालिक बिन दिनार, हजरत अली रक्काजी रिबा बिन उमर अलकेली सालेह उल माआरी और अब्दुल वाहिद–बिन जेद (मृत्यु 117 हिजरी 1793 ए.डी.) थे। दूसरी तरफ उन अरबों की आबादीयात का केन्द्र था जो अपनी मातृभूमी यमन से आये। वह प्राकृतिक तौर पर रूढिवादी थे। अफलातूनियत उनकी कविता की विशेषता थी उनमें अक्सर शिया और मरनिआम थे। उनमें से कुछ रविहबिन केशम (मृत्यु 67 हिजरी 686 ए.डी.) जाबर बिन हय्यान मनसूर बिन अममार, अबदाक इत्यादि थे।

कूफा और बसरा के सुफियों के अलावा दूसरे खास सूफी जो पहली श्रेणी में थे के सूफीमत में थे जो 41 हिजरी (661 ए.डी.) से 236 हिजरी, (850 ए.डी.) तक समय में थे

हजरत ओवेस करनी, हजरत मोहम्मद वासी हजरत हबीब, अजमी हजरत ख्वाजा फुजेल हजरत इब्राहिम अधम इत्यादि इस श्रेणी में शामिल थे।

पहली श्रेणी के सूफियों की विशेषता निम्न थी :

1. इस किस्म के लोग खोफ–ए–इलाही या ईश्वर के डर के लिए और तोबा (पछतावे) के लिए लोकप्रिय थे। हजरत राबिया बसरी हमेशा बतलाती थी कि जबानी तोबा झूठे लोगों का कार्य था।
2. इस ग्रुप के स्कालर सामूहिकता में कभी विश्वास नहीं करते थे बल्कि हमेशा स्वंय को कष्ट देने में यकीन करते थे। उन्होंने अपने चारों ओर शार्गिदों की भीड़ जमा करने की कभी कोशिश नहीं की और पारिभाषिक शब्द में अपने रहस्यवाद के भाव को प्रकट करने के लिए इस्तेमाल नहीं किया। इस ग्रुप (तबके) के सुफियों की भाषा, आसान, कोमल और स्पष्ट थी। सामाजिक और राजनीतिक वातावरण जो चारों ओर फैला हुआ था इतना खराब था कि उन्होंने सामाजिक जीवन से दूर रहने को तरजीह दी। राजनीतिक शान का चलन था जो पैगम्बर की शिक्षा के विपरीत था। यह ही उनके अलेहदा तनहाई में रहने का मुख्य कारण था।
3. इससे सुफियों और सम्राट के उलेमा के दरमियान एक उलमी वाद पैदा हुआ। मनसूर हल्लाज और हजरत जुननुव अल मिसरी (मृत्यु–230 हिजरी 854 ए. डी.) शेख नुरी और शेख अबुहमजा ने ऐसे झगड़ों का विस्तार से बयान किया है।
4. पहले सूफी की श्रेणी की मुख्य विशेषता थी कि उन्होंने किताबों में अपनी विचारधारा लिखने की जरा भी कोशिश नहीं की लेकिन फिर भी हजरत शेख अब्दुल्ला बिन मुबारक (मृत्यु 181 हिजरी 797 ए. डी.) और हजरत सूफीयान सूरी (मृत्यु 181 हिजरा/777 ए. डी.) ने कुछ किताबें लिखी। शेख अब्दुल्ला ने किताब–उल–जुहाद लिखी और सूफियान ने चार जिल्दों में रचना की :
    1. अल–जामें–उल–कबीर फिल फिकाह बल ईखतिलाफ
    2. अल–जामी–अल–संगीर
    3. किताब अल–फरायज़
    4. किताब उल–तफसीर
    5. इस तबके के सूफियो ने जैसा ऊपर बयान किया है अपने को सम्राटों की सोहबत से काट लिया और वह सरकार को अपनी खिदमत देना खराब महसूस करते थे और इसे एक गुनाह का कार्य समझते थे लेकिन जब भी वह सम्राटों के, खलीफाओं के रूबरू, आते थे, तो वह कड़वी सच्चाई के बोलने के लिए काफी निडर थे इस रवैये के नतीजे निम्न है :–

(अ) हालांकि सूफी अपने खुद के सुधार और पवित्रता पर जोर देते थे लेकिन उन्होंने निडर अपने नजरिये रखे कि इस्लाम का कोई राजनीतिक लक्ष्य नहीं है बल्कि यह तो जीवन के समस्त पहलुओं को अपने अन्दर लेता है। यह कभी भी राजनीतिक विस्तार नहीं है बल्कि इसने

आत्मा के विकास पर जोर दिया और इसलिए उन्होंने (सूफियों ने) आम लोगों को नैतिकता के उपदेश दिये।

(ब) इतिहास से यह स्पष्ट है कि इस्लामी उपदेश राजनीतिक फतूहात (विजयद्वारा) नहीं फैले बल्कि इन सूफियों द्वारा बाकी दुनिया में फैले।

(स) सूफी सम्राटों के खलिफाओं के सम्पर्क में नहीं रहे इनका अलग रहने का कारण खलिफाओं का गैर–इस्लामी रवैया था लेकिन जब भी अवसर पाते थे उन्होंने याद दिलाया कि वह (खलीफा) ही दुनिया में सिर्फ हाकिम नहीं है बल्कि एक बड़ी जा़त है जो संसार के तमाम कारोबार पर अपनी हुकूमत रखती है। अर्थात् ईश्वर है।

(द) जालिम गर्वनरों (शासकों) और सम्राटों के समक्ष निडर बात का साहस इस्लामी इतिहास की एक विशेषता रही है। इतिहास में बहुत सी मिसालें हैं। जो इस चरित्र का जोरदार प्रमाण है।

## 11.7 दूसरी पीढ़ी (नस्ल) के सूफी :–

दूसरी प्रकार के सूफी खास तौर पर अब्बासी दौर से संबन्धित थे। जैसा पहले कहा जा चुका है कि यह युग था जिसमें इस्लाम में परिवर्तन हुआ। पहले राजधानी मदीना से कुफा बदल गई और वहां से फिर बगदाद, खिलाफत का दृष्टिकोण राजशाही में बदल गया। विदेशियों से यह इस्लाम के सम्पर्क का युग ही नहीं बल्कि विदेशियों की कल्चर, सभ्यता, विचारों और दर्शन से सम्पर्क भी था। जब मुसलमान, मिश्र पहुंचे जो फैलने वाले विचारों का केन्द्र था तो अफलातूनी नजरिये का तूफान इस्लाम में दाखिल हुआ। उमैय्यद के युग में मुसलमानों ने भौतिक ज्ञान और तिब्ब का अध्ययन ही नहीं किया बल्कि अब्बासियों के दौर में अफलातून के नजरिये पर बड़ा जोर दिया। हारून रशीद, जो अब्बासियों का एक खलीफा था, ने बेतूल हिकमत (समझ का घर) स्थापित किया जहां स्कालरों को दूसरी भाषाओं से अरबी में अनुवाद का कार्य सौपा गया। मामूनने (जो उसका वारिस था) अफलातूनी नजरिये में दिलचस्पी ली। उसने अफलातूनी नजरिये पर प्राप्त पुस्तकों के भेजने के लिए रोम के केसर (बादशाह) को पुस्तकें बगदाद भेजने के लिए पत्र लिखा। केसर (रोम के सम्राट) ने बड़ी तलाश के बाद पुस्तकों का बड़ा संग्रह किया और उसे पुस्तकें बगदाद भेजने में हिचकिचाट हुई। तब उसने अपने दरबारियों से मशवरा किया। उन्होंने मशवरा दिया कि इसमें कोई हानि नहीं। अगर दर्शन (फलसफा) मुसलमानों में फैले वह अपनी धार्मिक कट्टरता में नर्मी बरतेंगे तब केसर ने किताबें पांच ऊंटों पर लदवाकर बगदाद भेजी। याकूब बिन कुन्दी को मामून द्वारा अनुवाद का कार्य करने पर नियुक्त किया गया।

बेतुल हिकमत के अधिकारी दूसरे विभिन्न देशों, रोम, आरमिनिया मिश्र और सिरिया इत्यादि में दर्शन की किताबों को एकत्रित करने और अध्ययन करने पर भेजे गये।

मामून हर जुमेरात की शाम जो वार्तालाप रखता था। वहां वह स्वयं बैठता था और विभिन्न विद्वानों को ध्यान से सुनता था। कुरआन का मामला "यह रचना' (तरबलिका) है" उस समय का बड़ा वाद था। इन तमाम बातों ने मुसलमानों को तर्क की और आकर्षित किया कि वह "तर्क" को काम में लाये और इसलिए बुद्धि और तर्क उनके सारे कार्यो के लिए महत्वपूर्ण बन गया। हदिस और पैगम्बर की सुन्नत जिनको काम में लाने का मुसलमानों को हुक्म था

उसकी जगह वह तर्क और बुद्धि को इस्तेमाल करने लगे। इसने इस्लाम की बुनियाद ईमान को नुकसान पहुंचाया। यहां यह वर्णन करने योग्य है कि इससे यह गलत फहमी नहीं होनी चाहिए कि इस्लाम तर्क या बुद्धि के इस्तेमाल के विरुद्ध है बल्कि वास्तविकता तो यह है कि इस्लाम ने धर्म की संस्था के अन्तर्गत तर्क के विकास को बढ़ावा दिया। तर्क जो धार्मिक संस्था में विकसित नहीं होता वह मानव जाति के लिए जहर है।

जब कभी ईमान (यकीन) में शंका हो तो वह कौमों की एकता को हानि पहुंचाता है और यह उस जमाने में हुआ यह तर्क नहीं था जो बगैर तर्क किये हुए इस्लाम में प्रवेश 'कर गया, बल्कि उससे बनावट आई। धर्म की हैसियत से इस्लाम जो दिलों को छूता था वह तर्क की तरफ रूझान को सन्तुष्ट करने में सफल नहीं हुआ। अब इस्लाम के उपदेश की पालना के बजाये तर्क (बहस) ने जगह ले ली।

इस्लाम की सादगी, साधारण और नेचुरल धर्म को इस्लाम में गैर जरूरी बनावट से धक्का लगा। इससे कई समस्याओं ने जन्म लिया जैसे कुरान एक रचना है और जन्नत और दोज़ख़ करामात और मैराज पर एक प्रश्न वाचक लगा। अब हर विचार को बुद्धि और तर्क की कसौटी पर जांचा गया। अब यूनानी फलसफे की रोशनी में कुरान की व्याख्या हई। यह स्पष्ट है कि यह इस्लाम धर्म के अध्ययन के ये सारे तरीके गैर–इस्तामी थे।

कुछ बड़ी शख्तियतों ने (व्यक्तियों) इस रूझान को गम्भीरता को महसूस किया और जो इन वाकिआत से घुटन महसूस करते थे वे थे हजरत बेयज़िद बिस्तामी, हजरत जूननून (मिश्र) बगदाद के हजरत जुनेद और ख्वाजा फरीद्दीन अत्तार। यकीन की दुनिया में "तर्क" का उन्होंने विरोध किया और स्नेह (प्रेम) की थ्योरी रखी। तर्क और बुद्धि के विरुद्ध मुहब्बत के हथियार ने बड़ा सकारात्मक (Positive) कार्य किया। वह इस राय के थे कि मुहब्बत एक मार्ग है। जिसके जरिये व्यक्ति पवित्रता पा सकता है।

मुख्य विशेषता जो इस दूसरी सुफियों की थी वे निम्न थी –

1. सुफियों की पहली पीढ़ी ने उमैय्यद दौर में मुस्लिम समाज में सम्राटों के असर को नकारा और ईश्वर से डरने पर जोर दिया। इस तरह इस प्रकार के सुफियों ने तर्क को इस्लाम की बुनियाद नहीं तसलीम किया बल्कि तर्क की जगह प्रेम को बतलाया। भजन (हम्द) जो हजरत ख्वाजा फरीद्दीन अत्तार ने सुझाये वह उस समय की आश्चर्य जनक आवाज थी जब हम उनका अध्ययन "तर्क" के उस समय के वातावरण में करते है।

दूसरी इन सुफियों की विशेषता थी कि उन्होंने अक्ल की बजायें दिल की अहमियत की हिमायत की उन्होंने सफलतापूर्वक जोर दिया कि दिल मानव के अमल का केन्द्र है और वह दिमाग से उठने वाले भय (शंकाओं) का नियंत्रण और समाधान करता है।

2. हजरत माआरुफ खरकी ने ध्यान पर जोर दिया। हजरत सिरी सकती ने वहदत (एक ईश्वरवाद) पर जोर दिया जो बाद में वहदत–उल–वजूद या एक ईश्वरवाद में परिवर्तित हो गया।

## 11.8 तीसरी प्रकार के सूफी : –

तीसरी प्रकार के सूफी दसवीं शताब्दी से सम्बन्धित है। इस प्रकार के या श्रेणी के विचारों (ideologies) को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम इस्लामी विधि पर एक नजर डालें।

जब इस्लाम दुनिया के विभिन्न देशों में फैला तो यह जरूरी महसूस किया गया कि विस्तृत रूप में इस्लाम को दार्शनिक वातावरण में जीवित रहने के लिए उनकी समस्याओं की व्याख्या हो। यह आवश्यकता ही इस्लाम में जुरिसप्रूडेन्स (कानून) के नये अध्ययन की जिम्मेदार है।

इस तरह इमाम अबुहनिफा (81 से 150 हिजरी/757 ए. डी.) इमाम–ए–मालिक (96 से 97 हिजरा/780 एण्ड 785 ए. डी.) इमाम–ए–शाफई (150 से 204 हिजरा/726 से 820 ए. डी. तक) और इमाम अहमद बिन हम्बल (164 से 241 हिजरा, 780 से 855 ए. डी.) ने अपनी योग्यता का प्रयोग किया और इजतिहाद के अलेहदा चार स्कूल थाट की इस्लाम में बुनियाद रखी। उन्होंने इस्लामी समाज की बुनियादी जरूरतों को पूरा किया। इन फाजिल विद्वानों ने नहीं सोचा था कि बाद में वे इस्लाम में इस्लामी विचारधारा (Schools of Thought) पर विशेषज्ञ समझे जायेंगे। लेकिन यह मजाक है कि चारों स्कूलों की स्थापना की एक सदी के अन्दर इजतिहाद के दरवाजे बंद हो गये और इस्लामी उसूल स्थापित हो गये। इस के मुख्य सूफी निम्न थे –

1. शेख अबूसईद इबनअरेबी (मृ. 341 हिजरा/952 ए. डी.)
2. शेख अबू मोहम्मद (मृत्यु 347 हिजरा/957 ईसवीं)
3. शेख अबू अल नसर–सिराज (मृत्यु 387 हिजरा/988 ए. डी.)
4. शेख अबू तालिब मक्की (मृत्यु 386 हिजरा/966 ए. डी.)
5. शेख अबूबकर (मृत्यु 390 हिजरा/1000 ए. डी.)
6. शेख अबू अब्दुल रहमान अल सलमान (मृत्यु 421 हिजरा/1071 ए. डी.)

इन समस्त सुफियों ने हृदय की पवित्रता में सुधार किया और अंदरूनी तबदिली धर्म की सही राह कायम की। इस युग के सुफियों ने अमल पर जोर दिया इस प्रकार के सूफियों की विशेषता निम्न थीं –

1. उसके अमली पहलू को दृष्टि में रखते हुए उनहोंने किताबों उनके पूर्वजों की आत्मकथा या तबकात, पहले सूफियों की शिक्षा को फैलाने के लिए लिखी। शेख अबूसईद इब्ने अराबी, शेख अबु मोहम्मद, शेख अबु अब्दुल रहमान उस समय के लिखने वालों में थे। शेख अबू सईद इब्ने अराबी बडे मुहद्दिस और कानून के विशेषज्ञ थे जिसने तबाकात लिखी। जो सूफीमत की महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक कृति है। हालांकि आज यह उपलब्ध नहीं है लेकिन विभिन्न विभिन्न पुस्तकों में बिखरे हवालों से जाहिर है कि वह एक महत्वपूर्ण पुस्तक थी।

दूसरी रचनाएं जो उस समय प्रस्तुत हुई 'तबाह–उस–साफिन' थी जो अबु अब्दुल रहमान द्वारा लिखी गई जो आयंदा पीढ़ी के लिए लिखी गई अनेक पुस्तकों का ज़रिया (स्त्रोत) है।

2. एक दूसरी विशेषता जिसने उन दिनों गहरा प्रभाव डाला, वह इन विद्वानों की लिखी गई 'तरिकत' की किताब थी शरियत जो शेख के द्वारा बताये गये नियमों पर आधिारित थी। यह कुरान की तालिमात और सूफियों की रहस्यवाद की रियाजत में तालमेल पैदा करने की कोशिश थी। इसलिए कुब्बतुल–कुतुब शेख अबूतालिब मक्की द्वरा लिखी गई थी से स्पष्ट था कि उसने कुरान और सुन्ना की बुनियाद पर सूफीमत पर जोर दिया था और उसने इबादतों और रियाजतों को खास जगह दी जो फिके के अनुसार थी। लेकिन उनमें नमाज के अन्दरूनी पहलू पर जोर था जो अल्लाह के सामने समर्पित होना थी। शेख अबूबकर ने अपनी पुस्तक अलतसववुफ ली मजाहिब अहले तसव्वुफ में सूफी मत के बुनियादी उसूलों से बहस की और साबित किया कि सूफीमत का आधार कुरान की तालिमात है।
3. उम समय की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि उस वक्त सूफीवाद की अवधस्णा को व्यक्त करने की कई पारिभाषिक शब्दावलियां प्रचलित थी। ये तर्क अध्ययन और अनेक दर्शनों का प्रभाव था जो उस वक्त का फैशन था।
4. उस समय की दूसरी महत्वपूर्ण किताबों में मौतबर और मशहूर रचना शेख अबुनसर सिराज द्वारा लिखी गई किताब 'किताबूल लुमआ' थी। इस किताब में लेखक ने सूफीमत के विभिन नजरयात पर बहस की और रोज़ाना रियाज़त के उसूल की बुनियाद डाली। लेखक ने पवित्रता और सुधार पर जोर दिया। शेख अबू नसर सिराज ने एक अलग अध्याय "सबर" भरोसा और ईश्वर का भय एवं प्रेम पर लखे।
5. दूसरी विशेषता उस समय की थी कि उस जमाने में सूफीमत बहुत से तबकों में बंटा था। शैख अली हजवेरी ने अपनी किताब 'कशफूल महजूब' में कम से कम 12 समूहों के बारे में विस्तार से लिखा है –
    1. हलूली या हल्लाजी: यह तबका मनसूर हल्लाज और उसके साथियों ने पारित किया। वे अवतार वादी सिद्धांत में विश्वास करते थे।
    2. तेफूरिया :– यह तबका (वर्ग) हजरत बेयाज़ीद तेफूर बिस्तामी द्रारा कायम हुआ। यह मनोवेग और मस्ती पर जोर देता था।
    3. कासरिया :– यह वर्ग शेख मखदूम कस्सार द्रारा स्थापित हुआ यह तबका बाद में निन्दनीय में बदल गया।
    4. नूरिआ इस तबके को शेख अब्दुल हसन नुरी ने प्रचलित किया वह फकीरी में रहते थे। उन्होंने लोगों की सोहबत में रखने के बजाए तनहाई (अलग) में रहने को अच्छा समझा।
    5. महासिबिआ :– इसकी बुनियाद शेख अब्दुल्ला हारिस बिन असद महासिबी ने रखी। वह इस राय के थे कि ईश्वर की खुशनिदी स्थायी नहीं, अस्थायी है।

6. तसतारिया :– इस ग्रुप का नेता शेख सहेल बिन अब्दुल्ला तसतरी था। उन्होंने अपने आप की पवित्रता के उसूल की बुनियाद रखी। वह इस यकीन के थे कि ईश्वर के आशीर्वाद पाने से कष्ट पाना बेहतर है।
7. हाकिमिआ :– इसकी बुनियाद हजरत अली अब्दुल्ला बिन अली अल हाकिम अल तिर्मिजी ने रखी। दरवेशी का नजरया इसी वर्ग द्वारा निकला गया।
8. खराजिआ :– यह शेख अबू सईद खराजी द्वारा कायम हुआ। फना के नजरये की बुनियाद इस वर्ग ने रखी।
9. खाफिआ : – इस वर्ग के संस्थापक हज़रत अब्दुल्ला मुहम्मद बिन खफीफ थे। वर्ग ने मौजूद और गैर मौजूद के विचार पर जोर दिया।
10. सिआरया : – इसके स्थापित कर्त्ता शेख अब्दुल अब्बास सियारी थे। जमा और तफरीक का नज़रया इनसें निकला ।

## 11.9 सूफीमत 10 वीं शताब्दी में

सूफीमत 10वीं सदीं तक पहुँचते ही एक तहरीक बन गया। इस पर कई पुस्तकें उपलब्ध थी। बहुत सी शब्दकोश प्राप्त थे। बहुत से सम्प्रदाय थे इसके बावजूद तसव्वुफ़ की मुकम्मल शक्ल नहीं थी। लेकिन अर्थ साफ नहीं था। समूह बहुत थे, लेकिन समूह के शब्दार्थ साफ नहीं थे। तबकों में विभाजन नही पाया गया, जो समूहवाद का सार बनता। इसलिए सूफीमत के इतिहास के अध्ययन के लिए तीन सौ साल के सूफीमत के विकास संबंधी अध्ययन की जरूरत थी। '

## 11.10 /11वीं शताब्दी में सूफीमत –

11वीं शताब्दी के सूफीमत के मुख्य सूफी संत निम्न थे :–

1. शेख अबू नईम अशाहानी (मृत्यु 430 हिजरी/1038 ए. डी.)
2. शेख अबुल कासिम (मृत्यु 465 हिजरी/1072 ए. डी.)
3. शेख अली हजवेरी (मृत्यु 405 से 412 हिजरी तक मानी जाती है।
4. शेख अब्दुल्ला अंसारी (मृत्यु 487 हिजरी/1088 ए. डी.)
5. शेख अबू सईद अब्दुल खेर (मृत्यु 440 हिजरा/1049 ए. डी.)
6. शेख अबू नईम शांफई स्कूल के स्कालर थे। वह इल्म–ए–हदिस के सवोच्चज्ञाता थे। उनकी आला रचना हिदायत उल अलेमाथी जो भी अहम किताब मानी जाती है। जिस में पूर्व के सुफियों के आत्मकथा के हवाले मिलते है।

शेख अब्दुल कासिम भी उस जमाने की महत्त्वपूर्ण शखसियत थे जो रिसाला–ए–तसब्बुफ के लेखक थे जो उस जमाने में बड़ा लोकप्रिय था। शेख काजिम ने अपने रिसाले में रहस्यवाद (Mysticism) की अवधारणा को निम्न तरीके से समझाया है–

**"समय", मकाँ अज़ितत्वे, संग्रहण, हाजिर, गैर हाजिर, रहस्यवादी संस्थाऐ नैहिरता इत्यादि है।**

अपने रिसाले में सूफीमत के विरोधियों द्वारा उठाये हुये प्रश्नों का जवाब देने का प्रयत्न किया और सफलतापूर्वक उनकी कार्यवाहियों को शांत किया।

शेख अली हजवेरी इस समय के दूसरे सूफी थे जो मजहबी इल्म के बड़े स्कालर थे। उन्होंने दूरदराज का सफर किया। वह बहुत से सुफियों से मिले। प्रारंभिक जिन्दगी में वह सफर करने के शौकिन थे और इसलिए उन्होंने सिरिया सें तुर्की और सिंध नदी से कैस्पियन समुद्र तक सफर किया और अंत में लाहौर पहुँचे और आखिर में वही बस गये। हालांकि वह बहुत सी किताबों के लेखक थे लेकिन केवल एक किताब ही बाकी रही जो आज भी उपलब्ध है। जो 'कश्फुल महजूब' है। जो 11 वीं शताब्दी के सूफीमत की महत्वपूर्ण किताब है।

इमाम कुशैरी की तरह शेख अली हजवेरी ने विरोधियों की शंकाओं का समाधान किया और इस्लामी शरियत के उन्हें करीब लाये। यह पहली किताब है जो अरबी के इलावा फारसी में लिखी गई जिसका लक्ष्य ज्यादा से ज्यादा लोगों को साफ समझने में फायदा किया। इस युग की सूफीमत की विशोश्ताएं निम्न हैं :–

1. इस समय सूफीमत अवाम में बढ़ रहा था।
2. उस समय तसब्बुफ़ को कुरान के नजदीक लाने की कोशिश थी और सूफीमत को कुरानी शरियत के अंतर्गत सफलतापूर्वक लाये। परिणाम यह हुआ कि उल्लेमा भी सूफीमत में शामिल हो गये।

## 11.11 /12 वीं शताब्दी में सूफीमत

सूफीमत के विकास के इतिहास में शायद यह महत्वपूर्ण युग है और इसने बहुत से रहस्यवाद के सिलसिलों की बुनियाद रखी जिससे सूफीमत 13वीं शताब्दी में फूला फला। 12वीं शताब्दी के सूफीमत के समझने के लिए उस शताब्दी की कुछ शख़्सियतों का अध्ययन जरूरी है–

### 2.11.1 हजरत इमाम गजाली (मृत्यु 500 हिजरी/1111 ए.डी.)

सूफीमत की बुनियाद में इमाम गजाली एक हरदिल अजीज व्यक्ति थे लेकिन उन्होंने अपनी शोहरत दूसरे विषयों में प्राप्त की। अहया–उल–उलूम इमाम गजाली द्वारा लिखी गई मशहूर किताब थी। मुस्लिम धर्मशास्त्र की आज भी बुनियाद समझी जाती है। गजाली को प्रारम्भिक जीवन में काबिल स्कालर ने पढ़ाया कि कुछ ही समय में वह बहुत लोकप्रिय हो गये। उनकी सभाओं में विभिन्न क्षेत्रों के 300 से ज्यादा स्कालर और सैकड़ों अमीर लोग और दूसरे स्कालर उपस्थित रहते थे। एक मरतबा लेकचर देते समय उनका छोटा जवान भाई अहमद गजाली जो दिल से सूफी था, उनके पास आया और कुरान की आयतें सुनाई जिनका अर्थ था तुम दूसरों को राह बतलाते हों खुद दिशा नहीं लेते, तुम दूसरों को पढ़ाते हे लेकिन खुद नहीं सिखते। ओह! संग दिल आदमी तुम कब तक लोहे की भांति रगड़ते रहोगे और खुद नहीं कुचले जाओंगे। गिजाली इससे बहुत प्रभावित हुये और सूफीमत की ओर झुक गये तब दूर–दूर तक उन्होंने बहुत से जंगलों में कई साल तक सफर किया, तब वह हजरत इब्राहिम पैगम्बर के मकबरे पर आये और उन्होंने कसम खाई –

1. कभी किसी बादशाह के दरबार में नहीं जायेंगे।
2. किसी बादशाह से तोहफे कभी नहीं लेंगे।
3. कभी किसी से तर्क और बहस न करेंगे।

तब गजाली ने नैतिकता का उपदेश देना आरम्भ किया उनकी शिक्षाऐं सूफीमत का आधार है और इस लक्ष्य के लिए गिजाली ने आम लोगों की बेहतरी के लिए लगा दिया इसमें गिजाली ने निम्नलिखित सेवा करने की सिफारिश की।

1. गिजाली ने सूफीमत को एक तरीके से पेश किया और जो कुछ उनसे पहले लिखा गया उसका उन्होंने गहरा अध्ययन किया और उसके सकारात्मक परिणाम निकले।
2. गिजाली स्वयं भी फिलोसोफर (दार्शनिक) थे। और उन्होंने अक्ल की सीमित सीमा का तजरबा था। इसलिए उनकी पुस्तक अल–मंकाज मिनाल जलाल में उन्होंने अपने तजुर्बे लिखे और दिमाग और तर्क की सीमाओं की विस्तार से व्याख्या की।
3. हलांकि गिजाली ने पुस्तक लिखते समय अक्ल के तरीके और तर्क को अपनाया लेकिन उनका लिखने का तरीका नया था और इससे धर्म को विचार का आधार बनाया।

उनके नैतिक उपदेशों ने एक धर्म पद्धति (Institution) को स्थापित किया।

उनकी तालिम के बुनियादी क्षेत्र थे :–

1. धर्म का आत्मज्ञान।
2. अकल
3. मनोविज्ञान (Psychology)
4. उनकी किताबें उनकी शिक्षाओं का कार्यशैली का उत्तम उदाहरण है।
5. उसने हर भाव को अर्थ दिया। उसने जबान की शब्दकोष में विस्तार किया। जिनको अल्लामा कुशैरी के द्वारा तरतीब दिया। कुछ शब्द इमाम गजाली ने अल्लामा कुशैरी के द्वारा बनाई गई। कुछ शब्दकोष गजाली द्वारा बनाई गई थी। "सफर" दौड़ने वाला, वजदान रख्सत, योनियन, इरादा, कारज, कजा व कदर, इलहाम कामिनी हरकत इत्यादि शब्द इमाम गजाली द्वारा परिभाषित किये गये।

इमाम गजाली के परवर्ती सूफियों ने कुछ परम्पराऐं चलाई लेकिन परम्पराओं के पीछे क्या कारण थे वे स्पष्ट नहीं कर पाये। परन्तु गज़ाजी ने इसको स्पष्ट किया। उदाहरणार्थ कई सूफी शासक के साथ न रहकर एकान्त में रहने लगे। उन्होंने एकान्त में रहने के कई कारण बतलाए। उन्होंने अपनी पुस्तक 'इहय–उल–उलूम' में लिखा कि एक व्यक्ति शासक के दरबार में उपस्थित होने पर कई नाजायज बाते करता है। प्रथमत: शासक का निवास ईश्वर की अप्रसन्नता का केन्द्र है ऐसे जगह पर पांव रखना (रहना) पाप है। दूसरे राजा के सामने, झुकना और उसके हाथों को चूमना भी एक पाप पूर्ण कार्य है और महल के रेशमी पर्दे, सोने के बर्तन सजावट के सामान देखना भी नाजायज है। आखिर में राजा के जीवन की सुरक्षा के लिए प्रार्थना करना और ईश्वर से सहायता मांगना गुनाह है। इस प्रकार उनके परवर्ती सूफी सन्तों की परम्पराओं की व्याख्या भी है।

### 11.11.2 हजरत शेख अब्दुल कादर जिलानी (मृत्यु 561 हिजरी/1166 ए. डी.)

12वीं शताब्दी के माने हुई सूफी हजरत अब्दुल कादर जिलानी थे। अगर गजाली ने सूफी मत को उस पर किताबें लिखकर पूर्ण बनाया तो यह अब्दुल कादर जिलानी थे जिन्होंने अपनी रिआज़त की कोशिशों से सूफीमत को विस्तार से फैलाने में योगदान दिया। उन्होंने अपने विचारों और भाषणों से एक क्रान्ति पैदा कर दी।

जो योगदान उन्होंने सूफीमत के विकास में दिया वह एक मिसाल है। उन्होंने अफगानिस्तान और सेंट्रल एशिया के दूसरे देशों को करीब–करीब प्रभावित किया। उनकी सभा (जलसे में) तादाद कई बार 70 हजार तक होती थी। उनके उपदेशों को एक भीड़ की अत्यधिक संख्या सुनती थी। उन्होंने सूफीमत पर अनेक किताबें लिखी लेकिन उनमें से चार बहुत आम हैं :–

1. फूतूह–उल–गैब– यह 87 उपदेशों (वाजों) का संग्रह है जो विभिन्न मौकों पर शेख ने दिये।
2. फूँतूह–ए–रब्बानी– यह शेख के 62 भाषणों का संग्रह है।
3. गुनयात–ए–तालिबीन– इस किताब में शेख ने विस्तार से मुस्लिम समाज के 73 फिरकों के हालात दिये है।
4. अल फूयुजात–उल–रब्बानी– शेख अब्दुल कादर जितानी ने अपने समकालीन पीढ़ी को अपने नैतिकता से प्रभावित किया और वह हर एक को आदर देते थे।

### 11.11.3 शेख मुहिउद्दीन इब्न–ए–अराबी (मृत्यु 560 से 638 हिजरी/1165 से 1240 ए. डी.)

सूफीमत के संसार की 12वीं शताब्दी की एक खास शख्सियत शेख मुहिउद्दीन इब्न–अरबी थे। वह स्पेन में मारिया कस्बे में 560 हिजरा में पैदा हुये। फिर वह अश्वीलिया चले गये और उन्होंने वहां पर प्राथमिक स्तर पर अध्ययन किया। नामुनासिब हालात ने उनको उस जगह को छोड़ने पर मजबूर किया। तब उसनें सफर करना आरम्भ किया। स्पेन की दूरदराज़ की जगहें वह गये। 1201 ए. डी. में वह पश्चिम की ओर चले गये और पूर्व के देशों की ओर भी फिरे और मिश्र, सऊदी अरेबिया, बगदाद, सेन्ट्रल एशिया के मुल्कों में गये। वह उसूल के सख्त थे और इसलिए अवाम में प्रिय नहीं हुए और एक स्थान पर ज्यादा नही रुके। अंत में वह दमिश्क पहुँचे और 1240 ए. डी. में अपने प्राण छोड़े (मर गये) उन्होंने बहुत सी किताबें लिखी। मौलाना जामी के अनुसार उन्होंने 500 पुस्तकें लिखी। बर्कलेने शेख की लिखी किताबों की फहरिस्त दी है जिसकी तादाद 150 के करीब थी। उनकी दो किताबें बहुत पंसद की गई और अध्ययन के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण मानी जाती है। वह है :–

1. फूसु–सूल–हुकम
2. फूतूहात–ए–मक्किया

शेख ने स्वयं इन किताबों के बारे में लिखा है कि उन्होंने इनमें ज्ञान के बारे में हर बात लिखी जो उसके हृदय मैं अमानत की तरह थी और जो काबा का तवाफ़ (चारों और घुमना) करते समय प्रकट की और ईश्वर ने मक्के में तवाफ़ के दौरान उन पर प्रकट किया।

उनके दर्शन की मुख्य शिक्षा एक ईश्वरवाद थी या बहदूतल वजूद थी। उन्होंने एक सिद्धांत(Theory) पेश किया जिसके अनुसार संसार में ईश्वर के सिवा कोई नहीं है। हर चीज जिसे हम देखते या विचार करते हैं। दुनिया में नही है बल्कि वह गलत विचार है और सत्य की परछाई। सत्य तो केवल ईश्वर है। इस एक ईश्वरवाद के दर्शन ने आने वाली नस्लों को प्रभावित किया और जो सूफीमत का भविष्य से एक आधार बना।

लेकिन उसी समय यह इतना नाजुक मसला था कि उन्होंने अपने मुरिदों को उन पर आजादी पूर्वक आलोचना करने से मना किया फिर यह एक सत्य है कि जब कभी आजादी पूर्वक बहस इस मसले पर आम जनता में हुई। इस्लाम की तालिमात की खिलाफत करने लगे। और वे चापलूस और काफिर हो गये।

### 11.11.4 हजरत शेख शहाबुद्दीन उमर सुहरावर्दी (मृत्यु 539 से 632 हिजरी/1145–1234 ए. डी.)

हजरत शेख शहाबुद्दीन उमर सुहरावर्दी शेख इब्ने अराबी के समकालीन थे। 'अवारिफ–उल–आरिफ' उनकी मशहुर पुस्तक थी। इस किताब की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि एक और यह सूफीमत के आधारभूत विश्वासों के बारे में जानकारी देती है और खानकाहों या सुफियों के घरों में सिलसिले के बारे में हर प्रकार की मालूमात देती है।

इस किताब ने सुफियों के सभी सिलसिले में प्रसिद्धी पाई, विशेषकर सूफी सिलसिले में चिश्तियों ने अवारिफ–उल–माआरिफ को काफी अहमियत दी। हजरत बाबा फरीद गंज–ए–शकर इस किताब से अपने मुरिदों को व्याख्यान देते थे।

(19) शेख सादी जिन्होंने समस्त इस्लामी में दुनिया में मुनासिब रूहानी गुरू की तलाश में सफर किया, लेकिन सफल नहीं हुए लेकिन जब उन्होंने अचानक शेख सुहरावर्दी को देखा उनके मुरीद हो गये और शेख को अपना मुर्शिद मान लिया।

12वीं शताब्दी मुसलमानों की बेहतरी के, लिए मुनासिब नहीं थी। यह मुसलमानों के हर मैदान में पतन का युग था। हर आतंकवादी ताकतें बगदाद पर आक्रमण करती थी। शासकों का नैतिक आचरण अपनी रिआया पर नियंत्रण स्थापित नहीं कर सका।

इस शताब्दी के सूफी समाज की बुराइयों के विरूद्ध लड़ते रहे और शासकों को मुस्लिम समाज में परेशान करने वाली हालतों से आगाह किया। 12वीं शताब्दी में सूफीमत का वर्णन पूरा नहीं होगा, अगर उस वक्त के महत्त्वपूर्ण तीन कवियों का वर्णन नहीं होगा जो निम्न थे–

1. हकीम सनाई।
2. निजाम गंजवी।
3. ख्वाजा फरीवुद्दीन अत्तार।

हकीम सनाई ने कविता की कम से कम दों किताबें (Anthologies) लिखीं।

1. हदीका।
2. सियारूल–इबाद

इन दो किताबों के अतिरिक्त छः मसनवियां है।

## 11.12 \13वीं शताब्दी में सूफीमत

13वीं शताब्दी में सूफीमत चरम सीमा पर पहुँच गया। यह एक अलग स्वतंत्र ज्ञान की हैसियत से पहचान बनाये हुये थे। पिछली शताब्दी में सुफियों ने बड़ी तकलीफ उठाई और इस शताब्दी में रूहानी सिलसिले उत्पन्न हुये और सूफीमत के तरीकों में नई ज़िंदगी आई। इस मामले में 13वीं शताब्दी सूफीमत की पूर्णता का आखरी चरण है। इस शताब्दी के बाद सूफीमत में कोई नया दर्शन नहीं आया और नहीं रहस्यवाद में नया सिलसिला का बदलाव आया। गिजाली और इब्ने अराबी हर युग में छाये रहे। बगदाद की राजनीतिक हालत खराब थी। शासक अपनी रिआया पर अपने आदेश/हुक्म चलाने के योग्य नहीं थे। मुसलमान नाजुक दौर से गुजर रहे थे। तमाम जिन्दगी के मैदान में चाहे वह कला, ज्ञान, व्यापार या तिजारत हो, में पीछे थे। बगदाद जो कभी वाणिज्य और व्यापार का केन्द्र था। वह अब कबूतर बाजी और पतंग बाजी का केन्द्र बन गया। वास्तविकता यह है कि पहले मुसलमानों का नैतिक पतन हुआ और फिर बगदाद में राजनीतिक पतन हुआ और इस पर मंगोलों का तुफान मुस्लिम समाज की बरबादी साबित हुआ। मंगोल के आक्रमण का कारण मुस्लिम हुकुम्रानों का पतन था। मंगोलों के आक्रमण ही केवल मुस्लिम पतन का कारण नहीं था, बल्कि यह आक्रमण मुस्लिम समाज की कमजोरी थी। मंगोलों ने बगदाद के बाग की सुन्दरता और महलों को तबाह कर दिया।

बगदाद की तबाही की कहानियां इस्लामी इतिहास के अंग है। यह सिर्फ बगदाद की तबाही ही नहीं थी बल्कि मुस्लिम युग का अंत था। यह इतिहास का हिस्सा था जबकि एक कौम की जिदंगी के हर मैदान में पतन होता है। उसके बाद कौम फिर उठती है और शान तक पहुँचती है। यही मामला इस्लामी इतिहास में हुआ। मंगोलों ने तमाम बगदाद को एक तरफ तबाह कर दिया, लेकिन जब उन्होंने इस्लाम कबूल किया और उसमें परिवर्तित हो गये तो वह इस्लाम की तरक्की के संघर्ष का अंग बन गये। ख्वाजा फरिदुद्दीन अत्तार एक मुगल द्वारा मारे गये और यह बयान करना आश्चर्यजनक बात है कि वह ही आदमी ख्वाजा अत्तार के मकबरे का मुहाफिज हुआ। हलाकू खान ने बगदाद के जामे अल कसर को नष्ट करने का हुक्म दिया और वह ही हलाकू खान था। जिसने उसे बनाने का आदेश दिया था। इस हालत में सूफी अपने कार्य में सूफीमत की रूह पैदा करने में व्यस्त थे। यह शताब्दी थी जिसमें सूफी शेख नजमुद्दीन कुबरा और ख्वाजाफ़रीदुद्दीन अत्तार ने इस्लाम की इस भावना के लिए अपना खून दिया और जिसके नतीजे में सूफीमत मुकममल जिन्दगी का मार्ग हो गया। लोगों के लिए रहस्यवाद के सिलसिले अध्ययन का विषय बन गये। सूफीमत की 13वीं शताब्दी का वर्णन पूरा नहीं होगा जब तक हम चार सूफीमत कवियों का वर्णन नहीं करेंगे। वह हैं मौलाना जलालउद्दीन रूमी, शेखसादी और इराकी। इस जमाने का महत्वपूर्ण सूफी शेख मोइदुद्दीन अबी ज़करया, याहिया बिन शर्फ अलनुदई अल नुदवी (मृत्यु 676 हिजरी/1278 ए. डी.) थे रियाज उल सालेहिन और बुस्ताने आरिफीन उनकी दो महत्वपूर्ण किताबें है जिसमें उन्होंने सूफीमत की नैतिकता को प्रकाश में लाया गया।

13वीं शताब्दी के दूसरे सूफी थे शेख इजाजुद्दीन अबू मोहम्मद और दूसरा अब्दुल अजीज अल डूमेरी अल दाहरी (मृत्यु 690 हिजरी/1291 ए. डी.) उन्होंने महत्वपूर्ण किताबें लिखी

जिनके नाम थे तहतुल उल खुलूब वल खूजू ली इलमुल खुंयुर जिसमें दिल की पाकिजगी और इरादे पर जोर दिया गया है। इस शताब्दी की विशेषता है कि सुफियों ने अपनी विचारधाराओं (Ideologies) को कविता के माध्यम से जाहिर किया और मंगोलों द्वारा बगदाद की तबाही पर सुफियों ने रूहानी सिलसिले की बुनियाद रखी।

## 11.13 निष्कर्ष

इस इकाई में हमने सूफीमत का अर्थ और परिभाषा का अध्ययन किया और उसकी उत्पत्ति और विभिन्न स्तर पर उन्नति को बतलाया है। हमने आलोचनात्मक तौर पर जांचा और सुफियों की शिक्षाओं का पहली, दूसरी और तीसरी पीढ़ी का अध्ययन किया है। हमने 11वीं, 12वीं और 13वीं शताब्दी के खास सुफियों पर बहस की है और उनकी विशेषता और मुख्य अंगों का विश्लेषण किया है।

## 11.14 संदर्भ ग्रन्थ


1. डॉ मोहम्मद इकबाल – तारीख तसब्बुफ
   – प्रो. साबिर कालूरी के द्वारा तरतीब दिया गया।
2. हुसैन सैयद मोहम्मद अकबर – ज़वानुल–किलाम
   – अदबी दुनिया, 5 माटिया महल देहली, 6
3. रागिब अल तबाकर तारीको – अफकार–ए–उलूम इस्लामी
4. मुकाश उल कलूव – इमाम गजाली
   – अनुवाद अललामा तसकूद अली खान
5. जलालउद्दीन रूमी – मसनवी
   – अनुवाद सिज्जाद हुसैन
6. प्रो. खलीक अहमद निज़मी – तारीख मशाईक ए–चिश्त जिल्द I.II,III,IV.V
7. इब्ने खुलदून – मुकुददामा, जिल्द I,II
8. फलाही उबेदुल्ला फहाद – तारीख दावत ए– जिहाद
9. प्रो. खलीक़ अहमद निजामी – शेख निजामुद्दीन औलिया की जिदंगी और समय
10. अल्लामा–इब्न–ए जोजी – तलबीस–ए–इबलीस

# इकाई 12
# सूफीमत का भारत में विकास

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 चिश्ती
12.2.1 ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
12.2.2 शेख फरीदुद्दीन चिश्ती
12.2.3 हजरत निजामद्दीन ओलिया
12.2.4 हजरत नासिरूद्दीन मेहमुद
12.3 सुहरावर्दिया
12.3.1 शेख वहाउद्दीन जक्रिया
12.3.2 शेख नुरूद्दीन मुबारक गजनवी
12.3.3 काजी हमिदुद्दीन नागोरी
12.3.4 शेख जलाल उद्दीन तबरेजी
12.3.5 शेख सदरूद्दीन आरिफ
12.3.6 शेख जलालुद्दीन बुखारी
12.3.7 शेख रूकनुद्दीन अबुल फतह
12.4 फिरदौसिया
12.4.1 ख्वाजा रूकनुद्दीन और ख्वाजा नजिबुद्दीन
12.4.2 शेख शरफुद्दीन याहया मनेरी
12.4.3 शेख शरफुद्दीन के मुरीद
12.5 दूसरे सूफी सिलसिले
12.5.1 सूफी सिलसिले के मकामी केन्द्र
12.6 सूफीमत का प्रभाव
12.7 संदर्भ ग्रन्थ

## 12.0 उद्देश्य

इस इकाई में 13वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक सूफीमत के विकास के मुख्य रूजहानात पर बहस की गई है दिल्ली सलतनत की बुनियाद पड़ने से मुगल साम्राज्य स्थापित होने तक के सूफी सन्तों एवं उनके संप्रदायों का इस इकाई में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

- इस इकाई के अध्ययन से तुम जान पाओगे कि –
- सूफीमत की प्रकृति और उसका प्रभाव
- भारत में सूफी सिलसिलों का उत्थान
- मुख्य सूफी सिलसिलों की शिक्षाऐं इत्यादि क्या थी?

## 12.1 प्रस्तावना :

इससे पहले कि हम आगे बढ़ें हमें साफ समझना चाहिए कि सूफी शब्द का अर्थ क्या है जो मुस्लिम रूहानियत के ज्ञाता के लिए प्रयोग होता है जो अपनी अंदरूनी दृष्टि के विकास के लिए रियाजत, ध्यान, दुनिया को तर्क (छोड़कर) करके और इच्छाओं के दमन से प्रयत्न करता है। 12 वीं शताब्दी के अंत में सफी मत मुस्लिम सामाजिक जीवन का आम पहल बन गया था कि जिसने भारत और इस्लामी दुनिया के बड़े हिस्से में समाज की विपरीत धार्मिक भावनाओं और विश्वासों को अर्थ दिया और पैगाम दिया। तसव्वुफ़ या रहस्यवाद कुरान की इहसान से बतलाया जाता है और सूफी का विचार है कि यह गुप्त ज्ञान है जो पेगम्बर द्वारा हजरत अली को दिया गया।

जब से सूफी मत मुस्लिम सोसाइटी (समाज में) में लोकप्रिय बना तो इस विकास होने लगा और यह बहुत से सूफी निजाम या सिलसिलों में विकसित होने लगा और भारत में रहस्यवाद के कई सिलसिलों का उत्थान हुआ जैसे :– चिश्ती, सुहरावर्दीया, फिरदौसिया कुबराविआ, शत्तारी, कादरी और नक्शबंदी इत्यादि।

बुनियादी तौर पर भारत के दो सूफी सिलसिलों के विकास, उनके अन्दरूनी झगड़ों और बाहर से अनेक खतरों पर हम ध्यान दे हमने इस इकाई में हर सिलसिले की मुख्य शख़्सियतों (व्यक्तियों) और उनकी बुनियादी शिक्षा का अध्ययन किया है जो सूफी साहित्य से मुख्य तौर पर लिए गये है।

## 12.2 चिश्ती संप्रदाय –

इस बात से इनकार नही किया जा सकता है कि चिश्ती सूफीयों का सिलसिला भारतीय है जो अफगानिस्तान के चिश्त कस्वे से निकला। चिश्त के चिश्तीयों को छोड़कर हम ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती पर आते है जिन्होंने अजमेर बसकर भारत में चिश्ती सूफी सिलसिले की स्थापना की और उसे फैलाया।

### 12.2.1 ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती –

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती में सूफीयों की सिफात खूबी थीं और वह रूहानी आला दर्जात की प्राप्ति के लिए मशहूर थे यह मालूम होगा कि ख्वाजा सा० की सीधी दरवेशाना अजमेर में जिंद्गी ने तुर्को और नये मुसलमानों को प्रेरणा दी, क्योंकि उन्होंने भौतिक शक्ति और दौलत को कोई अहमियत नहीं दी बल्कि दया, सादगी और ईश्वर से लगाव पर जोर दिया उनकी तालिमात संक्षेप में इस प्रकार है

1. व्यक्ति को धन नही कमाना चाहिए
2. दूसरे से कभी उधार नहीं लेना चाहिए
3. दूसरे को भेद नहीं बताना चाहिए और न सहायता लेना चाहिए अगर उसने कई दिनों से खाना नही खाया है।
4. अगर कोई काफी खाना, रूपया, अनाज और वस्त्र पाये तो दूसरे दिन के लिए नही रखना चाहिए।

5. किसी को बद्दुआ (शाप) मत दो अगर तुम्हें कोई नुकसान पहुंचाए तो दुश्मन के हक में ईश्वर से उसे सही मार्ग पर चलने की दुआ मांगना चाहिए।
6. अगर कोई अच्छा और नेक काम करो, तो उस भलाई को अपने पीर या पैगम्बर से जानों, या फिर ईश्वर की दया जाने।
7. अगर बुरा काम करो तो अपने आप को दोषी जानो और कार्य के लिए जिम्मेदार मानो और ऐसे कामों से अपने आप को बचाओ। ईश्वर से डरते रहो ऐसे काम मत करो जो तुमको बुराई में धकेल दें।
8. इन तमाम कार्यों को करने के बाद दिन में उपवास (रोजा) रखें और रात इबादत में गुजारें
9. खामोश रहो और जब मुनासिब हो बात करो। शलिक (इस्लामी विधि) बोलना और बिल्कुल खामोश रहने को शस्थित गैर–कानूनी मानती है। आदमी को वो ही शब्द बोलना चाहिए जिससे ईश्वर खुश हो।

ख्वाजा के अनुसार सूफी ईश्वर के लिए रहता है वह प्रेम, प्रेमी, प्रेमीका में कोई अंतर नहीं करता। उसकी मजबूरों की सहायता करना और भूखों को खाना खिलाना सबसे बड़ी नेकी है। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के बहुत से मुरीद थे उनमें शेख हमीदुद्दीन थे। वह काफी पढ़े लिखे थे और उनकी माँ और बीवी नेक ख़ातून थीं, जिन्होंने उनकी जिंदगी पर प्रभाव डाला। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती जब दहली वापस गये तो हमिदुद्दीन भी उनके साथ गये। ख्वाजा ने वगैर पढ़े लिखे लोगों से कहा कि आज के युग में सबसे बड़ा शेख एक जीतल (सिक्का ताम्बें का) है। दया जनता (लोगों) के लिए कोई अहमियत नहीं रखती क्योंकि वह दोलत कमाने में लगी थी। अपनी इच्छा को खत्म करने पर शेख हमीदुद्दीन को सुल्तान तारिकीन (संतो का सुलतान) कहा गया, और इस तारिक रहने की आदत ने संत को फायदा पहुंचाया। ख्वाजा मुईनुद्दीन ने सूफी तहरीक को काफी बढ़ावा दिया और भारत के वातावरण में चिश्ती सिलसिले को स्थापित किया। उन्होंने राज्य से तोहफे लेने से इन्कार कर दिया और अपनी काश्त की जमीन की पैदावार पर जीवित रहे। उन्होंने जोर दिया कि उनके मुरीद पूर्णतया शाकाहारी रहे। हमीदुद्दीन सुवाली सुहरावर्दी सूफियों के दौलत जमा करने के नजरिये से सहमत नहीं थे जिस पर शेख बहाउद्दीन जकरया के पुत्र ने हमीदुद्दीन के जुमे (Friday) की नमाज न पढ़ने पर इल्जाम किया। लेकिन वह बिल्कुल खामोश कर दिये गये उन्होंने कहा कि चूंकि नागौर गांव है न कि कस्बा है, इसलिए यहां जुमा फर्ज नहीं।

### 12.2.2 ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी:–

यकीनन अजमेर और नागौर चिश्तीयों का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा लेकिन सूफी तहरीक का दिल ख्वाजा कुतुबुद्दीन वख्तियार काकी (जो ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे) ने चिश्ती सिलसिले की स्थापना का कठिन प्रयत्न किया जो बहुत बड़ी उपलब्धि थी। एक मरतबा ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती इलतुतमिश से फरमान हासिल करने के बहाने दिल्ली आये। ताकि उनके लडके (पुत्र) की जमीन का पट्टा नियमित कर दिये जायें लेकिन बुनियादी तौर पर वह बख्तियार काकी और नजमुद्दीन कुबरा के बीच झगडे को निपटाने आये। शेखुल इस्लाम (नजबुद्दीन कुबरा) ने

बख्तियार काकी को वापस देहली से अजमेर ले जाने को मजबूर किया जिससे देहली के लोंगों को मय इलतुतमश के रंज हुआ जो उनके साथ पीछे–पीछे चला, जिस पर जोर देने पर ख्वाजा मुईनुद्दीन ने बख्तियार काकी को वही छोड़ दिया। और दिल्ली बसने की इजाजत दे दी।

**बख्तियार काकी:–** चिश्ती सिलसिले की शोहरत हिन्दुस्तान में स्थापित करने का श्रेय उनके मुर्शिद के बाद उन्हीं को जाता है। चूंकि उनकी परिवार गरीबी में दिन व्यतीत कर रहा था फिर भी वह लगातार रोजे (व्रत) रखते और इबादत करते और समा सुनते थे। जिसे उनकी मौत हुई क्योंकि अहमद जामी के शेर सुनकर तीन दिन तक मस्ती के आलम में रहे। और उसी अवस्था में इतंकाल कर गये।

चूंकि बख्तियार काकी मुईनुद्दीन चिश्ती के खलिफा थे उनको मुरीद बनाने की इजाजत थी। इसके अनुसार शेख बदरूद्दीन नो मुरीदों में से एक थे लेकिन वह राजनीतिक जीवन में व्यस्त रहें।

राजनीतिक उथल–पुथल से उनकी बदकिस्मती उत्पन हुई। बाबा फरीद के अनुसार उसने अपने गुरू की (पीर) की रिवायत का उल्लंघन किया। कोई चिश्ती सूफी अपनी बनाई हुई खानकाह को आपने इस्तेमाल के लिए नही रखता था। उसके राजनीतिक रूप से मिलने–जुलने से देहली में चिश्ती सिलसिले की तरक्की को नुकसान हुआ।

### 12.2.3 शेख फरीदुद्दीन गंज शंकर :–

बाबा फरीद के पूर्वज काबुल से आये थे। उनके पिता विद्रान थे लेकिन उनकी मां, बहुत परहेजगार और नेक थी उनका प्रभाव उन पर पड़ा। शेख फरीदुद्दीन (ख्वाजा फरीद) ख्वाजा कुतबुद्दीन काकी के मशहूर मुरीद थे।

हर रोज यह देखते थे कि कोई भी चीज जो फतूह (बगैर मांगे हुए) आई एक दिन से ज्यादा नही रहे और वह गरीबों में तकसीम कर दी जाती थी। क्योंकि उनके नजदीक सुफी के लिए ईश्वर से उम्मीद का नया दिन था और आइंदा जरूरत का विचार ईश्वर में आस्था के विरूद्ध था।

बाबा फरीद ने योगियों (Yogis) में बडी दिलचस्पी ली और उनकी और उनकी खूबियों के लिए वह उनकी तारीफ करते थे। बाबा फरीद के 500 के करीब कोल हैं। उनमें से कुछ निम्न दिये जाते हैं। जिनसे बाबा फरीद की तालिमात हमें मिलती है –

1. किसी और के बजाए ईश्वर की इबादत करो जो कुछ वह देता है कोई उनसे छीन नहीं सकता।
2. अपनी नफसानी खवाहिशात की पूर्ति मत करो क्योंकि उसकी कोई सीमा नही।
3. हर एक की रोटी मत खाओ बल्कि हर एक को रोटी दो।
4. युद्ध के जमाने में अमन के दरवाजे खुले रखें
5. राज्य के बड़े लोगों की संगत में धर्म को मत भूलें।

बाबा फरीद ने चिश्ती उसूल (doctrines) को बडे परिश्रम से फैलाया। उनके पुत्र बदरूद्दीन को चिश्ती संतों द्वारा उनका खलीफा मान लिया गया यह शेख बदरूद्दीन की वजह से

था कि बाबा फरीद के खलीफा एवं मुरीद सारे भारतीय उप महाद्वीप (continent) मैं फैल गये और सूफी तहरीक का खास अंग बन गये।

बाबा फरीद का छोटा भाई शेख नजमुद्दीन मुतवककिल उनके खलीफा थे जिनकी पारिवारिक जिंदगी तंगी में रहती थी।

मोलाना बदररूद्दीन इश्हाक, उनके दामाद दूसरे खास खलीफा थे। वह अपने मुरीदों की बड़ी देखभाल करते थे।

शेख जमालुद्दीन बाबा फरीद के दोस्त एवं उनके बडे मुरिदो में थे। मुरीद बनने के बाद जमालुद्दीन ने गांव और काफी दौलत को छोड दिया और गरीबी और तंगी में दिन गुजारे। बाबा फरीद ने उनको नसीहत की कि वह अपने रूहानी वजन को उठायें। उनका पुत्र भी जमालुउद्दीन की मृत्यु के बाद खलीफा बनाया गया।

शेख आरिफ बाबा फरीद के दूसरे मुरीद थे जो सहवन (सिंध) में नियुक्त हुए।

शेख अलाउद्दीन साबिर कलयरी बाबा फरीद के भतीजे थे जो चिश्ती सिलसिले में साबिरी शाखा के संसथापक थे।

### 12.2.4 हजरत निजामुद्दीन ओलिया :–

शेख निजामुद्दीन ओलिया बाबा फरीद के मशहूर मुरीद थे और भारत में 14वीं शताब्दी के बडे संत थे। उनके दादा सैयद अली बुखारा से हिजरत करके बदायूं आये जहां शेख निजामुद्दीन 1238 में पैदा हुये। उनकी मां बड़ी दयावान और दूर दृष्टा थी, उन्होंने काबिल उस्तादों को अपने पुत्र की शिक्षा के लिए चुना। जब वह 16 साल के थे तो अपनी मां और बहन के साथ शिक्षापूर्ण करने के लिए देहली आये।

अपनी गरीबी और तंगी के बावजूद और फाके ने निजामुद्दीन के जोश को कम नहीं किया। 1257 –50 ई, में निजामुद्दीन बाबा फरीद के मुरीद बन गये। बाबा फरिद ने उनको दुआ देते हुए कहा :–

तुम एक वृक्ष होगे जिसके साये में लोग आराम करेंगे, तुम ईश्वर भक्ति से अपनी आत्मा को मजबूत करो मैंने अपनी हर चीज तुम्हारे सुपुर्द कर दी है क्योंकि मेरे मरते समय तुम यहां नहीं होंगे।

शेख निजामुद्दीन की जिन्दगी चिश्ती सिलसिले की साफ सुथरी विचारधारा (ideology) थी मुरीदों की बड़ी संख्या उनकी ओर आकर्षित हुई जिसमें शक्तिशाली और आम, मालदार और गरीब पढे.लिखे और अनपढ़ गांव और कस्बे के लोग, सिपाही, लडाकू, और गुलाम सब ही थे। यह स्वाभाविक था कि मुरीदों की कतार में ज्यादा मुरीद नहीं हो सकते थे। लेकिन उनके साथ उनके संबंध से इस्लामी नैतिकता के उसूल और धार्मिक विचारों को एक नई दिशा मिली।

संजीदगी और रूहानियत का वातावरण शेखनिजामुद्दीन की खानकाह को घेरे रहता था। अलाउद्दीन खलजी का बाजार भाव पर नियंत्रण और नशीली चीजों पर पाबन्दी इसके अन्य कारण थे। लेकिन गयासपुर की खानकाह में नैतिकता का वातावरण भी इसके लिए कम जिम्मेदार नहीं था।

गयासुद्दीन तुगलक ने शेख निजामुद्दीन से आपसी ताल्लुकात अच्छे नहीं रखे जिनके बारे में कहते हुए सुना गया है कि दिल्ली दूर है (हनोज दिल्ली दूर अस्त) शेख निजामुद्दीन अपने आपको बड़ा दुखी जानते थे जैसा कि उनके द्वारा कहा गया है :–

"दुनिया में कोई आदमी इतना गमगीन और नाखुश नहीं है जितना मैं हूँ। काफी तादाद में लोग मेरे पास आते है और अपनी मुसीबतों और मुफलिसी के बारे में बतलाते है। इससे मेरे दिल और रूह को तकलीफ होती है।"

शेख निजामुद्दीन ने अपने मुरीदों में वर्दाश्त की रूह पैदा की जो इस्लाम की बुनियाद है। उनका लंगर (खाना) हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए खुला था। वह दुनिया के बिल्कुल खिलाफ थे और दुनिया से दूर रहें।

शेख निजामुद्दीन के प्रिय मुरीद अमीर खुसरो थे और उनके अपने रूहानी गुरू से लगाव ने उनको हमेश के लिए जिंदा कर दिया। अमीर नजमुद्दीन हसन सिजजी जो फवादुल फवाद" के लेखक थे, शेख के दूसरे मुरीद थे। जियाउद्दीन बरनी जो मशहूर लेखक है ने भी अपने को शेख का मुरीद बतलाया है।

काजी मोहिद्दीन काशानी में शेख का मुरीद बनने पर इदरार (लगातार इस्टोईफन्ड) वजीफे का फरमान फाड़ दिया और दरवेश की गरीबी अपनाई मौलाना वजीहुद्दीन यूसुफ शेख निजामुद्दीन ओलिया के खलीफा थे जबकि मौलाना शसुद्दीन शेख के सबसे वृद्ध खलीफा थे। कुतुबुद्दीन मुनव्वर शेख निज़ामुद्दीन के दूसरे मुरीद थे। मौलाना हिसामुद्दीन भी खलीफा थे। फखरूद्दीन जर्रादी भी अलाउद्दीन नीली की तरह खलीफा थे। इसी तरह मोलाना बुरहानुद्दीन गरीब और शेख अखीसिराजउद्दीन उसमान भी शेख निजामुद्दीन ओलिया के खलिफाओं में से थे।

### 12.2.5 शेख नासिरउद्दीन

शेख निजामुद्दीन के खास खलीफा थे और देहली में उनके वारिस। उनको आमतौर पर चिराग़ दहलबी के नाम से जानते है। वह आदत से फकीरी की जानिब मायल थे। 25 साल की उमर में उन्होंने फकीरी ले ली और 43 साल की उमर में वह शेख निजामुद्दीन ओलिए के मुरीद हो गये। लेकिन जंगल में चले जाने की इच्छा को शेख ने कबूल नहीं किया और उनको देहली में अवाम में रहने के ही आदेश दिये और तकलीफें या बेईज्जती सहे जो वह उन्हें दे। उसके ऐवज में वह उनसे रहमदिली का बर्ताव और प्यार करें।

शेख नसीरद्दीन ने शेख निजामुद्दीन की पैरवी करते हुए (इन्कार के बावजूद) कार्य जो उन्होंने दिया उसे कबूल किया। उनकी तालीम जो खेरउलमजालिस में है ने चिश्तिया फलसफे की बुलन्दी को दर्शाया जो भारत में 13वीं और 14वीं शताब्दी में उत्पन्न हुई और बढ़ी। उन्होंने लौगों से घुलने मिलने की आवश्यकता पर जोर दिया और उनसे दूर भी रहें। उन्होंने देहली में किसी चिश्ती सूफी संत जो उनके खलीफा थे को नियुक्त नहीं किया। उसके बजाये उसके वारिसो और शेख निजामुद्दीन ओलिया के मुरीदों ने हूकूमत के सूबों में देहली की तरह चिश्ती केन्द्र (मरकज) कायम करने का दरादा किया।

## 12.3 सुहरावर्दिया :–

सुहरावर्दिया सिलसिले के बहुत से शेख शिहाबुददीन सुहरावर्दिया के मुरीद इरान और मावरुन नहर (ट्रान्सओक्सियाना) से हिजरत करके भारत आये। लेकिन भारत में सुहरावर्दी सिलसिले के संस्थापक भारत में शेख बहाउद्दीन ज़करया और शेख जलालुद्दीन तबरिजी थे।

### 12.3.1 शेख बहाउद्दीन जकरया :–

शेख बहाउद्दीन के पूर्वज मोहम्मद बिन कासिम की फौज के साथ सिंध में आये। वह बहुत तालिम याफता थे। तालीम लेने के बाद जब वह सिंध आये तो कस्बे के पवित्र संत और धर्म की ऊँची शखसियतों को इससे पीडा हुई और उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि वह कहीं और जा बसें जिसे उन्होंने अलामती ढंग से पेश किया। ऐसा कहा जाता है कि शेख को दूध का एक प्याला भेजा गया और यहां दूसरों के लिए कोई जगह नहीं। शेख ने उनकी हरकत को पहचाना और दूध पर एक फूल गुलाब का रखकर वापस किया जिसका अर्थ यह था कि मुल्तान को पवित्र विद्वान लोगों में उनका वही स्थान था जो स्थान फूल का दूध पर है।

शेख बहाउद्दीन जकरया ने इल्तुतमिश से दिली संबंध कायम किये जिससे कुबाना को गुस्सा आया। शेख बहाउद्दीन ने चिश्तीयों से अच्छे संबंध रखे खास कर ख्वाजा कुतबुद्दीन बख्तियार काकी से और बाबा फरीद से। उन्होने अपने रूहानी क्षेत्रों को बांट लिया इससे कोई गलत फहमी नहीं हुई। शेख बहाउद्दीन ने ऐसा नहीं किया। शेख बहाउद्दीन ने जोर दिया कि ध्यान और सोच ने ईश्वर से संबंध के अलावा हर चीज को दिल से मिला दिया। लोगों की संगत के बजाए जिक्र करो और यह कि सूफी को अपने ऊपर बातचीत और अमल में काबू पाना चाहिए।

### 12.3.2 शेख नुरूद्दीन मुबारक गजनबी

शेख नूरूद्दीन मुबारक गजनबी शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी के खलीफा थे। इल्तुतमिश ने उनको शेखुल इस्लाम नियुक्त किया और लोगों द्वारा वह मीर–ए–देहली के नाम से (देहली के मीर) पुकारे गये। जियाउद्दीन बरनी के अनुसार वह कम ही बादशाह से मिलते थे और अपने उपदेशों में जोर दिया कि समस्त दरबार की रस्में गैरकानूनी और कुफर है और ईरान के सिसरियन हाकिमों की रस्मों पर निर्भर है। उसने चार उसूलों पर जोर दिया :–

1. हाकिमों को इस्लामिक रस्मों को मानना चाहिए और शरिया के हुक्मों को लागू करना चाहिए।
2. सम्भोग, जिना और नाजाइज संबंध इस्लामी कस्बों में खुले आम नहीं होना चाहिए।
3. शरिया के लागू करने का काम नेक लोगों को सौंपा जाये। दार्शनिकों को देश निकाला दिया जाये।
4. इंसाफ किया जाना चाहिए।

मौलाना नजमुद्दीन हाजी भी शेख शिहाबुद्दीन रूमी और शाह तुर्कमान साहिब की तरह शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी के अन्य दूसरे खलीफा थे।

### 12.3.3 काजी हमीद्दीन नागौरी :–

काजी हमीदुद्दीन नागोरी शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी के काबिज़ खलीफा थे। शेख हमीद्दीन नागोर के 3 साल तक काजी रहे। उनके ख्वाजा कुतबुद्दीन बख्तियार काकी से संबंध थे। जिससे समा में उन्होंने दिलचस्पी ली।

हमीमुद्दीन ने समा के कानूनी पहलू को खामोश कर दिया। चिश्ती और सुहरावर्दी सूफी द्वारा उनकी रचनाओं को रुचि से पढा जाता है। काजी हमीदुद्दीन ने चार शागिर्द बनाये: शेख अहमद, नहारवानी, शेख शाही मुस–ताब और खाजा अतमद।

### 12.3.4 शेख जलालूद्दीन तबरिजी :–

शेख जलाउद्दीन तबरिजी शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी के बड़े मुरीद थे। जो बंगाल में मशहूर हुए और अपने पीर की सेवा की। आपने पीर की सेवा करने के बाद तबरिजी बगदाद से चले गये और कुछ समय मुल्तान ठहरें। देहली गये। जहां इल्तुतमिश द्वारा उसका इस्तिकबाल हुआ। ताहम नजमुद्दीन कुबरा से झगडे के बाद जिसे सुल्तान ने हटा दिया था। तबरेजी बदायूँ चले गये जहां काजी कमालुद्दीन के दोस्त बने। वहां से वे बंगाल चले गये। तबरेजी के बंगाल में काफी मुरीद थे उनकी याद हिन्दू और मुसलमान दोनों को है।

ये सभी सूफी सुहरावर्दी सम्प्रदाय के महत्त्वपूर्ण संत थे लेकिन सिलसिले का इतिहास शेख बुहाऊद्दीन जकरया के खलीफा शेख सदरूद्दीन आरिफ से मालूम की जा सकती है।

### 12.3.5 शेख सदरूद्दीन आरिफ –

शेख सदरूद्दीन आरिफ अपने पिता शेख बहाउद्दीन द्वारा खलीफा बनाये गये। जिन्होंने 7 लाख तनका जो विरासत में पाये को गरीबों में बांट दिया।

आरिफ का शाहजादे मोहम्मद से जो बलबन का पुत्र था से संबंध खराब हो गये थे। उसके मलफूजात जो अब उपलब्ध नहीं है, उनमें जिक्र, ध्यान एवं अन्य बातों पर जोर दिया गया है।

### 12.3.6 सैयद जलालुद्दीन बुखारी इत्यादि –

वह शेख बहाउद्दीन जकरया का मुरीद था और दूसरा मुरीद हसन अफगान था। लेकिन शेख फखरूद्दीन इराकी मशहूर मुरीद था जो फारसी का बहुत प्रसिद्ध शायर था उसकी कविता में कुछ शब्दों में मायूसी है। लेकिन रहस्यवाद के नजरये की वजह से उनमें मायुसी नहीं रहती। उसमें हौसला था।

शेख सदरूद्दीन के कुछ मशहूर मुरीद भी थे जैसै हसामुद्दीन शेख, अहमद मुश्ताक और शेख सलाउद्दीन दरवेश।

### 12.3.7 शेख रूकनुद्दीन अबूल फतह

वह शेख सलाउद्दीन का पुत्र था वह अपने दादा शेख बहाउद्दीन जकरया का प्यारा था। जिसने उसके बड़प्पन की भविष्यवाणी की थी। उसके देहली सुल्तानों से दोस्ताना सम्बन्ध थे और साथ ही शेख निजामुद्दीन ओलिया से भी घनिष्ठ संबंध थे। जब वह सुल्तान कुतबुद्दीन

मुबारक शाह के दरबार में मिलने जाता था तो लोग उसकी पालकी में प्रार्थना पत्र उसे दे दिया करते थे जिस पर वह शाही हुक्म करा लिया करते थे। उसका पुत्र शेख हूद सुल्तान मोहम्मद बिन तुगलक के द्वारा कत्ल कर दिया गया। इस सिलसिले का यहां अंत हो गया लेकिन दूसरी जगह यह फलता फूलता रहा और मुल्तान की पुरानी शान की याद दिलाता रहा।

## 12.4 फिरदोसिया :

फिरदोसिया सिलसिला शेख सेफद्दीन बुखारी से शुरू हुआ जो शेख नजमुद्दीन कुबरा का मुरीद था शरू में वह सूफीमत का दुश्मन था लेकिन कालांतर से वह उनके मुरीद में तबदिल कर दिया। शेख बदरूद्दीन बखारजी़ के शिष्य (मुरीद) थे जिन्होंने अन्छे संबंध देहली में चिश्तियों से रखे। वह समा और बखारजी के उर्स का शौकीन था।

### 12.4.1 ख्वाजा रूकनुद्दीन और ख्वाजा नजिबुद्दीन

शेख बदरद्दीन के खलीफा थे। लेकिन शेख मुराद शेख रूकनुद्दीन का पुत्र शेख नजिमुद्दीन से रंजिश रखता था। मौलाना फरीद्दीन के मुरीद शेख नजीबुद्दीन ने फतावा–ए–तातार–खानी जो इस्लामी न्याय पद्धति की मशहूर पुस्तक है को 1375–6 में तरतीब दिया। दूसरा उनका मशहूर शिष्य था, शेख शरफद्दीन याहया मुनेरी।

### 12.4.2 शेख शरफुद्दीन याहया मुनेरी –

याहया मुनेरी का जन्म 1263 ए. डी. में हुआ। उसने परम्परागत शिक्षा प्राप्त की। उसने काफी शुहरत पाई। अपने शासनकाल के शुरू में सुल्तान मोहम्मद बिन तुगलक ने उसके लिए खानकाह बनवाई जिसे उन्होंने हिचकिचाहट से कबूल किया। ताकि सुल्तान के गुस्से से कत्ल से बचा जा सके। शरफुद्दीन यकीन रखता था कि सूफी को अपनी इच्छाओं को खत्म कर देना चाहिए। उसने इन्सान में खराब इच्छाओं से जंग जारी रखी। उसने तनहाई और तर्क–स–दुनियां (दुनिया को छोड़ने) पर जोर दिया।

### 12.4.3 शेख शरफुद्दीन के मुरीदेन (शिष्य)

शेख की आत्मकथा लिखने वालों ने मुरीदेन की तादाद एक लाख से भी अधिक बतलाई है उनमें से 40 बहुत मशहूर थे। खास तौर पर शेख मुजफ्फर मलिक ज़दाफजलुद्दीन और मौलाना निजामुद्दीन।

### 12.5.1 दूसरे सूफी सिलसिले

मौजूदा बहस का लक्ष्य रहस्यवाद के सिलसिलों की फहरिस्त बनाना नही है। बल्कि एक प्रयत्न है कि भारत में विकसित सूफी मत और हिन्दुस्तानी वातावरणा में विकास की गति को एक नजर में देखा जाये।

काफी सूचना कुबराविया, शत्तारिया, नक्शबंदिया सिलसिलों के बारे में हमारे स्त्रोतों में मिलती है। पवित्र किताबों में जिसे जुब्दूतूल मकामात में जो मोहम्मद हाशिम ने 1627–8 में तरीतब दी जो नक्शबंदिया पर शब्दकोष (लुगत) है दूसरे स्त्रोत (Sources) भी है जो सूफी

सिलसिलों पर मिलते हैं। लेकिन भक्ति में रहस्यवाद के विकास को ध्यान में रखते हुए खास ध्यान चिश्ती और सुहरावर्दीयों को दिया गया है। जिन्होंने भारत में दूसरे सूफी सिलसिलों पर जर्बदस्त असर डाला।

### 12.5.2 स्थानीय सूफी सिलसिले

जैसा दूसरी जगह लिखा गया कि उपरोक्त सिलसिले मकामी केन्द्र रखते थे और वह अपने उन जगहों पर असरात के कारण मकामी जगहों से प्रसिद्ध हो गये। चिश्ती सिलसिला मोहम्मद बिन तुगलक की दूरदर्शीता के कारण दक्षिण में फैला और उसने सूफीयों को दक्षिण जाने के आदेश दिये जिसके नतीजे में वहां मकामी केन्द्र स्थापित हो गये जिसके बडे कर्णधार दक्षिण के शेख मोहम्मद गेसूदराज थे। वहदतल बजूद को मुहिऊद्दीन इब्ने अराबी ने चलाया जो शंकराचार्यों के वेदान्त का रूप मालूम होता है। उसके विपरीत वह दतूल शहूद को नक्शवंदियों ने खासकर शेख अहमद सरहिन्दी ने चलाया लेकिन सूफियों के निजी झुकाव, विचारों और उनकी भावनाओं ने भारत में सूफी मत के विकास में बड़ा कार्य किया।

शेख अहमद सरहिन्दी जिन्हेंने अकबर की धर्म में नई ईजाद की नीति का खण्डन किया उन्होंने इस्लामीयात में आश्चर्य तौर पर अपना मकान बनाया और अपने पुत्रों में यह वर्णन करके कि अकबर का धर्म में विद्अत (नयापन) इस्लाम के विपरीत था। इसके वावजूद नक्शंवदी सिलसिले का मुगलों पर बड़ा प्रभाव था और शेख अहमद सरहिन्दी ने दरबारियों को पत्र लिख कर गैर–इस्लामिक परम्पराओं के खिलाफ बगावत को उकसाया।

कादरी सिलसिला जो जहाँगीर और शाहजहाँ के दौर में फैला उसने शेख अब्दुल कादर जिलानी से प्रेरणा ली।

एक बात जो इन सिलसिलों में आम है। वह यह है कि वे अपने सिलसिलों में करामत (देव शक्ति) को मानते थे। वह अक्सर ऐसी नाकाबिल यकीनन बात कहते है कि हमारा सर चकराने लगता है जबकि सत्य यह है कि इसका इस्लाम की भावना से कोई संबंध नही है जैसे शेर की सवारी या दीवार पर बैठकर दीवार का हरकत करना इत्यादि। लेकिन यह सब भारतीय सूफियों ने करके दिखाया और लोगों को अपने चमत्कारों से प्रभावित किया।

## 12.6 सूफीवाद का असर

सूफीमत भारत में कुछ मामलों में इस्लामिक शरयत के साथ–साथ है। जिसकी मुस्लिम उलैमाओ ने आलोचना की है जो उसके खिलाफ रहे। जियादा यह कि सूफी और आलिमों ने एक दूसरे पर आलोचना की और उलेमा ने रहस्यवाद की तालीम मुखालफत की जो उनके नजदीक इस्लामी शरयत के खिलाफ है। एक घटना मशहूर है। कि महजर में एक जाने माने सूफी को बुलाया गया कि वह समा का कारण बताओ सूफी ने एक रिवायत का हवाला दिया। जो इमाम गज़ाली से थी। बहुत से इलजामात उलेमा के सुफीयों के विरूद्ध थे सफियों को पैगम्बर की रिवायत का इल्म नही है जो किसी इद तक मुनासिब मालूम होता है। क्योंकि सूफी ज्यादा जोर अपनी रिवायत और तरीके पर देते है। यह स्थापित सत्य है कि सूफीमत का हर सिलसिला अपनी विशेषता रखता है और अज़कार के विभिन्न नाम बताते हैं। (ईश्वर के नाम जपने) जिस का इस्लामी तालीम में कोई आधार नहीं।

यह बहुत दिलचस्प है कि यह शरयत से अलाहदा और उसकी सीमा से बाहर बात तरिकत के नाम से जायज़ है। जबकि यह हकीकत है की उलैमा की वहस थी कि तरिकत और मार्फत केवल शरयत से हासिल हो सकती है। यह आधार (grounds) इस्लामी तालीम के अनुसार है।

सुफी का रूजहान भी राज्य के खिलाफ था। अगर हम इस नजरये को मानें तो सवाल उठता है कि हर एक अपना कार्य का तरीका अलग रखता है। उलेमा जो राज्य के भार को संभालते है। वह कहते है कि वह काजी मूफ्ती और दूसरे अन्य हैसियत से राज्य में कार्य करते है सूफीयों की तरह अगर राज्य का कार्य (Service) नहीं संभालते तो धार्मिक कार्य कौन–कौन करता।

फिर भी इन बातों से अलहदा सूफियों ने न सिर्फ अपने ज़माने के लोगों बल्कि दूसरे ज़माने के लोगों पर भी असर डाला। सुफियों के समाज और जीवन पर गैरमामूली प्रभाव का कारण उनके मकसद की ईमानदारी, आम आदमी के बेहतरीन काम में लगे रहना और जनता से उनका सम्पर्क और शासकों से उनकी दूरी में तलाश करना चाहिए जो आम आदमी के दिमाग पर यह नष्ट करने वाला विचार रखता था कि सूफियों का राज्य या हाकिमों से कोई संबंध नहीं और सरकारी मशीनरी और दफतर–शाही से इसका कोई ताल्लूक नहीं। उन्होंने गैरलगाव का रूजहान रखा और अवाम को मिलाने का कार्य किया। उनके जख्म धोकर और धार्मिक वातावरण में उनकी परवरिश करके और मुरीदों को रहस्यवाद की पेचिदगी में रहबरी करके और रूहानी जीवन गुजारने में सहायता करके मार्ग दर्शन किया।

हम कई मिसालें पाते है कि सूफी अवाम के केन्द्र हो गये। अवाम उनके पास केवल रूहानी रहबरी और सला के नुबूश पाने के लिए ही नहीं जाते थे। बल्कि वह दुनिया की मामलात में भी वह मदाखलत करते थे। इन सूफीयों ने अपना फर्ज ठीक ढंग से निभाया, वह उनकी भलाई करते और देखभाल भी करते थे।

उन्होंने कौमी जुबान को विकसित किया जो हिन्दी या आधन्ति उर्दू है जो उनके और लोगों के दरमियान विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम बनी। दरबार से दूर रहने को ख्याल में रखें, तो यह बड़ी उपलब्धि थी कि आपस में सम्पर्क से धर्म का प्रचार हुआ और इससे सूफीयों के कट्टर नजरयें का पता चला जिन्होंने समझदारी और शान्ति का संदेश फैलाया। हजरत निजामुद्दीन ओलिया का कथन हिन्दुओं के बारे में जब वह जमना के किनारे नहा रहे थे इसकी तरफ इशारा करता है। उन्होंने कहा कि हर कौम एक अपना रास्ता एक धर्म और जगह रखती है जिसकी जानिब वह इबादत करते है।

सूफियों ने हिन्दू और मुसलमानों के दरमियान समझ रखी और वर्दाश्त (सहनशीलता) के उपदेश को धर्म–पुस्तक में रखा जो हमेशा भारत के समाज में नाजुक लमहात (हालात) में महत्वपूर्ण कार्य करती है और भाईचारे का वातावरण पैदा करती है। जैसा कि शांति के पैगम्बरों ने बतलाया।

## 12.7 संदर्भग्रंथ

1. आरनोल्ड टी. वी. : इस्लाम की तालीम दोबारा प्रिन्ट, 1961 लाहौर

2. अजिज अहमदः : भारत के वातावरण में इस्लामी कट्टरपन का अध्ययन।
3. मुजीब, एम : हिन्दुस्तानी मुसलमान, लन्दन, 1967
4. निजामी के.ए. : भारत में 13वीं, शताब्दी में धर्म और राजनीति के कुछ पहलू अलीगढ़ 1961
5. एस–ए–रिजवी : भारत में सूफीमत का इतिहास, जिल्द 1, 1978 देहली,
6. तारा चंद भारतीय कल्चर पर इस्लाम का प्रभाव दूसरा एडिशन 1966 इलाहाबाद
7. टाइटस, एम टी : भारत और पाकिस्तान में इस्लाम, कलकत्ता, 1954
8. लिमिधर, इस्लाम में सूफी, सिलसिले, 1973 लन्दन

# इकाई 13

# चिश्ती सिलसिले के प्रमुख सन्त और उनका सूफी आन्दोलन

**इकाई की रूपरेखा**

13.0 उदेद्श्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 प्रमुख चिश्ती सन्त और उनका सूफी आन्दोलन
13.2.1 ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
13.2.2 शेख बख्तियारूड़ीन काकी
13.2.3 शेख हमीदुद्दीन नागौरी
13.2.4 बाबा फरीद गंज शंकर
13.2.5 हजरत निजामुद्दीन औलिया
13.2.6 हजरत नसीरूद्दीन चिराग देहलवी
13.2.7 हजरत अमीर खुसरो
13.2.8 जलालुद्दीन थानेश्वरी
13.2.9 शेख मुहिबुल्लाह इलाहाबादी
13.2.10 शेख बुरहानुद्दीन गेसूदराज
13.2.11 शेख सलीम चिश्ती
13.3 अन्य महत्वपूर्ण संत–
13.4 संदर्भ ग्रंथ

## 13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पावयक्रम में शामिल करने के पीछे हमारा मकसद यह है कि भारत में चिश्ती सिलसिला के प्रवर्तक एवं प्रारंभिक संत कौन–कौन थे? एवं उनकी शिक्षाओं का प्रचार किस हद तक हो पाया था। इसके साथ ही हमारा मकसद यह भी है कि इन सूफी संतों ने किस प्रकार भारतीय जनजीवनको अपनी शिक्षाओं से प्रभावित किया।

## 13.1 प्रस्तावना

इस्लाम धर्म में सूफी मत एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जिसकी उत्पत्ति इस दुनिया की सृष्टि के साथ ही शुरू हो गई थी लेकिन बीच–बीच में इस तहरीक में कई रूकावटें एवं पेचिदगिया पैदा हो गई थी जिसकी वजह से यह अधिक प्रभावी नहीं बन पाया था लेकिन जब हजरत मुहम्मद स्व : ने इस्लाम को अरब एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में विस्तृत किया तब से ही यह मत अधिक मजबूती और कामयाबी की तरफ अग्रसर होता गया। उनकी मृत्यु के बाद अनेक सिलसिले (सम्प्रदाय) इस मत में विकसित हो गये जिनमें एक महत्वपूपुर्ण सम्प्रदाय चिश्ती सम्प्रदाय था जिसके प्रवर्तक हजरत शेख अबुइस्हाक थे जो चिश्त नामक जगह में रहने की वजह से चिश्ती कहलाए और उनके बाद जो भी इस सम्प्रदाय में पंजीकृत सूफी थे वे सब

चिश्ती कहलाये। हिन्दुस्तान में आने से पूर्व यह सिलसिला एक महत्वपूर्ण स्थान पर पहुंच चुका था। हिन्दुस्तान में यह सिलसिला ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की अजमेर में बसने ओर यहीं से दीगर मकामात पर सिलसिले के बुजुर्गों को नियुक्त करने के साथ स्थापित हुआ। उनके महत्वपूर्ण उत्तराधिकारियों (खलीफा) में शेख काकी एवं शेख हमीदुद्दीन नागौरी के नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके बाद अनेक महत्वपूर्ण संत इस सिलसिले में हुए है। जिनका विस्तार से इस अध्याय में उल्लेख किया गया है। इसके साथ इन संतों ने जनता पर क्या असर डाला एवं किस तरह से अपनी शिक्षाओं और ज्ञान के द्वारा जनसाधारण के साथ शासक व संभ्रात वर्ग को प्रभावित किया इसका उल्लेख भी विस्तृत रूप से किया गया है।

### 13.2.1 हजरत ख्याजा मुईनुद्दीन चिश्ती

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती भारत में चिश्ती सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते है जो भारत की तुर्क विजय से पूर्व यहां आकर अजमेर में बस गये थे। ख्वाजा मुईनुद्दीन का जन्म हिजरी 536 (सन् 1141 ई) में सिजिस्तान नामक जगह पर हुआ था जो तत्कालीन एशिया के पूर्व में स्थित है। उनके पिता का नाम सैयद गयासूद्दीन था। प्रो. निजामी के मतानुसार उनका ध्यान सूफीमत की तरफ सिजिस्तान की अवस्था के कारण आकर्षित हुआ था जिसे कारखिता एवं गज तुर्कों की वजह से मुश्किलों का सामना करना पड़ा था। इस वजह से ही उन्होंने समरकंद और बुखारा की यात्राएं की एवं उस समय के महान धार्मिक व्यक्तियों से संपर्क किया। ईराक जाते समय वह हरवन नामक कस्बे से गुजरे जहां उसकी मुलाकात शेख उस्मान हारूनी से हुई और उनकी आध्यात्यिमक योग्यताओं से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गये। उस जमाने के सभी प्रमुख धार्मिक एवं अध्यात्यिक केन्द्रों को उन्होंने देखा। मध्य एशिया की तत्कालीन अवस्था को देखकर उन्होंने अपने लिए हिन्दुस्तान एक अमन चैन का मुल्क समझा और थोड़े अर्से के लिए लाहौर दातागंज बक्श की खानकाह पर ठहर कर अजमेर आ बसे। ऐसा भी कहा जाता है कि इस्लाम के आखिरी नबी एवं पैगम्बर हजरत मुहम्मद सा. ने इनको ख्वाब में जियारत देकर हिन्दुस्तान जाकर अजमेर बसने का हुक्म दिया। अजमेर आकर बसने के बाद हमें कई उनके करामते एवं आध्यात्मिक कार्यों का उल्लेख मिलता है। उन्होंने अपने कार्यों के द्वारा अपने मुरीदों एवं अकीदत मंदों का दायरा बढ़ाया और हिन्दुस्तान में सूफीमत का विस्तार किया। चूंकि उन दिनों अजमेर सिर्फ चौहान राज्य का केन्द्र ही नही था बल्कि यह एक धार्मिक स्थल भी था जहां पर हजारों की तादाद में दूर दराज से जायरीन आते थे। ऐसे स्थान पर सूफी मत का प्रचार प्रसार करना और बसना उनकी दृढ़ निश्चय प्रवृत्ति का सूचक है। वहां पर बसना और अपना कार्य करना चिश्ती सिलसिले के विद्वानों के भविष्य की एक गम्भीर आजमाइश था।

हजरत ख्वाजा मुईनुद्दीन के कुछ प्रवचन जैसा मीर खुर्द ने अपनी पुस्तक सियार–उल–औलिया में लिखा है उनकी धार्मिक और सामाजिक विचारधारा के तथ्य सामने आते है। वे एक हमदर्द इंसान और इंसानियत की भावना रखने वाले और आजाद विचारों के प्रतीत होते थे। उनके विचारों का तमाम निचोड़ उनके तीन सिद्धांतों पर आधारित था जिसे उन्होंने अपनी जिंदगी में कार्यरत किया– (1) संसार के संदर्भ उनके विचार थे -"जब हमने बाहर देखा तो हमने पाया कि प्रेमी प्रेमिका एवं उनकी मुहब्बत सब एक ही है। सबमें एक ही ईश्वर निवास करता है। (2) ईश्वर के प्रति अपनी सर्वोच्च भक्ति को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा है कि

यह कुछ भी नहीं है बल्कि परेशान हाल लोगों की परेशानी को दूर करना, जरूरत मंदों की आवश्यकताओं को पूरा करना, और भूखों का खाना खिलाना है।

इस हिसाब से मजहब रस्मों रिवाजों एवं धार्मिक औपचारिकताओं से ऊपर नही है बल्कि उसका लक्ष्य मानव सेवा करना है। वे विशेषताऐं जो मानव को ईश्वर का प्रिय बनाती है का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है कि प्रथमत: नदी के समान दया, सूर्य की तरह स्नेह और तृतीय जमीन की तरह सम्मानजनक व्यवहार।

रहस्यवाद की इस नैतिकता ने मानव को तंग घाटियों में दौड़ने से बचाया और संकुचित दृष्टिकोण जातिवाद और धर्म के आधार पर अलग रहने की भावना को जड़ से उखाड़ फैंकने के लिए चोट की।

### 13.2.2 शेख बख्तियारुद्दीन काकी

हजरत शेख मुइनुद्दीन चिश्ती के महत्वपूर्ग खलीफा हजरत, काकी थे जो ओस नामक जगह के रहने वाले थे। ओस में अपनी प्रांरभिक शिक्षा समाप्त करने के बाद वे बगदाद आये जहां वे उस समय के विख्यात सूफी सन्तों जैसे अब्दुल कादिर जीलानी, शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी, काजी हमीदुद्दीन और शेख ओहदुद्दीन किरमानी के संपर्क में आये। अंतत: वे अबू लईस समरकन्दी की मस्जिद में शेख मुइनुद्दीन चिश्ती के सपंर्क में आये ओर उनके शिष्य (मुरीद) बन गये।

वे उस समय भारत में आये जब तुर्क यहां पर अपनी राजनैतिक एवं सास्कृतिक सत्ता की स्थापना में व्यस्त थे। जब उन्होंने दिल्ली में प्रवेश किया सुल्तान इल्तुतमिश ने उनकी अगवानी की और उनसे अपने महल के निकट बसने की प्रार्थना की थी। लेकिन जैसी कि उनको प्रशिक्षण दिया गया था वे अपने को सुल्तान और राज्य से अलग रखना चाहते थे। लेकिन सुल्तान इल्तुतमिश उनसे उनकी खानकाह पर सप्ताह में दो बार अवश्य मिलता था। एक अवसर पर उन्होंने सुल्तान से कहा – 'ओ दिल्ली के बादशाह। तेरे लिए सभी गरीबों, सन्तों और असहाय लोगों के प्रति अच्छा होना जरूरी है। सभी मनुष्यों के प्रति दयालुता का व्यवहार करो। और उनके हितार्थ कार्य करो। प्रत्येक वह व्यक्ति जो ईश्वर की सृष्टि के प्रति ऐसा कार्य करता है उसकी ईश्वर अपनी निगरानी में रखता हे और सभी दुश्मन दोस्त बन जाते है सुल्तान ने उन्हें साम्राज्य के शेख–उल–इस्लाम के पद पर आसीन होने का आग्रह किया जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

हालांकि शेख कुतुबद्दीन बख्तियार काकी ने अपने आपको नौकरशाही या बादशाहों से अलग रखा लेकिन उन्होंने उनके जनहितकारी कार्यों एवं सांस्कृतिक गतिविधि के केन्द्रों के प्रति अपना नैतिक समर्थन जारी रखा। होज–ए–शम्सी के निर्माण के संबंध उन्होंने काफी दिलचस्पी ली थी। वे सूफी संगीत (समा) के काफी शौकीन थे। एक दिन उनको शेख अली सिजजी़ की खानकाह के समा सुनने हेतु आमंत्रित किया गया जहां पर उसे सुनते समय उन्हें बेहोशी आ गई और इस अवस्था में वे चार दिन तक रहे। पांचवी रात को उनका इंतकाल हो गया। उनकी मृत्यु नव 1235 ई. को हुई थी। शेख काकी का मजार और खानकाह मेहरोली दिल्ली में स्थित है। जो आज भी हर खास और आम के लिए जियारतगाह बन गया है।

### 13.2.3 शेख हमीदुद्दीन नागौरी

हजरत शेख मुइनुद्दीन चिश्ती के दूसरे महत्वपूर्ण खलीफा एवं उत्तराधिकारी शेख हमीदुद्दीन नागौरी थे। जिन्होंने राजपूताना के ग्रमीण माहौल में रहकर चिश्ती सिलसिले को बढ़ाया।

शेख हमीदुद्दीन चिश्ती के बारे में उनके पौत्र द्वारा संकलित पुस्तक सरूर–उस–सूदूर में विस्तृत जानकारी मिलती है ऐसा कहा जाता है कि तुर्कों द्वारा दिल्ली को फतह किये जाने के बाद पैदा होने वाले लोगों में वे प्रथम थे। उनके पिता का नाम शैख मुहम्मद अलसूफी था जो सईद विन. जैकेवंशज थे। शेख मुइनुद्दीन चिश्ती की खिदमत में आने से पूर्व उनहोंने अथ्याशी भरा जीवन जिया था जैसे वे उनके शिष्य बने उनमें अचानक परिवर्तन आया और अपने पिछले गुनाहों के लिए पश्चाताप किया। वे सांसारिक जिंदगी, धन इत्यादि से इतनी घृणा करते थे कि उन्होंने अपने शागिर्दों से अपनी सभाओं में इस विषय पर बात करने से वर्जित कर दिया। उनकी सात्विक जीवन प्रणाली से प्रभावित होकर उनके पीर ने उनको सुल्तान–उत्त तारीकीन की उपाधि से विभूषित किया।

शेख हमीदुद्दीन नागौरी ने नागौर के समीप सुवाल नामक स्थान पर एक आत्म संतुष्ठ भारतीय किसान की तरह जीवन यापन किया। अपनी तमाम आवश्यकताओं की पूर्ति वे स्वयं कर लेते थे। नागौर में उनकी जिदंगी में हिन्दुस्तान के मुस्लिम परिवारों के जीवन की एक झलक देखने को मिलती है वे एक कच्चे घर में रहते और सिर्फ एक बीघा जमीन की जुताई बुआई करके अपना जीवन यापन करते थे। वे एक भारतीय किसान की तरह पौशाक पहनते थे। एक गाय थी जिसका स्वयं दूध दुहते थे। उनकी बीबी दयालुता और आध्यात्मिक विचारों वाली स्त्री थी जो अपना समय खाना बनाने एवं किसान महिला की तरह सूत कातने में गुजारती थी। गांव के अधिकांश निवासियों की तरह शेख हमीदूद्दीन भी पूर्णत: शाकाहारी थे और मांस भक्षण से इतनी घृणा करते थे कि उन्होंने अपने शिष्यों को यह हिदायत दे दी थी कि उनकी मृत्यु के बाद आर्शीवाद लेने के लिए कोई मांसाहारी चीज न रखी जाये। वे भारतीय हिन्दवी भाषा में ही बातचीत करते थे।

नागौर के तत्कालीन मुक्ता ने उन्हें जमीन का एक टुकड़ा देने की पेशकश की जिसे उन्होंने ठुकरा दिया। मुक्ता ने यह मामला सुल्तान तक पहुंचाया जिसने 500 टका के साथ एक गांव भी जागीर में देने से संबंधित फरमान लिखा जब मुक्ता ने उनके सामने बाते रखी तो वे अन्दर गये और अपनी बीबी से सलाह ली। बाहर आकर उनहोंने फरमाया कि वे इस शाही इनाम व फरमान को स्वीकार नहीं करते। सांसारिक वस्तुओं के प्रति उनकी नफरत थी ओर इसी लिए वे उन तत्कालीन सूफियों की आलोचना करते थे जो ऐशो–आराम की जिंदगी जीते थे।

शेख हमीदुद्दीन नागौरी अच्छे स्वभाव के और एक हमदर्द इंसान थे जिसने उन्हें नागौर एवं उसके आसपास के इलाकों में लोकप्रिय बनाया। वे स्वतंत्र विचारों के संत थे जो इस बात से साबित होता है कि वे गैर मुस्लिमों में भी रूहानी विशेश्ताऐं पाते थे और उसकी सराहना करते थे।

हजरत शेख नागौरी का इन्तकाल सन् 1276 ई. में हुआ और नागौर में ही उनकी खानकाह एवं मजार स्थित है।

### 13.2.4 शेख फरीदुद्दीन गंज शंकर

शेख फरीदुद्दीन गंज शकर के पिता का नाम जमालुद्दीन था और उनका जन्म सन् 1175 ई. में हुआ था। अपनी प्रारंभिक शिक्षा कठवाल में समाप्त करने के बाद वे मुल्तान आ गये जहां पर उनकी भेंट शेख कुतुबुद्दीन काकी से हुई और उनकी आध्यात्मिक बातों से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गये। शेख मुइनुद्दीन चिश्ती ने भी शेख फरीद को आशीर्वाद दिया था चिश्ती सिलसिले के इतिहास में यह एक विशेष सम्मान था। कोई भी सन्त ना तो उनसे पहले और न ही बाद में अपने गुरू और अपने गुरू के भी गुरू से अश्रि़र्वाद प्राप्त नहीं कर सका था। हजरत काकी ने उनको चिल्ला–ए–माकुस करने की इजाजत दी थी जो पहले कभी भी किसी सूफी द्वारा नहीं किया गया था। जिसमें एक व्यक्ति अपने पैर रसी से बांध लेता है ओर एक कुंऐ में उल्टा लटक जाता है यह प्रक्रिया चालीस दिन रात तक रहती है कुछ दिनों तक बाबा फरीद हांसी में रहे जहां वे स्थाई रूप से अजोधन जाकर बस गये।

बाबा फरीद ऐसे प्रथम झंडों–मुस्लिम सूफी थे जिनके ताल्लुकात हिन्दू धार्मिक विचारकों से भी थे उनके साथ धार्मिक तर्क–वितर्क करते थे। उनकी खानकाह में हिन्दू जोगी बराबर आते रहते थे।

बाबा फरीद ने अपने प्रवचनों में कहा कि अपनी सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति मत करो। जितनी पूर्ति इनकी करोगे ये उतनी ही वढ़ती जायेगी। उन्होंने कहा कि किसी दूसरे का हक मत छीनो। उन तमाम चीजों को छोड़ दो जिसे तुम्हारा दिल स्वीकार नहीं करता। जो कुछ आपके पास है उससे ही अपने अतिथियों का सत्कार कीजिये। दुश्मन के कडुवे शब्दों पर भी अपना आपा मत खोइये और गुस्सा होकर बेकाबू मत बनो। यानी डस अवसर में अपने पर नियंत्रण रखो। यदि आप महान बनना चाहते हो तो गिरे हुए लोगों से अपने को जोड़ो।

एक अवसर पर बाबा फरीद को किसी व्यक्ति ने एक कैंची भेंट की। उनोंने कहा मुझे कैंची नहीं चाहिये मुझे जोड़ने के लिए एक सुई दो। में लोगों में फूट नही डालना चाहता उनको बांटना नहीं चाहता बल्कि उन्हें एक रखना चाहता हूं। परस्पर प्यार मुहब्बत की भावना से जोड़े रखना चाहता हूं। बाबा फरीद एक कवि भी थे उन्होंने अरबी, फारसी एवं स्थनीय भाषाओं में अपनी कविताएं लिखी थी। बाबा फरीद ने उस समय उपलब्ध सर्वोत्तम शिक्षा ग्रहण की थी और कई ग्रन्थों का अध्ययन एवं मनन भी किया था। इनका इन्तकाल 15 अक्टूबर 1265 ई. को अजोधन में हुआ उनकी खानकाह वहां स्थित है।

शेख (बाबा) फरीद ने अजोधन में रहकर चिश्ती सिलसिले के विस्तार एवं विकास हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किया और यह उनके ही अथक प्रयत्नों का नतीजा था कि यह सिलसिला एक अखिल भारतीय स्थिति को प्राप्त कर सका और इसकी शाखाएं हिन्दुस्तान के महत्वपूर्ण शहरों कस्बों में स्थापित हुई।

### 13.2.5 हजरत निजामुद्दीन औलिया

हिन्दुस्तान में 14वीं सदी के सबसे महान और प्रसिद्ध बाबा फरीद के शिष्य हजरत निजामुद्दीन औलिया थे। उनका जन्म 1238 ई. में बदायूं नामक कस्बे में हुआ था। वास्तविक नाम मुहम्मद और पिता का नाम अहमद था प्रारम्भिक शिक्षा वही पर हुई। बाद में दिल्ली आ

गये। सन् 1257–58 ई. में उन्होंने बाबा फरीद से मुलाकात हेतु दिल्ली छोड़कर अजोधन पहुंच गये। सन् 1265 ई. मे वे बाबा फरीद के खलीफा बन गये। बाबा फरीद ने उन्हें दिल्ली में ही रहकर चिश्ती सिलसिले के लिंए कार्य करने को कहा। खिलाफतनामा लेकर जब वे दिल्ली रवाना हुए बाबा फरीद ने कहा था तुम एक पेड बनोगे जिसकी छाया में लोग आराम करेंगे तुम्हें भक्ति द्वारा अपनी आत्मा को मजबूत बनाना होगा। मैंने तुम्हें दोनों दुनिया दे दी है तुम मेरे इन्तकाल के समय यहां नहीं रहोगे जाओ और हिन्दुस्तान का राज्य ले लो"' अल बरूनी ने उनके प्रभाव और प्रसिद्धि पर प्रकाश डालते हुए लिखा है "शेख निजामुद्दीन ने अपने दरवाजे अपने अकीदतमंदों के लिए खोल दिये है और उनमें सभी तरह के लोगों को अमीर उमरा, जनसाधारण गरीब धनी ज्ञानी व अज्ञानी नागरिक, ग्रामीण फौजी, यौद्धा, दास शामिल किया है और ये लोग कई तरह की बुराईयों से बच गये है क्योंकि वे लोग अपने को शेख का शिष्य मानते है यदि उनमें से किसी ने कोई गुनाह किया है तो उसको पश्चाताप कराया है और नये सिरे से कार्य करवाया है। जनसाधारण का ध्यान धर्म व प्रार्थना ही बढ़ा है महिला पुरुष जवान वृद्ध इमानदार गुलाम बच्चे एवं दास सभी अपनी प्रार्थना के लिए आते है। उनमें से अधिकांश व्यक्ति शैख के साथ ही चाश्त व इशराक की नमाज पढ़ते है। उन लोगों के लिए शहर से गियासपुर तक छप्पर बना दिये गये है कुऐं खुदवाये गये है कालीने बिछाई गई है और प्रत्येक स्थान पर एक नौकर व एक हाफिज (जिसे कुरान शरीफ कंठस्थ याद हो) रखे गये है ताकि शेख के पस आते–जाते लोग अपनी फर्ज नमाजों से महरूम न रह जाये। शेख निजामुद्दीन औलिया का लंगर सभी लोगों हिन्दू मुस्लिम के लिए खुला था। उन्होंने हिन्दुओं की तरफ भी ध्यान दिया। एक बार वे अपनी खानकाह की छत बैठे हुए हिन्दुओं के एक समूह को प्रार्थना करते हुए देख रहे थे। उनकी इस प्रार्थना से वे काफी प्रभावित हुए और अपने शिष्य अमीर असन से फरमाया। प्रत्येक समुदाय अपनी प्रार्थना और अपने विश्वास की एक अपनी राह रखता है। शेख ने हमेशा भाईचारा और सौहार्दपूर्ण संबंधों पर जोर दिया। तर्क दुनिया के बारे में उनका मत था इसका यह मतलब नहीं कि एक व्यक्ति अपने घर को त्याग कर एक लंगोट लगाकर जंगल में भाग जाये बल्कि उसे अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों का वहन करते हुए अपनी तपस्या करनी चाहिये। बिन मागें जो भी उसके पास आता है वसे स्वीकार करना चाहिये। उसे इकट्ठा न करे किसी चीज की तरफ आसक्त नहीं होना चाहिये। सिर्फ यही तर्क दुनिया है 'जिन लोगों ने सूफी सन्तों को परेशान किया उनके बारे शेख का कहना – वह जो मेरा दोस्त नहीं है ईश्वर उसका दोस्त है और वहू जो मेरे प्रति दर्व्यवहार या ईर्ष्या की भावना रखता है उसकी प्रसन्नता बड़े। वह जो मुझसे दुश्मनी के कारण मेरे रास्ते में कांटे बिछाता है उसकी बगिया में एक शानदार कांटों रहित फुलवारी हो।

आगे उनका कहना था यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे रास्ते में कांटे बिछाता है और तुम भी वैसा ही करते हो तो सर्वत्र कांटे ही कांटे हो जायेंगे।

अपनी शिक्षाओं और अपने व्यवहार हजरत निजामुद्दीन औलिया वाकई में एक पेड के समान थे जो अपने पीर मुर्शिद की भविष्यवाणी पर खरे उतरे।

### 13.2.6 हजरत नासिरुद्दीन चिराग देहलवी

हजरत निजामुद्दीन औलिया के महत्वपूर्ग खलीफाओं में हजरत शेख नासिरूद्दीन महमूद थे जो चिराग देहलवी के नाम से प्रसिद्ध है। उनका जन्म सन् 1276–77 ई. मे अवध में हुआ था उनके पिता का नाम शेख याहया था जो एक ऊन विक्रेता थे। 43 वर्ष की अवस्था तक वे अवध में ही रहकर आध्यात्मिक कार्य करते रहे लेकिन कुछ लोगों की जुबानी हजरत निजामुद्दीन औलिया के बारे में सुना जो उनके मुरीद थे दिल्ली आकर बस गये जहां पर हजरत औलिया ने उनको आर्शीवाद दिया और अपना मुरीद बना लिया। अमीर खुर्द लिखते है सुल्तानुल मशायख ने उन्हें वह प्रत्येक काम सौप दिया जो उनके योग्य था। उनमें एक दरवाजे के पीछे चुप होकर खड़ा रहना था। दूसरा कार्य बड़ी तादाद में लोगों का पंजीकरण करना था तीसरा कार्य लोगों के बीच रहकर उनके द्वारा दी जाने वाली तमाम परेशानियों को झेलकर उनकें प्रति सहानुभूती रखना था। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक की नीतियों एवं कार्यों से नंग आकर भी दौलताबाद नहीं गये दिल्ली में ही रहे। ऐसा प्रतीत होता है शेख नासिरूद्दीन और उनके सहयोगी राज्यपद स्वीकार करने हेतु बाध्य किये गये थे। शेख अब्दुल हक लिखते है कि तुगलक सुल्तान ने उन्हें उसके अभियान में शामिल होने के लिये बाध्य किया और उन्हें अपना जामदार बनाया। जब सुल्तान तुगलक गुजरात में तगी के विद्रोह को दबाने गया तो तभी भागकर थट्ठा चला गया। सुत्लान भी उसके पीछे–पीछे गया लेकिन इसी वक्त यह अफवाह फैल गई कि दिल्ली में फिरोज सुल्तान बन गया है और उसमें शेख नासिरुद्दीन का हाथ है मुहम्मद तुगलक ने फौरन फिरोज और शेख को थट्ठा बुलाया। जब ये रास्ते में ही थे सुलान थट्ठा में मर गया। फिरोज तुगलक को सुल्तान बनाया गया जिसने शेख साहब को अपनी तरफ से खूब धन दौलत दी जिसकी वजह से स्वय शेख काफी परेशान हो गये। उन्होंने अपने सिलसिले के बुजुर्गों की रवायत का ध्यान रखकर इससे दूर रहना ही उत्तम समझा। उनकी रहम दिली का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है। कि एक बार रात्री के समय उनपर एक कलन्दर ने चाकुओं से हमला करके पूरे बदन को छलनी कर दिया। उनके मुरीदों ने उसे पकड़ लिया लेकिन उसे मारने से शेख ने मनाकर दिया यही नहीं उसे चांदी के बीस टका दिया जिससे वह अपने घाव का इलाज करवा सके जो उसे चाकू चलाते समय स्वयं लग गये थे। इतना ही नहीं सरकारी नौकरों को भी उन्होंने उसे सजा से मना करवा दिया और वह आसानी से दिल्ली से चला गया। इस घटना के तीन साल बाद उनका इंतकाल हो गया (सित.1356 ई.)।

अपने से पूर्व के सूफी सन्तों के समान ही शेख नासिरूद्दीन ने लोगों को सीधी राह दिखाई। अमन चैन कायम रखने पर जोर दिया। भाई चारे की शिक्षा दी। हांलांकि सुल्तान फिरोज से उनके अच्छे संबंध थे लेकिन फिर भी उन्होंने उससे कुछ भी न कहा बल्कि जो धन इत्यादि सुल्तान खानकाह को देता था उससे उन्हें परेशानी होने लगी क्योंकि उनके सूफी सन्त इस धन को स्वीकार नही करते थे।

### 13.2.7 हजरत अमीर खुसरो देहलवी

हजरत अमीर खुसरो का जन्म 1253 ई. में बल्ख की एक जनजाति लन्वीन दिल्ली में हुआ था। मंगोलों की वजह से इस जाति के लोग भारत आ गये थे उनमें अमीर खुसरों के पिता

अमीर सैफुदीन महमूद भी थे। अमीर खुसरो ने टर्की जुबान के साथ फारसी भी सीखी थी। उनके पिता एवं नाना सुल्तान बलबन के दरबार में थे। 1273 में अमीर खुसरों ने अपने दादा की मृत्यु के बाद बलबन के भतीजे मलिक छज्जू का दरबार स्वीकार कर लिया दो साल बाद वह बुगरा खां (बलबन का पुत्र) का साथ बन गया और बाद में राजकुमार मुहम्मद का दोस्त बन गया। लेकिन उनका यह दोस्त मंगोलों के आक्रमण में मारा गया। अमीर खुसरों वहां से अवध आ गये और मलिक अमीर अली सरजानदार से अपने को संबधित कर लिया लेकिन कैकुबाद के बुलाने पर वह दिल्ली आ गये जहां पर उन्होंने पुस्तक किरानुस्सादेन लिखी। सन् 1291 उनहोंने अपनी दूसरी मसनवी मिफ्ता–उल–फुतुह पूर्ण की। सन् 1311 खजाइन उल फुतुह लिखी। सन् 1319 में अपनी महान पुस्तक 'ऐजाज–ए–खुसखी ' लिखी। अमीर खुसरों हजरत निजामुद्दीन औलिया के खलीफा थे लेकिन उन्होंने सुल्तानों एवं राजकुमारों के दरबार में रहते हुए भी सूफी का निर्वहन किया दरबारी काम से फारिग होते ही वे फौरन शेख निजामुद्दीन औलिया जमात खाना की तरफ भागते थे। जब उनके शेख का इन्तकाल हुआ अमीर खुसरों सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक के साथ बंगाल अभियान पर गये थे। शेख की मौत का समाचार सुनकर वे दिल्ली आने में जल्दी करने लगे। ऐसे में उन्होंने एक दोहा पढ़ा - " गौरी सौवे सेज पर मुख पर डाले कैश, चल घर खुसरो आपणे, चहुं ओर भई रैन।"

अपने पीर की वफात के छ: महीने बाद अमीर खुसरों सित.1325 ई. में इन्तकाल कर गये।

अमीर खुसरों अपने वक्त के महान सूफी सन्त होने साथ एक महान कवि भी थे उन्होंने न केवल भारतीय साहित्य एवं इतिहास को अमूल्य धरोहर दी अपितु भारतीय संगीत को भी उनकी अमूल्य देन है। उनकी पुस्तकों से इतिहास गणित धर्म भक्ति एवं संगीत की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है साहित्य में तो उनका इतना योगदान है कि भारत में उन्हें आज भी 'तूतिये–ए–हिन्द' के उपनाम से जाना जाता है।

### 13.2.8 शेख जलालुद्दीन थानेश्वरी

शेख जलालुद्दीन थानेश्वरी के बल्ख से संबध रखते थे । उनका जन्म सन् 1469–70 ई. में हुआ था। उन्होंने कुरान को कंठस्थ याद कर लिया था इसके बाद वे मुफ़्ती हो गये थे लेकिन इन से खुश न थे इसलिए शेख अब्दुल कुछूसगंगोही की खिदमत में हाजिर हुए सिलसिले के अन्य बुजुर्गो के समान ही अमीर और शासक वर्ग दोनों ही उसकी तरफ दौड़ने लगे लेकिन शेख ने उनसे मिलने से भी मना कर दिया। फर. 1581 ई. में काबूल जाते समय अकबर ने उनसे मुलाकात की थी शेख जलालुद्दीन का सन् 1582 ई. में इन्तुकाल हुआ। अपने जीवन काल में शेख ने राजस्व प्रशासन पर एक पुस्तक लिखी थी। उनकी अन्य कृति 'इरशादुत्तालीबीन' सूफी संतों के लिए प्रथप्रदर्शक का काम करती थी। चिश्ती संप्रदाय के अन्य सन्तों के समान ही शेख ने जिक्र पर अधिक जोर दिया ओर श्वास नियंत्रण पर (पास–अनुपास) की अनेक, किस्मों को ईजाद किया।

### 13.2.9 शेख अब्दुल हक

लखनऊ से करीब 100 किलोमीटर पूर्व में रदौली कस्बे में हजरत शेख अहमद अब्दुल हक का मजार है प्रारंभिक शिक्षा में उनका मन न ही लगना था लेकिन उनका ध्यान सूफीवाद की तरफ आकर्षित होता था। अपने वतन से वे पानीपत चले गये जहां पर वे शेख जलाल पानी पती के मुरीद व खलीफा बन गये। उनके पीर ने शेख अलाऊद्दीन अली अहमद से खिलाफत पाई थी इस तरह से शेख अब्दुल हक चिश्ती सिलसिले की साबीरी शाखा से सबंध रखते थे।
शेख यहां से पाडुंआ आ गये जहां उनको कोतवाल बना दिया। लेकिन वहां उनको शान्ति नहीं मिली। यहां से अवध इत्यादि स्थानों पर भ्रमण करते रहे और अन्त में रडौली में बस गये। यहां पर उन्होंने सूफी मत के सभी सिद्धांतों को समझा और उसकी के मुताबिक उन्होंने उनका प्रचार किया उन्होंने कभी भी शासकीय सहायता लेना स्वीकार नही किया। एक बार उनके एक दामाद ने शाही सहायता का एक फरमान प्राप्त कर लिया था जब शेख को इसकी इत्तला मिली तो उन्होंने फरमान के टुकड़े–टुकड़े कर दिये और कहा कि इसका एक भी टुकड़ा खानकाह में नही रहना चाहिये। शेख अब्दुल हक का इन्तकाल 27 जन. 1 454 ई. में हुआ।

### 13.2.10 सैयद मुहम्मद हुसैन (बन्दा नवाज गेसू दराज)

शेख का जन्म 30 जुलाई 1321 ई. में देहली में हुआ था। शेख के पिता को मुहम्मद बिन तुगलक ने मजबूर किया था कि वह दिल्ली छोड़कर दौलताबाद जाकर बस जाये। उनके साथ सैयद मुहम्मद बना नवाज को वहां जाना पड़ा। वहां पर उन्होंने सबसे उत्तम शिक्षा प्राप्त की थी क्योंकि दिल्ली के सूफी सन्त दौलताबाद में जमा थे। इसलिए उनके सानिध्य में उनकी शिक्षा हुई थी। शैख नासिरूद्दीन के मुरीद थे और उनके खलीफा भी बने लेकिन कुछ लोगों का मत है कि शेख ने उनको खिलाफत नहीं दी थी। शेख अब्दुल हक देहलवी का मानना है कि शेख गेसू दराज ने दक्षिण के लिए दिल्ली को अपने पीर की मौत के बाद छोड़ा। अबुल फजल लिखता है कि शेख ने अपने पीर के कहने पर ही दिल्ली छोड़कर दक्षिण में जाने का निश्चय किया था। फरिश्ता लिखता है कि सन् 1412–13 में बहमनी सुल्तान ताजुद्दीन फिरोज को पता चला कि शेख गेसू दराज गुलबर्गा अहसानाबाद के पास आ पहुंचे है सुल्तान ने अपने अमीरों और अन्य गणमान्य लोगों के साथ उनकी अगवानी की। बाद में अपने निजी स्वार्थ से सुल्तान ने उनको परेशान किया। सुल्तान ने गुलबर्गा से अपनी राजधानी बीदर को हस्तांतरित की और गुलबर्गा वीरान हो गया लेकिन शेख की खानकाह में हजारों लोग फैज पाने के लिए रोज आते रहे।

शैख गेसूदराज एक अच्छे लेखक भी थे उन्होंने अरबी में कुरान पर एक टीका भी लिखी और प्रसिद्ध हदीस कार्य मशारिक–उल–अनवार पर भी अरबी में एक टीका लिखी। उन्होंने रिसाला–ए–कुशैरी और अवारिफ–उल–मारीफ का फारसी में अनुवाद भी किया। चिश्ती सम्प्रदाय के रिवाजों के विपरीत शेख ने संस्कृत और हिन्दू महाकाव्यों की गहरी जानकारी प्राप्त की। वह हिन्दू ब्राहमणों की संगत भी करते थे। और उनके साथ रहस्यवाद पर बहस करते थे। शेख गेसू दराज ने चिश्ती संप्रदाय की अन्य रिवायतों का सख्ती से पालन किया जैसे धनी लोगों की

संगत न करना, करामातों से परहेज करना और अपने पीर को अपने समय का सबसे महान व्यक्तित्व मानना।

### 13.2.11 शेख सलीम चिश्ती

सीकरी के पहाड़ों पर फतेह पुर सीकरी का महान सूफी वादी केन्द्र के रूप में विकास और इसका नयी मुगल राजधानी बनने का श्रेय महान शेख सलीम बिन बहाऊद्दीन चिश्ती को जाता है शेख सलीम के पूर्वज बाबा फरीद के वशंज थे। शेख सलीम का जन्म सन् 1479–80 में हुआ था। बहलोल लोदी के समय में उनके पूर्वज सीकरी चले गये थे। अपने मातापिता की मौत के बाद उनके भाई शेख मूसा ने उनका शिक्षा दीक्षा कराई। बाद में वे शेख बदरुद्दीन सुलेमान के शिष्य शेख इब्राहीम के मुरीद बन गये। सन् 1524–25 में शेख सलीम ने हज की यात्रा की और सम्पूर्ण मध्य एशिया में भी यात्राऐं की। 1537–38 में वापिस सीकरी आकर अपने आध्यात्मिक कार्यों में मशगूल हो गये जहां एक तरफ तो उनकी हाजी की होने की उपलब्धि दूसरी तरफ मुगल राजधानी बनने से उनकी खानकाह सूफियों आलिमों और जनसाधारण के लिए एक तीर्थस्थल बन गयी सीकरी में ही अनेक विवाह किये और उनका एक विशाल परिवार था। इस्लाम शाह सूर (1545– 1552) ने उनको अपनी मस्जिद में इमाम बनाया था। दूसरी बार उन्होंने 1554–55 में फिर हज यात्रा अपने अनेक मुरीदों, दोस्तो, अपनी एक बीबी के साथ की। वहां से लौटकर उन्होंने एक खानकाह बनवाई। जो भारी संख्या के अमीरों, जनसाधारण और शाही परिवार के लोगों के आकर्षण का केन्द्र बनी रही। इन लोगों के अलावा शेख सलीम आगरा किले के लिए पत्थर तोड़ने वाले लोगों के भी चहेते थे उन लोगों ने शेख के प्रति अपनी कृतज्ञता को शेख के चिल्ले पर एक मस्जिद का निर्माण करके अदा किया।

काफी लम्बे इन्तजार के बाद जब राजकुमार सलीम (जहांगीर) का जन्म हुआ जिसके बारे में कहा जाता है कि उसका जन्म शेख सलीम की दुआ से ही हुआ था अकबर की खुशी का कोई ठिकाना न रहा और उसी वक्त सीकरी को एक महान नगर बनाने की योजना बनाई। शेख की निगरानी में ही सीकरी में एक विशाल मस्जिद व खानकाह बनवाई गई। 14 फरवरी 1572 में इन्तकाल हुआ उनका मजार फतेहपुर सीकरी में विशाल एवं खूबसूरत गुम्बद में स्थित है जो आज भी हर खास–ओ–आम के लिए एक सकून की जगह है जहां पर लोग अपनी मुरादें पूरी करने के लिए चारों दिशाओं से आते है।

## 13.3 अन्य महत्वपूर्ण सन्त

उपरोक्त महान संतों के अलावा अन्य बुजुर्ग भी चिश्ती सिलसिले में काफी लोकप्रिय थे जैसे ख्वाजा फरवरूद्दीन जो हजरत ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के पुत्र एवं खलीफा थे इनकी खानकाह सरवाड़ (अजमेर) में एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। ख्वाजा मुईनुद्दीन के पौत्र ख्वाजा हिसामुद्दीन सोख्ता सांभर में आराम फरमा रहे है। शेख नजींबुद्दीन मुतवक्किल बाबा फरीद के छोटे भाई थे जो अपने जीवन पर्यन्त दिल्ली में ही रहे उन्होंने अपना पूर्ण जीवन अत्यधिक निर्धनता में व्यतीत किया। शेख बहाऊद्दीन इस्हाक भी बाबा फरीद के खलीफा थे। शेख ने उन्हें अपने व्यक्तिगत कार्यो की जिम्मेदारी सौंप रखी थी बाबा फरीद ने उनको पुत्री बीबी फातिमा ब्याही थी।

बाबा फरीद के महत्वपूर्ण खलीफाओं में हजरत शेख अलाऊद्दीन अली साबिर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वे चिश्ती सम्प्रदाय की साबरी शाखा के संस्थापक थे। लेकिन बदकिस्मती से हमारे पास इनकी कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है उनके बारे में जानकारी जहांगीर के समय में मिली जब सियार–उल–अकताब के लेखक ने उन परिस्थितियों का उल्लेख क्या जिसमें उनका मजार ढूंढा गया साबरी शाखा की प्रसिद्धी शेख अब्दुल हक रदौली के समय से ही शुरू हुई। ख्वाजा खानून ग्वालियरी जो हजरत शेख हुसैन नागौरी के शिष्य थे शेख निजामुद्दीन नारनौली जो हजरत ख्वाजा खानून के शिष्य थे शेख अजीजुल्लाह मुतवक्किल, शेख बुरहमुद्दीन बुहहानपुर में शेख हसन मुहम्मद चिश्ती बिन शेख अहमद शेख मियांजी के नाम से प्रसिद्ध ये गुजरात के प्रसिद्ध सूफी संत थे। शाह कलीमुल्लाह जहानाबादी जिन्होंने हिन्दू रहस्यवादियों के साथ काफी विचार विमर्श किया, योग के आसन के बारे में भी ज्ञान था इनका मजार दिल्ली में है।

## 13.4 संदर्भ ग्रन्थ


1. Some aspects of religion and politics - By Nizami, K.A.
2. A History of Sufism in India Two Vols - S.A.A. Rizvi
3. Life and Times of Fariduddin Ganj Shakar - K.A. Nizami
4. Indian Muslims - M. Mujeeb

# इकाई – 14

# चिश्ती सन्तों का खानकाही जीवन और राज्य के साथ उनका संबंध

**इकाई की रूपरेखा**


14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 खानकाह संबंधी शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी के विचार

14.3 चिश्ती खानकाह

14.3.1 दैनिक जीवन चर्या

14.3.2 खानकाह के लोगों के कार्य

14.3.3 खानकाह के निवासी

14.4 खानकाह में आने वाले लोग एवं उनकी समस्याऐं

14.5 चिश्ती संतों का राज्य से संबंधी दृष्टिकोण

14.6 शासकों की संगत से दूर रहना

14.7 जागीर ग्रहण न करना

14.8 राजकीय सेवा ग्रहण न करना

14.9 सारांश

14.10 संदर्भ ग्रंथ


## 14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पाठ्यक्रम में शामिल करने के पीछे हमारा मकसद –

(1) खानकाह संबंधी प्रथम संदर्भ से अवगत कराना है।

(2) खानकाह स्थापिन करने के मुख्य आधारभूत सिद्धान्तों की जानकारी प्रदान करवाना है।

(3) चिश्ती खानकाहों मैं दैनिक जीवन कैसा था? वहां पर रहने वाले लोगों को किस प्रकार के कार्य करने पड़ते थे? एवं इनमें से कौन–कौन लोग अपनी परेशानियों के साथ प्रवेश करते थे, इस बात की जानकारी प्रदान करना है।

(4) इन चिश्ती सन्तों का राज्य, शासकों एवं राजकीय सेवाओं के साथ किस प्रकार के संबंध रहे इस बारें में भी विशद जानकारी उपलब्ध करवाना है।

## 14.1 प्रस्तावना

जब सूफीवाद में अनेक सिलसिलों का उत्थान हो रहा था, जैसा कि हमने पूर्व के अध्यायों में पढ़ा कि शेख अली हुज्वरी ने इनकी संख्या बारह बताई है जबकि अबुल फजूल ने इनकी संख्या चौदह बताई है। तो इतने बड़े पैमाने पर इन सम्प्रदायों का विकास होना इस बात

की अनिवार्यना दर्शाता है कि इन सिलसिलों की अनेक खानकाहें बड़े पैमाने पर हों। हलांकि हम पहली खानकाह की स्थापना अबू हाशिम सूफी द्वारा 8वीं शताब्दी में होने का उल्लेख प्राप्त करते है लेकिन ये प्रांरभिक खानकाहें सूफी आन्दोलन में एक केन्द्र के रूप में विकसित नहीं हो पाई। उनका चरित्र व्यक्तिगत ही रहा। 12वीं - 13वीं शनाब्दियों से ही ये खानकाहे सूफी अनुशासन एवं संगठन के केन्द्र बन गई। शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी की पुस्तक 'अवारिफ–उल–मारीफ़' जो मध्यकाल के सभी खानकाह संस्थापकों के लिए एक आदर्श पुस्तक मानी गई थी, के फारसी अनुवादक शेख इज्जुद्दीन महमूद लिखने है "खानकाह स्थापना के कई फायदे है प्रथमत: यह उन सूफी सन्तों को आसरा प्रदान करती है जिनके पास अपना कोई घर नहीं होता द्वितीय एक जगह इकट्ठा रहने, एक दूसरे में घुलमिल जाने से उनके जीवन के प्रति समानता पैदा करने एवं आंतरिक एवं बाह्य जीवन प्रणाली के के बारे में एक रूपता आती है और तृतीय इस तरह से वे एक टूसरे के तरीकों की आलोचना एवं उनमें परिवर्नन करने का अवसर करते है। वास्तव में जब भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों एवं मूल्यों के व्यक्ति इन खानकाहों में इकट्ठे होते है तो उनके सारे तनाव, संघर्ष एवं एक दूसरे के उत्तमता की भावना का समाधान हो ज़ाता है और उनके व्यक्तित्व का सिलसिले की भावना के अनुरूप विकास होना हैं।

## 14.2 खानकाह स्थापना संबंधी शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी के विचार

शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी ने खानकाह स्थापना संबंधी स्वीकृति, कुरान शरीफ की अनेक आयतो में पाई है। उन्होंने खानकाह संगठन को सुचारू ढंग से लागू करने हेतु निम्नांकित आधारभूत सिद्धान्तों पर बल दिया है। –

1. खानकाह में रहने वाले सभी व्यक्ति सारी मखलूक (इन्सानों) के प्रति अपने सौहर्दपूर्ण संबंध बनाये।
2. उन्हें प्रार्थना, तपस्या इत्यादि के द्वारा ईश्वर से संबंध रखना चाहिए।
3. उन्हें जीविकोपार्जन के सभी प्रयत्नों से अपने को दूर रखना चाहिए और ईश्वरीय इच्छा के सामने समर्पण कर देना चाहिये।
4. अपने आन्तरिक जीवन को शुद्ध बनाने पर ध्यान देना चाहिए।
5. उन्हें उन चीजों से बचना चाहिये जिनसे बुरी बातें पैदा होती हो।
6. वक्त की कीमत जाननी चाहिये।

खानकाह में रहने वाले व्यक्ति दो भागों में विभाजित किये गये है– प्रथम– स्थाई रूप से निवास करने वाले, द्वितीय–मुसाफिर। एक मुसाफिर यदि किसी खानकाह में ठहरना चाहता था तो उसे 'असर' की नमाज से पहले जाना पड़ता था। यदि वह देर से आता था तो उसे रात्री को किसी मस्जिद में ठहरने की सलाह दी जाती थी और अगले दिन में आने को कहा जाना था जैसे ही आगन्तुक आता था उससे यह उम्मीद की जाती थी कि वह दो 'रकअत' नमाज अदा करे और उसके बाद खानकाह के सभी निवासियों से मिले। यदि कोई व्यक्ति तीन दिन से ज्यादा वहां ठहरना चाहता था तब उसे खानकाह के कार्यों को करना पड़ता था एवं दैनिक कार्यों में वहां के लोगों की मदद करनी पड़नी थी। खानकाह के नौकर नव आगन्तुकों के प्रति अति

संवेदनशील होते थे और उनलोगों के प्रति कोई बात करने की मनाही थी जो खानकाह और सूफी रिवाजों व परम्पराओं से अनभिज्ञ थे।

खानकाह के स्थाई निवासी तीन श्रेणियों में विभाजित थे– अहल–ए–खिदमत, अहल–ए–सुहबत और अहल–ए–खलवत। ये श्रेणियां उनको दिये गये कार्यो एवं उनकी योग्यता पर निर्भर करती थी।

## 14.3 चिश्ती खानकाह

यहां पर स्पष्ट उल्लेख कर देना आवश्यक है कि चिश्ती खानकाह 'जमात खाना' कहलाती थी इसके विपरीत सुहरावर्दी सिलसिले की खानकाहें, खानकाहें ही कहलाती थी। साधारणतया एक चिश्ती खानकाह एक बड़ा सा हाल नुमा हुआ करती थी जहां सभी खानकाह वासी एक साथ रहते थे। इस जमातखाना की छत कई स्तम्भों पर टिकी हुई होती थी और प्रत्येक स्तम्भ के नीचे एक सूफी संत अपने तमाम सामानों के साथ बिस्तर, किताब और तस्बीह–इत्यादि–बैठा रहा करता था। वे सभी जमीन पर सोते, नमाज पढ़ने एवं अध्ययन करने और किसी भी तरह का भेदभाव, चाहे वह बुजुर्गी या वरीयता के आधार पर ही क्यो न हो, किसी भी हालत में, बरतने की इजाजत नहीं थी। यदि भोजन उपलब्ध होना था तो सभी उसे खाते थे यदि नहीं तो सभी भूखे रहते थे। बाबा फरीद के जमात खाने के लोग करील वृक्ष से पीलू और डेलाह तोड़ते थे, पानी लाते थे, जंगल से लकड़ी चुनते थे और तब तक उनके लिए बिना नमक का व्यंजन तैयार होता था। यदि उनको दोनों वक्त का खाना मिल जाता था तो सभी जमात खाना वासी आनंद मनाते थे। लेकिन अन्य चिश्ती सूफी संत, जिनके पास धर्मार्थ से खूब सारा सामान आता था, खानकाह के लोगों और आगंतुकों को बढ़िया भोजन उपलब्ध कराते थे। मध्यकालीन खानकाही जीवन का तबसे लंगर (खुला रसोई खाना) एक विशेषता बन गया। चिश्ती सिलसिले के बुजुर्ग अपनी इस परम्परा के समर्थन में इस 'हदीस' का विवरण देते है – "यदि कोई व्यक्ति किसी जानदार व्यक्ति से मिलता है। और उससे खाने की कोई चीज प्राप्त नही करता है तो उससे उसकी यह मुलाकात ऐसी होती है मानो वह मृत व्यक्ति से मिला हो।" एक चिश्ती सूफीसन्त को, चाहे अपनी बीबी की चादर या अपनी नमाज पढ़ने की कालीन हीं क्यों न बेचनी पड़े, खानकाह को आने वाले व्यक्ति का सत्कार करना पड़ता था। यदि उसके पास कुछ भी नही होता था तो वह एक प्याला पानी का ही पिलाता था। आगन्तुक यह यमझ जाता था कि उनका मेजबान काफी परेशानी में है वह पानी का प्याला पीता और आगे जाने की इजाजत ले लेता था।

### 14.3.1 दैनिक जीवन चर्या

शेख हमेशा खानकाह का एक केन्द्रीय बिन्दु हुआ करता था। उसी के चारों तरफ खानकाह का पूरा ढांचा घूमता था। इसलिए प्रत्येक शेख के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने दैनिक जीवन चर्या का सावधानी से अनुसरण करे। सभी सन्तों के लिए यह चर्या समान नहीं होती थी यह स्थानीय परिस्थितियों एवं एक शेख के निजी झुकाव व वरीयता पर निर्भर करती

थी सुविधा के लिए यहां पर दो उदाहरण एक बाबा फरीद एवं दूसरा हजरत निजामुद्दीन औलिया के दे रहे है–

बाबा फरीद की दैनिक जीवन चर्या सुबह होने से बहुत पहले ही शुरू हो जाती थी। अपनी 'फज्र' नमाज पढ़ने के बाद वे दो घंटे तक सजदे में रहने थे (ईश्वर के सामने सिर जमीन पर रखकर पड़े रहना)। उनके कमरे का दरवाजा जव तक वे प्रार्थना में रहते थे बंद रहता था और कोई भी व्यक्ति उसमें प्रवेश नहीं कर सकता था। 'जुहर' नमाज के बाद सभी आगन्तुकों से मिलते थे और सभी से मिले बगैर वहां सें नही हटते थे। बाबा फरीद कहा करते थे कि यदि कोई जरूरत मंद व्यक्ति बाहर दरवाजे पर खड़ा है तो ईश्वरीय भक्ति से उनको कोई आनन्द नहीं मिल सकता। जैसे ही इन मुलाकातों का दौर खत्म होता था, शेख इबादत में वापिस मशगूल हो जाते थे। रोजा अफ्तार के बाद वे कुछ बड़े शिष्यों को बुलाते थे और उनसे जमात खाने एवं उस दिन घटित सभी घटनाओं की जानकारी लेते थे।

इसी तरह से हमें हजरत शेख निजामुद्दीन औलिया के जमात खाने की कार्य प्रणाली पर हमें उल्लेख मिलता है– अपने खराब स्वास्थ्य के बावजूद शेख निज़ामुद्दीन औलिया अपनी दैनिक जीवन चर्या का पालन करते थे। प्राय: वे हर रोज उपवास रखने थे। सूर्योदय से एक घंटा पूर्व ख्वाजा अब्दुल रहीम दरवाजा खटखटाते एवं 'सहरी ' देते। उसके बाद शेख सामुहिक रूप सें 'फज्र' की नमाज पढ़ते और फिर भक्ति में लीन हो जाते। सूर्योदय के बाद शेख अपनी नमाज़ की कालीन पर 'काबा' शरीफ की तरह मुंह करके बैठ जाते और भारी संख्या में आगन्तुकों से मिलते। प्रत्येक दर्शनार्थी कोई न कोई भेंट अवश्य लाता था जो वहां उपस्थित लोगों में बांट दी जाती थी। मध्यान्ह के करीब शेख जमातखाने से जुड़े एक कमरें में कुछ देर के लिए आराम करते फिर भी उनको यहां लोक व्यवधान डालते थे। सोकर उठने के बाद वे फिर आगन्तुकों से मिलते और 'जुहर' की नमाज के बाद वे अपने कमरे में चले जाते और वहां पर आगन्तुकों से मिलने का कार्यक्रम शाम तक जारी रहता। अफ्तार के वक्त वे अपने कमरे से आते और रोजा अफ्तार हेतु उनके सामने रोटी का एक टुकड़ा सब्जी के साथ रखा जाता। वे उसमे से थोड़ा खाते और बाकी उपस्थित लोगों में बांट देते। मग़रिब की नमाज सामुहिक पढ़ते और फिर जमातखाना की छत पर बने अपने कमरे में चले जाते। जहां 'ईशा' की नमाज तक आगंतुकों से मुलाकात करते रहते। ऊपर ही रात्री का खाना दिया जाता था। तब शेख नीचे आकर सामुहिक रूप सें 'ईशा' नमाज पढ़ते और फौरन अपने कमरे में लौट जाते जहां पर वे अपनी चारपाई पर 'तस्बीह' लेकर बैठ जाते थे। शेख अमीर खुसरो, कुछ बच्चों और शेख के रिश्तेदारों के अलावा वहां कोई नहीं ठहर सकता था। जब यें लोग भी वहां से चले जाते तब उनका निजी गुलाम आता उनको 'वजू' करवाता और चला जाता। तब शेख उठकर अपना दरवाजा अन्दर से बंद कर लेते तब से वे अकेले नमाजो और प्रार्थना में लीन रहते। खानकाह के लोग शेख के कमरे की लालटेन पूरी रात जलते हुए देखते थे।

### 14.3.2 खानकाह के लोगों के कार्य

सामान्यतया खानकाह के लोग दो तरह के कार्यो से संलग्न रहते थे– शेख की निजी सेवा करना एवं जमात खाना की व्यवस्था करना। प्राय कुछ सीनियर शिष्यों को खानकाह के

सारे प्रशासन का कार्यभार सौंपा जाता था और उनका कर्त्तव्य यह देखना होता था कि खानकाह की सारी मशीनरी की कार्य प्राणाली निर्बाध रूप से चल रही है या नही? बाबा फरीद की खानकाह में मैलाना बदरूद्दीन इस्हाक प्राय इस तरह की ड्यूटी अंजाम देते थे। वे खानकाह के प्रत्येक चीज पर निगाह रखते, अन्य दूसरे लोगों को काम बांटते, अतिथियों की देखभाल करते और भोजन वितरण की व्यवस्था करते थे।

प्राय: जमातखाना के व्यक्ति शेख की निम्नांकित सेवा करते थे–

1. एक व्यक्ति हमेशा शेख की सेवा हेतु तैयार रहता था। बाबा फरीद के लिए यह कार्य मौलाना बदरूद्दीन इस्हाक ने और इकबाल व मुबश्शिर ने हजरत निजामुद्दीन औलिया के लिए यह कार्य किया था। कितनी मुस्तैदी से इस कार्य को अंजाम दिया जाता था इसका एक उदाहरण देखिये। जब मौलाना बदरूद्दीन इस्हाक को बाबा फरीद ने बुलाया तो प्रार्थना में व्यस्त होने की वजह से तत्काल नहीं पहुंच सके। इससे शेख अप्रसन्न हो गये और जब मौलाना उनके पास गये तो फरमाया– "तुम्हारी पूर्व की सारी प्रार्थनाऐं एवं भक्ति खत्म हो चुकी है अपने कार्य में दुबारा से व्यस्त हा जाआ।"

2. दूसरा कार्य शेख के लिए पांच बार 'वजू' का करने का होता था। शेख फरीद की खानकाह में यह कार्य ख्वाजा अहमद सिविस्तानी के सुपुर्द था। कभी–कभी उनको शेख के कपड़े भी धोने को कहा जाता था। हजरत निजामुद्दीन औलिया की खानकाह में यह कार्य सैयद नूरूद्दीन किरमानी के सुपुर्द था।

3. शेख व्यक्तिगत एवं निजी कार्यों को अंजाम देने हेतु भी एक व्यक्ति तैनात रहता है।

4. चूंकि चिश्ती सिलसिले के बुजुर्ग अधिकांशत: रोजा रखते थे इसलिए खानकाह के एक व्यक्ति की नियुक्ति शेख को 'सहरी' व 'अफ्तार' देने के लिए की जाती थी।

5. किसी खास व्यक्ति को शेख अपना 'मुसल्ला' (नमाज की कालीन) मस्जिद में लेकर चलने को नियुक्त करता था। हजरत निजामुद्दीन औलिया ने इस कार्य को ख्वाजा अबू बकर से करवाया था।

इसके अलावा जमातखाना का कार्य उचित एवं सही तरीके से, चलता रहे इसके लिए कुछ लोगों को नीचे दिये कार्य करने को कहा जाता था–

1. **रसोई के लिए ईंधन की व्यवस्था करना–** बाबा फरीद के जमातखाने में प्रत्येक व्यक्ति को बारी–बारी से जंगल से लकड़ी लाने का कार्य सौंपा जाता था। जिन खानकाहों में आय के अच्छे स्रोत होते थे वहां यह कार्य अंजाम नहीं दिया जाता था।

2. **रसोई–** खाना बनाना और उचित तरीके से खानकाहो के सभी लोगों को इसका वितरण एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता था। यह कार्य किसी योग्य व्यक्ति को ही दिया जाता था।

3. **खिलाफत नामा–** किसी वरीयता प्राप्त शिष्य को जो, उच्च श्रेणी का विद्वान भी होता था, खिलाफत नामा लिखने का महत्वपूर्ण कार्य सौपा जाता था।

4. **तावीज–** चूंकि जमातखाने में एक विशाल भीड़ तावीज प्राप्त करने के लिए होती थी और शेख के लिए स्वयं तावीज लिखना एक मुश्किल कार्य होता था इसलिए शेख की तरफ से कोई वरीयता प्राप्त शिष्य इस कार्य को अंजाम देता था।

5. **मेहमान–** कुछ शिष्य उन लोगों की देखभाल का कार्य करते थे जो थोड़े समय के लिए वहां आते थे।

### 14.3.3 खानकाह के निवासी

खानकाह में मुख्य रूप से शेख एवं उसके शिष्य ही हुआ करते थे इनमें से कुछ परेशान हाल, मुसीबत के मारे एवं आध्यात्मिक सत्य की खोज करने वाले होते थे। हमारे पास अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो, इस बात को दर्शाते है कि इन खानकाहों में समाज के सभी तबकों के व्यक्ति रहते थे या किसी न किसी वजह से सांसारिक मोह को त्याग कर खानकाह की शरण में आ गये थे यदि हम मध्यकालीन खानकाहों का सांख्यकीय विश्लेषण करें तो यह बात सामने आती है कि इनमें मुख्यतः तीन श्रेणी के लोग हुआ करते है– (1) बाह्य विद्वान (2) सरकारी सेवक या (3) व्यवसायी। यदि हम इसका मनोवैज्ञानिक कारण ढूंढे वो पता लगेगा कि एक सरकारी सेवक अपनी ड्यूटी से परेशान, तनावग्रस्त है, धन की लालसा है पद पाना चाहता है और इनका निराकरण सिर्फ खानकाहों में ही हो सकता था जहां सिर्फ ईश्वर में विश्वास पर ही बल दिया जाता था और इस तरह के लोग खानकाहों की तरफ आकर्षिन होते थे खानकाह का वातावरण इन विभिन्न भूमि के लोगों से भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करता था। एक विद्वान वहां अपनी सारी बुद्धिमत्ता भूल कर एक अन्जान बनकर अपना ज्ञान अर्जन करता था, एक सरकारी सेवक वहां पर सांसारिक शक्ति व सत्ता को त्याग कर मानवना की सेवा अपना जीवन का आदर्श बना लेता था और एक व्यवसायी अपने सारे सांसारिक कार्यों को छोड़कर खानकाह में गरीबी और भूख से अपनी आध्यत्मिक संतुष्टी प्राप्त करता था। इस तरह से इन तीनों ही प्रकार की पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति सांसारिक मोह को त्यागकर इन खानकाहों की शरण में आते थे आर वही के होकर रह जाते थे।

## 14.4 खानकाह में आने वाले लोग एवं उनकी समस्याऐं

चिश्ती खानकाहें अर्द्ध रात्री तक खुली रहती थी जहां पर हर किस्म के व्यक्ति भिन्न–भिन्नसांसारिक एवं आध्यत्मिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आते थे। एक बार हजरत निजामुद्दीन औलिया ने अपने शिष्यों से कहा था– "संसार में कोई भी व्यक्ति मेरे समान दुख एवं प्रलाप से पीड़ित नही है ढेर सोर व्यक्ति मेरे पास उनकी समस्याएँ एवं दुख लेकर आते है। जो काई भी व्यक्ति सहानुभूति एवं मदद चाहता था वही खानकाह की तरफ दौड़ना था। चूंकि यह विश्वास कि एक शेख सभी मानसिक एवं शारीरिक बीमारियों से निजात दिला सकता है अधिकांश लोग 'तावीज' के लिए प्रार्थना करते थे जो वहां पर मुफ्त में वितरित किये जाते थे। भारी भीड़ भी इन आगन्तुकों को व्यक्तिगत रूप से शेख से मिलने में रोक नहीं पाती थी। शेख स्वयं कहते थे– "मेरे पास बारी–बारी से आओ ताकि मै आपकी समस्याओं को व्यक्तिगन रूप से जान सकूं।" सारांशत: हम यह कह सकते है लोग यहां पर हर प्रकार की इच्छा के वशीभूत होकर

आते थे और यह सोचकर भी आते थे कि हमारी समस्या, दुख का निराकरण सिर्फ शेख ही कर सकता है और यह भी अति श्योक्ति न होगी कि वे लोग पूर्णत: सन्तुष्ट होकर यहां से लौटते थे।

## 14.5 चिश्ती सन्तों का राज्य संबंधी हष्टिकोण

मध्यकालीन चिश्ती सन्त अपने आपको शासकों राजनीनि एवं सरकारी सेवा से दूर रखते थे। उनका यह दृष्टिकोण कई कारणों की वजह से था–

1. उनका यह सोचना था कि सरकारी सेवा एक संत को अपने आदर्श से हटा देती है जो सिर्फ ईश्वर के लिए ही होता है। ईश्वर प्राप्त करना एक सरकारी सेवक के लिए असंभव है वे दिन लद गये जब सरकारी सेवा धार्मिक सेवा मानी जानी थी। सरकारी सेवा में रहकर व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकना था।

2. इमाम गज़ाली लिखते है– 'हमारे वक्त में राजा की सारी या लगभग सारी आमदनी निषेधात्मक स्रोतों से प्राप्त होती है इस वजह से जो तनख्वाह उन्हें दी जाती है वे अवैध आमदनी से है जो कानूनन गलत है।

3. एक व्यक्ति को न तो शासकों से भागना चाहिये, न उनकी तारीफ करनी चाहिये और न ही उनके सहयोगियों से किसी प्रकार का संबंध रखना चाहिये।

4. यदि एक संत अपने आपको सरकारी वर्ग से जोड़ लेता है जो एक शोषक है, तब वह अपनी मुख्य धारा से – मानव मात्र – से कट जाता है वह मनुष्य मात्र से कट जाता है और नौकरशाही तंत्र का एक अंग बन जाना है।

इन नमाम बातों कों ध्यान में रखकर ही मध्यकालीन चिश्ती सन्तों ने सरकार के प्रति अपना एक अलग नजरिया बनाया इसलिए उन्होंने इसकी सेवा करने से मना कर दिया। इमाम अबू हनीफा ने खलीफा–अल–मसूर की प्रार्थना काजी पर स्वीकार करने की अस्वीकार कर दी। ख्वाजा अबु मुहम्मद जो चिश्ती सिलसिले के एक प्रारंभिक शेख थे उन्होंने इस प्रतिक्रिया के साथ कि– "हमारे पहले के किसी भी बुजुर्ग ने ऐसी चीजे स्वीकार नहीं की है"। एक राजकुमार की भेट को अस्वीकार कर दिया। कुछ सन्तों ने इस दृष्टिकोण को काफी गम्भीरता से लिया। इमाम हम्बल ने अपने पुत्र के घर पर पर खाना खाने से मना कर दिया क्योंकि वह एक वर्ष सरकारी सेवा कर चुका था। इमाम अबु इस्हाक फज़ारी दरबारियों एवं अमीरों की 'हदीस' पर अपने भाषण सुनने से मना रहते थे। शेख अबु सईद तबरीजी ने अपन नौकर से अपनी खानकाह की वह जगह खोदकर फैंक देने को कहा जहां पर दरबार के ' हाजिब' ने अपना पांव रखा था।

मध्यकालीन भारतीय चिश्ती सन्तों नें भी इन पूर्व में स्थापित मान्यताओं कों अपनाया और अपने को राजाओं और दरबारियों के संगत में आने से दूर रखा। एक बार एक चिश्ती सन्त ने कहा – सूफियों में दो तरह की जातियां होती है– मुकालिद और जिर्रत। मुकालिद का मतलब वह सूफी जिसका कोई गुरू नहीं होता और जिर्रत वह जों लोगों से धन लेता है कीमती कपड़े पहनता है, शेख की टोपी पहनता है और राजाओं एवं दरबारियों की हाजिरी करता है।

## 14.6 शासकों की संगत से दूर रहना

चिश्ती सिलसिले के सभी बुजुर्गों ने इस सिद्धान्त का पालन किया था। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती को एक बार उनके लड़के ने जमीन के लिए शाही फरमान–प्राप्त करने हेतु दिल्ली भेजा ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने उन्हें अपने घर पर रखा और स्वयं सिर्फ अपने गुरू की खातिर एक ही बार दरबार में गये। बाबा फरीद ने भी अपने गुरू की परम्परा का पालन किया। उन्होंने अपने शिष्यों को चेतावनी दी थी - " यदि तुम अपने को महान संत बनाने चाहते हो तो शाही खानदान को कोई तवज्जो मत दो।" कहा जाता है कि सुल्तान बलबन बाबा फरीद का काफी सम्मान रखता था लेकिन उसका सम्मान शेख की नीति में कोई परिवर्नन नहीं कर सका। यही दृष्टिकोण बाद के चिश्ती सन्तों का भी बना रहा। शेरखान जो बलबन का सीमान्त गवर्नर था वह बाबा फरीद के प्रति गलत भावना रखता था और उन्हें अक्सर भला बुरा कहता था शेख ने कभी उसे शाप नही दिया लेकिन कहा करते थे–मुझे दुख है कि तुम मेरी दशा नही जानते हो, जब मेरी दशा से वाकिफ हो जाओगे तब पश्चाताप करने का भी कोई फायदा न होगा।

## 14.7 जागीर ग्रहण न करना

चिश्ती सन्तों ने न केवल शासकों एवं दरबारियों की संगत से अपने आप को दूर रखा बल्कि उन्होंने उनकी जागीर या अन्य चीजें भी लेने से साफ मना कर दिया। इस बारे में उनका सोचना था कि यदि वे शाही भेंट स्वीकार कर लेंगे तो वे अपनी आत्मा को उनका गुलाम बना देगें। जब इल्तुतमिश ने बाबा बख्तियार काकी को एक जागीर देने का आग्रह किया तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया। शेख हमीदुद्दीन नागौरी ने कोई की जागीर सुल्तान से लेने के बजाय गरीबी में रहना अधिक श्रेयष्कर समझा। उलुग खां द्वारा बाबा फरीद को गावों को जागीर में लेने का अनुरोध यह कहकर नहीं माना कि "हजरत निजामुद्दीन औलिया ने भी इसी दृष्टिकोण का सख्ती से पालन किया। अपने शिष्यों को स्पष्ट शब्दों में कहा करने थे – किसी राजा या दरबारी से किसी गांव जागीर या धन के बोर में मत कहो। यह एक दरवेश के लिए सही नही है वे केवल जागीर ही अस्वीकार नही करते थे बल्कि धन को भी लेने से मना कर देते थे। ख्वाजा काकी मलिक इख्तियारूद्दीन ऐबक से नगद धन लेना स्वीकार नही किया। रजिया द्वारा भेजा गया धन शेख नूर तुर्क ने लेने से मना कर दिया। यदि वे कोई वस्तु या नगद राशी ग्रहण भी कर लेते तो फौरन उसे बांट दिया करने थे। वे कहा करते थे कि उनकी खानकाह शाही भेटों के लिए गोदाम नहीं है। इन सन्तों का कहना था कि वास्तविक प्रसन्नता इन चीजों से दूर रहने से ही मिलती है।

## 14.8 राजकीय सेवा ग्रहण न करना

उपरोक्त दोनों बातों के समान चिश्ती सन्तों का यह दृष्टिकोण भी काफी महत्वपूर्ण था। जो कोई भी व्यक्ति इस सिलसिले में प्रवेश पा लेता था वह सरकारी सेवा की तरफ देखता भी नही था और जो काई व्यक्ति इस सिद्धान्त का पालन नही करना था उसके साथ शेख का कठौर रवैया रहता था। कभी वह उस व्यक्ति का खिलाफन नामा रद्द कर देता था और उसें अपनी खानकाह से भी बाहर कर दिया जाता था। उनका मानना था कि सरकारी सेवा एक व्यक्ति को आध्यत्मिक ज्ञान प्राप्त करने के बाधक होती है ईश्वर और अधिकारी दोनों की सेवा

एक साथ नहीं हो सकती। सुल्तान इल्तुतमिश के प्रति नरम दृष्टिकोण रखते हुए भी ख्वाजा बख्तियार काकी उसके द्वारा उनकों दिया गया पद शेखुल इस्लाम अस्वीकार कर दिया। हजरत निजामुद्दीन औलिया ने अपने शिष्यों से सरकारी सेवा से दूर रहने का वादा करवाया था लेकिन यहां पर यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि सिर्फ खिलाफत नामा धारी व्यक्ति से ही यह अपेक्षा की जाती थी कि वह राजकीय सेवा से दूर रहे। साधारण शिष्यों पर यह सख्ती से लागू नही किया जाता था। शेख नासिरूद्दीन चिराग देहलवी ने सरकारी सेवा करने की इजाजत दे दी थी बशर्ते कि उससे ईश्वर के प्रति उसकी भक्ति में कोई कमी न आये। उसको हमेशा ईश्वर की प्रार्थना करते रहना चाहिये ।

इन चिश्ती सन्तों का दिन एवं रात आम आदमी की भलाई में गुजरता था लेकिन वे शासकों या अमीरों के प्रति कुछ भी नहीं करते थे। वास्तव में खानकाहों में उनका स्वागत नहीं किया जाता था। एक बार हजरत निजामुद्दीन औलिया ने इनका विरोध करते हुए कहा था –"ये लोग हम फकीरों का वक्त क्यों खराब करते है।"

## 14.9 सारांश

चिश्ती सिलसिलें की खानकाहें जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा एक घास–पूस का छप्पर होती थी जिसमें सभी एक ही जगह खाते पीते सोते और इबादत करते थे। सिर्फ शेख का ही अलग से कमरा होता था। जो मिट्टी एवं गारे का बना होता था जिस की छत छप्पर की होती थी। सूफीमत को फैलाने के लिए सभी सिलसिलों के संतों ने अपनी–अपनी खानकाहें स्थापित की जहां पर समाज के सभी वर्गों के व्यक्ति आकर सकून प्राप्त करते थे और आध्यत्मिक ज्ञान प्राप्त करते थे। एक बात यहां यह उल्लेखनीय है कि इन खानकाहों में जाति रंग, धर्म लिंग या पद के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। निहायत गरीबी, भुखमरी एवं दयनीय अवस्था में रहकर भी शेख एवं उसके शिष्य प्रसन्न रहते थे वे किसी के आगे हाथ नही फैलाते थे जो कुछ भी बिना मांगें (फूतूह) आ जाता उससे गुजारा करते या फिर खेती करते अपनी आजीविका कमाते थे। जो भी इन खानकाहों में आता था शेख की दुआओं से वह प्रसन्न चित्त होकर लौटता था उनकी समस्याओं का समाधान हो जाता था। चिश्ती सन्तों ने राज्य के प्रति अपना दृष्टिकोण तीन सिद्धान्तों पर कायम कर रखा था जिसका हम उल्लेख कर चुके है। हजरत निजामुद्दीन औलिया कहा करते थे – मेरी खानकाह के दो दरवाजे है यदि सुल्तान एक दरवाजे से आता है तो मै दूसरे से निकल जाऊंगा। सुल्तानों या अमीरों के प्रति कुछ करने का उन के पास कोई वक्त नहीं था । जनसाधारण के लिए उनका द्वार सदा खुला रहता था। उनकी खानकाहें आध्यत्मिक ज्ञान का केन्द्र थी।

## 14.10 संदर्भ ग्रन्थ


1. Nizami - Religion and Politics in India during the 13th Century,
2. K.A. Nizami - Life and Times of Baba Farid.
3. S.A. Rizvi - A history of Sufism in India.
4. B.N. Lunia - Life and Culture in Midieval India.
5. M. Mujeeb - Indian Muslims

# इकाई – 15

# भारत में सुहरावर्दी सिलसिला (संघ) के प्रमुख सूफी तथा उनके सिद्धान्त एवं शिक्षाऐं

**इकाई की रूपरेखा**


15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 सूफी शब्द का उद्गम

15.2.1 प्रथम सूफी

15.2.2 सिलसिला (संघ)

15.2.3 खानकाह

15.2.4 विभिन्न सूफी परिभाषाओं का विकास

15.3 विभिन्न प्रमुख सूफी सन्त तथा उनका भारत में स्थापना

15.4 भारत में सुहरावर्दी सिलसिला का प्रस्तावना व विस्तार

15.4.1 राजस्थान

15.4.2 बंगाल

15.4.3 देहली

15.4.4 मुल्तान

15.4.5 कच्च

15.4.6 गुजरात

15.5 सुहरावर्दी सूफियों की शिक्षा प्रणाली

15.6 खानकाह संगठन

15.7 सुहरावर्दी सूफियों का राजनीतिक संबंध

15.7.1 समाज कल्याण

15.7.2 आलिमों से संबंध

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 संदर्भ ग्रंथ


## 15.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपकी तसव्वुफ (सूफीजम या सूफीवाद) के संबंध में बहुत ही संक्षिप्त जानकारी देना है। इस इकाई का अध्ययन कर लेने से, निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो जाएगा।

– सूफीवाद (तसव्वुफ) क्या है?

- सुहरावर्दि संत का भारत में प्रस्तावना तथा विस्तार
- सुहरावर्दि सुफीयों की शिक्षा प्रणाली
- आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्तर पर सुहरावर्दि सूफियों का प्रभाव

## 15.1 प्रस्तावना

सुहरावर्दि सूफियों के बारे में कुछ कहने से पहिले हमें आपको तसव्वुफ के संबंध में कुछ जानकारी देना है । जैसे :–

- सूफी कौन थे?
- इस्लाम में तसव्वुफ का उद्‌गम
- इस्लाम में तसव्वुफ की आवश्यकता?
- विभिन्न सूफी संत, परिभाषाओं की उत्पत्ति तथा खानकाहें

## 15.2 सूफी शब्द का उद्‌गम

सूफी शब्द न तो कुरान और नही प्रवचन (हदीस) में मिलता है परन्तु कुरान में ऐसे अनेक वाक्य है, जैसे तौहिद, तकवा, खौफ, फक्र, फिक्र, जीक्र, आबीद, औलिया, अल्लाह, मुर्क्बून इत्यादि जिनकी व्याख्या द्‌वारा सूफियों कें मत की पुष्टि होती है।

हजरत मुहम्मद के जीवन का बहुत सी घटनाऐं और उनके बहुत से प्रवचन सूफी सिद्धान्त की आधारभूत सामग्री बन गए है। हजरत मुहम्मद के कुछ साथी (साहावी) सदैव मस्जिद में निवास करते, इबादत में लीन रहते और सांसारिक जीवन से दूर रहते थे। ये लोग अहले सूफ्फा कहलाते थे। कुछ विद्‌वानों का मत है कि प्रारम्भिक सूफी यही लोग थे। परन्तु ये मत सही नही है। वर्तमान शोध कार्य से यह सिद्ध हो चुका है कि "एहले सूफ्फा से "सूफी" का प्रचलन नहीं हुआ है। परन्तु जिन महापुरूषों ने विशेष प्रकार के "सुफ" (ऊनी) वस्त्र धारण करने लगे वे सूफी कहलाने लगे।

### 15.2.1 प्रथम सूफी

सर्वप्रथम सूफी शब्द कूफा के निवासी अबू हाशिम के साथ जुड़ा है, जो 777–8 ई. तक जीवित रहे। अगर यह सिद्धान्त सही नही तों फिर क्यों हजरत मुहम्मद के जीवन तथा उनके मृत्यु के प्राय: 200 वर्षों तक इस्लामिक इतिहास में सूफी शब्द का प्रयोग नहीं किया गया? इसका उत्तर इमाम कुरैशी ने इस प्रकार दिया है।

हजरत मुहम्मद के साथियों को साहबा के अतिरिक्त कोई उपाधि सर्वश्रेष्ठ नहीं हो सकती थी। सहावा के साथी ताबेईन कहलाए और उनके बाद उनके साथी तबआ–ताबेईन के उपाधि से विभूषित किए गऐ। तदुपरान्त जिन महापुरूषों का ध्यान धर्म की ओर अधिक गया उन्हें जाहिद (संयमी)और आबिद (तपस्वी) कहा गया। अत: सुन्नियों में सर्वश्रेष्ठ ईश्वर भक्त पुरूष सूफी के नाम से विख्यात हुए और दूसरी सदी से पूर्व ये बुजुर्ग इस नाम से प्रसिद्ध हुए।

तसव्वुफ का दूसरा नाम "सुलुक" अथवा तरीकत (अध्यात्मिक यात्रा) भी है। सूफी का प्रमुख लक्ष्य मारिफत (अल्लाह का ज्ञान) प्राप्त करना होता है। जिसके लिए एक सिद्ध मार्ग–

दर्शन (मुर्शिद या पीर) की परम आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति पीर का मुरिद (शिष्य) बनता है। उसे अनेक मंजिले (मकामात) तय करना पड़ता है। इस आध्यात्मिक यात्रा के लिए पीर अनेक प्रकार के साधना, तपस्या, जिक्र, चिल्ला, का विभिन्न नियम निर्धारित करता है।

### 15.2.2 सिलसिला संघ

सूफियों में सिलसिला (संघ अथवा पंथ) या प्रथा प्रचलन शुरू हुआ जब पीर अपने मुरिदों को नये–नये नियम निर्धारित करने लगे और वह नियम उस संत का परम्परा बन गया।

### 15.2.3 खानकाह

सूफीवाद के साथ–साथ खानकाहों का भी स्थापना शुरू हुआ क्योंकि इससे पहिले खानकाह नामक कोई संस्था इस्लाम में नही थी।

मौलाना जामी के अनुसार सर्वप्रथम खानकाह का निर्माण एक ईसाई हाकीम ने रमला (सीरिया) में अबू हाशिम सूफी के लिए कराया था।

11वीं सदी ई. में खानकाहों का पूर्ण विकास हुआ। शेख अबू सईद अबिल खैर ने अपनी खानकाह वालों के लिए दस नियमों का पालन अन्य संत के सूफियों ने भी किया।

खानकाह में प्रचलित प्रथाऐं -

खानकाह में दो तरह के लोग हुआ करते थे –

(क) राहगीर

(ख) स्थायी

- खानकाह की देखभाल
- शिष्यों की आध्यात्मिक शिक्षाऐं
- बएंत (दिक्षा), खिर्का, खिलाफतनामा, समा (सूफी कीर्तन) जैसे प्रथाओं का प्रचलन।

इसी तरह खानकाह के सूफियों में सामूहिक जीवन तथा उनकी साधना का केन्द्र बन गया। हिन्दू–मुस्लिम हर धर्म पर विश्वास रखने वाले दीन–दरिद्र, फकीर–योगी, कलन्दर, राहगीर सर्व–साधारण सभी व्यक्ति के लिए खानकाह आश्रय का स्थान बन गया। खानकाह में लंगर की प्रथा थी जहां सभी प्रकार के लोगों का नि:शुल्क भोंजन मिलता था।

सूफीवाद को लोकप्रियता, बादशाहों तथा सुल्तानों द्वारा राजदरबार में सूफियों का आदर, सम्मान को देखते आलिमों ने सूफीवाद पर प्रश्न लगाना शुरू कर दिया।

(क) सूफीवाद का उदगम इस्लामिक है?

(ख) सूफीवाद का इस्लाम में आवश्यकता? इत्यादि।

### 15.2.4 विभिन्न सूफी परिभाषाओं का विकास

प्रारम्भिक सूफियों का न तो काई सिद्धान्त था और न ही कोई संघ तदुपरान्त विद्वान सूफियों ने तसव्वुफ पर अनेक पुस्तक रचना किया जैसे :–

अबु नस्स्र अल सरोज अल तूसी (मृत्यु 988 ई.) किताब अल लूमा फी अल तसव्वुफ की रचना की। अब्दुर्र हसन अल सुलमी (मत्यु 1021 ई.) में तबका तुस्सूफिया नामक पुस्तक रचना किया। अबुल कासिम अल कुरैशी (मृत्यु 1072 ई.) ने अल रिसालतुल अल कुसैरिया लिखा। अबुल हसन अलि बी. उसमान बी. अलि अल जुलाबि सुम्मा अल गजनावी अल हुजवैरी (मृत्यु 1062 ई.) ने कश्फ अल महजूब (फारसी भाषा में सर्वप्रथम सूफीवाद पर लिखी हुई पुस्तक) का रचना किया।

इमाम गजाली (मृत्यु 1111 ई.) ने एह्या अल उलूम अलदीन नामक पुस्तक लिखकर यह प्रमाणित किया की सूफीवाद इस्लाम का एक अंग है।

इन पुस्तकों की रचना से तसव्वुफ में विभिन्न परिभाषाएं शुरू हुई जो प्रारम्भिक सूफीवाद में नहीं थी जैसे :– मारिफत, रूह, तरीकत, हकीकत, पीर, मुरिद, फना व बंका हाल, मकाम वहदत, अल वजूद, वहदत अल शहूद इत्यादि।

## 15.3 विभिन्न प्रमुख सूफी संघ तथा उनका भारत में स्थापना

सुहरावर्दी सिलसिला (संघ) के संबंध में कुछ कहने से पहिले हम इस इकाई में आपको सूफी संत के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी दे रहे है। इससे आपको विभिन्न सूफी संघ जो भारत तक पहुँचे तथा उनका स्थापना के संबंध में कुछ ज्ञान हो जाएगा।

**चिश्ती सिलसिला**

इस संघ के संस्थापक अबु ईसहाक शामी चिश्ती (मृत्यु 940 ई.) थे। परन्तु भारत में इस संघ का स्थापना ख्वाजा मुईनउद्दीन चिश्ती (मृत्यु 1226 ई.) ने किया अपना खानकाह अजमेर (राजस्थान में बनाया, बाबा फरीदगंज शक्कूर (पाकमट्म), शेख बख्तियार काकी (देहलवी), शेख निजामुद्दीन औलिया चिश्ती (मृत्यु 1325 ई.) इस संघ के प्रमुख सूफी थे।

**कादिरी सिलसिला**

इस संघ के संस्थापक शेख अब्दुल कादिर जिलानी (मृत्यु 1176 ई.) थे। इस संघ के दो प्रमुख सूफी शेख निजामतुल्लाह तथा मखदुम मुहम्मद जिलानी ने उच्च (मुल्तान) को अपना केन्द्र बनाया परन्तु सुहरावर्दी सिलसिला की प्रमुखत: ने इस संघ को अधिक लोकप्रिय होने नहीं दिया।

**नक्शबन्दी सिलसिला**

ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबन्दी (मृत्यु 1388 ई.) इस संघ के संस्थापक थे। ख्वाजा बाकी बिल्लाह (मृत्यु 1603 ई.) ने इस संघ को भारत पहुंचाया परन्तु अहमद सिरहीन्दी (मृत्यु 1624 ई.) जो मुजद्दीद–ए–अल्फ शानी के नाम से मशहूर थे। इस संघ को लोकप्रियता, यश तथा उन्नति दिलाई।

**फिरदौसी सिलसिला**

भारत में इस संघ का स्थापना शेख. रुकनुद्दीन से हुआ। शेख शरफउद्दीन य्ह्या अल मनेरी (मृत्यु 1381 ई.) (बिहार) ने इस संघ को चरमसीमा पर पहुँचाया।

**मदारी सिलसिला**

शाह बदीउद्दीन मदार (मृत्यु 1436 ई.) इस संघ के प्रमुख सूफी तथा संस्थापक थे। इनका मकबरा मकानपुर (जो कानपुर से 40 कि. मी. दूरी पर है) में स्थित है।

**शत्तारी सिलसिला**

इस संघ के संस्थापक शाह अब्दुल शत्तारी (मृत्यु 1485 ई.) है, जो शेख मुहम्मद आरिफ के शिष्य थे। शाह अब्दुल शत्तारी ने अपना केन्द्र मान्डू (मध्य–प्रदेश) को बनाया। मुहम्मद गौश शत्तारी ग्वालियरी इस संघ के प्रमुख सूफियों में एक है।

**सुहरावर्दि सिलसिला**

इस संघ के संस्थापक शेख जिआउद्दीन अबु अल अब्दुल काहिर सुहरावर्दि (मृत्यु 1168 ई.) थे, परन्तु इस सिलसिला को चरमसीमा पर पहुंचाने का श्रेय शेख शहाबउद्दीन सुहरावर्दि (मृत्यु 1234 ई.) को जाता है। जिन्होंने अपने त्यागपूर्ण जीवन, मेहनत, उच्च नैतिक तथा अध्यात्मिक शिक्षा और प्रमुखत: से इस संघ को ने केवल उन्नति और यश दिलाई परन्तु अधिक से अधिक लोकप्रिय तथा प्रतिष्ठीत किया।

## 15.4 भारत में सुहरावर्दि सिलसिला का प्रस्तावना तथा विस्तार

आपको विभिन्नसंघों के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त हो गया होगा। अब आपका ध्यान आकर्षण सुहरावर्दि संघ के भारत में विभिन्न प्रांतों में विस्तार पर होगा। किस प्रकार इस संघ के सूफियों ने भारत के विभिन्न प्रांत में इस मत का प्रचार किया उनकी विशेषता, लोकप्रियता तथा सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक योगदान।

इस विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम आपको कुछ प्रमुख सुहरावर्दि सूफियों के जीवन वृतांत पर संक्षिप्त टिप्पणी दे रहे है।

### 15.4.1 काजी हमीदुद्दीन नागौरी (राजस्थान)

वे शेख शहाबउद्दीन सुहरावर्दि के मुरिद थे, जिन्होंने अपना खानकाह नागौर में स्थापित किया। वे ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काफी के मित्र थे और सभा (सूफी कीर्तन) के बड़े रसिया थे। सुल्तान शमसुद्दीन इल्तुतमिश इनसे अत्यधिक निष्ठा रखते थे।

### 15.4.2 शेख जलालुद्दीन तबरेजी (बंगाल)

वे सर्वप्रथम शेख अबू सईद तबरेजी के शिष्य थे तदुपरान्त पीर के मृत्यु के बाद शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दि के मुरिद हुए। भारत में पहुंच कर कुछ रोज वे देहली में ठहरे बाद में देहली से बदायुं होते हुए बंगाल पहुँचे।

मौलाना जमाली के अनुसार, शेख जलालुद्दीन तबरेजी लखनौती में कुछ समय रहने के बाद पांडुवा के समीप देवतला या देवमहल पहुँचे। उस स्थान के बहुत से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया और एक खानकाह बनवाई, मृत्यु के बाद वही दफन हुए और उनका मकबरा बाइस हजारी के नाम से प्रसिद्ध है।

### 15.4.3 सय्यद नूरूद्दीन मुबारक गजनवी (देहली)

वे शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दि के शिष्य थे, जिन्होंने देहली में खानकाह स्थापित की थी। सुल्तान शमसुद्दीन इल्तुतमिश ने अपने राजा का धर्म–गुरू (शेख उल इस्लाम) बनाया। विपुल लोकप्रियता के कारण वे मीर–ए–देहली (देहली के हाकिम) के नाम से प्रसिद्ध हो गए। वे भारत में इस्लामिक राज्य स्थापना के लिए सुल्तान शमसुद्दीन इल्तुतमिश को अनेक उपदेश दिया करते थे। जियाउद्दीन बरनी के अनुसार नूरूद्दीन मुबारक गजनवी का कहना था कि सुल्तान को भोग विलास में ग्रस्त नहीं रहना चाहिए। जो शासक निरंकुश जीवन व्यतीत करेगा उसे कयामत के रोज राज दण्ड भोगना होगा। किन्तु यदि वे "दीन पनाही" (इस्लाम धर्म की रक्षा) करेंगे तो उन्हें इनाम मिलेगा। वे, ये भी कहते थे कि अगर शासक रात–दिन नमाज पढ़ता है। आजीवन उपवास (रोजा) रखता है। परन्तु उसने अगर धर्म की रक्षा नहीं की तो उसका कल्याण असम्भव है। इसलिए उन्होंने सुल्तान को कुछ सुझाव दिये थे, जैसे –

1. मूर्ति पूजन का अंत करना।
2. मुसलमानों को गुनाह (पाप) तथा अनैतिकता से रोकना।
3. शरियत का पालन, जिसके मन में अल्लाह का भय हो, अल्लाह के भक्त (धार्मिक) लोगों को राज्य के उच्च पदों में नियुक्त करना।
4. अन्याय, अत्याचार का दमन तथा न्याय का स्थापना इत्यादि।

### 15.4.4 शेख बहाउद्दीन जकरिया (मृत्यु 1262 ई.) (मुल्तान)

वे शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दि के प्रमुख व अत्यन्त प्रिय शिष्य थे। इस्लाम धर्म का प्रचार तथा सुहरावर्दि संघ को भारत में विस्तार के लिए शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी, उन्हें अपना खलिफा बनाकर बगदाद से मुल्तान भेजा था। भारत में सुहरावर्दि संघ को वास्तविक संस्थापक तथा इस संघ को लोकप्रिय और यश दिलाने में उनका योगदान उल्लेखनीय है। शेख बहाउद्दीन जकरिया मुल्तान में खानकाह स्थापित कर उसे इस संघ का प्रमुख केन्द्र बना दिया। कुछ ही समय के अन्तर में शेख के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक धार्मिक विचार तथा उनके व्यक्तित्व से प्रभावित न केवल सुल्तान, आमीर, उच्च पदाधिकारी एवं सर्वसाधारण हुए परन्तु मुल्तान के शक्तिशाली कबिले जैसे– सुमिरा, सम्भा, लांगा भी आकर्षित हुए थे।

#### शेख सद्रद्दीन आरिफ (मृत्यु 1265 ई.)

वे शेख बहाउद्दीन जकरिया के पुत्र, मुरिद (शिष्य) एवं उत्तराधिकारी थे। इनकी नीति धन–संपत्ति संचय तथा जमींदारी ग्रहण करने के विरूद्ध थी। इनके पिता के पास अथाह संपत्ति थी इसलिए पैतृक संपत्ति से इन्हें सात लाख टका मिला था। परन्तु वे दीन–दरिद्रों में सब खर्च कर दिये एवं अपने साधारण जीवन व्यतीत करते थे।

#### शेख रूकनुद्दीन अबुल फतह (मृत्यु 1335 ई.)

वे शेख सदुद्दीन आरिफ के पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे। सुहरावर्दि सिलसिला को चरमसीमा पर पहुंचाने का यश इन्हीं को जाता है। प्राय 50 वर्ष तक अपनी अथकनीय सेवा, त्याग तथा बलिदान से वे इस संघ को यश एवं उन्नति दिलाए। बरनी के अनुसार सिंध के सभी लोगों को

शेख पर दृढ़ विश्वास था जहां तक वे एक बहुत बड़ी आलिमों को गोष्ठी भी आपके साथ हो गई थी।

### 15.4.5 सय्यद जलालुद्दीन सूर्ख बुखारी (मृत्यु 1299 ई.) (कच्च)

वे शेख सुदुद्दीन आरिफ के मुरिद थे जिन्होंने उच्च (सिन्ध) के खानकाह स्थापित की एवं सुहरावर्दि संघ का केन्द्र बनाया। सय्यद जलालुद्दीन मखद्म ए जहांनियान (मृत्यु 1384 ई.) वे सय्यद अहमद कबीर के पुत्र थे वे सय्यद जलालुद्दीन सूर्ख बुखारी के पोते एवं शेख रूकनुद्दीन अबुल फतह के शिष्य थे। वे उच्च शिक्षा अर्जन के लिए बुखारा गए थे। उन्हें जहान गस्त के पदवी से मशहूर हुए क्योंकि वे बुखारा, मक्का, मदिना, काजेरून, मिश्र शाम, ईराक, बल्ख, खूरासान इत्यादि स्थान का भ्रमण किया था। वे शरियत के पालन का अत्यधिक प्रचार करते थे। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक एवं फिरोज शाह तुगलक आपका अत्यधिक सम्मान करते थे। इस संघ को प्रसिद्धि तथा यश दिलाने में उनका विशेष योगदान है।

### 15.4.3 देहली (दिल्ली)

मुल्तान पर लान्गा शासन स्थापित होते ही सुहरावर्दि सूफियों ने मुल्तान छोड़कर देहली (दिल्ली) में बसने लगे। शेख समाउद्दीन, शेख ईशाक, शेख अबुल बहह्ाव उनमें से प्रमुख थे।

सुल्तान बहलोत लोदी उन सभी सुफियों को शरण दिया एवं उन्हें रक्षा तथा बचाव की पूरी सहायता दी। सुल्तान बहलोत लोदी ने शेख अब्दुल्ला (शेख युसूफ के पुत्र) को अपनी कन्या से विवाह देकर सुहरावर्दि सूफियों तथा लोदी वंश का संबंध को और अधिक घनिष्ट बना दिया।

**शेख समाउद्दीन**

वे शेख कबीर के मुरिद तथा खलिफा थे। समकालीन सभी सुहरावर्दि सुफियों में प्रमुख तथा श्रेष्ठ व्यक्ति थे। यद्यपि वे सुल्तान तथा अमीरों से अलग रहते एवं जागीर फुतुह ग्रहण नही करते थे परन्तु सुल्तान बहलोत लोदी स्वयं शेख के खानकाह जाकर शेख के चरणों में गिर गया एवं शेख से कुछ उपदेश तथा आर्शीवाद ली।

इसके सुल्तान सिकन्दर लोदी ने भी शेख समाउद्दीन का आर्शीवाद तथा शुभकामनाएं लेकर राजसिंहासन ग्रहण की थी।

**हाजी मुहम्मद अब्दुल बहहाव**

वे सय्यद जलालुद्दीन बुखारी के औलादों में से थे एवं शेख अब्दुल्लाह के पुत्र वह शेख युसूफ के मुरीद थे। सुल्तान सिकन्दर लोदी के शासन काल मे आप मुल्तान से देहली आकर बस गए। सुल्तान ने शेख का अधिक आदर तथा सम्मान किया। शेख शरियत के अत्यधिक अनुयायी थे। वे किसी भी व्यक्ति को शरियत की अवहेलना करते नही देख सकते थे। आश्चर्य की बात है कि सुल्तान के दाड़ी नहीं थी जिससे शेख बेहद नाराज हुए एवं सुल्तान को शरियत का पालन करने को कहा। सुल्तान ने अपने बचाव के लिए जो उत्तर दिए वह शेख के लिए सन्तोषजनक नहीं था। शेख राजदरबार से चले गए और शेख के लिए उनकी गैरहाजरी में सुल्तान ने कुछ क्टुवाक्य कह दिये शेख को जब ये बात मालूम हुई वह अत्यन्त अप्रसन्न हुए एवं अभिशाप दे दिया जिसके कारण सुल्तान सिकन्दर लोदी का देहावसान हुआ।

### 15.4.6 गुजरात

स्वतंत्र गुजरात राज्य की स्थापना 1396 ई. में जफर खान ने किया और 1404 ई. से मुजफ्फर शाह का नाम ग्रहण किया था। जफर खान सय्यद जलालुद्दीन मखदूम ए जहानियान का शिष्य था जिन्होंने उसे गुजरात राज्य के स्थापना का भविष्यवाणी की थी। इसलिए मुजफ्फर शाह सय्यद बंशज का अत्यधिक उपासक था। कहा जाता है कि जब सय्यद बुरहानुद्दीन कुत्ब–ए–आलम (मृत्यु 1453 ई.) जो मखूदूम–ए–जहानियान के पोते थे। गुजरात इल्म हासील करने आए (वे मौलाना अली शेर से विद्या अर्जन किया था।) तो मुजफ्फर शाह उनका बहुत आदर सत्कार किया था।

सुल्तान अहमद (1411–1442 ई.) ने जब अहमदाबाद नामक नया शहर स्थापित किया और उसे अपने राज्य का राजधानी बनाया तो उसने सय्यद बुरहानुद्दीन कुत्ब–ए–आलम को वहां बसने के लिए आमन्त्रित की और शेख के लिए एक खानकाह का निर्माण कराया एवं बटवा का जागीर को दिया। इस तरह शेख कुत्ब–ए–आलम सुल्तान को नैतिक तथा आध्यात्मिक सहायता देकर गुजरात राज्य का विस्तार एवं संघटित करने में मदद की थी।

सय्यद कुत्ब–ए–आलम के वंशज बटवा (गुजरात) में रहने लगे और इस तरह शेख के मृत्यु के बाद भी उनके वंशज गुजरात के सुल्तान तथा अमीरों पर अपना प्रभाव व प्रयोग करते रहे।

**सय्यद शाह शेखजुई**

वे कुत्ब–ए–आलम के पोते थे। अपने समय के सभी सुहरावर्दि सूफियों में प्रमुख थे: वे शाहजादा बहादुर के मित्र थे। जिसके लिए उन्होंने गुजरात राजसिंहासन के प्राप्ति का भविष्यवाणी की थी।

परन्तु गुजरात का सुल्तान शाह मुजफ्फर द्वितीय (1511–1526 ई.) ने अपना उत्तराधिकारी शहजादा सिकन्दर खान को नियुक्त कर दिया। किन्तु शाह शेखजुई के भविष्यवाणी के मुताबिक मई 26 को सिकन्दर की हत्या कर दी गई और जुलाई 11, 1526 को गुजरात का सुल्तान बहादुर बन गया।

## 15.5 सुहरावर्दी सूफियों का शिक्षा प्रणाली

इस संघ के सूफीयों का सूफीवाद पर विचार–सूफी का लक्ष–मारिफत (आध्यात्मिक ज्ञान) की प्राप्ति–मारिफत पीर के अनुपस्थिति में संभव नहीं पीर अपने मुरिद को विभिन्न मार्ग, तपस्या, साधना, तथा चिल्ला के आदेश देकर दर्शाता है –

शरियत का पालन– आध्यात्मिकवाद के पालक होते थे– तौहिद (एकेश्वरवाद), दिल की सभाई, नमाज, जिक्र, फीक्र, कड़ी तपस्या तथा नि:स्वार्थ अल्लाह से प्रेम रखते थे। शेख को साष्टांग प्रणाम जो प्रथा शेख निजामुद्दीन औलिया के यहां प्रचलित थी) जैसी प्रथा का घोर विरोध करते थे।

## 15.6 खानकाह संगठन

सुहरावदी खानकाहों का नक्शा चिश्ती खानकाह से भिन्न था। शेख बहाउद्दीन जकरीया ने मुल्तान में खानकाह स्थापित किया था जिसमें जमात–खाना का प्रचार नहीं था– सर्वसाधारण दरवेश, फकीर कलन्दर तथा योगियों का प्रवेश निषेध था– मुल्तान का खानकाह विशाल तथा विस्तृत था अतिथि के लिए पृथक कमरे होते थे। केवल उच्च–पदाधिकारी, अमीर ही खानकाह में अतिथि या मेहमान बन सकते थे, शेख अपने मेहमानों का अधिक आदर करते, खाने को अति–स्वादिष्ट भोजन तथा रहने का उत्तम प्रबन्ध करते थे– वे खुद ही स्वादिष्ट भोजन ग्रहण करते।

खानकाह में लंगर प्रथा प्रचलित थी। सुहरावर्दी शेख जागीर ग्रहण करते और उसके आय में खानकाह के व्यय का बोझ उठाते।

## 15.7 सुहरावर्दी सूफियों का राजनीतिक संबंध

इस इकाई का उद्देश्य आपको सुहरावर्दी सूफियों का राजनीतिक तथा आर्थिक संबंध के बारे में कुछ संक्षिप्त जानकारी देना।

सुहरावर्दी सूफियों का इतिहास तत्कालीन धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन पर ही प्रकाश नहीं डालता परन्तु उस समय के राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवन की महत्वपूर्ण झाकियां भी प्रस्तुत करता है।

सुहरावर्दी सूफी सुल्तान, अमीरों तथा उच्च–पदाधिकारियों से अपना संबंध घनिष्ट रखते थे, इसका मुख्य कारण इस तरह था ।

इस संघ के संस्थापक शेख जियाउद्दीन अबु नजीब अबुल काहीर सुहरावर्दी राजनीतिक सिद्धान्त के लिए दृढ़ता पूर्वक कुरान के इस आयत पर विश्वास करते थे। (कु: 4 : 59)

शेख का संबंध बगदाद के खलिफा (शासक) से घनिष्ट था और उन्होंने बगदाद को ख्वारीजम के शाह के आक्रमण से भी रोका था।

इस संघ के सूफियों ने भी भारत के राजीनतिक परिस्थितियों में अपने बुजुर्गों के पद्धति को अनुसरण किया।

सुल्तान तथा उच्च–पदाधिकारियों से संपर्क स्थापन करने पर वे निम्नलिखित विचार व्यक्ति किया करते थे।

- सुलानों तथा अमीरों से घनिष्टता बढ़ाकर उन्हें अन्याय एवं अत्याचार से रोकना ।
- भारत में इस्लाम धर्म के विस्तार के लिए सुल्तानों को नैतिक तथा आध्यात्मिक सहायता देना।
- शेख–उल–इस्लाम (धर्म गुरू) पद ग्रहणकर शासकों को अधर्म एवं भ्रष्टाचार से रोकना ।
- जागीर ग्रहणकर दीन–दरिद्र, फकीर, योगी को आर्थिक सहायता करते और नि:शुल्क भोजन कराते।
- राजदरबार में हाजरी (उपस्थिति) देते तथा अपना प्रभाव राजदरबार में बढ़ाकर इस प्रभाव को असहाय एवं जन–साधारण व्यक्ति के हित में उपयोग करते।

सुल्तान कुतुबुद्दीन अइबक का आकस्मिक मृत्यु 1290 ई. में हो जाने पर मुल्तान का हाकिम नासिरूद्दीन कबाचा (जो मुल्तान, सिंध, एवं पंजाब के कुछ अंश पर अपना सत्ता जमा चुका था।) व सुल्तान शमसुद्दीन इल्तुतमिश के बीच पारस्परिक संघर्ष में शेख बहाउद्दीन जकरिया ने सुल्तान को न केवल समर्थन दिया परन्तु वे पत्र देकर मुल्तान पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया एवं कबाचा के निष्ठुर, अत्याचार शासन से मुल्तान वासियों को मुक्ति दिलाई।

सुल्तान इल्तुतमिश सुहरावर्दि सूफियों पर अत्यधिक विश्वास रखता था। देहली का राजसिंहासन आरोहण के बाद उसने सय्यद नुरूद्दीन मुबारक गजनवी देहली को शेख–उल–इस्लाम तथा मौलाना मजदुद्दीन को सदर–ए–विलायत के पद पर नियुक्त किया

जब बर्बर मंगोल सरदार सालि–नुइन मुल्तान पर चढ़ाई कर दिया और चारों ओर से मुल्तान को घेर लिया तो शेख बहाउद्दीन जकरिया ने मुल्तान गर्वनर की ओर से मध्यस्थता की एवं 10,000 दीनार देकर सालि नुइन को वापस करा दिया। इस तरह शेख के मध्यस्था से देहली सुल्तान तथा सर्वसाधारण के सर से संकट का बादल छट गया।

इस घटना ने सुल्तान इल्तुतमिश का मन मोह लिया अति प्रसन्नता से उसने शेख को शेख–उल–इस्लाम के पद से आभूषण किया।

शेख रूकनुद्दीन मुल्तानी (शेख बहाउद्दीन जकिरिया के पोते थे) ने भी इस क्षेत्र में अपनी सत्ता न के केवल सर्वसाधारण में परन्तु राजनीतिक तथा सामाजिक स्तर पर जमा लिया। शेख बराबर देहली आया–जाया करते थे। एक बार वे सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी के दरबार में हाजीर हुए। उस समय सुल्तान तथा शेख निजामुद्दीन औलिया के बीच संबंध अच्छे नहीं थे। सुल्तान ने सोचा के यह एक सुन्दर अवसर है। क्योंकि सुहरावर्दि तथा चिश्ती सूफियों में अधिक मतभेद रहता है, इसलिए शेख रूकनुद्दीन मुल्तानी को शेख निजामुद्दीन औलिया के विरूद्ध इस्तेमाल करूंगा तथा शेख निजामुद्दीन के बढ़ते हुए प्रभाव को नष्ट करूंगा– पर यह विचार सत्य नहीं हो सका। जब शेख रूकनुद्दीन मुल्तानी सुल्तान के बिना अनुमति से शेख निजामुद्दीन खानकाह हाजीर हुए।

शेख रूकनुद्दीन आरिफ के प्रति मुलतान वासियों का प्रगाढ़ विश्वास तथा भक्ति थी, इसी तरह शेख भी मुल्तान वासियों को अधिक निष्ठा रखते थे जब कि शलु खान मुल्तान में मुहम्मद बिन तुगलक के विरूद्ध विद्रोह किया तो शेख स्पष्टता से सुल्तान का पक्ष लिया यहां तक के शेख के भाई इयादुद्दीन इस युद्ध में मारे गए। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक की जीत हुई परन्तु सुल्तान विद्रोही (जो मुल्तान वासी कि शलु को विद्रोह में साथ दे रहे थे) को सजा देना चाहता था। किन्तु सही समय पर शेख का हस्तक्षेप मुल्तान वासियों को मुक्ति दिलाई।

शेख रूकनुद्दीन अबुल फतह को सुल्तान अलाउद्दीन खलजी से लेकर सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक तक के सभी सुल्तानों का विश्वास प्राप्त था वे राजदरबार (देहली) भी जाया करते थे। आपका कहना था कि दर्वेशों के लिए तीन बातें बड़ी आवश्यक है–

(1) धन : ताकि आवश्यकता पड़ने पर वह उसे व्यय कर सके।

(2) इल्म (ज्ञान) की आवश्यकता इसलिए है कि वह आलिमों से सफलतापूर्वक वाद–विवाद कर सकें।

(3) ढाल (आध्यात्मिक कुशलता) ताकि वह दर्वेशो को प्रभावित कर सकें।

सय्यद जलालुद्दीन मकदूम ए जहानियां उच्च केन्द्र के अत्यधिक प्रभावशाली सूफियों में से एक थे। अपनी आध्यात्मिक उन्नति तथा धार्मिक सेवा के कारण इस संघ में वे अत्यधिक श्रेष्ठता अर्जन की थी एवं तुगलक सुल्तानों में दरबार में भी वे अधिक सम्मानित होते थे।

सम्मा कबीलों का सरदार जाम जब सुल्तान फिरोज शाह तुगलक से विश्वासघात कर मंगोलों को सिंध तथा मुल्तान पर आक्रमण के लिए आग्रह किया तो मखदूम ए जहानीयान सुल्तान कि ओर सें मध्यस्थता की एवं मुल्तान को मंगोल आक्रमण से बचाया।

गुजरात में भी सुहरावर्दि सूफियों ने राजदरबार में अपना संबंध घनिष्ठ बना लिया था। सुल्तानों से सहानुभूति प्राप्त कर लिया।

गुजरात में स्वतंत्र राज्य स्थापित 1396 ई. में होने के पश्चात ही सुहरावर्दि संघ यहाँ प्रभावशाली तथा प्रतिष्ठित हो गया। इसका कारण यह बताया जाता है कि जफर खान (जिसने 1404 मं मुजफ्फर शाह का नाम धारण किया। सय्यद जलानुद्दीन मखदूम ए जहानियान का मुरिद था और उसके मुर्शीद (पीर) अति प्रसन्न हो कर उसे गुजरात के शासक बनने का भविष्यवाणी की थी तथा उसके वंश को दीर्घ कालीन होने की प्रतिज्ञा भी कि थी।

जब सय्यद बुरहानुद्दीन कुत्ब–ए–आलम (मृत्यु 1453 ई.) गुजरात इल्म हासिल करने आए थे तो मुजफ्फर शाह उन्हें अत्यधिक सम्मान दिया।

सुल्तान अहमद अपनी नयी राजधानी अहमदाबाद में सय्यद बुरहानुद्दीन कुत्ब–ए–आलम को स्वागत किया एवं शेख के लिए एक खानकाह का निर्माण कराया।

सय्यद शाह शेखजुई का संबंध सुल्तान बहादुर शाह (जो शाह मुजफ्फर द्वितीय का पुत्र

सुहरावर्दी सूफी तथा उनके समाज कल्याण :

सुहरावर्दि सूफियों का मूल उद्देश्य सर्वदा समाज कल्याण तथा जनसाधारण के आर्थिक की उन्नति की ओर केन्द्रीत रहा। मुख्यत: मुल्तान खानकाह, शेख बहाउद्दीन जकरिया से लेकर उनके उत्तराधिकारियों तक सभी वर्गो के लिए आश्रय का केन्द्र बना रहा। शेख सर्वसाधारण के अभिभावक के रूप में सर्वदा कार्य करते रहे।

नासिरूद्दीन कबाचा के विरूद्ध शेख बहाउद्दीन जकरिया सुल्तान शमसुद्दीन इल्तुतमिश को पत्र देकर आमन्त्रित कर यह सिद्ध कर दिया कि वे जनहित के लिए किस हद तक साहस एवं निर्भयता से कार्य कर सकते है।

जब मुल्तान को मंगोलों ने चारों ओर से घेर लिया तो शेख बहाउद्दीन जकरिया मुल्तान गर्वनर की ओर से मध्यस्थता की एवं मंगोल सरदार सलिग्नुइन को 10,000 दिनार देकर वापस किया। इस तरह मंगोलों के विचारहीन हत्याऐं, अत्याचार, अतिशजनी से मुल्तान वासियों को बनाया।

शेख रूकनुद्दीन अबुल फतह का सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी से लेकर सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक तक के सभी सुल्तानों से विश्वास प्राप्त थे। वे देहली बराबर आया–जाया करते और अपना प्रभाव मुख्यत: सर्वसाधारण के हित की सिद्धी के लिए करते, कहा जाता है कि आप जब देहली दरबार की ओर जाते तो डोले में दरिद्र तथा असहाय व्यक्ति के प्रार्थना पत्र भरे रहते थे जिन्हें आप सुल्तान तक पहुँचाकर सिफारिश करते और लोगों के काम बनाते।

एकबार सय्यद जलालुद्दीन मखदूम ए जहानियान देहली के राजदरबार में हाजरी देने जा रहे थे। उनसे प्रश्न करने पर उन्होंने कहा, "मेरा उद्देश्य राज दरबार में हाजरी देकर कोई सांसारिक सहायता सुल्तान से प्राप्त करने की इच्छा नहीं है। मेरे एक शिक्षक का स्वर्गवास हो गया है और उनके साथ अविवाहीत कन्याऐं है। मेरा उद्देश्य देहली आने का यही है कि सुल्तान से उनके लिए कुछ अनुदान प्राप्त करू।"

### 15.7.2 सुहरावर्दी सूफियों का संबंध आलिमों से

सुहरावर्दी सूफियों का संबंध आलिमों से अच्छा नहीं था। इतिहासकार शेख मिन्हाज उस सिराज जुजजानी अपने प्रसिद्ध पुस्तक तबकाते नासिरी में लिखता है कि काजी हमिदुद्दीन नागौरी समा (सूफी कीर्तन) के अत्यधिक रसिया थे– आलिमों ने "समा" को इस्लाम धर्म के विरूद्ध बताया और काजी जी के खिलाफ सुल्तान शमसुद्दीन इल्तुतमिश का कान भर दिया। परन्तु सुल्तान का निष्ठा काजी जी के प्रति अधिक होने के कारण आलिमों को कोई सफलता नहीं मिली।

इसी प्रकार से सुहरावर्दी सूफी बाहय आडम्बर पर विश्वास नहीं रखते थे। बदायू मे निवास काल के समय एकबार शेख जलालुद्दीन तबरेजी वहां के काजी कमालुद्दीन जाफरी के घर भेंट करने पहुंचे। सेवक ने बताया काजी साहब नमाज पढ़ रहे है, इस पर शेख ने कहा, "क्या काजी नमाज पढ़ना जानता है?" काजी जी को जब यह बात मालूम हुई वह बहुत नाराज हुए एवं शेख के पास पहुंचे। शेख ने उत्तर दिया, "आलिमों और फकीरों की नमाज में अन्तर है। आलिम काबे की ओर मुख करके नमाज पढ़ता है किन्तु फकीर जब तक अल्लाह का सिंहासन नहीं देखता नमाज नहीं पढ़ता।" रात्रि में काजी ने स्वप्न में देखा की शेख अल्लाह के सिंहासन पर नमाज पढ़ रहा है। तदुपरान्त काजी ने शेख से क्षमा याचना की।

इसी तरह शेख बहाउद्दीन जकरिया के शिष्य शेख हसन अफगान ने इमाम को उसकी नमाज पर कटु आलोचना की "आप कैसी नमाज पढ़ते हैं जिसमें आपका शरीर मस्जिद में रहता है परन्तु हृदय कहीं ओर।"

## 15.8 सारांश

सूफी शब्द हजरत मुहम्मद के मृत्यु के प्राय : 200 वर्ष पश्चात इस्लामिक इतिहास में प्रचलित हुआ था 12वीं सदी ई. में इसका पूर्ण विकास हो गया। कूफा, बसरा तथा बगदाद इसका केन्द्र बन गया था। विभिन्न सूफी संघ इन्हीं केन्द्रों से दुनिया के हर कोने में अपना–अपना केन्द्र स्थापित करने लगे। सूफियों ने धार्मिक तथा आध्यात्मिक नीति पर केन्द्रीभूत न रहकर राजनैतिक तथा सामाजिक स्तर पर विशेष बल दिया।

12वीं सदी ई. के उत्तरार्ध की और भारत में सुहरावर्दि संघ प्रवेश किया तथा क्रमश: भारत के विभिन्न प्रान्तों में जैसे– मुल्तान, कच्छ, देहली, बंगाल, गुजरात में अपना केन्द्र स्थापित कर लिया।

सुहरावर्दि संघ शुभारम्भ से ही प्रभावशीलता तथा लोकप्रियता प्राप्त कर ली, इसका मुख्य कारण उस समय भारत में तुर्क योद्धा, आक्रमणकारी तथा उच्च–अधिकारी अपनी–अपनी

सत्ता जमाने के लिए संघर्ष कर रहे थे। सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक के मृत्यु 1290 ई. में अचानक हो जाने पर शमसुद्दीन इल्तुतमिश तथा नासिरूद्दीन इल्तुतमिश को समर्थन, देकर इस संघ को न ही केवल राजदरबार में प्रमुखता दिलाई परन्तु इस संघ के सूफी देहली राजसिंहासन में अपने वाले सभी सुल्तानों के लिए संरक्षक सिद्ध हुए

सुहरावर्दि सूफियों ने चिश्ती सूफियों के राजनीतिक क्रिया से अलगाव की पद्धति को नहीं अपनाई, परन्तु वे राजदरबार में हाजरी देते, जागीर ग्रहण करते, सुल्तान अमीरों तथा उच्च–पदाधिकारियों के संबंध घनिष्ट बनाते उन्हें नैतिक तथा आध्यात्मिक समर्थन देते, शेख–उल–इस्लाम जैसा महत्वपूर्ण पद स्वीकार करते, धन–सम्पत्ति से मोह रखना एवं खानकाह के खाद्य भंडार में खाद्य सामग्री संचय करना तथा सामाजिक, आर्थिक सहायता सर्वसाधारण को देते।

कुछ विशिष्ट सुहरावर्दि सूफियों को छोड़कर सभी ने हिन्दुओं तथा अन्य धर्म के लोगों से पक्षपातहीन एवं उदार नीति अपनाई थी। इन सूफियों के खानकाह में धार्मिक भेद–भाव नहीं था।

इतिहास इस बात का साक्षी है, हिन्दुओं के मन में मुस्लमानों (खासकर प्रारम्भिक मुस्लिम लुटेरे तथा आक्रमणकारियों) के प्रति जो भेद–भाव, घृणा जाग रही थी उसे इन सूफियों के उदार–विचार, आत्म–समर्पण, त्याग व बलिदान ने हिन्दु–मुस्लिम एकता एवं सहिष्णुता में बदल दिया आज भी हिन्दु–मुस्लिम सूफियों के मजारों पर जाते है और मन्नत मानते है।

## 15.9 शब्दावलि

| | | |
|---|---|---|
| आबिद | : | तपस्वी |
| औलियां | : | वलि का बहू वचन, वलि का मतलब दोस्त है। औलियां अल्लाह–जो अल्लाह से दोस्ती रखता हो। |
| इल्म | : | विद्या–ज्ञान |
| इमाम | : | वह व्यक्ति जो नमाज पढ़ाता है। |
| करामात | : | चमत्कार |
| खलिफा | : | उत्तराधिकारी |
| खानकाह | : | मठ, जहां शेख या पीर अपने मुरिदों के साथ रहते, सामूहिक |
| | : | तपस्या, साधना करते। |
| खिलाफ़तनामा | : | उत्तराधिकारी पत्र, जब पीर अपने मुरिद से सन्तुष्ट होता था तो उसे लिखित प्रमाण–पत्र देता था। |
| खिरकाह | : | चीवर, चोगा (हजरत निजामुद्दीन औलिया के अनुसार हजरत मुहम्मद को मेराज की रात्री को खिर्का (चीवर) अल्लाह की ओर से प्राप्त हुआ। वह फकीरों का खिर्का था। अपने हजरत अली को वह खिर्का दे दिया जब वे हजरत मुहम्मद के प्रश्न का उत्तर उसी तरह दिया जो अल्लाह ने बताया था। |
| खौफ | : | भर, डर, कुरान में बार–बार यह शब्द अल्लाह से खौफ रखने के अर्थ में इस्तमाल हुआ है। |

| | | |
|---|---|---|
| चिल्ला | : | परी के आदेश के अनुसार मुरिद 40 दिन के उपवास तथा कड़ी तपस्या में लीन रहता है। |
| जमात–खाना | : | एक बड़ा कमरा जिसमें सभी मुरिदों के लिए ठहरने तथा साधना का सामूहिक प्रबन्ध रहता था। |
| जाहिद | : | संयमी |
| जिक्र | : | अल्लाह का नाम–स्मरण |
| तरीकत | : | साधना मार्ग |
| तोहिद | : | एकत्व या एकेश्वरवाद |
| पीर | : | सूफी गुरू, जिन्हें मुर्शीद, शेख के नाम से भी पुकारते हैं। |
| फक्र | : | सांसारिक धन–सम्पत्ति से खाली अर्थात सूफी के यहां "फ" से "फाका" उपवास, "काफ" सें कन्नत यानी संतोष एवं "र" का मतलब रिया यानी संतुष्ट। |
| फुतुह | : | भिक्षा, दान–नजराना। |
| बैत या बएत | : | दीक्षा–जब मुरिद अपना हाथ पीर के हाथ में दे देता है और अपनी पिछली पाप से तोबा (पश्चाताप) करता है। |
| मकाम | : | सूफी यात्रा की मंजिले। |
| मारिफत | : | आध्यात्मिक ज्ञान । |
| मुरिद | : | शिष्य |
| रूह | : | आत्मा |
| लंगर | : | जहां नि:शुल्क भोजन मिलता है। |
| शरियत | : | इस्लामी धर्म विधान |
| शेख उल इस्लाम | : | धर्म गुरू |
| सहाबी | : | साथी |
| सभा | : | सूफी कीर्तन |
| सिलसिला | : | संघ |

## 15.10 संदर्भ ग्रन्थ

**अरबी**


| | | |
|---|---|---|
| अबु नजीब अबुल काहीर सुहरावर्दी | : | आदाब उल मुरिदिन<br>इंगलिश अनुवाद मेनाहेम मिलशव, |
| अबुल कासिम कुशैरी | : | रिसाला अल कुशैरिया, मिस्र, 1991–2, किताब ए रेहला रम.अनु.ए. मेहदीं हुसैन, बरोदा, 19 |
| इमाम गजाली | : | इहया अल उलूम अल दीन मिस्र, 1937–8<br>रम.अनु.मौ. फजलुल करम, देहली, 1982 |
| शेख शहबुद्दीन सुहरावर्दी | : | अवारिफ उल मआरिफ<br>इग.अनु. लफटीनान्ट कर्नल, एच बिलवर्स फोर्स |

क्लर्क, देहली 19984

उद् अनु. हाफिज सय्यद राशीद अहमद, अरशद लाहौर, 1982

**फारसी–**

अब्दुल हक मुहददीश देहलवी : अखबार उल अख्यार देहली 1914

: उद् अनु.मौ. सुब्हान महमूद एवं मौ. मुहम्मद फाजील, देवबन्द

अमीर खुर्द अथवा सय्यद : सियार उल औलिया देहली 1885

मु. बी. मुबारक आलवी : उद् अनु. गुलाम अहमद देहली, 1320 ई.

अमीर हसन सिज्जी : फवाएद उल फुवाद, लखनऊ 1312, ई.

मुहम्मद कासिम हिन्दुशाही : तारिख ए फरिशता– ग्र. 2

**फरिश्ता**

मुहम्मद गौरी शत्तारी : गुलजार ए अबरार, रोटोग्राफ, अलिगढ़, वि.वि. उद् अनु. मौ. फजल अहमद, आगरा।

मौलाना हमीद कलन्दर : खैर उल मजलिस, अलिगढ, 1959

निजामुद्दीन अहमद : तबकात–ए–अकबरी, ग्रन्थ–3, कलकत्ता–1913

नुरुद्दीन अब्दुर्रहमान जामी : नफहात उल उनस् तेहरान, 1337

शमस् ए शिराज अफिफ : तारीख ए फिरोज शाही, कलकत्ता 1891

हमीद बिन फजलुल्लाह : सियासल आरेफिन

दरवेश जमाली : रोटोग्राफ, अलिगढ़ मु. वि.वि.

जियाउद्दीन बरनी : तारिख ए फिरोज शाही
कलकत्ता- 1862

# इकाई – 16

# सुहरावर्दी खानकाहें और उनका राजनैतिक सम्बन्ध

**इकाई की रूपरेखा**

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 खानकाह का अर्थ

16.3 खानकाह का उद्देश्य

16.4 सुहरावर्दी खानकाह का लक्ष्य

16.5 खानकाह में प्रतिबंध क्या और क्यों?

16.6 सुहरावर्दी सिलसिले के राज्य और समाज के बारे में विचार

16.7 सुहरावर्दी सिलसिले के राजनैतिक और आर्थिक संबंध

16.8 सारांश

16.9 शब्दार्थ

16.10 संदर्भ ग्रंथ

## 16.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य सुहरावर्दी खानकाहों के बारे में जानकारी देना है। इस इकाई का अध्ययन कर लेने से आप को निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो जाएगा –

- खानकाह क्या है?
- सूफी खानकाह में क्यों रहने लगे?
- सुहरावर्दी सूफियों के खानकाह के नियम क्या थे?
- सुहरावर्दी खानकाह सूफी के शिक्षा के केन्द्र थे।
- सुहरावर्दी सूफियों के राजदरबार से राजनैतिक संबंध कैसे थे?

## 16.1 प्रस्तावना

सुहरावर्दी खानकाह के संबंध में कुछ कहने से पूर्व खानकाह के बारे में कुछ जानकारी देना आवश्यक है।

- खानकाह का अर्थ
- खानकाह में प्रतिबंध क्या थे?
- सुहरावर्दी सिलसिले के राज्य के बारे में विचार और उसमें उनकी रुचि
- शासक वर्ग से सुहरावर्दी सम्प्रदाय के संबंध कैसे थे?
- उपरोक्त बातों पर विस्तार से बहस की गई है ।
- खानकाह का केन्द्र शेख की जात थी। खानकाह में मुरिदेन (शिष्य) शेख की सेवा करते थे और उनसे उपदेश लेते थे दूसरे वे सामुहिक जमाअत खाने का प्रबन्ध करते थे। खानकाह के इस जीवन पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला गया है।

– एक विशेष बात कि चिश्तिया और सुहरावर्दी सम्प्रदाय में खानकाह के जीवन में क्या मतभेद थे, इस पर भी विस्तार से बहस की गई है।

## 16.2 खानकाह का अर्थ

खानकाह का अर्थ है– दरवेशों का इबादत खाना (पूजा या नमाज का स्थान) जिसमें वे दुनिया को छोड़कर अलग–अलग रहकर इबादत करते हैं। ईश्वर के जिक्र में लीन रहते है। इन्साईकिलोपीडिया आफ इस्लाम के अनुसार यह दरवेशों या सूफी के मिलने की जगह का फारसी जुबान का नाम है। अरबी भाषा में इसका अर्थ अरबी भाषा के शब्द जबियाह है जिसका अर्थ है कोना। दरवेश या शेख अलग कोने में बैठकर इबादत में लीन रहते है, जिस स्थान को खानकाह कहा जाता है। हम जानते है कि सूफीवाद के साथ–साथ खान काहों की भी स्थापना आरम्भ हुई। इससे पूर्व खानकाह नामक कोई स्थान या संस्था इस्लाम में नहीं थी।

मौलाना जामी के अनुसार सर्व प्रथम खानकाह का निर्माण एक ईसाई हाकिम ने रमला (सिरिया) में अबु हाशिम सूफी के लिए करवाया था।

11वीं और 12वीं शताब्दी में खानकाहों का पूर्ण विकास हुआ। शेख अबूसईद अबिल खैर ने खानकाह वालों के लिए दस नियमों का पालन करना आवश्यक समझा जिसे का सूफियों ने भी पालन किया।

## 16.3 खानकाह का उद्देश्य

खानकाह में प्रचलित प्रथाओं के नियम है। खानकाह में दो प्रकार के लोग हुआ करते हैं

1. राहगीर : वह लोग जो बाहर से आकर खानकाह में शेख से लाभ उठाने के लिए आते थे और वहां ठहरते थे।
2. स्थायी : शेख के परिवार के लोग और शिष्य खानकाह के उद्देश्यों में है।

**खानकाह की देखभाल**

– शेख का शिष्यों को अध्यात्मिक शिक्षा देना। मारिफत की राह बतलाना और साथ–साथ इबादत करना, चिल्ले. खेंचना।
– बैएत करके शिष्यों का दीक्षा पाना।
– खिर्का (robes) पहनना और मुरीद का शेख का खलिफा उत्तराधिकारी बनना समा (सूफी कीर्तन) और प्रार्थनाओं में शेख के साथ दुआ करना।

खानकाह सूफियों में सामूहिक जीवन तथा खानकाह उनकी साधना धर्म का केन्द्र बन गया।

हिन्दु–मुस्लिम हर धर्म पर विश्वास रखने वालों दीन–दरिद्रों, फकीर, योगी कलन्दर, राहगीर, सर्वसाधारण सभी व्यक्तियों के लिए खानकाह आश्रय का स्थान बन गया। खानकाह में लंगर की प्रथा जारी हुई। नि:शुल्क भोजन भी खानकाह में दिया जाने लगा।

सूफीवाद की लोकप्रियता राज दरबार में सम्मान और आदर को देखते हुये प्रश्न उठते है–

(1) क्या सूफीवाद इस्लामिक है?

(2) सूफीवाद की इस्लाम में आवश्यकता है।

## 16.4 सूहरावर्दी खानकाह का लक्ष्य

सुहरावर्दी खानकाहें चिश्ती सम्प्रदाय की खानकाहों से भिन्न थी। शेख बहा उद्दीन जकरिया ने मुल्तान में खानकाह स्थापित की जिसके संगठन में जमाअत खाना का प्रचार नहीं था। लंगर खाना था निसन्देह भोजन की व्यवस्था थी। लेकिन दरवेश, फकीर कलन्दर तथा योगियों का प्रवेश उसमें निषेध था। मुल्तान की खानकाह विशाल थी। अतिथियों के लिए कमरे बने हुये थे जिनमें केवल उच्च–पदाधिकारी अमीर वर्ग ही खानकाह में अतिथि या मेहमान बनते थे। शेख उनको लजीज और स्वादिष्ट भोजन पेश करते थे। स्वयं भी स्वादिष्ट भोजन खाते थे। खानकाह के लिए सुहरावर्दी शेख जागीर ग्रहण करते थे और इस आय से खानकाह का बोझ सुहरावर्दी उठाते थे।

यह ठीक है कि खानकाह का उद्देश्य शेख का अपने मुरिदों को रूहानी और मारिफत की शिक्षा देना था। लेकिन वे जरूरत मन्दों अपने मुरिदों को इच्छाओं से मुक्त करने ईश्वर में लीन होने के लिए धन जमा करते थे। अनाज और खाने–पीने की साम्रग्री के अतिरिक्त खानकाह में खजाना रहता था। बड़े–बड़े बक्स सोने की मुहरों और चॉदी के सिक्कों से भरे रहते थे। एक मर्तबा शेख बहाउद्दीन सुहरावर्दी की खानकाह से सोने की मुहरों से भरा सन्दूक चोरी हो गया। शेख ने इस का कोई रन्ज नहीं किया। शेख का लक्ष्य खानकाह में दुनियादारी में लीन होना नहीं था। वे तो अपने लक्ष्य रूहानी मारिफत के ज्ञान को प्राथमिकता देते थे।

खानकाह से कभी अमीरों और शासकों को कर्जे भी दिये जाते थे। खानकाह से राज्य और समाज दोनों को धन की सहायता मिलती थी। खानकाह के समय नियमित थे। समय पर खानकाह खुलती और बन्द हो जाती थी। यह सुहरावर्दी का नियम था जब कि चिश्तियो के यहां खानकाह में समय की कोई पाबन्दी नहीं थी। खानकाहों में कभी भी जाया जा सकता था। परन्तु सुहरावर्दी खानकाह में शेख से समय पर ही मिल सकते थे।

खानकाह में शेख अपने मुरिदों और शिष्यों को मारिफत का ज्ञान कराते थे। खानकाहें शेख और सुहरावर्दी सिलसिले की गतिविधि के केन्द्र थी जहां से शरीयत की तबलीग (धर्म प्रचार) होता था।

खानकाह में शिष्यों में काम विभाजित था कोई जमाअत खाने का काम करता था, कोई लंगर का काम करता था, कोई पानी लाता था। लंगर को हम किचन बावर्ची खाना कह सकते है। भोजन बनकर लंगर खाने से बाँटा जाता था। खानकाह में भोजन बाँटा जाना आवश्यक हो गया। इस बारे में पैगम्बर की हदिस (कथन) है कि कोई अगर किसी के पास जाये और उसे खाने को कुछ न मिले तो यह ऐसा है जैसे वह किसी मुर्दे (मरे हुए) के पास गया हो।

## 16.5 खानकाह मे प्रतिबन्ध क्या और क्यों?

सुहरावर्दी खानकाह में गुरू शेख के आदेशानुसार मारिफत के विभिन्न मार्ग; तपस्या, साधना तथा चिल्ले करते थे। वह जिक्र, फिक्र, वजदान, तोहिद (इकेश्वरवाद) और दिल की सफाई से निस्वार्थ अल्लाह से प्रेम रखकर उसकी भक्ति में लीन रहते थे। सुहरावर्दी सिलसिले के सन्त शरियत के पाबन्द थे। चिश्तियों के यहां कई रस्में हिन्दू समाज से प्रभावित थी। जैसे

पानी पिलाना, जंजबील पहनना शेख को झुक कर ताज़ीम देना या चिल्ला माकूस यानी उल्टा कुएं में लटककर इबादत करना।परन्तु सुहरावर्दी इसके विपरीत किसी गैर इस्लामी शरियत के विरुद्ध काम नहीं करते थे। इसके लिए वातावरण शान्त अवश्य था। हर समय खानकाह में आया जाया जा सकता था।

खानकाह संगठन में सर्वसाधारण दरवेश, फकीर, कलन्दर तथा योगियों का प्रवेश निषेध था। क्योंकि कलन्दर इत्यादि खानकाह के नियम या पाबन्दी को नहीं मानते थे।

कलन्दर अपने सर मुड़ाते थे। दाड़ी, मूँछ कटाते थे। खिरकाह नहीं पहनने थे। बल्कि अपने शरीर को कम्बल से ढकते थे। कभी कमर पर सूती कपड़ा लपेटते थे। शरियत की कोई पाबन्दी नहीं करते थे। इसलिए उनकों खानकाह या जामाअत खाने में प्रवेश नहीं करने दिया जाता था। डा. निजामी 'फवाइदुल फवाऐद का हवाला देकर एक घटना का वर्णन किया है जिससे उन पर खानकाह में पाबन्दी पर प्रकाश पढ़ता है। एक मर्तबा शेख बहाउद्दीन ज़कारिया ने कलन्दरों की मांग को पूरा नहीं किया वे उन की खानकाह के चारों ओर जमा हो गये उस पर पथराव शुरू कर दिया। शेख ने खानकाह के दरवाजे बंद कर दिये, परन्तु उसी समय उनहोंने यह महसूस किया कि इससे वे और निडर और उत्तेजित होंगे। उन्होंने दरवाजे खुलवा दिये और कहा मुझे शेख शिहाबुद्दीन ने खानकाह स्थापित करने के आदेश दिये हैं। मैंने अपनी इच्छा से इसे स्थापित नहीं किया है । यहां मै उनके द्वारा नियुक्त हूं। कलन्दर इससे प्रभावित हुआ और क्षमायाचना करके वहां से चले गये। इसलिए शेख बहाउद्दीन और जवालिक को खानकाहों में आने की इजाजत नहीं थी। जवालिक वह कलन्दर होते है जो अपने चारों और शरीर के कपड़ा लपेटते है। यहाँ कलन्दर पर बहस करना उचित होगा। शब्दकोष के अनुसार कलन्दर का अर्थ उस व्यक्ति से है जो इस दुनिया और दूसरी दुनिया की सोच से आजाद होता है। इससे रहस्यवाद में एक वर्ग था धार्मिक सिलसिला या सम्प्रदाय पैदा होता जो आजाद होते है। इस सम्प्रदाय का बानी (founder) मिश्र का स्पेन का अरब वाशिन्दा था जिस का नाम युसूफ था या फिर मुफ्ती शेख जमालुद्दीन था जो सावा का फारस ईरान का रहने वाला था। जो इब्नबतूता के अनुसार दमिता नामक स्थान में बस गया और वहां ही मर गया।

पहला कलन्दर सन्त जो भारत में आया था वे शाह खिजर था जो शेख कुतुबुद्दीन बखतियार काकी का समकालीन था। वह सिलसिला कहां से आरम्भ हुआ इसके बारे में अलग–अलग विचार है। फिरान्ज बाबजिर के अनुसार यह सेंट्रल एशिया से आये थे और उन पर भारत के विचारों और दर्शन का प्रभाव पड़ा। मकरिजी की राय है कि पहले कलन्दर दमिशक में 610 हिजरी, 1213 ई. में हुआ। यह आरिफों के विपरित समाज के रिवाज को नहीं मानते बल्कि हंगामों, तोड़फोड़ को पसन्द करते थे । यह ही कारण था कि शेख बहाउद्दीन जकारिया सुहरावर्दी ने इन पर इनकी गुस्ताखी और गलत व्यवहार के कारण पाबन्दी लगादी कि वे खानकाह में प्रवेश न करें। खानकाह में योगी को भी आना मना था। क्यों कि हम जानते है कि सुहरावर्दी सिलसिला के शेख शरियत के पाबन्द थे इसलिए वे उससे किसी बहस या बाद–विवाद में पढ़ना नहीं चाहते थे। कलन्दर के बारे में सुहरावर्दी सिलसिले के विचार स्पष्ट है, परन्तु फिर भी शेख बहाउद्दीन जकारिया के एक मुरीद शहबाज कलन्दर बहुत प्रसिद्ध थे जो आज भी मशहूर है।

खानकाह में पूँजी जमा रहती थी। फतूह वह दौलत जो बिना माँगे खानकाह में आती थी जैसा सियार–उल–आरिफीन पन्ना 106 पर लिखा है। वे चिश्तियों की भांती उसी समय खर्च नहीं कर दी जाती थी। वे जामाली के कथन के अनुसार जैसा 'सियार–उल–आरिफीन' ने पन्ना 129 पर वर्णन किया है शेख बहाउद्दीन जकरिया धीरे–धीरे खर्च करते थे।

फवाइद–उल–फवाऐद पना 223 और सियार–उल–आरिफिन पना 114 के अनुसार मुल्तान प्रशासन आवश्यकता पड़ने पर उससे सहायता लेते थे। ख़ानक़ाह की दौलत इस कदर थी कि लुटेरे भी धन लूटते रहते थे। मीर खुर्द के अनुसार कि एक मर्तबा शेख बहाउद्दीन सुहरावर्दी के एक पुत्र को लुटेरा उठाकर ले गया और वे शेख बहाउद्दीन द्वारा भारी रकम देने पर छोड़ा गया। खानकाह में दो प्रकार के लोग जाते थे। एक साधारण दूसरे खास। इन खास लोगों की सेवा करना सुहरावर्दीयों का लक्ष्य था। ये लोग ही उनका आर्शीवाद और फायदा पाते थे। आम साधारण दरवेश के प्रवेश पर पाबन्दी थी।

## 16.6 सुहरावर्दी सिलसिले के राज्य और समाज के बारे में विचार

सुहरावर्दी सिलसिले के लोग सन्त राजा और राजनीति से चिश्तियों की तरह अलग नहीं रहते थे। शेख बहाउद्दीन जकरिया सुल्तान से मिलते थे। वे अमीरों और हाकिमों और शासकों से मिलते जुलते थे। उनसे जागीर ग्रहण करते थे और उन से धन दौलत लेते थे। उनके इस नजरियों पर आलोचना भी की जाती थी। हालाँकि शेख बहाउद्दीन के मारिफत के दर्जे को सबने माना लेकिन समकालीन रहस्यवाद के आलोचक उनके इस विचार से सहमत नहीं थे कि धन (पूँजी) भी जमा किया जाये और मारिफत और रूहा नियत और ईश्वर ज्ञान और भक्ति भी प्राप्त की जाए उन पर उनके समकालीन के ऐतराजात (आलोचना) जारी रहे। शेख जलाल उद्दीन तबरिजी और शेख हमीद–उद्दीन सुवाली के बीच इस विषय पर पत्र व्यवहार भी था। उनका जबाब मुनासिब नहीं होता था उचित अन्तर के बजाये वे शब्दाडम्बर (Rhetaries) से भरा होता था जो केवल अलंकारिक भाषा के आधार पर सुन्दर होता था। उसमें तर्क नहीं होता था। एक मर्तबा एक महजर (Legal) जो इल्तुतमिश ने बुलाई और जिसमें शेख बहाउद्दीन सुहरावर्दी भी थे शेख हमीद उद्दीन ने उन से धन जमा करने पर कई प्रश्न कर डाले। एक और अवसर पर खानकाह में धन जमा करने के बारे में पूछे जाने पर शेख ने कहा "धन नि:संदेह एक जहरीला सर्प है लेकिन यह उस को नुकसान नहीं करता जो उसका तोड़ (Anti–dote) जानता है। आलोचक ने कहा लेकिन गन्दे जहरीले सर्प को रखने की आवश्यकता कहाँ है कि उस से बचने के लिए दवा (Anti–dote) की आवश्यकता हो।" उनके राज्य से जुड़े होने पर और धन और जागीर ग्रहण करने और दुनिया में मुलब्बिस (लीन) होने पर यह कटु आलोचना होती थी। शेख कहते थे कि यह सुन्दर चेहरे पर काले तिल की भाँति है। फिर भी राज्य से उनकें जुड़े होने के बारे में उत्तर रहस्यवाद के सूफी आलोचक (Mystiecritics) के संतोषजनक नहीं थे। उनका अरबी में कहना था उददानला (यजतमआन) दो विपरीत एक जगह नहीं मिलते है।

## 16.7 सुहरावर्दी सिलसिले के राजनैतिक और आर्थिक सम्बन्ध

यहाँ हम सुहरावर्दी सूफियों के राजनैतिक और आर्थिक सम्बन्धों के बारें में विचार से जानकारी देंगे। सुहरावर्दी सूफी सुल्तान अमीरों तथा उच्चपदाधिकारियो से घनिष्ठ संबंध रखते थे।

इसके बगदाद में जन्मदाता जिनके शिष्य शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी थे वे शेख जियाउद्दीन अबू नजीब अबुल काहीर सुहरावर्दी थे जो राजनैतिक सिद्धान्त के लिए दृढ़तापूर्वक कुरान की आयत पर विश्वास करते थे (कु:4:59)

शेख का सम्बन्ध बगदाद के खलिफा से थे और उन्होंने बगदाद के खलिफा को खारिजम के शाह पर आक्रमण से मना किया था। इस सिलसिले के सूफियों में भारत में राजनैतिक परिस्थितियों में अपने पीरों की पद्धति का अनुसरण किया।

(1) सुल्तान तथा पदाधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करके विचार व्यक्त किया करते थे और मुरिदों को हिदायत दिया करते थे कि सुल्तानों और अमीरों से संबंध बढ़ाकर उन्हें अन्याय एवं अत्याचार से रोकना चाहिए।

(2) भार में इस्लाम धर्म के विस्तार के लिए सुल्तानों को नैतिक सहायता दी जाये।

(3) शेख–उल–इस्लाम पद ग्रहणकर शासकों को अधर्म से रोका जाये एवं भ्रष्टाचार से बचाया जाय।

(4) गरीबों दीन–दरिद्रों, फकीरों, योगियों को आर्थिक सहायता दी जाये और नि:शुल्क भोजन कराया जाय।

(5) राजदरबार में उपस्थिति में कोई हर्ज नहीं बल्कि इस सम्प्रदाय में आवश्यक था। राजदरबार पर प्रभाव से जन साधारण की सहायता उनका लक्ष्य था। यह जब ही सम्भव था जब राजनैतिक संबंध हो।

अब हम देश की राजनैतिक गतिविधि में उनके सक्रिय होने के कारण प्रस्तुत करते हैं। भारत में इस सम्प्रदाय के बानी ने सुहरावर्दी का केन्द्र मुल्तान को बनाया। मुल्तान का शासक कुबेचा था और मुल्तान उसकी राजधानी थी। कुबेचा सुल्तान इल्तुतमिश का शत्रु था। वे जनता पर अत्याचार करता था। शेख बहाउद्दीन जकारिया ने सुल्तान इल्तुतमिश को पत्र लिखा था कि वे कुबेचा के विरूद्ध कार्यवाही करे। इससे ज्ञात हुआ कि उन्होंने देश की राजनीति में सक्रिय हिस्सा लिया। यह पत्र पकड़ा गया लेकिन शेख ने निडर अपने विचार रखे। कुबेचा बहुत घबराया और उस ने शेख से माफी माँगी और शेख का आदर किया क्योंकि वे शेख के असर को जानता था। इससे शेख बहउद्दीन सुहरावर्दी के मुल्तान में राजनैतिक प्रभाव का पता चलता है और यह कि सुल्तान इल्तुतमिश के शेख के घनिष्ट राजनैतिक संबंध थे। शेख की निडर हिमायत का सुल्तान इल्तुतमिश पर हमेशा प्रभाव रहा। सुल्तान इल्तुतमिश सुहरावर्दी सूफियों पर विश्वास करता था। देहली के तख्त पर बैठने पर उसने सय्यद नूरूद्दीन मुबारक गजनवी को देहली का शेख–उल–इस्लाम तथा मौलाना मजदुद्दीन को एदर–ए–विलायत के पद पर नियुक्त किया।

उनके राजनैतिक प्रभाव का एक उदाहरण यह भी है कि जब मंगौल सरदार ने मुल्तान पर चढ़ाई की तो शेख बहाउद्दीन जकरिया ने मुल्तान के शासक की ओर से मध्यस्थता की एवं 10,000 दीनार देकर मंगौल को लौटा दिया और इस प्रकार मुल्तान पर से संकट दूर हो गया।

इस घटना ने सुल्तान इल्तुतमिश का मन मोह लिया और प्रसन्नता से उसने शेख को शेख–उल–इस्लाम के पद से आभूषित किया।

सुहरावर्दी सूफियों का राजनैतिक प्रभाव इतना था कि सुल्तान देहली प्रशासन में उनके हस्तक्षेप को मानते थे। सय्यद जलाल–उद्दीन मखदूम जहानियान मरने वाले थे। नवाहोन का दारोगा आया और उसने तबीयत पूछी और कहा कि जैसे मोहम्मद सा. पैगम्बर थे आप सन्त सूफियों में आखिरी सूफी है। जहानियान ने कहा कि तू मुसलमान हो गया। उसने कहा कि मैंने यह नहीं कहा। जहानियान तो मर गये पर उनका शिष्य राजू कत्ताल फिरोज शाह तुगलक के पास गया कि दारोगा इस्लाम से फिर गया क्यों कि मोहम्मद सा. को आखरी पैगम्बर मानने से मुसलमान हो गया है और मुसलमान होने से इन्कार पर कुफ्र की बुनियाद पर दारोगा कत्ल किया गया।

शेख रूकनुद्दीन आरिफ सुहरावर्दी मुल्तान वासियों को चाहते थे और उनका उनमें विश्वास था। शलूखान ने जब मुल्तान में मुहम्मद बिन तुगलके के विरूद्ध विद्रोह किया तो शेख ने सुल्तान का पक्ष लिया। इसमें शेख के भाई इयादुद्दीन भी मारे गये। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक की जीत हुई। उसने विद्रोहियों यानि मुल्तान वासियों को कत्ल करना चाहा तो शेख ने सही समय पर हस्तक्षेप किया। मुल्तान वासियों को कत्ल से बचाया। शेख एक नुदद्दीन मुल्तानी शेख बहाउद्दीन जकरिया के पोते थे। उन्होंने राजनैतिक स्तर पर अपना प्रभाव जमा लिया। शेख बराबर देहली आया जाया करते थे। एक बार वे सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी के दरबार में हाजिर हुए सुल्तान और शेख निजामुद्दीन के बीच संबंध अच्छे नहीं थे। सुल्तान ने सोचा कि उनको निजामुद्दीन औलिया के विरूद्ध उकसाने का अच्छा अवसर है ताकि वह शेख निजामुद्दीन औलिया के प्रभाव को नष्ट कर देंगे। एक और कारण आसानी से इस्तेमाल करने का विचार सुल्तान को इसलिए भी आया क्योंकि सुहरावर्दी और चिश्ती सूफियों में अधिक मत–भेद रहता था। लेकिन शेख रूकनुद्दीन मुल्तानी सुल्तान की बिना अनुमिति के शेख निजामुद्दीन की खानकाह गये। मतभेद के बावजूद दोनों सम्प्रदायों के सूफियों के संबंध मधुर थे। एक बात यह भी स्पष्ट है कि नामुनासिब आदेशों की सूफीसंत सुहरावर्दी सुल्तान की परवाह नहीं करते थे। जबकि उनके उससे राजनैतिक संबंध थे।

सम्मा कबीले के सरदार ने सुल्तान फिरोज शाह तुगलक से विश्वासघात किया मुगलों को सिंध तथा मुल्तान आक्रमण के लिए आग्रह किया तो मखदूम जहानीयान ने सुल्तान की ओर से मध्यस्था की और सुल्तान को मंगोलों के आक्रमण से बचा लिया।

गुजरात में भी सुहरावर्दी सूफियों ने राज्य में अपना प्रभाव बना लिया था। राजदरबार में वे जाया करते थे। और शासक वर्ग उनका आदर करता था। वे आत्मा के ऊँचे स्तर पर पहुंचे हुए थे और उन्होंने भविष्यवाणियां कीं कि जिस से शासक बनने पर मुजफ्फर शाह उनका मुरीद बन गया।

गुजरात ने स्वतन्त्र राज्य 1376 ई. में स्थापित किया इसका कारण यह बताया जाता है कि जफर खान सैयद जलालुउद्दीन मखदूम–ए–जहाँनियानका मुरीद था और पीर ने प्रसन्न होकर उसे गुजरात के शासक बनने की भविष्यवाणी की थी। वह गुजरात का सुल्तान बना और 1404 ई. में मुजफ्फर शाह का नाम उसने धारण किया।

सुल्तान अहमद ने अपनी नई राजधानी अहमदाबाद में स्थापित की। उसने सैयद बुरहानुद्दीन कुत्ब–ए–आलम का स्वागत किया और शेख के लिए एक खानकाह बनवाई। शेख रूकनुद्दीन अबुल फतह का सुल्तान अलाउद्दीन से लेकर सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक तक के सभी सुल्तानों से निकट संबंध थे और शासक उनमें विश्वास करते थे। वह देहली जाया करते थे। दरिद्र तथा असहाय व्यक्ति डोले में उनको अर्जी (प्रार्थना पत्र) देते थे आप सुल्तान से सिफारिश करके उस पर आदेश कर वा देते थे। एक बार सय्यद जलालुद्दीन देहली राजदरबार में हाजरी देने जा रहे थे। उनसे प्रश्न करने पर उन्होंने कहा "मेरा उद्देश्य राज दरबार में हाजरी देकर कोई सांसारिक सहायता सुल्तान से प्राप्त करने की इच्छा नही है। कहा कि मेरे एक शिक्षक का स्वर्गवास हो गया है और उनकी सात अविवाहित कन्याऐं है सुल्तान से उनके लिए कुछ अनुदान प्राप्त करने है"

इन समस्त बातों से यह स्पष्ट हो गया कि सुहरावर्दी सिलसिले के सूफी दरबार से संबंध रखते थे शेख–उल–इस्लाम की पदवी ग्रहण करते थे और कुछ शासन का एक अंग साबित हुए। मगर यहां एक बात याद रखने योग्य है कि सुदउद्दीन जब खलिफा बने और मुल्तान के जांनशीन हुए तो सात लाख टका जो पिता से प्राप्त किया उन्होंने दान में दे दिये। वे अपने पिता और सुहरावर्दी सिलसिला में एक मात्र पहले व्यक्ति थे जो धन प्राप्त नहीं करते थे।

## 16.8 सारांश

हमने विस्तार से बतलाया कि सुहरावर्दी सिलसिला में खानकाह का संगठन क्या था और उनमें क्या प्रतिबन्ध थे। खानकाह में सुहरावर्दी सन्त सूफी धन जमा करते थे वे लोगों की सहायता करते थे और शासकों को समय पर धन भी देते थे। सुहरावर्दी सूफियों का राजदरबार में चिश्तियों के विपरीत आना जाना था। वे पदवियाँ प्राप्त करते थे। फिर हमने उनके शासकों से राजनैतिक सम्बन्धों पर विचार कर चर्चा की जिससे इस सिलसिले के सूफियों के राज्य से निकट और घनिष्ठ संबंधों का पता चलता है।

## 16.9 शब्दार्थ

| | | |
|---|---|---|
| सूफी | : | सन्त |
| जानशीन | : | दरगाह का उत्तराधिकारी |
| मुरीद | : | शिष्य |
| खलिफा | : | खास मुरीद जिसे पीर मुरीद बनाने के योग्य समझा जाता था। |
| खानकाह | : | दरवेशों के रहने की जगह, जहाँ वे इबादत करते है। |
| डोला | : | पालकी |

## 16.10 संदर्भ ग्रन्थ


अबु नजीब अबुल क़ादिर सुहरावर्दी : आदाब उल मुरीदीन

शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी : अवारिफ उल मआरिफ इन–अनुवाद लफ्रटीनान् कर्नल, एच विलर्क्स फोर्स देहली, 1984
उर्दू अनुवाद हाफिज रशीद अहमद लाहौर,

1982

अब्दुल हक मुहद्दीस देहलवी : अखबार–उल–अखयार देहली, 1914 उर्दू अनु.मो. सुबहान महमूद एवं मो. फाजीलदेव बन्द

मौलाना हमीद कलन्दर : शेख उल मजलिस अलिगढ़, 1959

मुहम्मद कासिम फरिश्ता : तारीख–ए–फरिश्ता–ग्र–2

ख़लीक़ अहमद निजामी : सम असपेक्टस ऑफ रिलीजन एण्ड पोलेटिक्स इन द थरटीन्स सैंचुरी इदारा अदबियात देहली (कासिम जान स्ट्रीट)

बी एन. लुनिया : लाईफ एण्ड कलचर इन मिडाइवल इंडिया। कमाल प्रकाशन इन्दौर।

एम. मुजीब : द इंडियन मुस्लिमज, 1967 लन्दन।

# इकाई –17

# सूफीवाद के अन्य सूफी सम्प्रदाय

**इकाई की रूपरेखा**


17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 फिरदौसिया सिलसिला

17.2.1 शेख नजमुद्दीन फिरदौसी

17.2.2 शेख शरफुद्दीन यहया अलमनेरी

17.2.3 मौलाना मुजफ्फर शभन

17.2.4 शेख हुसैन मोइज बल्खी

17.2.5 शेख हसन दोयम बल्खी

17.2.6 शेख इब्राहीम बल्खी

17.3 मगरबी सिलसिला

17.3.1 शेख अहमद खटटू

17.4 मदारी खलसिला

17.4.1 शेख बदरूद्दीन मदार

17.4.2 काजी महमूद कस्तूरी

17.4.3 शाह मीरान पिसर कलां

17.4.4 सैयद जमालउद्दीन मदारी

17.4.5 काजी मुताहद्दिर

17.4.6 शाह इला

17.4.7 सैयद राज़ी

17.4.8 मदारी संत एवं उनका रियासतों से संबंध

17.5 शत्तारी सिलसिला

17.5.1 शाह अब्दुल्ला शत्तारी

17.5.2 शेख मुहम्मद अलाई

17.5.3 शेख अबुल फतह

17.5.4 शेख ज़हूर हाजी हमीद हसूर

17.5.5 शेख मुहम्मद गौस शत्तारी

17.5.6 शेख नजीदुद्दीन अलवी

17.6 कादरी सिलसिला

17.6.1 सैयद अब्दुल कादिर II

17.6.2 शेख मुहम्मद हुसैन

17.6.3 शाह मुहम्मद फिरोजाबाद

17.6.4 सैयद मुहम्मद कादर

17.7 नक्शबन्दी सिलसिला

17.7.1 ख्वाजा बाकी विल्लाह

17.7.2 शेख अहमद सरहिन्दी

17.8 संदर्भ ग्रंथ

## 17.0 उद्देश्य

इस अध्याय में आप अध्ययन करेंगे कि भारत के दो बड़े सिलसिला चिश्ती–सुहरावर्दिया के अलावा अन्य प्रमुख सिलसिले कौन–कौन से थे? इन सिलसिलों ने कब भारत में अपना अस्तित्व बनाया। इसके साथ ही इन विभिन्न सिलसिलों के कौन–कौन से महत्वपूर्ण सूफी संत भारत में हुए हैं इन सिलसिलों का राज्य के साथ किस प्रकार का संबंध रहा इस बात का उल्लेख भी इस अध्याय में किया गया है।

## 17.1 प्रस्तावना

सूफी मत में रहस्यवाद के सिलसिलों (सम्प्रदायों) का 12वीं शताब्दी ई. में विकास हुआ और वह समस्त इस्लामी दुनिया में फैले। यह रहस्यवाद के सिलसिले या तो कुछ रूहानी पथ–प्रदशकों द्वारा स्थापित हुये या वह उनके नामों के नाम से पुकारे गये। रहस्यवाद की आई डिओलोजी (Ideology) उपदेशों का ढंग, रहस्यवाद का मार्ग एक सिलसिले से दूसरे सिलसिले तक भिन्न है जो आई डिओलोजी (नजरिये) की बन्दिश में हम तक पहुंचे हैं। यह आत्म–ज्ञान के तरीके या सिलसिले (सम्प्रदायों) के नाम से जाने जाते हैं।

शेख अली हजवीरी (1072 ई. में जिनकी मृत्यु हुई) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "कशफ अल महजूब" में बारह मारफत (रहस्यवाद) के सिलसिलों की लिस्ट दी है। उसके विपरीत अब्बुलफज़्त ने अपनी मशहूर पुस्तक आईन–ए–अकबरी में चौदह मारफत (रहस्यवाद) के सिलसिलों की फहरिस्त दी है जो निम्न है।

1. हबिबिआ, अहनिब अल, अजामी द्वारा स्थापित
2. तेफुरिआ, शेख बाएजिद तेफुर बिस्तामी द्वारा स्थापित
3. कराखिआ, ख्वाजा माआरफ करखी द्वारा
4. सकातिआ, शेख अबुल हसन सारी सकाती द्वारा
5. जुनेदिया, शेख जुनेद बगदादी द्वारा
6. गजरूनिआ, शेख अबु इसहाक बिन शहरयार द्वारा
7. तुतिआ, शेख अलाउद्दीन तूसी द्वारा
8. फिरदौसिया, शेख नजमुद्दीन कुबरा द्वारा
9. सुहरावर्दिआ, शेख नजमुद्दीन अबुल काहिर सुहरावर्दी द्वारा
10. जेदिआ, अबुल वाहिदबिन जेद द्वारा

11. अेयाजिआ, शेख फुजेल बिन अयाज द्वारा

12. अधामी, शेख इब्राहिम बिन अधम द्वारा

13. हुबेरिआ, ख्वाजा हुबेरात अल बसरी

14. चिश्तीआ ख्वाजा अबु इसहाक द्वारा

लेकिन मुख्य मारफत (रहस्यवाद) के सिलसिले जो फैले और जिन्होंने राजनैतिक, समाजिक, धार्मिक और रूहानी (आत्मा) जीवन में विशेष पार्ट अदा किया वह चिश्ती और सुहरावर्दी के अतिरिक्त सिलसिले है :

फिरदौसिया, मगराबिआ, मदारिआ, शत्तारिआ कादिरिआ और नकशबन्दीआ सिलसिलें।

## 17.2 फिरदौसिया सिलसिला (सम्प्रदाय)

फिरदौसी सम्प्रदाय सुहरावर्दिआ सम्प्रदाय की एक शाखा ही थी जिस की शेख सेफुद्दीन बखार्जी के एक शिष्य शेख बदरूद्दीन समरकंदी ने भारत में प्रचलित की। शेख बदरूद्दीन समरकंदी देहली में आकर बसे उनके शिष्य शेख रूकनुद्दीन फिरदोसी का भारत में जन्म हुआ जो प्रसिद्ध संत शेख इमामुद्दीन फिरदौसी के पुत्र थे। शेख रूकनुद्दीन पहले संत थे जिनके नाम के साथ फिरदोसी सम्प्रदाय का नाम मनसूब हुआ। इसलिए वह पहले भारत के सूफी हैं जिनके नाम के साथ रहस्यवाद सम्प्रदाय का सिलसिला जारी हुआ और भारत में फैला।

### 17.2.1 शेख नजमुद्दीन फिरदौसी

शेख नजमुद्दीन फिरदौसी शेख रूकनुद्दीन फिरदौसी के शिष्य सौतेले भाई और खलिफा थे जिनकी परवरिश बचपन से उन्होंने की और उनका मार्गदर्शन और निगरानी ही थी कि शेख नजमुद्दीन फिरदोसी ने अपनी धार्मिक और रहस्यवाद की शिक्षा पूरी की। शेख नजमुद्दिन फिरदौसी तनहाई (अकेलापन) पसंद करते थे और लोकप्रियता को नापसन्द करते थे। वह देहली में रहे जहाँ 1332 ई. में उनका देहान्त हो गया।

### 17.2.2 शेख शरफुद्दीन यहया अलमनेरी

वह भारत में फिरदौसी सम्प्रदाय के भारत में पहले पथ प्रदर्शक थे जिन्होंने उसे लोकप्रिय बनाया और बिहार में विशेष रूप से उसकी स्थापना की। वह मुनेर में जन्में और उन्होंने अपनी शिक्षा सुनार गाँव में (जो अब बंगला देश में है) मौलाना शरफुद्दीन तमामा से प्राप्त की फिर वह आत्मा के गुरू की खोज में रवाना हुये, देहली पहुंचे और अंत में शेख नजमुद्दिन फिरदौसी के शिष्य हो गये जिन्होंने उन्हें अपनी जन्म भूमि (बिहार में) लौटने के आदेश दिये। उन्होंने आगरा होते हुये मनार के वापसी के रास्तें में बिहिआ के जंगल (शाहवाद डिस्ट्रिक्ट, बिहार) और राजगिर की पहाड़ियों में सख्त रियाज़त की।

लोकल परम्परा के अनुसार शेख शरफद्दीन मनेरी ने चालिस दिन ध्यान और उपवास (रोजों) में शिरंगी रिखी (हिन्दुओं का पूजा का स्थान) झरने के पास गुजारे जो बाद में मखदूम कुंड के नाम से जाना गया। उसके अतिरिक्त वहाँ एक पत्थर की गुफा है (हुजरा) जो इबादत और ईश्वर्रीय ध्यान के कार्य में इस्तेमाल की जाती है।

इस तरह 30 साल के भ्रमण के जीवन के बाद शेख अंत में बिहार शरीफ में बस गये। सुल्तान मोहम्मद बिन तुगलक की हिदायत पर बिहार के गवर्नर ने एक खानकाह बनवाई। शेख की मृत्यु 1381 ई. में हो गई और वह बिहार शरीफ़ में दफनाये गये।

शेख शरफद्दिन यहयाअल मनेरी एक विद्वान स्कालर थे उन्होंने अपने उपदेशों, पत्रों और रचनाओं से एक सम्प्रदाय को बनाया जो लोगों में अधिक लोकप्रिय था। उन्होंने अपनी रचनाओं में तस्व्वुफ (रहस्यवाद) के समस्त विषयों को छेड़ा और उस की व्याख्या की। उन्होंने रहस्यवाद पर समस्त रचनाओं का अध्ययन किया वह इब्नुलअरबी के वहदतुल, वजूजूद (आत्मा परमात्मा की एकता) के सिद्धांत से गहरे प्रभावित हुये।

उनकी रचनाओं में मकतुबात सादी, मकतुबात दुआ–ए–सादी, मदन–उल–माआनी, मुखउल माआनी, ख्वान–ए–पुरनेमत खास है।

### 17.2.3 मौलाना मुजफ्फर शम्स बलखी

वह शेख शरफद्दिन मनेर के खास शिष्यों में थे। उनके पिता सुल्तान शम्सुद्दीन बलरवी बलख के बादशाह थे जिन्होंने तख्त (गद्दी) छोड़ दी और हिन्दुस्तान आ गये। ऐसा कहा जाता है कि मौलाना मुजफ्फर शम्स बलखी सुल्तान फिरोज शाह तुगलक (135 – 1388 ई.) के कॉलेज में एक अध्यापक थे। बाद में उन्होंने नौकरी छोड़ दी और अपने आसासे को खेरात में दे दिया, अपनी समस्त बीवियों को तलाक दे दिया और शेख शरफुद्दिन यहया–अल–मनेरी के हल्के (गिरोह) में दाखिल हो गये। वही थे जिन्होंने अपना तमाम जीवन और अपनी शक्ति से अपने रूहानी गुरू के मिशन को फैलाया और खास खलिफा और बिहार शरिफ के सज्जादा नशीन बने।

उन्होंने मक्का के कई हजम किये और उनकी मृत्यु अदन में 8०7 हिजरी 1400 ई. में बतलाई गई। उन्होंने कई रचनाऐं छोड़ी है, जैसे मकबूबात, मुजुफ्फर बलखी जो 181 पत्रों (खतुत) का संग्रह है जो अपने कई शिष्यों और दोस्तों को लिखे गये। ग्रंथ (मनुष्कृष्ट, पटना यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, बिहार में महफूज़ (सुरक्षित) है। दीवान मौलाना मुजफ्फर बलखी (छपा हुआ) मतबुआ शरह अकाइद नसफी व अकाइद मुजफ्फ़री इन्सावी है।

### 17.2.4 शेख हुसैन मोइज बलखी (मृत्यु 1440 ई.)

वह शेख मोइज बलखी का पुत्र और मौलाना मुजफ्फर शम्स बलखी का भाई था। उसके चाचा की निगरानी में उसकी तरबिअत हुई जो उसे प्रारम्भिक आयु में शेख शरफुद्दीन यहया मनेरी की खानकाह में लाये। इस तरह उनकी परवरिश और तरबिअत खानकाह के वातावरण में हुई।

ऐसा भी कहा जाता है कि उसने अवारी फुलम आरिफ (मारफत का ज्ञान) शेख शरफुद्दीन यहया अलमनेरी की निगरानी में सीखा और किताब शाह बदरूद्दीन मदार मकाम जौनपुर की रहबरी में पूरी की जिन्होंने शेख हुसैन बलखी को समन्द्र–ए–तोहिद का खिताब अदा किया।

यह चालीस साल तक अपने चाचा के साथ रहे और अपने चाचा और शेख शरफुद्दीन मुनेरी दोनों से खिलाफतनामा प्राप्त किया।

उनकी मृत्यु 844 हिजरी 1440 ई. में हुई और बिहार पूरा (वहार शारिफ) में दफन।

कई किताबें उनके नाम से प्रमुख है। रिसाता के तौर पर रिसाला–ए–कजावकदर रिसाला–ए–तोहिद, खास, गंज–ए–यरक्का (मुलफुजात) रिसाला–ए–मोहम्मदी रिसाला–ए–तोहिद, मकबुतान–ए–हुसैन मोइज बलखी, 154 पत्रों का संग्रह पोथी (मेनुस्कृप्ट) पटना यूनिवर्सिटी लाईब्रेरी पटना में रखी हुई है।

### 17.2.5 शेख हसन दाईम बलखी (मृत्यु 1451 ई.)

वह शेख हुसैन मोइज बलखी का पुत्र और खलीफा और जांनशीन था। वह अपने बाप की भांति एक बड़ा सूफी और मुकम्मल स्कालर था। वह बड़ा दयालु था। जो कुछ उसे दिया जाता था वह तुरन्त वापिस कर देता था। उसकी मृत्यु 1451 ई. में हुई और वह बिहार शरीफ में दफन है। उसकी रचनाओं में है लता–उल–माआनी, रिसाला–ए–कजाबकदर रिसाल दर बयान–ए–हश्त चीज इत्यादि।

वह शेख हसन दाईम जश्न बलखी का पुत्र और जानशीन था। उसने अपने दादा शेख हुसैन नोशा तोहिद बलखी की निगरानी में शिक्षा पूर्ण की।

शेख अहमद लंगर पर्या अपने मलफूजात के मुनिस उल कूलूब के लिए मशहूर है।

### 17.2.6 शेख इब्राहिम बल्खी (मृत्यु 1508 ई.)

शेख इब्राहीम बलखी शेख अहमद लंगर के पुत्र थे जिसके पुत्र मनेर और शेख पुरा में बस गये। बिहार शरीफ में शेख हाफिज दरवेश बलखी अपने पिता के खलीफा और जानशीन हुये।

लेकिन बाद में शेख शरफद्दीन मनेरी और सज्जादा नशीन खान काह बिहार शरीफ के बीच झगड़ा हुआ। नतीजतन शेख शरफुद्दीन मनेरी के दूर के वारिसों में एक शाह बिख नाम को जो सुमेरा पालेसी का था को बिहार शरीफ खानकाह का सज्जादा नशीन बना दिया गया और शेख हाफिस बलखी के वारिसान फातुहा पटना के पास हिजरत कर गये।

इस तरह बल्खियों ने बाद के युग में मनेर शेखपुरी, फतुहा, इस्लामपुरा में अपने केन्द्र स्थापित किये और फिरदौसी सम्प्रदाय की शिक्षा को बिहार में जारी रखा।

फिरदौसी संतों ने न ही चिश्तियों की तरह अलेहदगी (तनहाई) की पालिसी को अपनाया और न ही राजनैतिक मामलों में हस्तक्षेप किया लेकिन आजादी से सुहरावर्दी संतों की भांति हुक्मरानों से मेल–जोल रखते थे। शासकों से उन्होंने सम्बन्ध रखे लेकिन जब भी जरूरी समझते थे उनके खुदमुखतार खर्चे पर आलोचना करते थे।

जब मोहम्मद बिन तुगलक 1324 ई. में देहली के तख्त पर बैठा तो उसने शेख शरफुहीन यहया अल–मनेरी की रियाजत और रूहानी मुकम्मल जात के बारे में उसने सुना बताया जाता है कि वह शेख में श्रद्धा रखता था। और इज्जत करता था। यही कारण है कि उसने संत को कुछ उसूल और उपदेश देने के लिए लिखा। शेख ने सुल्तान को रहस्यवाद

(मारफत के चन्द मसाइल के बारे में बहस की। शेख ने अपने पत्र में उत्तर दिया "अरे भाई तुमने सूफी साइन्स के बारे में विशेष रूप से लिखने की प्रार्थना की है। भाई तुम्हें जानना चाहियें कि सूफी साइन्स अति गम्भीर और शोभायमान है। जिसे अधिक शब्दों के रूप में प्रकट नहीं किया जा सकता है। जो मै तुम्हें लिख चुका हूँ और तुमने दोनों जिल्दों की प्राप्ति की रसीद भेज दी है लेकिन किस ने दुनिया में उसके हिस्सों के बारे में लिखा है। शब्दों में प्रकट नहीं किया ज सकता है और फिर में कैसे कोशिश कर सकता हूं केवल जबाव जो में तुम्हें दे सकता हूं वह यह है कि जिस ने इस रास्ते में तरक्की नहीं की है वह सत्य को नहीं जान सकता और वह जो सत्य के उसूलों से वंचित है वह कुछ नहीं जान सकता।

दूसरे पत्र में शेख ने सुल्तान को अप्रत्यक्ष रूप से दौलत और शक्ति के हानिकारक असत्य के बारे में आगाह किया। और उसने जालिम ताकतवर फिरओन शददाद और नमरूद जैसे हाकिमों के नक्श कदम पर चलने से मना किया।

यह दोनों पत्र एक दूसरे के लिए समझ और इज्जत के बारे में बतलाते है। सुल्तान के बारे में बतलाया गया है कि उसने शेख को एक बलगारिया की जानमाज और एक फरमान (हुकमनामा) गर्वनर बिहार के नाम भेजा कि वह शेख के लिए खानकाह बनाने और उसकी रख–रखाओं के लिए राजगीर की जागीर दें दे जिसे शेख ने बड़ी हिचकिचाहट से लिया।

शेख शरफुद्दीन यहया अल मनेरी और सुल्तान फिरोज शाह के तालुक्कात बहुत खुशगवार थे। शेख ने 1351 ई. में सुल्तान मोहम्मद बिन तुगलक की मृत्यु के बाद देहली के शाही दरबार में हाजिरी दी और राजगीर की जागीर की सनद को सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के सुपुर्द कर दिया।

शेख शरफुद्दीन यहया अल मनेरी के अनुसार हुक्मरानों का सही कार्य जरूरतमन्दों की हाजतपूरी करना नंगों को कपड़े पहनाना और मायूस लोगों को आबाद करना ओर नादारों की सेवा करना है। जब कुछ लोगों ने हुकमरा से रहम दिलाना और संत प्रभाव के बारे में शेख को बतलाया कि वह तमाम रात इबादत में जागता है और दिन को रोजे रखता है तो शेख ने आलोचना की कि हुकमराँ अपने मुश्किल फराईज को नजर अंदाज कर रहा है दूसरे के कार्य कर रहा था। जहां तक इबादत का संबंध है शेख ने बतलाया है कि उसे, संतों के द्वारा ही किया जा सकता था।

शेख के अनुसार सुल्तान की तहफ्फुज़ खिदमत मजलूमों को इन्साफ देना बताया समस्त मानव की हिफाजत और उसका तहफ्फुज़ है और इस बुनियाद पर शेख ने हुक्मरानों से ताल्लुकात को सही बताया क्योंकि सुहरावर्दी संतों की तरह मजलूमों के मामलात को हुक्मरानों और शासकों से सिफारिश करना था।

## 17.3 मग़रिबी सिलसिला (सम्प्रदाय)

मगरिबी सिलसिले की बुनियाद एक प्रसिद्ध सूफी और अध्यापक शेख अब मदयान ने रखी। यह सिलसिला (सम्प्रदाय) भारत में बाबा इस्हाक मगरिबी द्वारा प्रचलित किया गया जो हाजी मोहम्मद केमी के शिष्य था। बाबा इस्हाक सुल्तान मोहम्मद बिन तुगलक के समय में देहली आये और बतलाया गया कि वह खान जहान की मस्जिद में ठहरे और काफी समय तक

उन्होंने इबादत की। वह अजमेर गये और फिर खद्दू (राजस्थान में नागौर डिस्ट्रक्ट में पंचशिला रोत्र) गये।

**शेख अहमद खटटू ।**

शेख अहमद खटटू देहली के आला परिवार में 757 हिजरी 1336 ई. में पैदा हुये परन्तु बाबा इस्हाक मगरिवी की जाती तवज्जो से उनकी तरबियत हुई। अपनी जवानी में शेख ने देहली में मस्जिद खान जहान में सख्त दरवेशाना रियाजत की। सैयद जलालउद्दीन बुखारी (आम तौर पर मखदूम जहानिया जहांगश्त के नाम से प्रसिद्ध हुये) ने जब शेख अहमद से मुलाकात की जब उनकों उसके लगाव और इबादत के बारे में मालूम हुआ।

कुछ समय बाद बाबा इस्ताक मगरिबी खद्दू के स्थान पर बस गये। इसलिये शेख अहमद अपने गुरू के साथ गये और गुरू की मृत्यु तक वहाँ ठहरे। शेख अहमद ने अरब, इराक और ईरान की पवित्र जगहों को देखने के लिए खद्दू से रवाना हुये और वहां प्रसिद्ध सूफीयों और स्कालरों से मिलें और उनके नजदीक आये।

सुल्तान फिरोजशाह के आखिरी शासनकाल में शेख अहमद भारत आये और देहली में उसी मस्जिद खान जहान में ठहरें।

उस समय तैमूर ने 1398 ई. में भारत पर आक्रमण किया तैमूर के आक्रमण से 15 दिन पूर्व शेख ने अपने शिष्यों को आने वाली मुसीबत से आगाह कर दिया था। कुछ उनके शिष्य देहली से चले गये लेकिन शेख अहमद ने देहली के लोगों के साथ रहने को बेहतर जाना।

देहली के दूसरे बाशिन्दों के साथ तैमूर के सिपाहियों ने शेख अहमद को भी बंदी बना लिया। शीघ्र ही मुगल सिपाहियों ने शेख अहमद के संत होने और करामत को भांप लिया और तैमूर को हालात से सूचित किया। शेख ने न केवल तैमूर को प्रसन्न किया। बल्कि देहली के लोगों की रिहाई में जो तैमूर के सिपाहियों द्वारा बंदी बना लिये गये थे रिहाई में सहायता की।

अंत में शेख अहमद ने सरखेज में बसने का इरादा किया। एक कस्बा जो अहमदाबाद, गुजरात के दक्षिण पूर्व में 6 मील पर है।

यहां शेख अवाम में लोकप्रिय हो गये जो बिना जात और धर्म के अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए खानकाह में जाते थे।

अहमदाबाद नगर सुल्तान अहमद (1411–42 ई.) गुजरात के शासक के द्वारा साबरमती नदी के बायें किनारे पर पुराने कस्बे असावल के पास शेख अहमद खद्दू की हिदायत पर बसाया गया।

## 17.4 मदारिया सिलसिला (संप्रदाय)

### 17.4.1 शेख बदरुद्दीन

जो आम तौर पर शाह मदार के नाम से पहचाने जाते है भारत में मदारिया सिलसिले (सम्प्रदाय) के बानी (Founder) थे।

वह यहूदी खानदान से ताल्लुक रखते थे और 715 हिजरी में सीरिया में पैदा हुये। उनके पिता ईश्हाक शमी पैगम्बर मूसा (Moses) के मानने वाले थे।

शाह मदार ने अपनी प्रारिम्भक शिक्षा हाजिफ शमी की निगरानी में पूर्ण की। तौरेत और बाईबिल को याद कर लिया।

उनकी प्रारम्भिक आयु में ही उनके वाल्दैन की मृत्यु हो गई। उनकों ईश्वर के ज्ञान की खोज (मार्फत) और उसमें लीन (वस्ल) की ख्वाहिश ने अपनी मकामी जगह को छोड़ने पर मजबूर किया और इस तरह वह मक्का पहुंचे उन्होंने हदीस का इल्म और इमाम अबुहनिफा इमाम शाफई की रचनाओं को पढ़ा। वहां से वह मदीना चले गये और उन्होंने इस्लाम धर्म अपना लिया।

शाह मदार का भारत की ओर यात्रा के समय उनका जहाज तबाह (नष्ट) हो गया। लेकिन भाग्य से वह बच गये और गुजरात पहुंचे। वहां से वह अजमेर गये। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के मकबरे की जियारत की और कुछ समय वहां ध्यान, रियाजत और नफ्सकुशी (Mortification) में लगे रहे। अजमेर से वह कन्नौज, कालपी और जौनपुर गये और मख्खनपुर में (कानपुर) से 48 मील पूर्व डिस्ट्रक्ट कानपुर उत्तरप्रदेश में बस गये और 840 हिजरी 1436 ई. को उनका देहांत हो गया।

उनके मुख्य शिष्यों के द्वारा मदारिया सिलसिला (संप्रदाय) न केवल उत्तरप्रदेश बल्कि बिहार और बंगाल में मशहूर हो गया। शाह मदार के चुने हुये पेरूओं (followers) की सूची निम्न है :

### 17.4.2 काजी महमूद कस्तुरी।

काजी हमीद उस्मानी जो कस्तूर के प्रसिद्ध विद्वान थे वह उनके पुत्र थे। जब शाह मदार कस्तूर आये और जामा मस्जिद में ठहरे जहां काजी महमूद अपने पैरोओं के साथ मौजूद थे। धार्मिक मामलात पर कुछ बहस के बाद सांसारिक और अध्यात्मिक जीवन को त्याग दिया और रियाजत, गुरू के पग चरणों पर चले और इबादत में लीन हो गये। काजी महमूद कुछ समय तक अपने पीर की सुहबत (संगत) में रहे जिन्होंने कस्तुर में बसने के आदेश दिये जहां उनकी मृत्यु 1443 ई. में हो गई।

### 17.4.3 शाह मिरान पिसरकलां (बड़ा पुत्र)

काजी महमूद कस्तूरी के बड़े पुत्र और शिष्य थे जो फकारपुर (उत्तरप्रदेश) में बस गये। जिनकी नस्ल के लोग उत्तरप्रदेश के कई हिस्सों में मशहूर हुये।

### 17.4.4 सैयद जमालउद्दीन मदारी या जामन मदारी

उनका नाम मिरान सैयद जमालउद्दीन मदारी था जो आम तौर पर जामन मदारी के नाम से मशहूर हुये। उनकी प्रारम्भिक जिन्दगी और हालात के बारे में मालूम नहीं केवल इतना मालूम है कि वह अपने रूहानी पेशवा शाह मदार की संगत में रहे। वह अंत में हिलसा (बिहार) में बस गये। दबिस्तान–ए–माजाहिब ने एक अजब रस्म का जिक्र किया है कि जामन मदारी को योगियों ने खा लिया लेकिन वह शाह मदार की करामत से दोबारा जीवित हो गये।

### 17.4.5 काजी– मुताहदिर

वह अपने युग के प्रसिद्ध आलिम थे। वह शाह मदार से मजहबी (धार्मिक) बहस के बाद उनका शिष्य बना। वह कुछ समय अपने गुरू की संगत में रहे और अंत में कालपी (उत्तरप्रदेश) में बस गये।

### 17.4.6 शाह इला या शाह आला

वह मजजूब थे और रूहानी (आत्म) शक्ति के लिए प्रसिद्ध थे। कुछ लोगों के अनुसार उनका लकबशाह आला था लेकिन बाद में लोगों ने उनका खिताब बिगाड़ दिया। और उन्हें शाह इला कहना शूरू किया। उनका मकबरा सुल्तान नसिरूद्दीन प्रथम की मस्जिद के पास गौड़ (बंगाल) में है।

मीर सैयद अहमद बादया :– उनके बारे में बताया गया है कि वह बायें पैर पर बारह साल तक खड़े होकर रियाजत और इबादत में लीन रहे इस लिए आमतौर पर वह बादया के नाम से आम लोगों में मशहूर हुये। उनका मकबरा परगना जौनपुर में नथ्थुपुर में है।

### 17.4.7 सैयद राजी

अपनी पाकीज़गी (पवित्रता) आला संत आदतों और सूफियों की खूबियों के लिए प्रसिद्ध थे। इस कारणों से आम लोगों में उनको काफी इज्जत थी। उनका देहली में है।

दूसरे शाह मदार के मुख्य मुरिदेन में थे: काजी अब्दुल मुल्क बहरेच सैयदखासा, शेख मोहम्मद जुनेद, बदायूँ, काजी शिहाबुद्दीन, लखनौज और मौलाना हिंसामुद्दीन सालामाती (मृत्यु 1436 ई.) इनका मकबरा जौनपुर के स्थान पर है।

### 17.4.8 मदारी संत और उनका रियासतों से संबंध

जब शाह मदार कालपी पहुंचे तो सुल्तान मोहम्मद का पुत्र कादर शाह कालपी का शासक (जो सुल्तान फिरोज तुगलक के वंश से था) संत की जियारत (मिलने) को आया। कुछ इन्तजार के बाद कादरशाह को मुत्तला (बतलाया) किया गया कि आखिर–उल–जिक्र (शाहमदार) एक दरवेश से बातचीत में मशगूल है। वास्तव में शाह मदार एक योगी के साथ बातों में लगे थे। इसने उसको इतना नाराज किया कि उसने शाह मदार के शिष्यों को आदेश दिया कि वह अपने पीर से उसके मुल्क को छोड़ने के लिये कहें।

फलस्वरूप शाह मदार ने सुल्तान को बद्दुआ दी जिससे उसका शरीर आबलों से भर गया। शाह मदार ने कालपी को छोड़ दिया लेकिन अपने शिष्यों को कालपी में तीन दिन तक सुल्तान की हालत को देखने के लिए छोड़ दिया कि वह मामले की सूचना उनको दे। कादर शाह अपने पीर शेख सिराज सोख्ता के पास गया और अपनी कहानी सुनाई। शेख ने अपने सोयम के पहने का कपड़ा दिया जिससे सुल्तान बिल्कुल ठीक हो गया। जब शाह मदार को इस की इत्तिला हुई तो फौरन कहा कि सिराज जल क्यों नहीं गया। जिसके कारण शेख जलकर मर गया और जब से सोखता (जले हुये) के नाम से मशहूर हो गया।

## 17.5 शत्तारी सिलसिला

शत्तारी सिलसिला शेख अबूयजीदबायजीद तेफूर बुस्तामी (मृत्यु 874 ई.) जिसके नाम से इश किया सिलसिला इरान और तेफूरिया में बुस्तामिया (तुर्की) में जाना गया।

### 17.5.1 शाह अब्दुला शत्तारी

लेकिन शत्तारी सिलसिले के भारत में शाह अब्दुल्ला शत्तारी (मृत्यु 1485 ई.) के असल बानी (Founder) थे वह आमतौर पर शत्तारियों में हजरत आला के नाम से मशहूर हुये। हालांकि शाह अब्दुल्ला नस्ल के ऐतबार से शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी के खानदान से थे लेकिन रूहानी ऐतबार से वह शेख अबूयजीद बुस्तामी से ताल्लुक रखते थे।

वह पहले संत थे जिनका शत्तारी खिताब अपने रूहानी पीर (गुरू) शेख मौहम्मद आरिफ से मिला–इसलिए यह सिलसिला (संप्रदाय) शत्तारी सिलसिले के नाम से जाना गया।

शाह अब्दुल्ला काफी मालदार (धनी) संत थे और बड़ी शान से रहते थे। वह बादशाह की तरह लिबास पहनते थे और उनके पैरों (followers) सिपाहियों की तरह उनके साथ ढोल पीटते और झंडे उठाये हुये चलते थे। वह भारत में फारस ईरान से आये और उत्तरभारत में बंगाल तक उन्होंने सफर किया और अंत में मांण्डू में बस गये जहां उनका मकबरा है।

### 17.5.2 शेख मोहम्मद अलाई या शेख काजीन शत्तारी

आरम्भ में वह शाह अब्दुला शत्तारी के विरूद्ध मे थे लेकिन अंत में वह उनके प्रभाव में आ गये और शिष्य बन गये और शेख काजीन शत्तारी से खिलाफत हासिल की। वह ही थे जिन्होंने शत्तारी सिलसिले को बिहार और बंगाल में मकबूल बनाया। उनका मकबरा बसरा मुजफ्फर डिस्ट्रक्ट बिहार में है।

### 17.5.3 शेख अबुल फतह हिदायतुल्ला सरमस्त (मृत्यु 1540 ई.)

वह शेख काजीन शत्तारी का तीसरा प्रसिद्ध पुत्र और खलीफा थे। वह रतन सराय गोपाल गंज सब डिवीजन सरन डिस्ट्रिक्ट बिहार में बस गये जहां उनका मकबरा है।

### 17.5.4 शेख जहूर हाजी हमीद हक

वह शेख काजीन शत्तारी के महत्वपूर्ण शिष्य थे जिस ने अपना केन्द्र ग्वालियर में बनाया। वह ही थे जिन्होंने शेख बहलोल और उनके भाई मोहम्मद गौस ग्वालियरी को अपने शिष्यों की फहरिस्त में शामिल किया और मारिफत के तरीके में अपनी निगरानी में तरबियत की।

### 17.5.6 शेख मोहम्मद गौ़स शत्तारी

वह शत्तारी सिलसिले की महत्वपूर्ण शख्सियतों में थे। यह मोहम्मद गौ़स शत्तारी ही थे जिन्होंने न केवल इसे मकबूल आम बनाया बल्कि शत्तारी सिलसिले को उत्तर भारत और दक्षिण में फैलाया। शेख मोहम्मद गौस शत्तारी की सबसे बड़ी देन थी कि उम्होंने विभिन्न सूफी

सम्प्रदायों सिलसिलों को जाखिम (Voluminous) बायोंग्राफिकल डिक्शनरी प्रस्तुत की जो सूफी भारत के विभिन्न हिस्सों में फैले थे।

### 17.5.7 शेख वजिहउद्दीन अल्वी गुजरात के (मृत्यु 997 हिजरी)

शेख मोहम्मद गौस (ग्वालियरी) के खलिफाओं एक शेख वजिहउद्दीन अल्वी थे। वह ही थे जिन्होंने शत्तारी सिलसिले को गुजरात में मकबूल आम बनाया।

शत्तारी सिलसिले की मुख्य आईडियोलोजी दूसरे रहस्यवाद के सिलसिले से विभिन्न नहीं थी केवल इसके कि इसके बानी ने दावा किया कि रहस्यवाद (मारिफत) का रास्ता जो शत्तारियों ने बताया जल्दी अपनी मंजिल तक ले गया। दूसरे इसके बानी (Founder) शाह अब्दुला शत्तारी ने जो तरजे जिन्दगी (जीने का ढंग) अपनाया। वह उसके मानने वाले अपना न सकें। उनके पैराओं (followers) ने एक ही बात विरासत में पाई कि वह थी कि हुक्मरानों से अच्छे संबंध रखे जायें। हिन्दुस्तान पहुंचने के बाद अब्दुला शत्तारी के बारे में बतलाया गया कि वह सुल्तान इब्राहीम शर्की (orientalist) (मृत्यु 1440 ई.) से मिले लेकिन सुल्तान ने शेख के तरजे जिन्दगी पर सख्त आलोचना की। शेख तब चित्तौड़ (राजस्थान) गये। जब सुल्तान गायासुद्दीन खलजी मालंवा के हुक्मरां ने चित्तौड़ का मुहासिरा किया। तो शेख सुल्तान से मिले और उसे फतह के लिए मुबारकबाद दी। उन्होंने सुल्तान को खुश किया जिसने शेख से मान्डू (मध्यप्रदेश) में बसने की प्रार्थना की और शेख ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की।

इसी तरह शेख अबुल फतह हिदायतुल्ला सरमस्त ने मुगल बादशाह हुमायूं को काफी प्रभावित किया। जब उसने 1539 ई. में बंगाल पर कब्जा कर लिया था। बादशाह ने शेख को आगरा बुलाया लेकिन यह मिशन शेख की हाजीपुर में अचानक मृत्यु से असफल रहा।

शेख मोहम्मद गौस ने भी बाबर को बेशक सहायता दी जिस समय उसने ग्वालियर के किले का मुहासिरा किया। इसके अलावा शेख मोहम्मद और उसके भाई के हुमायूँ से अच्छे संबंध थे। दुर्भाग्य से मिर्जा हिन्दाल के आदेश से 1577 ई. में शेख बहलोल मारे गये। 1545 ई. में शेरशाह सूरी के हाथों हूमायूँ की पराजय पर शेख मोहम्मद गौस ने गुजरात में शरण ली। अकबर के शासनकाल में शेख मोहम्मद गौस ने ग्वालियर में एक तारिक का जीवन व्यतीत किया और 1563 ई. में उनकी मृत्यु हो गई जहां उनका मकबरा हिन्दू और मुसलमानों दोनों के लिए इबादत का स्थान है।

## 17.6 कादिरी सिलसिला

कादिरी सिलसिला के बानी थे बगदाद के शेख मोहिद्दीन अब्दुल कादिर जिलानी (मृत्यु 1166 ई.) वह इस्लामी मारिफत (रहस्यवाद) के पेशवा और महत्वपूर्ण संत थे। यह सिलसिला भारत में शाह नेमतुल्ला कादरी द्वारा प्रचलित हुआ ओर 15वीं शताब्दी ई. में ऊँचे स्तर पर पहुंच गया। इस लिससिले की तीन शाखाऐं थी जो सैयद मोहम्मद कादर बिहार (बिहार, डिस्ट्रिक्ट गया) के नाम से मनसूब थी।

शेख मोहम्मद अल हुसेनी अल जिलानी रोम से आये। खुरासन और मुल्तान गये और आखीर में अचोच में बस गये। उन्होंने उलूम–ए–जाहिरी और बातिनी (आत्म–ज्ञान–विद्याज्ञान) का ज्ञान था। वह शायर (कवि) भी थे और उन्होंने दीवान मुरत्तब किया था।

### 17.6.1 शेख अब्दुल कादर द्वितीय (मृत्यु 940 हिजरी, 1533 ई.)

वह शेख मोहम्मद अल हुसैनी जिलानी के पुत्र थे और अपने पिता की मृत्यु के बाद सज्जादानशीन बने। वह बड़े विद्वान थे जिन्होंने इस सिलसिले को भारत में मकबूल किया।

अपनी इब्तिदाई जिन्दगी (प्रारम्भिक जीवन) में लज्जत के शौकीन थे अपने पास गाने–बजाने के साजों का काफी जखीरा था लेकिन जब उन्होंने अपने पिता की गद्दी संभाली तो यह समस्त वस्तुऐं उन्होंने तर्क कर दी और उसने मुरिदों (शिष्यों) को इन चीजों में पड़ने से बाज दूर रहने की तलकीन की। उन्होंने तमाम साजों को नष्ट कर दिया। शिकार किये गये पशुओं को आग लगा दी। अपने सर को मुड़ाया और मारिफत के जीवन के मार्ग को अपनाया।

आरम्भ में उन्होंने ओराद (विर्द) और वजाइफ इस हद तक रियाजत की कि उन्हें किसी से बात करने तक की फुरसत नहीं थी लेकिन ईश्वर के प्रेम में लीन होकर उन्होंने सुन्नत और फराईज को छोड़कर बाकी समय ईश्वर के ध्यान में गुजारा। वह सजदे में चटाई पर पड़ जाते थे। नमाज के लिए पुकारते थे और जल्से की कयादत करते थे। यह लोगों को सुबहा की नमाज के लिए जगाते थे। उनकी वफात (मृत्यु 930 हिजरी, 1537 ई.) में हुई।

### 17.6.2 शेख मोहम्मद हुसैन (मृत्यु 944 हिजरी, 1537 ई.)

हालांकि वह शेख हसन ताहिर चिश्ती के बड़े पुत्र थे लेकिन उनका जबर्दस्त रूजहान कादिरी सिलसिले की ओर था।

वह जौनपुर में जन्में थे। आगरा में रहे और देहली में अपने पिता की कब्र के पास दफनाये गये। वह मदीना गये और पैगम्बर के पवित्र मकबरे के मुजाविर की सेवा अन्जाम दी। यह भी बतलाया गया है कि वह यमन के कादरी संत के मुरिद (शिष्य) थे और अंत में भारत आये।

शेख अब्दुल रजाक जाने जहां और शाह अमानुल्ला पानीपत उनके मुख्य शिष्य थे।

शेख अब्दुररजाक (मृत्यु 949 हिजरी, 1541 ई.) कादरी सिलसिले के मुख्य संत थे। वह अपने सब्र के लिए जाने जाते थे और हर प्रकार की कठिनाइयों को बरदाश्त करते थे। एक मरतबा एक सैयद को कुछ सिपाहियों ने पकड़ लिया शेख ने अपने आपको उस की जमानत के लिए पेश किया। और चुपचाप शहर से फरार होने को कहा और आखिरकार वह बंदी बना लिये गये और उन्होंने सख्त मुसीबत झेली लेकिन किसी को मामले के भेद को नहीं बतलाया। उन्होंने वह वहदतुल वजूद के सिद्धान्त के व्याख्याता थे। उन्होंने शेख अब्दुल कादर जिलानी के खतूत पर हाशिये पर कमेन्टरी (व्याख्या) और नोट लिखे।

### 17.6.3 शाह मोहम्मद फिरोजाबाद

शेख मोहद्दिस देहलवी के अनुसार शाह मोहम्मद सुल्तान इब्राहीम लोदी के समय में दक्षिण से देहली आये और उन्होंने अपने को शेख अब्दुल कादर जिलानी की नस्ल से बतलाया।

यह इज्जत काफी थी। मकबूलियत हासिल करने के लिऐ काफी तादाद में लोगे उनके चारों ओर जमा हो गये।

सुल्तान इब्राहीम लोदी ने बाबर के आक्रमण के खौफ (डर) को महसूस किया। इस लिये संत का आर्शीवाद प्राप्त करने की कोशिश की। शेख ने नमाजें पढ़ी नवाफिल पड़े लेकिन उसे बचाने में कामयाब (सफल) नही हुये।

इस्लाम शाह सूर के समय (1545–1553 ई.) में शेख को एक कत्ल के केस में फँसा लिया गया और सुल्तान ने ताज खान किरकानी और शेखफरीद को मामले का जांच के लिए भेजा। शेख ने अपनी बेगुनाही की वकालत की। इस्लामशाह ने तब उल्मा को देहली, लाहौर, जौनपुर और बिहार से फैसले के लिए बुलाया। कोई एक राय कायम नहीं हुई लेकिन संत जेल में रखे गये। जहां वह बाद में मर गये।

### 17.6.4 सैयद मोहम्मद कादर

एक रस्म के अनुसार शेख अब्दुल कादर जिलानी की नस्ल से सैयद मोहम्मद कादर नाराहना (डिस्ट्रिक्ट बिहार) दूसरे कई शिष्यों के साथ पहुंचे और उसने शरीर और कौल से मजलूम मुसलमानों को बचाया।

इस तरह वह इस सिलसिले के संत थे जिन्होंने गया (बिहार) के अंदरूनी हिस्सों में इस सिलसिले को फैलाया।

## 17.7 नक्शबन्दी सिलसिला

यह सिलसिला ख्वाजगान के सिलसिले की शाख थी जिसकी ख्वाजा अहमद ने बुनियाद रखी। आम तौर पर जो अतायसबी (मृत्यु 1166 ई.) के नाम से तुर्किस्तान में जाने जाते थे।

नक्शबन्दियों ने माना कि चूंकि हुक्मरानों का अवाम की जिदंगी पर गहरा प्रभाव था। इसलिए हुक्मरानों से राबिते को स्थापित करने को उनके विचार और कार्य को प्रभावित करने को जरूरी समझा। फलस्वरूप उन्होंने शासकों के धार्मिक और राजनैतिक ट्रस्टी बनाने में मुख्य भूमिका निभाई।

दो शताब्दी तक नक्शबंदी सिलसिला भारत में एक मुख्य सिलसिला था। नक्शबंदी सिलसिला का इतिहास भारत में मुगलों की शक्ति के तनज्जुल (पतन) और ऊरूज (Rise) से संबंधित है जैसा कि प्रो. के .ए. निजामी ने सही माना है कि एक महत्वपूर्ण योगदान जो भारतीय मुगलों पर नक्शबंदी संतों के प्रभाव की जो आमतौर पर नजरअन्दाज की जाती है कि समस्त सेंट्रल एशिया और ट्रान्ससेकसोनिअन कस्बों जिन्हें भारतीय मुगल अपने पुर्खों की मकबुआत समझते थे वह सिलसिले के मजबूत किले थे और यह कि तैमूर के बाद भी उनके खानदान में नक्शबंदी सिलसिलों से न टूटने वाला लगाव श्रद्धा और मोहब्बत थी।

बाबर के पिता उमरखेल मिर्जा ख्वाजा उबेद उल्ला अहरार का शिष्य था। इसलिए नक्शबंदी संतों से लगाव की भावना और उनसे श्रद्धा बाबर ने अपने पिता से विरासत में पायी। भारत पर उसकी विजय के बाद ख्वाजा ऊबेदुल्ला अहरार की नस्ल में से ख्वाजा अल्दुस समद शाहिद और ख्वाजा कलॉभारत आये जिनको बाबर ने अहतराम और इज्जत से स्वागत किया और उन्हें कीमती तोहफें दिये।

जब शाहजादा हूमायूं सम्बल के मकाम पर बहुत बीमार हुआ तो बाबर ने नक्शबंदी संत के बतलाये तरीके को अपनाया। उसने अपने पुत्र के विस्तरे मर्ग के चारों ओर तीन मर्तबा चक्कर लगाये और फिर दुआ की कि हमायूं की बीमारी उसे लग जाये।

बाबर के बाद भी उस के वारिसों ने अपने पुरखों की इस रस्म को जारी रखा। जब ख्वाजा महमूद अहरार की संतान के संत भारत आये तो हुमायूं ने बड़ी इज्जत से उनका स्वागत किया।

### 17.7.1 ख्वाजा बाकी बिल्ला

अब्दुल मुयैद रजीउद्दीन (मृत्यु 1603 ई.) आमतौर पर ख्वाजा बाकी बिल्ला के नाम से मशहूर थे पहले नक्शबंदी संत थे जिन्होंने अकबर की हूकूमत को आखरी समय में नक्शबंदी सिलसिले को पुर असर तरीके से मुनज्जम किया और प्रचलित किया।

ख्वाजा बाकी बिल्ला काबुल में 1563 ई. में पैदा हुये। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा शेख हलवाई से प्राप्त की और समरकंद में उच्च शिक्षा पूर्ण की।

शेख ने देहली में नक्शबंदी खानकाह कायम की और अपना समय और अपनी शक्ति लोगों के आत्मिक और नैतिक स्तर को ऊँचा करने में सर्फ की। बड़े लोगों और अवाम की एक कसीर तादाद उनकी खानकाह के चारों ओर जमा हो गई और उनके शिष्य हो गये। शेख ने राजनीति में न पड़ते हुये लोगों में मजहबी और अखलाकी सुधार किया।

### 17.7.2 शेख अहमद सर हिन्दी

वह मुख्य मुरीद (शिष्य) और नक्शबंदी सिलसिले के बड़े संत थे जो सरहिंद (पटियाला स्टेट, मशरकी पंजाब) में 1564 ई. में पैदा हुये। उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता शेख अबद–अल–अहद से प्राप्त की और आला तालीम के लिए सियालकोट चले गये और ख्वाजा बाकी बिल्ला के नक्शबंदी सिलसिले में दाखिल हो गये। वह ही थे जिन्होंने वहदत–अल–वजूद के नजरिये और ईश्वर के हर वस्तु में रूप (Pantheism) पर आलोचना की और वहदत अल–शहद की थ्योरी की वकालत की। उन्होंने बतलाया कि ईश्वर और मनुष्य (आदमी) का रिश्ता दास और आका का है। प्रेमी और प्रेमिका का नहीं जैसा कि सूफी आम तौर पर सोचते है। वह बगैर किसी समझौते के वहदत ईश्वर को एक जान्ना को मानते थे और मवाहिद थे। वह अकबर के मजहबी तजरबों से सहमत नहीं थे जो उसने हर वस्तु में ईश्वर के होने के नजरिये (कसरत में वहदत) को समझ लिया था। उनके रद–ए–अमल ने अपने समय की सामाजिक और कलचरल शक्तियों का रूख बदल दिया था और मुगल सम्राटों के रुजहान और पालेसी को निश्चित किया। इसलिये आमतौर उन्हें मुजददद अलिफ सानी और दूसरे स्वर्ग के रिफार्मर के नाम से पहचाने गये।

## 17.8 संदर्भ ग्रन्थ

अस्करी प्रो. सैयद हसन – उत्तर बिहार और उड़ीसा के 15वीं शताब्दी के शत्तारी सूफी संत जनरल बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसायटी 1951 ई. जिल्द 37, हिस्सा I—II,

निजामी प्रो. के.ए. – शत्तारी संत और राज्य की ओर उनका रूजहान मिडावल इन्डिया क्वार्टी 1957 जेकसन पोल, ऐस जे:देहली के शरफुद्दीन शत्तारी का तरीका, 1987

जकी मोहम्मद – उत्तर भारत में मुस्लिम सोसायटी (15वीं और 16वीं शताब्दी के मध्य) कलकत्ता 1996

निजामी, प्रो. के.ए. – शेख अहमद मगरबी मध्यकलीब गुजरात की बड़ी सख्सियत (व्यक्ति) मध्यकालीन भारत, मिसेलेनी जिल्द 3, 1975 बम्बई, पन्ने 234–259

निजामी प्रो. क. ए. मुगल – शासकों और राजनीति पर नक्शबंदी प्रभाव मिकाला (पृचा) जो छब्बीस वीं अश्राकियों की अन्तर्राष्ट्रीय कान्फेरेन्स नई देहली, जनवरी 1964, में पढ़ा गया

# इकाई – 18
# बोहरों की सूफी परम्परा

**इकाई की रूपरेखा**

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 बोहरा सम्प्रदाय का उदय
18.3 इमामत का प्रश्न
18.4 बोहरों द्वारा इमाम को मान्यता
18.5 बोहरा सूफी परम्परा
18.6 सारांश
18.7 संदर्भ ग्रंथ

## 18.0 उद्देश्य

हमारा लक्ष्य यहाँ इस्लाम के इस छोटे से धार्मिक Cult का ही अध्ययन करना है। यह केवल भारत में ही है। यह अरब और ईरान के रास्ते से यहाँ आये। इस का संसार में कोई राज्य नहीं, न ही इस का क्षेत्र और दायरा आगे फैला है, न ही इसने और इस के मत और दर्शन ने भारत में कोई प्रभाव डाला, न ही अपनी जाति के अतिरिक्त अन्य लोगों से इस का कोई धार्मिक सम्पर्क है। परन्तु एक जाति के आधार पर और धार्मिक बुनियाद पर इसकी सूफी परम्परा का अध्ययन आवश्यक है। यह एक ऐकेडेमिक स्टडी है। इस की सूफी परम्परा की विचार धारा के जो तत्व है वह स्पष्ट जब ही होंगे जब हम यह जानेंगे कि इसका उदय कैसे हुआ ताकि बोहरा सूफी परम्परा समझने में आसानी हो। और यह भी कौन–कौन सी Tendencies इस में सम्मिलित हुई?

## 18.1प्रस्तावना

इस इकाई में हम बोहरों की सूफी परम्परा का अध्ययन करेंगे। इस्लाम में सूफी–इज्म की उस परम्परा ने जिसके जनाकों में ख्वाजा मुईनउद्दीन चिश्ती अजमेरी, ख्वाजा बख्तियार काकी, शेख फरिद और निजामुद्दीन औलिया के भारत दर्शन, जीवन और विचार धारा को प्रभावित किया। ईश्वर में लीन होने और प्राप्ति का मार्ग दिखलाया। भक्ति आन्दोलन ने रूहानियत आत्मा–परमात्मा ज्ञान के द्वारा खोले हर धर्म में Mysticism का अध्ययन मिलता है। ईसाई धर्म में भी Mysticism– के बारे में पुस्तकें भरी पड़ी है। मुस्लिम सम्प्रदाय में विचार धारा के आधार या इमामत के प्रश्न पर कई छोटे–छोटे समुदाय मिलते है। बोहरा सम्प्रदाय भी एक ऐसा सेक्ट है। बोहरा जाति भारत में व्यापारी जाति है। यह हिन्दुस्तान से बाहर हर जगह और भारत में गुजरात, राजस्थान में कोटा, बाराँ, झालरापाटन ओर मध्यभारत में उज्जैन, इन्दौर एवं बुरहानपुर और बम्बई में बसे है। इन का मुख्यालय बंबई में है जहाँ इन के धर्म के हेड सययदना (chief priest) रहते हैं। उपरोक्त शहरों में सययदना के नियुक्त आमिल रहते

हैं। यह बोहरा कोलोनी या बस्ती में रहते है और बोहरों के धार्मिक और संगठन पर नियंत्रण रखते हैं। एक सम्प्रदाय के रूप में इन का अध्ययन अनिवार्य है।

## 18.2 बोहरा सम्प्रदाय का उदय

जब पैगम्बर–ए–इस्लाम हजरत मोहम्मद सा. का विसाल (मृत्यु हुई) हुआ तो उन की मृत्यु पर उत्तरादायित्व का सवाल उत्पन्न हुआ। कौन अरब में और संसार में मुसलमानों का खलीफा होगा। अली कफन दफन में लगे हुए थे। इधर मज्लिस–ए–शुरा यानी मुस्लिम मजलिस (सभा) ने अली की अनुपस्थिति में अबुबकर सिद्दीक को जो पैगम्बर हजरत मोहम्मद सा. के ससुर थे अपना खलीफा (सरदार) चुना। अबु बकर सिद्दीक मुस्लिम समाज के खलीफा बन गये। यहाँ से वाद शुरू हुआ। अली के समर्थकों ने खलीफा की मान्यता (validity) को चेलेंज किया, हालांकि अली ने बेत (सहमति) कर ली। फिर भी झगड़ा अपनी जगह रहा। इस तरह अबुबकर सिद्दीक, उनके बाद उमर बिन रक्ताब और फिर हजरत उस्मान खलीफा बने। इन को अली के समर्थकों ने नहीं माना। अली की प्राथमिकता के बारे में हजरत मोहम्मद सा. की बातों (हदिस) को उन्होंने याद दिलाया :

1. में जिस का हूं मौला, अली उसका है मौला
2. अली शहरे इल्म का दरवाजा है
3. हम दोनों को ईश्वर ने एक नूर से पैदा किया।

अली हजूर को प्यारे थे। अली उनके दामाद थे। हजरत मोहम्मद की पुत्री फातिमा अली की पत्नी थी। फातिमा और हसन, हुसैन अहले बेत है। जो अली के हक (legitimacy) को मानते थे वह शिया कहलाये। अली की मोहब्बत और उनसे पूर्व खलीफाओं के विरूद्ध की खाई और भी गहरी हो गई जब इमाम हुसैन ने यजिद के हाथ बेत (सहमति) नहीं की। यजिद को उन्होंने इस्लामी राज्य का सम्राट नहीं माना बल्कि उस के आचरण के आधार पर उन्होंने यजिद की प्रभुसत्ता को नहीं माना और उसके विरूद्ध उन की शहादत (बलिदान) हुई। सून्नी तबका अली को खलीफा मानता है, पर वह अबुबकर सिद्दीक, उमरबिन खत्ताब और उस्मान को भी खलीफा मानते है। मुसलमनों का एक तबका ऐसा है जो अली को नहीं मानते वह खारजी कहलाता है। अली के युग में ऐक ऐसा गिरोह भी था जो अली को (Divinity) की शक्ल में मानता था। अली ने एक बार उन से कहा कि वह उन से इतनी मोहब्बत करते है, क्या वह आग में कूद जायेंगे? और वह आग में कूद गये।

## 18.3 इमामत का प्रश्न

अली के हजरत मोहम्मद सा. की मृत्यु के बाद खिलाफत के जाइज अधिकारी होने के सवाल (Alid legitimism) ने शियाओं के दो गिरोहों को जन्म दिया। शिया दो प्रकार के है। (1) सबच्चा (Sabbcyya) (2) असना अशरी (Asna Asheri) दोनों में इमामों की गिनती और इमामों के Successions बारे के बारे में मतभेद है। सबच्चा सात इमामों में विश्चास करते हैं और इसका इस्माईल जाफर के बड़े बेटे को सातवाँ और आखरी इमाम मानते है। असना अशरी इस्माईल जाफर के छोटे लड़के मूसा के बाद इमामों को मानते है। उनके नज़दीक

कुल इमाम बारह है। अब्दुल्ला अल मेमून अल कददा के असर में यह एक शक्ति के रूप में उभरे। उस्मान के कत्ल के बाद Civil war शुरू हुई। अली के समय में भी यह सवाल उठा कि इमाम को कौन बनाता है? एक मत के अनुसार कौम के लोग जिसे चुनलें वह ही इमाम बने, दूसरे मत ने कहा कि पैगम्बर से खूनी रिश्ता खास है। इमामत के वारिस अहले बेत हैं। इस तरह सुनी और शिया विचारों का उदय हुआ। बोहरे भी शिया तबके का ही एक अंग है। वह अपने आप को कहते भी है "शिया दाऊदी बोहरे" यानी अल्ला को प्यारे बोहरे। दाऊदी प्यारे को कहते है। निकोलसन ने अपनी पुस्तक अरबों के साहित्य के इतिहास के पन्ने 217 पर लिखा है।

"अब्दुल्ला बिन सबा शिया सेक्ट का बानी और संचालक था। उस के विचारों ने शिया मत को धार्मिकता प्रदान की उस के अनुसार इमामत अली का हक थी और उसके विचारों ने इमाम के एक Supernatural Character की मान्यता दी– रूहानी और ईश्वर (divinity) इमाम में प्रकट है। मारफत की शिया आईडीयोलोजी इमाम में।

जो सात इमाम मानते हैं। उनके अनुसार सात इमामों के नाम यह है :–

1. अली अबुतालिब
2. इमाम हसन
3. इमाम हुसैन
4. इमाम जेनुल आबदिन
5. इमाम बाकर
6. इमाम जाफर सादिक
7. इमाम काजिम जाफर के बड़े लड़के

असना–अशरी के अनुसार बारह इमामों के नाम इस प्रकार हैं :–

1. अली बिन अबुतालिब
2. इमाम हसन
3. इमाम हुसैन
4. इमाम जेनुल आबदिन
5. इमाम बाकर
6. इमाम जाफर सादिक
7. इमाम मूसा काजिम
8. इमाम रजा
9. इमाम मोहम्मद नकी
10. इमाम मोहम्मद तकी
11. इमाम असकरी
12. इमाम महदी

नसब के अनुसार बोहरा सम्प्रदाय (1) फातिमी (2) अलवी है। फातिमी में वह जो फातिमा के बतन (पेट) से अली की औलाद से थे। जिन्होंने मिश्र (Egypt) में सन् 909 A.D.

से 1171 A.D. तक शासन किया। अलवी वह जो अली की औलाद से थे। लेकिन फातिमा के बतन से नही थे। संक्षेप में यह इमामत पर विचार बोहरा सूफी परम्परा के समझने में सहायता करेंगे।

एक गिरोह मुताजला का था। मुताजला ने शिया नजरयें ईश्वर में आत्मा के हलूल (fusion) उस की सिफात और तश्बिह के एक रूप होने से इन्कार किया। उन्होंने किया कि ईश्वर की सिफात (विशेषता) को अलग से नहीं देखा जा सकता। अली–अल–अश्री बगदाद (Bagdad) ने मुताजला के विचार से अलक विचार रखा उन्हों ने कहा कि कुरआन में ईश्वर को व्यक्ति के रूप में (anthroomorphic expressions) में देखना चाहिए। सलजुक बादशाह के वजीर निजाम–उल–मुल्क ने इस अशरी (Asharite) के विचार के फेलने और शिक्षा के लिए मदरसा निजामिया कायम किया। अल अशरी नज़रये को इमाम गजाली ने माना। निजाम–उल–मुल्क ने सियासत (Politics) नाम की पुस्तक लिखी जिसे मान्यता है और जो बाद में अपने दोस्त हसन बिन सबाह के षड्यंत्र से मारा गया। इमाम गज़ाली ने 'अहया–उल–अलूम' किताब लिखी जो मारिफत में (आत्म–ज्ञान) की उच्च कोटि की पुस्तक है।

## 18.4 बोहरा द्वारा इमाम को मान्यता

इमाम की हैसियत बोहरा सेक्ट में फिर–मुर्शिदया गुरू की है। सैय्यदना बोहरा मत में अमर–उल–मोमनिन कहलाते है। इमामत का सिलसिला, उनके बाद औलाद की तरफ (sucesssion) है। मुसलमानों से अन्तर यह कि दूसरे मुसलमान जो सारी दुनिया में फैले हुए है वह हजरत अली से पूर्व खलीफाओं को खलीफा मानते है। वह हजरत अली को भी खलीफा मानते है। उन के यहाँ इस्लामी आथोरिटी का इल्तिकाल (sucession) नहीं।

बोहरा कौम जो सिर्फ भारत के ही निवासी है और जिन की तादाद न होने के बराबर है वह अपनी जाति सम्प्रदाय में सिमट कर रह गये है। बाहर देशों में धंधा करते है। बोहरे कुरआान को मानते है। रोजे रखते है। जकात देते है। वह कुरआन की आयतें (verses) निजी सवाब या फायदे के लिए भी पढ़ते है। उन की शादी के मामलों में आमिलों और सय्यदना का निर्णय हुक्म की हैसियत रखता है। बोहरे हज भी करते हैं। हजरत मोहम्मद सा. को रसूल और नबी मानते है। वह करबला इराक में अतबात–ए–अलियात भी जाते है। वह इमाम हुसैन के मजार की जियारत भी करते है।

संक्षेप में इस पर रिव्यू करों। हजरत मोहम्मद सा. के विसाल के बाद अबूबकर सिद्दीक को खलीफा चुना, फिर अबूबकर सिद्दीक ने हजरत उमर को नामजद (nominate) कर दिया और हजरत उमर ने 6 लोगों को मुकर्रर किया और उन्होंने हजरत उस्मान को खलीफा चुन लिया। उनके कत्ल के बाद चौथे खलीफा या इमाम अली हुए। सीरिया का हिस्सा माविया दबा बैठे उन्होंने अली की मृत्यु के बाद निरंकुश शासन (monarchy) को जन्म दिया। माविया ने अपने लड़के यजिद को नामज़द कर दिया। इमाम हसन ने अलेहदगी इख्तियार की, लेकिन इमाम हुसैन ने उस बद चलन की इमामत नहीं मानी। उस के नतीजे में धोखे से उन्हें कुफ बुलाया गया और वहाँ करबला का वाका (घटना) हुआ। शिया हुसैन के खानदान को इमामत का

वारिस समझते है। और इस लिए इमामिया कहलाए और वह 12 इमामों की इमामत को मानते हैं। हुसैन का व्यक्तिगत जीवन पाक और साफ था। वह पैगम्बर के नवासे थे। फातिमा के लाल थे। (नवी) के दुलारे थे। पैगम्बर नमज पढ़ रहे है । यह छोटे नने हजूर की पीठ पर सिजदे में बैठ जाते थे । हसन और हुसैन को जो यह मकाम अपने नाना की नजर और दिल में था किसी को नसीब नहीं था। हदिस (बात) पैगम्बर मोहम्मद है ए हुसैन तेरा खून मेरा खून है और तेरा गोश्त मेरा गोश्त है। शिया सूफिया के अनुसार हिजरी के गौस इमाम हुसैन थे। इससे मालूम हुआ कि इमाम युग का गौस है बोहरा तसव्वुफ का यह बुनियादी शिया अकिदा धर्म भावना है। शिया बोहरा सूफी परम्परा में इमाम हुसैन से मुहब्बत को भी मोक्ष का मार्ग मानते है। मारफत (आत्म–ज्ञान) के ज्ञान में अहलेबैत का फेज़ान (प्राप्ति) रूह के फेजान के लिए आवश्यक है। ईश्वर के ज्ञान के लिए दरूद जिस में अहलेबैत का जिक्र हो सहायक होती है। यह इमाम हुसैन की कब्र की खाक भी लाते है जिसे खाक–ए–शिफा कहते हैं। धार्मिक मामले में सेय्यदना का निर्णय ही मान्य होता है वह Personal law के मामले में अदालत में नहीं जाते है। बोहरा कौम में इमाम जानशीन रसूल होता है। इमाम ए–युग रसूल का नायब है। किताब आसमानी की सहत व सत्य होना है। इमाम–ए–युग के व्याख्या है, क्योंकि वह और किताब–ए–खुदा साथ–साथ रहेंगे। वह अली इमाम हुसैन और हसन के सिलसिले अहले बैत से अपना सिलसिला मानते है। उनके नजदिक सैय्यदना अहलेबैत के सिलसिले की एक कड़ी है। वह बोहरा कौम के अमिर–उल–मोमेनिन है।

## 18.5 बोहरा सूफी परम्परा

बोहरा सूफी परम्परा में बोहरे ऐकेश्वरवाद को मानते है। खुदा एक (वाहिद) है। उस का कोई शरीक नहीं। वह ईश्वर के वहदल –अल–वजद (आत्मा परमात्मा की एकता) को मानते है। वह ईश्वर की प्रार्थना (इबादत) जिक्र और फिक्र से करते है। सूफी मत में मुर्शिद का मारफत (Mysticion) में स्थान है। गुरू की महिमा की भक्ति दर्शन में एक विशेष जगह है। बोहरा सूफी परम्परा में सैय्यदना का एक रूहानी पेशवा की हेसियत में मारफत के मार्ग में (तस्व्वुफ) में (ईश्वर के नजदीक होने के लिए अनिवार्य स्थान है। ईश्वर दर्शन के लिए वह कुरआन की आयतों Verses का और असमाए रब्बानी (ईश्वर के नामों का जाप करते है। वहदत–उल–शहद के लिए वजिफे पढ़ते है। इमाम–ए–युग गौस है । गौस रूहानियत और मारफत का ऊँचा दर्जा है।

सैय्यदना बोहरा सम्प्रदाय का अमीरूल–मोमेनिन है। Divinity उनके व्यक्तित्व में प्रकट होती है। बोहरा Mysticion में मारिफत की मंजिल (भक्ति मार्ग) उनके फेजान के बिना ना मुमकिन है। मन की पवित्रता, जिक्र और फिक्र बोहरा Mysticion में अनिवार्य है।

सैय्यदना संसारिक और धार्मिक जीवन और ज्ञान के लिए रूहानी विलायत के मालिक (वली) है। उनके लड़के शाहजादे और लड़कियाँ शाहजादी कहलाती है।

इबादत करने वाले तीन प्रकार के हैं। एक गिरोह सबसव की प्राप्ति के लिए खुदा की इबादत करता है। यह सौदागरों की सी इबादत है कि इबादत का बदला सवाब चाहता है। (2)

दूसरा फिरका आबिदों का है जो ईश्वर के अजाब से डरकर ईश्वर की इबादत करता है। यह गुलामों की इबादत है। (3) तीसरा गिरोह ऐसा है जो ईश्वर का शुक्र (gratefulness) अदा करने के लिए इबादत करता है। यह आजाद की इबादत है और इस इबादत का क्या कहना जिन की इबादत (Prayer) अल्लाह (ईश्वर) के लिए है।

सैय्यदना के अली वसी है ऐसा बोहरा सूफी मत का मानना है। सैय्यदना स्वयं को अमीरूल–मोमेनिन कहते है। वह अपने आप को दाई (हिदायत के लिए बुलाने वाला कहते है।) वह अपने अन्दर उन शक्तियों को बतलाते हैं जो उन से पूर्व पैगम्बरों या उनके वसी अली (वसिहत करने वाले) या फिर इमामों और अली की फातिमी नस्ल में थी। उन को समस्त अधिकार है। इस लिए वह किसी के सामने जवाबदेह नहीं। बोहरा मारिफत में सैय्यदना वे जरिये ही रूहानियत की मंज़िलें तै की जा सकती है। उनमें Divinity) हलोल (fusion) का नज़रया है। बोहरा मुरिद जिक्र में सैय्यदना के इस Divinity के हलोल में ही मारफत (ईश्वर ज्ञान) प्राप्त कर सकता है। यह तो सत्य है कि जिक्र और फिक्र आत्मा के ऊँचे स्थान पर ईश्वर के नजदीक पहुंचाने के लिए आवश्यक है, पर यह भी सैय्यदना के द्वारा ही सम्भव है क्योंकि रूहानियत की दुनिया पर सैय्यदना का नियन्त्रण है। वह दाई (Dai) है। इस रूहानी विलायत (spiritual kingdom)) के मालिक है। हविस कुदसी (Saying of Prophet Mohmmad) है कि ईश्वर ने कह कि अगर मोहम्मद तुम्हारी जात न होती (तुम नही होते) तो मै संसार को नहीं बनाता। हजरत अली के बारे में जैसा पूर्व में लिखा जा चुका है मोहम्मद सा. ने कहा कि "अली और में एक ही नूर से बने है। और फिर में मदिनतुल इज्म हुं, अली उसके द्वार बिना द्वार के शहर की चहार दीवारी में दाखिल नहीं हो सकते और सय्यदना बोहरों के नजदिक रूहानी विलायत (Spiritual Kingdom) के वली (मालिक) है। वह बोहरों के लिए रूहानियत का द्वार है। कुरआन के अन्दर का अर्थ (Lesotenic Meaning) सैय्यदना ही जानते है ऐसा बोहरों के मत में मानना है

## 18.6 सारांश

संक्षेप में दाऊदी बोहरा शिया इस्माईली है। यह गैर अरबी (Non–Arabic) है। यह फारस (ईरान), सीरिया, मिश्र (Egypt) और यमन से आकर यहां भारत में आ बसे। बोहरे बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में धर्म परिवर्तन से शिया मुसलमान हुए। गुजराती में धावार शब्द से बोहरा शब्द लिया गया है। यह अधिकतर गुजराती व्यापारी हैं। यह बोहरे अफ्रिका, मैडागास्कर, किनिया, तनजानिया, मिडल ईस्ट, सिलोन, बेनकाक, सिंगापुर, युके, पाकिस्तान, अमरिका और केनाडा में बसे है। यह हर स्थान में तादाद में कम है। जैसा कहा जा चुका है कि यह सैय्यदना के अधिन है। यह सैय्यदना को इमाम दाई (Dai) और अमिर उल मोमेनिन मानते है । सैय्यदना बोहरों से जकात वह अन्य टेक्स लेते है। बोहरों में एक तबका (Modern) और शिक्षित लोगों का है जो सैय्यदना के मनमाने अधिकार का विरोध कर रहे है। सैय्यदना टेक्स और रकम न देने पर सजाऐं देते है। शादी, ब्याह, तलाक, हर बोहरे की धार्मिक जीवन में सैय्यदना का मदारखलों है सैय्यदना इन्हें बोहरा जाति से निकाल देते है (Ex Comminicate)

कर देते है। अगर कब्रस्तान में कोई लिबास पहन कर नहीं गया तो उसे याचना दी जाती है। जय प्रकाश नारायण ने इनके विरूद्ध नाथानी कमीशन (Nathani Commission) कायम किया जिस ने भारत में इस सम्प्रदाय के दाई (Dai) द्वारा rule & law और संविधान के विपरीत कार्य करने की बात कही।

यह प्रश्न 47 वें दाई (Dai) अब्दुल कादर नजमुद्दीन के दाई या सैय्यदना बनाये जाने पर भी उठी। नई शिक्षा के अधीन बोहरा उलमा ने सैय्यदना अब्दुल कादिर नजमुद्दीन के सैय्यदना नियुक्त किये जाने को चेलेंज किया। इक्कियानवे सैय्यदना ताहिर सेफ्दीन के विरूद्ध भी ब्रिटिश सरकार के युग में सवाल उठा कि सैय्यदना जो यातनाएं देते है वह बंद की जायें और वह मनमाने टेक्स बंद करें। लेकिन फिर आपस में सुलह हो गई। Ortho–dox लोगों पर सैय्यदना का काफी प्रभाव था। अभी 52 वों सैय्यदना मोहम्मद बुरहानुद्दीन है। इन के भी विरूद्ध में बम्बई, उदयपुर और कई जगह सैय्यदना की हैसियत को चेलेंज किया गया है। अब बोहरों में एक बागी गिरोह उदयपुर और बम्बई व अन्य जगह है।

सैय्यदना के खानदान के (6) सैय्यदनाओं का शजरा निम्न है।

1. सैय्यदना अब्दुल कादर नजमुद्दीन 47 वें सैय्यदना
2. सैय्यदना अबुल हुसैन हिमानुद्दीन 48 वें सैय्यदना
3. सैय्यदना मोहम्मद बुरहानुद्दीन 59 वें सैय्यदना
4. सैय्यदना अब्दुल्ला बदरूद्दीन 50 वें सैय्यदना
5. सैय्यदना ताहिर सेफद्दीन 51 वें सैय्यदना
6. सैय्यदना मौहम्मद बुरहानुद्दीन 52 वें सैय्यदना

सैय्यदना का नियंत्रण बोहरा कौम पर काफी है। यह एकेश्वरवादी है। इन की सूफी परम्परा में ईश्वर की भक्ति और सैय्यदना की Divinity में लीन होनें को न मानने पर अधूरी है। इन के अधिक आमिल इन के अधीन उल्मा है। रूहानी सिलसिला सैय्यदना की विलायत का हिस्सा है। यह वहदल का वजूद और हलूल (fusion) के नजरयें को मानते है। जिक्र और फिक्र को ईश्वरीय ज्ञान का जरिया मानते है।

बोहरों में अज़ान मुसलमानों से बिल्कुल अलग होती है। बोहरे अपने गैर–मुस्लिम विचारों के कारण गुजरात के सुल्तानों द्वारा इतिहास में सजाऐं पाने वाली कौम (Persecuted race) रहे हैं।

## 18.7 संदर्भ ग्रन्थ


1. The orgines of Ismailism - Lewis
   1, 93
2. The Development of Metaphysies in Persia
   Dr. Iqbal
3. Muslim Theology (Trition) P.21
4. शजरा (Geneological descent) सैय्यदना (छ दाई का)

अलवाई अल–अजल्ला सैय्यदना अब्दुलकादर नजमुद्दीन राजिअल्ला (अल्ला उनसे खुश हो),अलदाई–अल–अजल्ला सैय्यदना अब्दुल हु सैन हिसमुद्दीन रजि अलदाई अल–अजल्ला सैय्यदना बुरहानुद्दीन रजिअल्ला, अलदाई अलअजल्ला सैय्यदना ताहिर से सेफुद्दीन रजि अल्ला अलदाई अजल्ला सैय्यदना मोहम्मद बुरहानुद्दीन

5. (Literary History of Arabia) R.L. Nicholson

# इकाई – 19
# सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद

**इकाई की रूपरेखा**

19.1 उद्देश्य
19.2 प्रस्तावना
19.3 सूफी और सूफी मत का अर्थ
19.3.1 सूफी मत का दर्शन
19.3.2 सूफियों का जीवन
19.3.3 सूफीमत का दर्शन एक नया पहलू और उनके केन्द्र स्थान
19.4 हिन्दू रहस्यवाद
19.5 सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद में समानता
19.6 सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद में अन्तर
19.7 सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद एक दूसरे पर प्रभाव
19.8 सारांश
19.9 शब्दावली
19.10 संदर्भ ग्रन्थ

## 19.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य निम्न बातों की जानकारी देना है जिससे पाठकों को ज्ञात होगा :–

1. सूफी और सूफीमत क्या है?
2. सूफीमत में आत्मा और परमात्मा का संबंध
3. हिन्दुओं के यहां ईश्वर ज्ञान और आत्मा पर क्या विचार है।
4. सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद का अन्तर

इन समस्त बातों पर प्रकाश डाला गया है जिस से भारत में मुस्लिम सूफी वाद और हिन्दू रहस्यवाद के रूहानी रिश्तों के बारे में समझने का अवसर मिलेगा।

## 19.2 प्रस्तावना

हमने इस इकाई में प्रस्तुत किया है कि सल्तनत की और इससे पूर्व सूफीमत ने भारतीय जीवन सभ्यता और संस्कृति और दर्शन पर क्या प्रभाव डाला हमने बहस की है और यह भी कि सूफीमत और सूफी से हमारा क्या अर्थ है। सूफी मत का रूहानियत का क्या सन्देश था इस अध्ययन से उस समय सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद का चित्र सामने आता है आत्मा और परमात्मा के ज्ञान का पता चलता है।

सूफी परम्परा का उल्लेख किया गया है। यह कि सूफीवाद के एकेश्वरवाद के विचार ने भारत के रहस्यवाद को प्रभावित किया।

हिन्दू रहस्यवाद को इस इकाई में समझाया गया है रहस्यवाद का आत्म ज्ञान का दर्शन किया था इस विचार से बहस की गई है।

रहस्यवाद के अवतार वाद और आत्मा के आवागमन के विचार पर प्रकाश डाला गया है और रहस्यवाद के अन्य पहलुओं की चर्चा की गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसके अध्ययन से मनुष्य की आत्मा और परमात्मा की जानकारी मिलती है। हमने सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद में समानता और अन्तर को उजागर किया है।

## 19.3 सूफी और सूफीमत

इस्लामी रहस्यवाद को ही सूफीमत कहा जाता है जो इस्लाम धर्म को ही सूफीमत कहा जाता है जो इस्लाम धर्म में ईश्वर प्राप्ति का एक जरिया था साधन है सूफी वह होता है जो सूफीमत के तस्व्वुफ के मार्ग को अपनाता है इस्लामी विधि अनुसार भक्ति में लीन होकर ईश्वर को पाता है सूफी के नजदीक संसार व्यर्थ है एक सराय है एक असत्य है सत्य तो ईश्वर जिस के साथ इस संसारिक जीवन के बाद उसे उसके साथ रहना है सूफी का लक्ष्य ईश्वर और स्वर्ग है इस्लामी मोक्ष है ईश्वर के निकटतम होना और उस की प्राप्ति और उसमें के करीब होना है और उसका दर्शन उस की आत्मा की मंजिल है।

तस्व्वुफ उसका साधन है तस्व्वुफ या सूफिइज्म जिसे सूफी अपनाता है क्या है? उसका जानना आवश्यक है।

सूफी शब्द का अर्थ है ऊन या पश्मीना जो साफ और नर्म होता है इस से तात्पर्य यह है कि सूफी का हृदय उन की तरह होता है और नर्म होता है। एक आईने की भांति जब ही तो वे ईश्वर को अपने हृदय के आईने में दर्शन कर सकता है कुछ का मानना है कि इस की उत्पत्ति सूफी शब्द से है जिस का अर्थ है पाक साफ एक अन्य विचार है जिसे इस्लामियत में तहकीक के बाद सत्य माना गया है कि इस की उन्नति सूफी शब्द से है जिस का अर्थ होता है चबूतरा मोहम्मद साहब के युग में मदीने में मस्जिद नब्बीं के सामने चबूतरा एक स्थान था जहां उनके भक्त बैठकर ईश्वर का ध्यान किया करते थे। इबादत करते थे यह अहले सूफी कहलाते थे यानी चबूतरों पर बैठने वाले लोग ईश्वर भक्ति में लीन लोग थे मोहम्मद सा. के 'भक्तगण यही लोग थे वैसी ही साधना करने वाले सूफी कहलाये एक शब्द एक यह भी है कि यह यूनानी शब्द सुव से लिया गया है जिसका अर्थ है ईश्वरीय बुद्धि परन्तु जिस पर समस्त मुस्लिम विद्वान सहमत है वे यह है कि यह शब्द सूफ्फा से लिया गया है और सूफी से यह अहले सूफ्फा ही मुराद है।

### 19.3.1 सूफीमत का दर्शन

सूफ एकेश्वरवाद के सिद्धान्त वहदल–अल–वजूदको मानते है जो इस्लाम धर्म की बुनियाद है विद्वान लोग आत्मा और परमात्मा की एकता के सिद्धान्त को मानते थे संसार की सृष्टि का रचमा पर आत्मा (खुदा) है। आसमान और जमीन और उनमें हर जीव का पैदा करने वाला ईश्वर है सृष्टि की विभिन्नता में ईश्वर की एक रूपता है और समस्त देखे जाने वाले पदार्थो के पीछे ईश्वर ही वास्तविकता है कुछ ही सत्य और एक रूपी है। शेष शून्य व असत्य है वहदल–अल–वजूद के इस सिद्धान्त का वर्णन शेख मुहीउद्दीन अल अरबी (1165–1240 ई.) ने

अपने ग्रंथ फुतुहात–ए–मक्तिया में किया है सूफी आत्मा परमात्मा शुद्ध संबंध के सिद्धान्त पर विश्वास करते है आत्मा मारिफ के रास्ते ईश्वर के निकट हो जाती है और उसके जल्वे में लीन हो जाती है एकेश्वर वाद का यही सिद्धान्त है इसने अरबी ने इन शब्दों में अपने विचारों को अपने ग्रंथ में व्यक्त किया है।

"ईश्वर के सिवा कुछ नहीं है ईश्वर के अतिरिक्त वहां किसी का अस्तित्व नहीं है वहां जैसा भी कुछ नहीं है और सभी चीजों का सार एक ही है।"

इब्ने अरबी ग्रंथ फुतुहात–ए–मक्किया हिन्दू फलसफा दर्शन के अनुसार सूफी शरीर के नष्ट होने और अत्मा के सत्य होने को मानते है डा. आशीर्वादी लाल श्री वास्तव (मध्य कालीन भारतीय संस्कृति) के कथनानुसार सूफी लोग ईश्वर से सीधा सम्पर्क स्थापित करने के लिए आतुर रहते थे और वे आत्मा के परमात्मा में लीन हो जाने की सम्भावना पर विश्वास करते थे। सूफी इस धुन में खो जाते थे और एक क्षण के लिए परमात्मा से ध्यान नही उठाना चाहते थे। परमात्मा में लीन होने की इस व्यवस्था को सूफी मारिफत था ईश्वर ज्ञान का नाम देते है और यह ईश्वर में लीन या वस्ल (एकीकरण) की व्यवस्था है। यह (अस्तित्व को खतम करके) के बाद बफा (अस्तित्व) जीवन जिंदगी की मंजिल है। अल्लाह या ईश्वर में लीन हो जाना (फना फिल्ला) है। कि अरबी भाषा में अन्दर या में को कहते है अर्थ हुआ अल्लाह में फना हो जाना और यही बका (नया जीवन) का मकान (स्थान) है। जिसे सूफी मानते है और जो उनका लक्ष है। और यह फना पिश्शेख बगैर गुरू पीर, मुर्शिद की सहायता के सम्भव नहीं और पैगम्बर के रास्ते के द्वारा (फना फिंररसूल) मार्ग से ही ईश्वर प्राप्ति (फना फिल्ला) मुमकिन है। ईश्वर प्राप्ति की सूफियों के नजदीक यह तीन स्थान फना फिराशे, फना फिंररसूल, फना फिल्ला है।

परमात्मा में लीन हो जाने की इस यात्रा में 10 अवस्थाओं का पालन करना सूफी को ईश्वरीय ज्ञान के लिए आवश्यक है। वह क्रियाऐं है तोबा (पश्चाताप) वरा (विक्ती), जुहर (पवित्रता) फुक्र (निर्धनता), सब्र (धैर्य), शुक्र (क्रतज्ञता), खौफ (भय) रजा (आशा), तवक्कुल (सन्तोष) और रिजार ईश्वर की मरजी (इच्छा)

सूफियों के दो लक्ष्य मुख्य थे। 1. परमात्मा से सीधा बौद्धिक और भावनात्मक सम्पर्क, 2. मानवता की सेवा करना और इस्लाम और सूफी दर्शन पर प्रवचन करना और अभ्यास यह केवल मुसलमानों तक ही सीमित नहीं था मुस्लिम सूफी सन्तों द्वारा हिन्दुओं और समस्त जातियों के हिन्दुओं को इस्लाम के प्रभु ज्ञान पर उपदेश दिये जाते थे जिस से प्रभावित होकर वह मुसलमान हो जाते थे। इस प्रकार इस्लाम का प्रसार सूफी सन्तों द्वारा एक मिशन भी था और यूं इस्लाम में हिन्दू जाति के धर्म परिवर्तन में सूफियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस में सूफियों का पूर्ण ज्ञान और करामतों ने बड़ा कार्य किया। ईश्वर की सन्तुष्टि और दर्शन जिस के लिए आत्मा भटक रही थी। सूफी सन्तों ने इस दिशा में कोई भेद भाव नहीं किया ईश्वरीय ज्ञान वे समस्त मानव जाति को देते थे जिस में वे पूर्ण थे। वे ईश्वर और सत्य का मार्ग बतलाते थे जिसे मनुष्य आत्मा वेदान्त और अन्य ग्रंथों धर्मों और सम्प्रदायों में तलाश करने के लिए भटक रही थी। वे सर जो सम्राटों के सामने नहीं झुके वह इन निहत्ते फकीर दरवेश सन्यासी भिक्षुओं फाके करने वाले सूफी सन्तों के चरणों में झुक रहे थे। अब वह उनके द्वारा ईश्वरीय ज्ञान और

दर्शन पा रहे थे जिस के लिए सदियों से उनकी आत्मा भटक रही थी। यह सदा ये अनलहक (में सत्य हूं) थी जिस का प्रभाव विचारों और उनकी आवारा आत्माओं पर सीधा पढ़ा।

### 19.3.2 सूफियों का जीवन

यह सूफी सन्त खानकाहों में रहते थे। खानकाह और जमाअत खाने नगर से बाहर अलग–थलग हरिजन और दरिद्र गरीब जातियों की बस्तियों के निकट होती थी। यह खानकाह मिट्टी और घास फूस की होती थी। यहां सूफी सन्त जमाअत खाने में बैठकर अपने शिष्यों को ईश्वरीय ज्ञान की जानकारी और सूलूक के नियम बतलाते थे। आत्म ज्ञान का अभ्यास कराते थे। उस पर प्रवचन और उपदेश देते थे। यह गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे। उनकी बीवी (पत्नियां) और बच्चे भी होते थे। गरीबी का जीवन व्यतीत करते थे। यह तरीका हिन्दु योगियों से भिन्न था जो स्त्री मोह को सन्यासी की राह में बाधा मानते थे। उनकी आजीविका का मुख्य साधन सर्वसाधारण द्वारा स्वेच्छा से दी गयी भिक्षा या भेंट थी। उनमें से कुछ खेती द्वारा भी जीविका कमाते थे जैसे हमिदुद्दीन नागौरी या सरवाड़ में ख्वाजा सा. के पुत्र फकरुद्दीन परन्तु चिश्तियों के विपरीत सुहरावर्दी संप्रदाय के सूफी सुल्तानों द्वारा दी गयी भेंट स्वीकार करते थे लेकिन सूफी संप्रदाय उनके ठाट–बाट के जीवन और राजनीतिक संबंधों पर खुले आम आलोचना करते थे।

सूफी सन्तों का जीवन वह ही था जिस का उदाहरण चिश्तियों के सम्प्रदाय और जीवन और शिक्षा में प्रस्तुत था ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती और उनके संप्रदाय और कुल ने जिसमें ख्वाजा बख्तियार काकी, बाबा फरीद गंज शकर और निजामुद्दीन औलिया प्रमुख थे। सूफी मत का प्रसार समस्त भारत में उनके द्वारा हुआ जिसकी गहरी छाप भारतीय जीवन और दर्शन पर पड़ी और भारतीय समाज में एक बड़ा परिवर्तन आया और भारतीय इतिहास में एक नथे अध्याय का इजाफा हुआ और इस्लामी सूफी दर्शन का भक्ति काल और भारतीय दर्शन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

जैसा कि हमने वर्णन किया है कि चिश्ती सिलसिले (सम्प्रदाय) के लोग सुल्तानों के दरबार में नहीं जाते थे। राजनीति और शासन की सेवाओं से दूर रहते थे। उनके प्रति उदासीनता के भाव रखते थे। दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते थे। वे व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं रखते थे। शेख अल शयूख सुल्तान उल हिन्द ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती और शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का अपना कोई घर नहीं था। शेख फरीदगंज–ए–शंकर ने जब उनका परिवार बढ़ गया तब कहीं जाकर उन्होंने अपने लिए कच्चा मकान बनवाया। साधारणतः चिश्ती सन्तों के घरों में सदैव भूख की स्थिति बनी रहती थी। केवल 13वीं शताब्दी में हमीदुद्दीन नागौरी कृषि करके अपना जीवन व्यतीत करते थे। जीविका के लिए सम्राट से भेंट स्वीकार नहीं करते थे।

### 19.3.3 सूफीमत के दर्शन का नया पहलू और उनके केन्द्र स्थान

इस्लाम का एक रूप तो था और उनके केन्द्र स्थान शासको का। आक्रमणकारियों का। साम्राज्यवाद का। शक्ति प्रदर्शक का। खून खराबे, कत्ल और भय का। पराजित कौम अपना सब कुछ विजेता को समर्पित करने को बाध्य थी। धर्म परिवर्तन मौत के भय और सुरक्षा की दृष्टि

से था या पदों के प्रलोभन से चाहे कुछ भी हो परन्तु मुसलमानों की शक्ति का यह रूप अत्यंत शक्तिशाली था। राजनैतिक उथल–पुथल और अत्याचारों का वातावरण उभर कर सामने आया। लेकिन मुसलमानों के आगमन से इस्लाम धर्म का जो रूप आया उसने भारत में मुसलमानों के इस्लाम का माननीय रूप सामने रखा। संसार के उन युद्धों से जो धर्म के नाम पर जिहाद या सलीब की जंग के नाम से लड़ी गई सूफीवाद ने धर्म का वह रूप रखा जिस का आधार मानवता थी। मानव का धर्म एक दूसरे पर आतंक नहीं साम्राज्यवाद या मानव शोषण नहीं वह तो अपने प्रभु की तलाश थी सत्य की खोज थी। ईश्वर की प्राप्ति थी जिसका मार्ग न्याय और भक्ति का मार्ग या इस सूफी परम्परा के दर्शन ने भारतीय जीवन की काया ही पलट दी। सदियों से सन्यासियों की आत्मा जिस की खोज कर रही थी सूफी मुस्लिम दर्शन ने उसके साक्षात् दर्शन कराये। हमारा मुस्लिम धर्म के देखने का दृष्टिकोण ही बदल गया। यह दृष्टिकोण में परिवर्तन सूफी इज्म (इस्लामी रहस्यवाद) की देन थी।

यूं तो सूफी सन्तों का आगमन 11वीं सदी से आरम्भ हो चुका था। महमूद गजनवी के साथ 1033 ई. में सैयद सालार गाजी और बाद में अली हुजवेरी भारत आ चुके थे और उन्होंने पंजाब, मुल्तान और सरहिन्द प्रान्तों को प्रभावित किया। शेख अली हुजवेरी दाता गंज बख्श लाहौर में केन्द्रित हो चुके थे जहां उनकी मृत्यु हुई और जहां आज उनका मजार है। 12वीं और 13वीं शताब्दी में सूफीयों के सिलसिले (सम्प्रदाय) और शिष्यों ने सूफी सम्प्रदाय के सन्देश को फैलाया। इस काल में (13वीं शताब्दी) में जिस सूफी सम्प्रदाय (सिलसिले) ने समस्त भारत को प्रभावित किया वे ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का चिश्तिया सम्प्रदाय था। चिश्तिया सूफी संतों के सत संग में योगी भी वार्तालाप में शामिल होते थे। ईश्वरीय ज्ञान का केन्द्र चिश्तिया सम्प्रदाय की खानकाह थी। संक्षेप में ख्वाजा का वर्णन यह है कि वे सीस्तान के संजर नगर से आये। आप की माता हसन घराने की थी और पिता हुसैन वंश से थे। आप का रूजहान (झुकाव) आरम्भिक आयु से रहस्यवाद की ओर था। आप शेख इब्रहीम कन्दोजी के सम्पर्क में आकर सन्यासी हो गये। समरकन्द, बुखारा और अन्य स्थानों पर भ्रमण करके आप निशापुर आये। वहां ख्वाजा उस्मान हारूनी के मुरीद (शिष्य) बने और मुहम्मद सा. की आत्मा की प्रेरणा से भारत आये और अजमेर में बस गये और अजमेर मारिफत यानी इस्लामी रहस्यवाद का केन्द्र बन गया। मारिफत के ज्ञान को उनके शिष्य बख्तियार काकी देहली, शेख फरीद शंकर गंज, उनके शिष्य और खलीफा शेख निजामुद्दीन औलिया नसीरूद्दीन नागौरी गैसू दराज ने फैलाया।

सूफी सम्प्रदाय में चिश्तिया सिलसिला ही ऐसा था जिस ने राज्य की शरण नहीं ली। इस सम्प्रदाय के द्वारा सिलसिले के फैलना का श्रेय मुसलमान बादशाहों को नहीं जाता। अगर चिश्ती सूफी सन्त ख्वाजा से चाहते तो बड़ी से बड़ी जागीर मदद के लिए ले सकते थे। परन्तु वे संसार से अलग–थलग ईश्वर ज्ञान में लीन रहते थे। वे खानकाह या पहाड़ की गुफा में चिल्ले करते थे। ईश्वर प्राप्ति के लिए भक्ति करते थे। यह दरवेश सूफी सन्त साधु सन्तों की तरह अलग–थलग सन्यासी का जीवन व्यतीत करते थे। वे गरीबी का जीवन गुजारते थे। कई–कई दिन फाके करते थे। भूखे–प्यासे ईश्वर के नाम का इस्लामी विधि से जप करते थे। नमाजें पढ़ते थे और रातों को ईश्वर का जिक्र और फिक्र करते थे। सूफी मत ने अपनी साधना और

जीवन से हिन्दू रहस्यवाद और भक्ति आन्दोलन को प्रभावित किया वैदिक दर्शन के अनुसार हिन्दू सन्यासी जो पहाड़ों पर तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहे थे और सत्य की खोज कर रहे थे सूफी सन्तों के जीवन में से उसके दर्शन कर रहे थे त्याग, भक्ति, तपस्या दोनों के यहां ईश्वर प्राप्ति के समान साधन थे। सूफी सन्तों के विचारों से सन्त वर्ग और आम हिन्दू जनता प्रभावित हुए नही रह सकी। ईश्वर प्राप्ति का मार्ग मुसलमान सूफियों का मार्ग था सत्य की खोज का मार्ग जिस ने भारत दर्शन को परिवर्तित किया और सत्य की खोज की दिशा दिखाई।

## 19.4 हिन्दू रहस्यवाद

प्राचीन भारतीय हिन्दू मत के अनुसार भारत के सन्त, योगी और दार्शनिक जीवन संसार की सृष्टि, उस के रचियता, जीवन–मरण, आत्मा–परमात्मा आत्मा के परमात्मा से संबंध, जीवन–मरण से छुटकारा पाने के लिए मोक्ष जैसे विषयों के बारे मे सोचते रहे जो हिन्दू रहस्यवाद कहलाया गया। आर्यों बौद्ध धर्म और जैन धर्म से प्रेम परमात्मा के बारे में विचार रखा मोक्ष की प्राप्ति के तीन मार्ग बतलाये गये। 1. ज्ञान, 2. कर्म, 3 भक्ति। भक्ति मार्ग ही रहस्यवाद का मार्ग था जो आत्मा ज्ञान और ईश्वर ज्ञान देता है जिसके रास्ते थे त्याग, तपस्या योग, भक्ति और भक्ति से ही आत्मज्ञान, ईश्वर ज्ञान प्राप्त होता है। मोक्ष का एक मात्र साधन भक्ति है जौ हिन्दू रहस्यवाद की बुनियाद है। उपनिषदों और वेदान्त दर्शन में सत्य की खोज की जाती रही। जो हिन्दू रहस्यवाद का मुख्य लक्ष्य रहा।

हिन्दू रहस्यवाद में ब्रम्हा को सर्वश्रेष्ठ माना गया लेकिन विष्णु, महेश को भी अलग कार्य का कर्त्ता माना गया। यों ब्रम्हा एक रूपी होते हुए भी उस के कार्य में विष्णु और महेश के हस्तक्षेप को माना गया। एक रूपी और ब्रम्हा के एकेश्वर होने पर भी उस के कार्य को विभाजित करके बहु देवता वाद को हिन्दु रहस्यवाद में जन्म दिया गया। ईश्वर प्रेम सत्य है। सर्वशक्तिमान है। भक्त वह है जो ईश्वर को पा लेता है।

श्रीमद् भगवद गीता में कृष्ण के अर्जुन को प्रवचन द्वारा ज्ञान हुआ कि आत्मा नहीं मरती केवल शरीर नष्ट होता है। आत्मा शुद्ध होगी तो ईश्वरीय ज्ञान होगा। आत्मा की शुद्धि के लिए मन की शुद्धि आवश्यक है। प्रभु दर्शन के लिए मन को शुद्ध होना चाहिए। भारतीय हिन्दू रहस्यवाद में आत्म ज्ञान के बाद ही ईश्वरीय ज्ञान है। मन की शुद्धि पर मुस्लिम सूफी मत में भी जोर है। हिंदू रहस्यवाद में हूलुल के नजरये (विचार) को माना गया है। भगवान इन्सान के रूप में जन्म लेता है राम और कृष्ण का अवतार उसी कार्य का ही एक रूप है। और यूं हिन्दू रहस्यवाद में अवतारवाद को इस विचार के अन्तर्गत मान्यता है राम, रहीम ईश्वर के अनेक नाम है। सन्त कबीर भक्ति काल के कवि का यही मत है। हिन्दू रहस्यवाद में अवतारवाद को माना है। हिन्दू रहस्यवाद में आत्मा का आवागमन होता है। आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है। जन्म–मरण का चक्र पुनर्जन्म होता रहता है चलता रहता है पुनर्जन्म होता रहता है पुनर्जन्म जब तक मोक्ष नहीं होता इससे छुटकारा मोक्ष की प्राप्ति के बाद होता है। साधू, सन्त, मुनि, योगी, भक्ति की साधना मोक्ष के लिए करता है। शरीर को कष्ट देता है। तपस्या करता है। हिन्दू रहस्यवाद से भक्ति शरीर को कष्ट देने को मान्यता दी गई जैसे जैन मत और योगी और साधु सन्तों की शरीर की यातनाओं से प्रकट होता है। एक पांव से खड़ा होना सर के बल

लटक कर तपस्या (इबादत) करना हिन्दु रहस्यवाद और धर्म के अनुसार ईश्वर प्राप्ति के लिए आवश्यक माना गया।

संसार नष्ट होने वाला है। फना नष्ट होने का विचार हिन्दू रहस्यवाद का विचार है। इस से हिन्दू रहस्यवाद में संसार को त्यागने के मत ने जन्म लिया। साधु सन्त संसार को त्याग कर पहाड़ों और जंगलों में चले गये जहां दुनिया से अलग–थलग रहकर वह ईश्वर भक्ति में लीन होते थे। त्याग का उसूल हिन्दू रहस्यवाद से मुख्य है। हिन्दू रहस्यवाद में आत्मा ज्ञान और ईश्वर ज्ञान बिना गुरु को प्राप्त नहीं किया जा सकता। ईश्वर तक पहुंचने के लिए गर को आवश्यक जाना गया। संसार माया जाल है। शून्य है यूं यह रहस्यवाद में शून्य वाद के नजरये ने प्रवेश किया।

हिन्दू रहस्यवाद में निर्गुण और सर्वगुण ईश्वर के रूप है। ईश्वर का कोई आकार नहीं एक मत ऐसा है जिसके अनुसार मूर्ति पूजा मान्य नहीं। सन्त कबीर, गुरूनानक मूर्ति पूजा का विरोध करते थे। दूसरा मत था ईश्वर को रूप में देखा जा सकता है इसलिए वे मूर्ति पूजा करते थे। मूर्ति पूजा ईश्वर पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए थी। इसने देव मूर्ति के विचार या देवतावाद को हिन्दू रहस्यवाद में जन्म दिया। हिन्दू रहस्यवाद में बौद्ध मत की विचार धारा के तहत ध्यान पर अधिक जोर है जो मुस्लिम सूफी मत में मुराकबा है। जिसके बारे में आर. सी. जहनर के अनुसार भारतीय बौद्ध मत से है और निकालसन के मत से ईसाई मत का प्रभाव बताते है हिन्दू रहस्यवाद में मौन की साधना (जुबान और दिल) पर जोर दिया गया है। उपवास रखकर चुप रह जाते है। और एकान्त में बैठकर ध्यान करने की कृपा है रामानुजम ने संसार के मामलों से दूर रहकर शांत रहकर हिन्दू ग्रंथ (टेक्स) के अध्ययन पर जोर दिया है कि वह प्रभु का मार्ग बतलाती है। हिन्दू रहस्यवाद के अंतर्गत शरीर को योगियों ने दो भागों में माना है। ऊपरी भाग और निचला भाग, उपरी भाग को सच्चाई नम्रता से पाक किया जाये और निचले भाग को शुद्ध और पवित्र रखा जाये। शरीर की शुद्धता ईश्वर के करीब करती है। योगियों का तपस्या सिद्धान्त वेदान्त और क्लासिकी भक्ति से है। आत्मा और परमात्मा की पहचान ज्ञान को उपनिषद से लिया गया है।

भगवद गीता में कर्म की थियोरी और ईश्वर के मनुष्य की शक्ल में आने का नजरिया है हिन्दू रहस्यवाद में कर्म और अवतार वाद को मान्यता है। हिन्दू रहस्यवाद में निर्माण (मुक्ति, निजात) का विचार बौद्ध धर्म से लिया गया है जो योग, भक्ति और कर्म से मिलता है। हिन्दू रहस्यवाद में तीनों की अराधना है।

रामानन्द ने ईश्वर को राम माना। रामा ईश्वर का अवतार या धारण रूप है। रामानन्द के भक्ति साधना के आधार पर पैराओं को दो प्रकार में बांटा जा सकता है। एक वे जिन के नजदीक राम ईश्वर है। दूसरे कृष्ण का रूप भगवान का रूप मानते है। कृष्ण वासना रहस्यवाद का मत की जड़ें हिन्दूमत में है और दूसरे गोपियों और राधा के बीच कृष्ण की भगवान लीला है हिन्दू रहस्यवादी भक्त सन्त थे निम्बार्क (12वीं शदी) वल्लभाचार्य 15वीं शताब्दी और चैतन्य भक्त थे। कृष्ण अलबेरूनी ने वासुदेव कृष्ण के मुक्ति पर विचारों के हवाले दिये। ईश्वर की नजर में सब बराबर है ऐसा भगवद गीता का उपदेश है। इसी प्रकार राम (राम का नाम) जपना मुस्लिम सूफियों के ईश्वर के नाम के जिक्र से मिलता–जुलता है। कबीर के नजदीक ईश्वर का

नाम ही राम है लेकिन फिर भी हिन्दू देवता, ब्रम्हा, विष्णु और सिवा महेश संसार का अलग–अलग काम करते है। कबीर के कथन अनुसार सृष्टिकर्त्ता सृष्टि कि गये दोनों उनकी आत्मा में एक है। कबीर पंथी सब मानव को बराबर मानते हैं। आवागमन को मानते हैं। प्रेम भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति और दर्शन चाहते है। मीरा के प्रभु गिरधर गोपाल कृष्ण है। वे कीर्तन भक्ति से अपने स्वामी का दर्शन करना चाहती है। उनका मार्ग प्रेम मार्ग था।

दादू दयाल (1544–1603) वे सूफीमत के ज्यादा करीब थे। वे सुहरावर्दी सिलसिले की भांति ईश्वर के प्रकाश रूप (नूर) पर जोर देते थे। वे भी कबीर की तरह राम को ईश्वर मानते थे।

हिन्दू रहस्यवाद में एक सन्यासी सन्तों, योगियों का ऐसा था जो जटाधारी था जंगल में, पहाड़ों और वीरानों में ईश्वर की तलाश करते थे। तपस्या करते थे। योगी क्रियाऐं साधना, आसन समाधि में लीन होते थे। वे मस्ती में रहने के लिए भंग, हशिश और अफीम खाते थे।

यहां हिन्दू रहस्यवाद का वर्णन अधूरा रहेगा अगर हम वाल्मीकि का वर्णन नहीं करे। बाल्मीकि ईश्वर को निराकार मानते थे। वे एकेश्वर वाद को मानते थे। ईश्वर को संसार का रचियता मानते थे। वे ईश्वर है (हमाओस्त) उससे सब कुछ है। (हमा अजउ्सत) उस में सब कुछ है (हमादरहमा) वे इल्हाम ईश्वर के सपने में आने को मानते थे। वे रोया (सपने में) ईश्वर के प्रकट होना को मानते थे। रामायण में उन्होंने कहा ब्रम्हा सपने में आये कि और राम के घटित होने से 4000 हजार साल पहले ब्रम्हा ने कहा ब्रहेमनजादे ये रचना लिखा।

## 19.5 सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद में समानता

सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद में यहां निम्न समानताऐं थी –

1. दोनों एकेश्वरवाद को मानते थे।
2. दोनों आत्मा को मानते थे।
3. सूफीमत में ईश्वरीय ज्ञान मारिफत द्वारा है। हिन्दू रहस्यवाद भक्ति को मानते है।
4. सूफीमत में जिक्र ईश्वर के नाम लेने मारिफत का तरीका है शत्तारी सिलसिला में अल्लाह के नामों का जप किया जाता था। जैसा गौस ग्वालियरी ने बतलाया यह ईश्वर के करीब होने का आसान मार्ग है। हिन्दू रहस्यवाद में भी ईश्वर का नाम जपने पर जोर ओम या राम के नाम के जिक्र पर जोर है जो ईश्वर का ही नाम है।
5. सूफीमत में ईश्वर को नूर माना गया है। ईश्वर की तजल्ली प्रकाश का जिक्र है। सुहरावर्दी ईश्वर के नूर होने को मानते है। रहस्यवाद ईश्वर के प्रकार या नूर होने को माना है कुरान, जोरास्तर और जियोनिस्ट और हिन्दू ग्रन्थों में ईश्वर का प्रकार रूप है। कुरान में जिक्र है। पैगम्बर मूसा ने ईश्वर से उसे देखने के लिए कहा (रवे अरनी अे ईश्वर मै तुझे देखना चाहता हूँ ईश्वर ने कहा तुम मुझे नहीं देख सकते। फिर ईश्वर ने पहाड़ पर अपना प्रकाश डाला, पहाड़ पर वस्तु जल गई और मूसा बेहोश हो गये।

6. हिन्दू रहस्यवाद हृदय की पवित्रता पर जोर देते है। सूफीमत में हृदय ऊन या पश्मीने की तरह साफ और पाक माना गया है वह सूफ़ है दर्पण की तरह साफ जब ही तो ईश्वर की तस्वीर दिल में नजर आयेगी। तब ईश्वर के दर्शन सम्भव होगा।
7. हिन्दू रहस्यवाद में भक्ति से तपस्या सन्यास, अभ्यास और समाधि में लीन होने और ईश्वर ध्यान को ईश्वर प्राप्ति के लिए बतलाया गया है सूफी भी जिक्र, फिक्र, ध्यान, बजदान द्वारा ईश्वर तक पहुंचते है।
8. सूफी मत में समा को माना है। चिशतिया सिलसिले में समा और रक्त वज्द के लिए मान्य है। हिन्दू रहस्यवाद में भजन और कीर्तन और नृत्य को भक्ति माने गये है जब ही तो ईश्वर ज्ञान होगा।
9. रहस्यवाद में करामत जैसे हवामे उठाना रहस्य पूर्ण है, सूफी भी ऐसी करामत बतलाते है।
10. रहस्यवाद में बिना गुरू के ईश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता। चेले और शिष्य की परम्परा है। सूफी वाद में मुर्शिद, पीर, गुरू के मारिफत (ईश्वरज्ञान) सम्भव नहीं उनके यहां पीरी और मुरिदी है जो सिलसिला कहलाता है यूं कुल या सम्प्रदाय कहलाये।
11. हिन्दू रहस्यवाद में हूलूल का नजरया है। अवतारवाद है। मनुष्य योनी रूप में आ सकता है सूफी मत के बाद के सम्प्रदायों में जैसे बोहरों में दाई में ईश्वर की आत्मा हलूल करती है। हालांकि मुस्लिम समस्त सूफी संप्रदाय की इसे मान्यता नहीं। बोहरा सैय्यदना दाई में ईश्वर हूलेल है।
12. सूफीमत में जैसे शत्तारी सिलसिले के लोग जंगलों में रहते, जंगली फल खाते और बड़े कष्ट में जीवन व्यतीत करके इबादत करते थे। हिन्दू रहस्यवाद में भी सन्यासी जंगलों में और पहाड़ों पर रहते और तपस्या करते यह दोनों के यहां समानता है।
13. कलन्दर सम्प्रदाय में एक मलंग तब्का सम्प्रदाय है जो जटाधारी है। हशीश गांजा पीता है। हिन्दू रहस्यवाद में साधु और सन्यासियों का ऐसा वर्ग है। सूफीमत में चिश्तिया सिलसिला की खानकाह या सोहबत में योगी भी होते थे। सूफी उनका आदर करते थे।

## 19.6 सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद में अन्तर

समानता को हमने सूफीमत और हिन्दूरहस्यवाद में बतलाया अब हम दोनों में अन्तर को निम्न प्रकार से स्पष्ट करते है।

1. सूफीमत की जड़े इस्लाम धर्म में थी। हिन्दू रहस्यवाद की जड़ें वेदान्त और उपनिषद में थी और रहस्यवाद बौद्ध या जैन धर्म से प्रभावित थे।
2. सूफीमत ने ईश्वर की प्राप्ति के लिए मारिफत का मार्ग अपनाया या हिन्दू रहस्यवाद ने भक्ति का मार्ग अपनाया।

3. हिन्दू रहस्यवाद ने एकेश्वर वाद को मान्यता दी लेकिन ईश्वर निरंजन के त्रिरूप को माना – ब्रम्हा, विष्णु महेश।
4. सूफीमत में वंहदत अल वजूद और वह दल अल शूहूद का नजरया था पहले को इब्ने अरबी ने पेश किया और दूसरा सरहिदी मुजछिद अलिफ सानी ने लेकिन हिन्दू रहस्यवाद ने कण–कण में ईश्वर को माना आवश्यक मगरमूर्ती करने लगे।
5. सूफीमत में आत्मा ईश्वर के करीब होना चाहती है। वे ईश्वर का दर्शन भी करती है हिन्दू रहस्यवाद आत्मा के परमात्मा में जम (मिलाजाने) को मानते है। सूफियों के लीन होने नजदीक दोनों एक नहीं।
6. मुस्लिम सूफीमत में आत्मा का मकाम स्वर्ग है जहां वै ईश्वर के शरण में रहेगी हिन्दू रहस्यवाद आवागमन (तनासूख) को मानते है। आत्मा बार–बार जन्म लेती है। दुनिया बदलती है। जब तक उसे मोक्ष नहीं मिलता।
7. हिन्दू रहस्यवाद में आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है। इस पर अवतारवाद की थियोरी में जन्म लिया। ईश्वर मनुष्य रूप में जन्म लेता है। राम, कृष्ण ईश्वर का वह ही रूप है सूफी मत अवतारवाद को नही मानता। सूफी मत आत्मा के हूलूल के विचार में को नहीं मानती।
8. रहस्यवाद ईश्वर के रूप को मानकर मूर्ति पूजा को ईश्वर पर ध्यान केन्द्रित करने को आवश्यक मानता है। सूफीमत मूर्ति पूजा का विरोधी है। ईश्वर उनके यहां ला शरीक ला है अर्थात ईश्वर का कोई शरीक नहीं।
9. हिन्दू रहस्यवाद फना को मानता है जो निर्वाण का नाकाआत्मक पहुंच है सूफी बाद फना के बाद बका (जिन्दगी) को मानता है। हिन्दू रहस्यवाद अजे शून्य मानता है। और शून्यवाद को मानता है। सूफीवाद में मौत के बाद जीवन (जिन्दगी) है।
10. सूफीवाद में प्रकाश, तजल्ली, लाईट को ईश्वरीय रूप माना है। सुहरावर्दी सम्प्रदाय और सूफी सम्प्रदाय ईश्वर की तजल्ली (प्रकाश) को मानते है। जरतुरत के यहां भी यह प्रकाश का विचार है। मगर हिन्दू रहस्यवाद में वस्तु जिसमें यह प्रकाश प्रकट होता है। उसकी पूजा होती है। सूर्य नमन का यही हिन्दू रहस्यवाद में आधार है। सूफी मत वस्तु पूजन और सूर्य को मान्यता नही देता। इस्लाम से भी इस की तसदीक होती है।

इनके अनुसार ईश्वर नूरन अलानूर है। रोशनी ही रोशनी है।

## 19.7 सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद का एक दूसरे पर प्रभाव

सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद का प्रभाव भारत में भारतीय जीवन पर पड़ा। धर्म की तंग नजरी कट्टरता में उदारवादी नजर आया। मानवता का भाव पैदा हुआ। दोनों के नजदीक यह संसार व्यर्थ है। मानव जीवन का लक्ष्य प्रभु की प्रार्थना करना है। उसके निकटतम होना है उसकी प्राप्ति प्रेम भक्ति मार्ग से है। सूफीमत ने ईश्वरीय ज्ञान बिना भेद भाव के दिया इससे धर्म परिवर्तन हुआ यानी उनके मार्ग को सत्य जान कर अपनाया। कुछ उनकी अच्छी बातों को सूफीमत ने अपने दायरे में अपना लिया। जैसे गुरू के सामने झुकना, समा और नृत्य द्वारा

ईश्वर के लिए मस्ती, भवें कटवाना, या शरीर को यातनाएं देना इसके लिए चिल्ला माकूज कुए में उल्टा लटकना 40 रातों तक पानी देना इत्यादि। इसे सूफीमत में चिश्तियों ने अपने यहां प्रचलित कर दिया।

हिन्दू रहस्यवाद सत्य और ईश्वर की खोज का मार्ग था। सूफीमत भी यही ईश्वर की प्राप्ति और उसके दर्शन और कृपा का मारिफत का मार्ग था। दोनों का, लक्ष्य एक थे इससे दोनों धर्म एक दूसरे के करीब आये।

ईश्वर की दया ही दोनों का मकसद था फिर झगड़ा कैसा। ईश्वर प्राप्ति की मानव की यह खोज थी।

## 19.8 सारांश

इस इकाई में सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद पर लिखा जाता है। सूफिवाद क्या है। इसका विस्तार से अध्ययन किया गया है।

हमने हिन्दू रहस्यवाद पर भी प्रकाश डाला है। और रहस्यवाद को दर्शन को उजागर किया है।

हमने सूफीमत और हिन्दू रहस्यवाद की समानता को भी विस्तार से बतलाया है और उनके बीच अन्तर का तुलनात्मक अध्ययन किया है।

यह योगी दर्शन, भक्तिमार्ग, ईश्वर प्राप्ति के लिए मानव साधना विस्तार से व्याख्या है हिन्दू रहस्यवाद की उत्पत्ति वेदान्त और उपनिषद से हुई इन सब पर चर्चा है।

बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव पर भी प्रकाश डाला है। हिन्दू में अवतारवाद और आत्मा के जन्म–मरण के सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है।

## 19.9 शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| आबिद | : | तपस्वी |
| फना | : | नष्ट होना |
| करामत | : | चमत्कार |
| बका | : | जीवन, जिन्दगी |
| खानकाह | : | मठ, वह स्थान जहाँ शेख या अपने मुरिदों के साथ रहते, सामूहिक तपस्या साधना करते। |
| खौफ | : | भय, डर |
| चिल्ला | : | 40 दिन का अमल 2 वह जगह जहाँ किसी बुजुर्ग ने |
| | : | चिल्ला किया हो । |
| जमाअत खाना | : | एक बड़ा कमरा जिस में मुरिदों के लिए ठहरने तथा साधना का सामूहिक प्रबन्ध था। |
| तजल्ली | : | रोशनी, प्रकाश, नूर |
| तरीकत | : | साधना का मार्ग या नियम |
| जिक्र | : | अल्लाहा का नाम स्मरण करना। |
| मराकबा | : | तरीका ध्यान |

| | | |
|---|---|---|
| सुलूक | : | रास्ता चलम त्सव्वुक में तलाश -ए-हक |
| वहदत | : | एक |
| शुद्ध | : | त्सव्वुक की भाषा में हर वस्तु में ईश्वर का जलवा नजर आना |
| पीर | : | सूफी गुरु |
| मुर्शिद | : | हिदायत करने वाला, पीर , गुरु |
| फिक्र | : | ध्यान |
| मकाम | : | सूफी यात्रा की मंजिलें |
| मारिफत | : | आध्यात्मिक ज्ञान |
| मुरीद | : | शिष्य |
| सलीब की जंग | : | ईसाईयों से धर्म की लड़ाई |
| लंगर | : | जहाँ नि : शुक्ल भोजन मिलता |
| मुराकबा | : | ध्यान |
| शरियत | : | इस्लामी धर्म का विधान |
| रूजहान | : | झुकाव |
| समा | : | कीर्तन |
| विसाल | : | मृत्यु |
| सिलसिला | : | समप्रदाय |
| औलिया | : | वाली का बहु वचन, वाली दोस्त को खाते है। |
| तसव्वुफ | : | पश्मीना (ऊन वस्त्र) पहनन्ना, इल्म मारीफ़त , दिल से ईच्छाओं को दूर करके ईश्वर का ध्यान लगाना, नफ्स की सफाई का तरीका |
| जिहाद | : | मझाबी जंग |
| सुफ्फा | : | चबूतरा |
| अहले | : | चबूतरे पर बैठने वाले भक्त लोग |
| वस्ल | : | मिलना , एकीकरण |

## 19.10 संदर्भ पुस्तकें


| | | |
|---|---|---|
| डा. तारा चंद | : | दी फुलूएन्स ऑफ इस्लाम<br>ओन इन्डियन कल्चर<br>इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद, 1976 इन्डिया |
| प्रो. अजीज अहमद | : | स्टाडिज इन इस्लामिक<br>कल्चर इन द इन्डियन<br>एनवाईरनमेन्ट, ओक्सफोर्ड<br>प्रेस, लन्दन, 1964 लन्दन |
| आर.ए. निकोल्सन | : | द मिस्टिक्स ओफ इस्लाम<br>पन्ना 5, 6, 813, 16, 1914 लन्दन |
| ए. जे. अरबेरी | : | सूफिज्म, 1950 लन्दन |

| | | |
|---|---|---|
| आर. सी. जेहनर | : | हिन्दू एन्ड मुस्लिम मिस्टिजिज़्म 1960 पन्ना 4, 5, लन्दन |
| दासगुप्ता | : | हिन्दू मिस्टिजिज्म, 1959 |
| डा. युसुफ हुसैन | : | मिडाईवल इंडियन कल्वर 1959 पन्ना 305 लन्दन |
| इमाम गजाली | : | अहया अल उलूम मिश्र 1937–8 अनु मौ. फजलुल करीम, 1982 देहली |
| अबूल फजल | : | आईन ए अकबरी जिल्द 2 |
| इब्न–अल–अरबी | : | अल–फुतूहात–अल मक्किया, अध्याय 73, 1876 काहिरा मिश्र |
| हुजबेरी | : | कश्फ–अल–महजूब |
| डा. इकबाल | : | मेटाफिजिक्स ओफ परशिया |

# इकाई - 20

# मुस्लिम रहस्यवादी विचार धारा और भारतीय संस्कृति को उसका योगदान

**इकाई की रूपरेखा**


20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 रहस्यवाद की राह

20.3 मानवता की सेवा

20.4 तर्क–ए–दुनिया

20.5 अहिंसा एवं शान्तिवाद

20.6 जीविका के साधन

20.7 भारतीय समाज व संस्कृति को देन

20.7.1 सभी वर्गों में भाईचारा

20.7.2 मानव प्रेम एवं समानता

20.7.3 जातिपांत को नकारना

20.7.4 एक समान भाषा की उत्पत्ति

20.7.5 एकेश्वरवाद

20.7.6 सामाजिक बुराईयों के खिलाफ लड़ना

20.8 सारांश

20.9 संदर्भ ग्रन्थ


## 20.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पाठ्यक्रम में शामिल करने का हमारा मकसद यह है कि भारत में मुस्लिम रहस्यवादी विचारधारा किस प्रकार की थी और यह विचारधारा किस सीमा तक लोगों के दिलों को बदलने में सहायक सिद्ध हुई? इसके साथ ही हमारा मकसद यह भी है कि इन मुस्लिम रहस्यवादियों का भारतीय समाज एवं संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा या दूसरे अर्थो में हम कह सकते है कि उनकी हमारे समाज एवं संस्कृति को क्या देन रही है। इन तमाम बातों की जानकारी देना हमारा लक्ष्य है।

## 20.1 प्रस्तावना

यह एक सत्यता है कि मुस्लिम रहस्यवादियों की एक निश्चित विचारधारा थी जिसके आधार पर ही उन्होंने अपने सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार किया। इन रहस्यवादियों के सिद्धान्त वहदत–उल–वजूद के सिद्धान्त पर आधारित था जिसका मतलब यह है कि जो कछु भी इस संसार में है, जो कुछ भी मनुष्य के मस्तिष्क के बाहर या अन्दर में है वह एक ही है जिसे तुम

चाहो तो ब्रह्माण्ड पुकारो चाहो तो प्रकृति पुकारो या फिर उसे, सत्यता या ईश्वर कहकर भी पुकार सकते है। मध्यकालीन सूफीसन्तों ने सिर्फ इस सिद्धान्त को ही प्रतिपादित नहीं किया बल्कि इसी सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने अपना जीवन गुजारा। और इस सिद्धान्त में विश्वास की चरम सीमा तब आती है जब शेख मुहम्मद बिन वसी कहते है मैनें ईश्वर के अलावा किसी भी चीज को नहीं देखा है। चूंकि उन्होंने ईश्वर को ही सभी चीजों के अस्तित्व में पाया वही उनके जीवन का आदर्श बन गया।

उन्होंने अपने आपको ईश्वर के साथ इतना मिला लिया कि 'मैं' 'मै नहीं' का फर्क ही मिट गया उसने अपने प्रत्येक क्षण ईश्वर के लिए त्याग दिया, सिर्फ और सिर्फ 'उसके' लिए ही अपना जीवन गुजार दिया। उनका मानना था कि सिर्फ ईश्वर के लिए ही जीवित रहना है। और उसी के लिए यह जीवन है।

## 20.2 रहस्यवाद की राह

इस सिद्धान्त के बारे में शेख अली हुज्वरी लिखते है– "ईश्वर तक जाने के तीन प्रकार के रास्ते है– (1) मकाम (2) हाल और (3) तमकीन। मकाम का मतलब मंजिल से है जहां से वह ईश्वर की तरफ अपना कदम बढ़ाता है लेकिन वह अपनी प्रथम मंजिल ईश्वरीय भक्ति के बिना नहीं छोड़ सकता। हाल का तात्पर्य है कोई चीज ईश्वर से मानव के दिल में प्रवेश करना। तमकीन का अर्थ है आध्यात्मिक चीज का किसी मनुष्य में उतर जाना। जो एक उच्चतम श्रेणी की होती है शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी ने अपनी पुस्तक में इन मकामों को दर्शाया है जो प्रत्येक सन्त के लिए आवश्यक है– (1) तौबा (Repentance) (2) वरा (Abstinence) (3) जुहद (Piety) (4) फक्र (Repentance) (5) सब्र (Patience) (6) शुक्र (Gratitude) (7) खौफ (Fear) (8) रजा (Raja) (9) तवक्कुल (Contintmut) (10) रिजा (Submission to the Divine will)।

जब एक सन्त अपनी इस आध्यात्मिक यात्रा को प्रारंभ करता है तो उसे कई तरह की अनुभूतियों का अनुभव होता है जिन्हें रहस्य वाद में निम्न संकेतो से जाना जाता है– (1) मुहब्बत (Love) (2) शौक (Yearning or Longing) (3) गैरत (Jealousy) (4) कुर्ब (Proximity) (5) हया (Shame) (6) उन्स–ओ–हैबत (Intimacy and Awe) (7) कब्ज–ओ–बास्त (Contraction and Expansion) (8) फना–व–वका (annihitation and Subsistence) (9) इत्तिसाल (Union) ।

## 20.3 मानवता की सेवा

इन उपरोक्त मकामात की यात्रा एक यात्री के लिए व्यर्थ है यदि उसके दिल में मानव सेवा की भावना नहीं है। मुस्लिम रहस्यवादियों ने मानव सेवा को अपनी सभी आध्यात्मिक क्रियाओं से ऊपर माना है जैसाकि पहले के अध्यायों में बताया जा चुका है कि जब शेख मुईनुद्दीन चिश्ते से भक्ति के सर्वोच्च स्वरूप के बारे में पूछा गया तो उनका जवाब था यह निर्धनों की सहायत करने, परेशान एवं नीचे के तबके के लोगों की सेवा करने के अलावा कुछ नहीं है। बाद के सभी सूफी सन्तों ने इन महान सन्त की शिक्षा पर पूरा अमल किया। उनका मानना था कि समाज में रहे और लोगों को मुसीबत से बचाने का तरीका बताओ। इस संदर्भ में

हजरत निजामुद्दीन औलिया एक कदम आगे बढ़कर बताते है कि ईश्वरीय भक्ति दो प्रकार की है– (1) लाजमी (Obligatory) और (2) मुताद्दी (Communicable)। लाजमी भक्ति का सारा लाभ सिर्फ इसके करने वाले को ही मिलता है इस भक्ति में नमाज रोजा हज धार्मिक मंत्रों का जाप, माला जपना इत्यादि शामिल है जबकि मुत्ताद्दी भक्ति दूसरे लोगों का फायदा एवं आराम पहुंचाने वाली होती है। जिसको दूसरों पर धन खर्च करके, दूसरे के प्रति स्नेह प्रदर्शित करके एवं दूसरे ऐसे तरीके जिनके द्वारा एक व्यक्ति अन्य इन्सानों की भलाई हेतु प्रयोग में लाता है। इस भक्ति का लाभ अन्तहीन और सीमा रहित है। एक शेख ने अपने शिष्यों को कहा कि कयामत के दिन लोगों के दिलों में खुशी भरने में जो इनाम तुम्हें मिलेगा उससे बड़ा इनाम तुम्हें अन्य कोई भी कार्य नहीं दिला सकता और लोगों के दिलों में खुशी भरने का एक तरीका है कि तुम गरीबों मोहताजों, यतीमों, निम्न तबके के लोगों और दुखियारों को मुसीबतों से निजात दिला दो।

## 20.4 तर्क–ए–दुनिया

एक सन्त से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह दुनियां को तर्क कर दे। इस का अर्थ यह था कि एक सन्त दुनियावी या सांसारिक भोग विलास में न पड़े। बल्कि इससे वे नफरत करते थे। जितना एक व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं की तरफ झुकता जायेगा उतना ही वह अपने आध्यात्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति से दूर रहता जायेगा। मध्यकालीन सूफीयों को दुनियां से यह अर्थ धन–दौलत–औरत या सरकारी सेवा के इत्यादि में लिप्त रहना था। एक शेख ने ईसा मसीह का उदाहरण देते हुए बताया कि एक बार उन्होंने दुनिया को एक बूढ़ी व बदसूरत औरत के रूप में देखा। उससे उन्होंने पूछा– तुम्हारे कितने पति है? औरत का जवाब था– असंख्य। क्या इन पतियों में से किसी ने उसे तलाक दिया है? मसीह ने पूछा। औरत ने जवाब दिया– 'नहीं' मैने उन सबको समाप्त कर दिया है।

यहां पर कहने का तात्पर्य यह है कि सांसारिक वस्तुऐं, प्रतिष्ठा सरकारी ओहदा और शहवत (Appetites) ईश्वर एवं मानव के बीच मुख्य बाधाऐं है और दुनियां से मुंह मोड़ने का सीधा सा मतलब यह था कि दुनिया की सभी भोग विलास की सभी वस्तुओं से परहेज किया जाये। निजामुद्दीन औलिया इस संबंध में कहते है कि दुनियां को छोड़ने का मतलब यह नहीं है वह अपने आप में सीमित हो जाये एक चटाई पर बैठकर तपस्या पर लीन हो जाये बल्कि एक व्यक्ति कपड़े धारण करे भोजन करे। जो कुछ भी उसके पास बिना मांगे आये उसे स्वीकार करे लेकिन उसे इकट्ठा न करे। अपना दिल किसी भी चीज में न लगाये और यही तर्क–ए–दुनियां है।

## 20.5 अहिंसा एवं शान्तिवादी

भारतीय मुस्लिम सूफी सन्तों की सोच मानवीय समाज के प्रति अहिंसा वादी एवं शान्तिवादी थी। उनका मानना था कि ताकत के बल पर समस्याऐं नहीं सुलझाई जा सकती बल्कि इससे वे और उलझ जाती है। ताकत का प्रभाव गलत हो जाता है और इससे मानवीय संबंध बिगड़ जाते है। हजरत निजामुद्दीन औलिया का मानना था कि यदि कोई तुम्हारे पथ पर कांटे बिखेरता है और तुम भी ऐसा ही करते हो तो सभी जगह कांटे ही कांटे पैदा हो जायेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कोई तुम्हारें सामने कोई समस्या खड़ी करता है तो उसे सुलझाओ। उलझाओ मत। उनका मानना था कि एक व्यक्ति को अपने अंदर धैर्य एवं सब्र करने

की ताकत होती चाहिये। यदि कोई छोटी सी बात पर अपना धैर्य खो बैठता है तो वह अपने आध्यात्मिक रास्ते से भटक जाता है। गुस्से को दबाना नहीं चाहिये बल्कि इसकी समाप्ति गलती करने वाले को माफ करके करनी चाहिये। अपने आप में यह शक्ति पैदा करनी चाहिये कि कभी भी बदले की भावना दिल में न आये। और यदि वह मनुष्य उसमें सफल हो जाता है तो उसका दुश्मन भी अपना इरादा त्याग देगा। अपने अन्दर कभी भी शैतानी इच्छाओं को हावी न होने दें। मध्यकालीन सूफी सन्तों ने अपने इन सिद्धान्तों का अपने जीवन पर प्रयोग करके दिखाया था वे जैसा कहते थे उसी के अनुरूप व्यवहार भी करते थे अपने दुश्मनों को माफ कर दीजिये। यही बाबा फरीद का कहना था। उनका यह भी कहना था कि मुझे चाकू की आवश्यकता नहीं है बल्कि मुझे एक सूई की आवश्यकता है जिससे में लोगों के फटे दिल सी सकूं। कुछ सूफी सन्तों खासकर हजरत शेख हमीदुद्दीन नागौरी ने इस अहिंसा एवं शान्तिवादी सिद्धान्त को न केवल इन्सानों बल्कि जानवरों तक पर भी लागू किया। उन्होंने जानवारों के प्रति अहिंसा वादी दृष्टिकोण प्रतिपादित किया। उनका कहना था कि जानवरों का वध मत करो। अहिंसा के इस सिद्धान्त को मानने के कारण ही वे पक्के शाकाहरी थे। उन्होंने अपने शिष्यों को भी शाकाहारी बनने एवं इस पथ पर चलने की शिक्षा दी थी।

## 20.6 जीविका के साधन

जीविका चलाने के प्रति भी मध्यकालीन सूफी सन्तों का एक अलग ही नजरिया था उनके यहां सिर्फ दो ही तरीके मान्य थे– एक इहया (बेकार पड़ी भूमि पर काश्त करना) और दुसरा फुतूह (बिना मांगे जो कुछ उनको दे जाये)। वे प्रथम तरीके की अपेक्षा फुतूह पर अधिक जोर देते थे क्योंकि उसमें उनकी व्यक्तिगत आजादी पर कोई प्रभाव नही पड़ता और वे दीवान (राजस्व विभाग) के संपर्क में भी आने से बच जाते है। उनका मानना था कि एक कृषक अपने राजस्व अधिकारी के चंगुल से आजाद नही रह सकता। इसलिए अधिकांश मध्यकालीन सूकी सन्त फुतूह पर ही अपनी जीविका चलाते थे। लेकिन उन्होंने इसके लिए भी निम्नांकित शर्तें लगा दी थी–

1. एक सन्त को सर्वप्रथम अपने को ईश्वर के हवाले कर देना चाहिये।
2. प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूफी के दिल में फुतूह के प्रति कोई इच्छा नहीं होनी चाहिये।
3. वह सारी भेंट जो गतिहीन हो जैसे गांव, जमीन, मकान को तुरन्त अस्वीकार कर देनी चाहिये।
4. नियमित एवं तयशुदा वस्तुऐं ग्रहण नहीं करनी चाहिये।
5. फूतूह इकट्ठा नहीं करना चाहिये जैसे ही यह किसी सूफी के पास आता है तुरंत उसे बांट देना चाहिये।

इन तमाम शर्तो के पालन करने से ही इन मध्यकालीन सूफियों का पतन होने से बच गया। इन तमाम बातों पर गौर करने पर यह साफ हो जाता है कि वे जीविका के प्रति तीन प्रकार का दृष्टिकोण रखते थे–

1. प्रत्येक व्यक्ति की जीविका ईश्वर ने तय कर दी है उसमें से न तो कुछ कमी हो सकती है और न वह बढ़ सकती है।

2. मानवीय इच्छाऐं आवश्यकताओं के साथ–साथ कम से कम होनी चाहिये सांसारिक सम्पत्तियां उन्हें अल्लाह में उनके यकीन को कम करने का एक जरिया है।
3. रोजा (व्रत) आधा ईमान है लगातार उपवास से व्यक्ति सांसारिक बंधनों से ऊपर उठ जाता है और उसके अन्दर का शैतान पराजित हो जाता है।

इन सिद्धान्तों पर अमल करते हुए उन्होंने रिज्क (जीविका) को चार श्रेणियों में विभाजित किया है। –

1. रिज्क–ए–मजमून (जीवन की आधारभूत आवश्यकताऐं) जैसे, भोजन–पानी। प्रत्येक जीवन–इन्सान एवं जानवर– को ये चीजे देनी की जिम्मेदारी ईश्वर की है जिसका वर्णन कुरान में भी आया है।
2. रिज्क–ए–मकसूम वह हिस्सा जो उसको उसके पैदा होते वक्त ही दे दिया गया था और जो लोह–ए–महफूज पर अंकित है।
3. रिज्क–ए–ममलूक निजी सम्पत्ति जैसे धन, जमीन और कपड़े इत्यादि।
4. रिज्क–ए–माऊद– वह जीविका जो खुदा ने पवित्र–पाक लोगों को देने का वादा किया है।

उनका मानना था कि इसे प्राप्त करने के लिए इन्सान को कुछ कार्य करना चाहिये। लेकिन उसके साथ ही यह भी मानना चाहिये कि प्रत्येक चीज को देने वाला सिर्फ अल्लाह ही है और इंसान तो सिर्फ एक साधन मात्र है। इसी दृष्टिकोण के कारण, जिसमें वे यकीन करते थे, अपने दिलो दिमाग की आजादी एवं अपने सम्मान को बनाये रखने में वे कामयाब हो सके।

## 20.7 भारतीय समाज व संस्कृति को देन

मुस्लिम सूफी सन्तों ने न केवल इस्लाम के सिद्धान्तों का प्रसार किया बल्कि इन सन्तों ने अनेक ऐसी बातों का भी जोरदार समर्थन किया जो शरीयत, कुरान एवं मानवीय आधार पर कायम थी। इन्होंने समाज धर्म एवं राजनीतिक व्यवधान में भी जो बुराइयां व्याप्त हो गई थी उनके खिलाफ भी जोरदार आवाज उठाई।

ऊपर लिखा जा चुका है कि इन सन्तों ने कभी भी जातिपात–धर्म, लिंग, वर्ण, रंग तथा पद के आधार पर कोई भेदभाव नहीं रखा था। इन लोगों की खानकाहें हमेशा भेदभाव एवं पक्षपात रहित थी। इनकी शिक्षाओं में हमेशा ऐसा समाज के निर्माण की बात कही जाती थी जहां बुराईयां न हो, भेदभाव न हो आपसी प्रेम एवं भाई चारे को बढ़ाना इन लोगों का मुख्य उद्देश्य होता था। यहां जो भी व्यक्ति आते थे उनकी समस्या का सामाधान किया जाता था। उन्हें हर तरह से मानसिक सन्तुष्टि दी जाती थी। उसके साथ ही उनके आध्यात्मिक विकास में इन सूफी सन्तों ने एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। सारांश में इस मुस्लिम विचार धारा को हमारे समाज व संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा एवं हमारी संस्कृति को क्या देन है इस बारे में हम विचार करेंगे।

शायद ही किसी देश की सामाजिक व सांस्कृतिक अवस्था को सूफी विचार धारा ने इतना अधिक प्रभावित किया हो जितना भारतीय समाज एवं संस्कृति को।

### 20.7.1 सभी वर्गों में भाई–चारा

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि भारत की तुर्कों द्वारा विजय के काफी समय पूर्व से ही मुस्लिम सूफी सन्त भारत में आ बसे थे तब भारतीय समाज अपने संक्रमण काल से गुजर रहा था। जाति व्यवस्था ने एक भयानक रूप प्राप्त कर लिया था और फिर छुआछूत की व्यवस्था ने इसके जख्मों में नमक छिड़क दिया। निम्न जात या वर्ण के लोगों को सारी सुविधाओं से वंचित कर दिया गया था। वे शहर या बस्ती में शाम होने के बाद नहीं ठहर सकते थे वे न तो मंदिर में जा सकते थे और न ही पवित्र पुस्तकों का पठन या श्रवण उनके द्वारा किया जा सकता था भारतीय मुस्लिम सन्तों की खानकाहों के सावधानी पूर्ण अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये खानकाहे अधिकांशत: शहर के बाहर निम्न वर्ग के लोगों की बस्तियों में स्थित होती थी। इन सन्तों के भेदभाव रहित रवैये उनकी विचारधारा का संकीर्ण न होना और वर्णरहित माहौल ने भारतीय समाज के इस निष्कृष्ठ वर्ग को अपनी तरफ आकर्षित किया वे उनकी तरफ आने लगे। जहां उनको यहां के ठीक विपरीत माहौल लगा। वे जो सारे प्रतिबंध एवं विशेषाधिकार जो उनके समाज में लोगों को प्राप्त थे वे यहां व्यर्थ थे। खानकाहों में वे लोग साथ खाते–पीते–सोते और रहते। पवित्र कुरान शरीफ सभी लोगों के लिए खुली थी इस तरह से तौहीद (एकेश्वरवाद) का सिद्धान्त यहां पर पूर्णरूपेण प्रदर्शित होता था जो उनकी सामाजिक व्यवस्था का एक अंग बन गई और मुस्लिम संस्कृति के इस अजीब परन्तु वास्तविक तथ्य की तरफ भारतीय समाज के लोग आकर्षित होने लगे।

### 20.7.2 मानव प्रेम एवं समानता

इसमें कोई शक नहीं कि तुर्कों के द्वारा भारत की विजय ने मुस्लिम सूफी सन्तों के लिए उन शहरों में भी बसने का रास्ता खोल दिया जहां पर वे नहीं जा सकते थे लेकिन इनसे उनके सामने अनेक समस्याऐं आ खड़ी हुई। चूंकि इन सन्तों का राजनीतिक दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न था लेकिन राजनीतिक अपेक्षाओं वाले लोग भी उनकी शरण में आने लगे। चूंकि उनका सामाजिक दृष्टिकोण भिन्न था जो शासक वर्ग के सामाजिक रवैये से पूर्णत: भिन्न था इसलिए भी लोग उनकी तरफ आने लगे। लोगों के राजनीतिक दौरे पड़ने वाली स्थिति भी खानकाहों में ठीक की जाती थी। वे यहां शान्ति से बैठते थे जहां उनको मानव प्रेम एवं भाई चारे का पाठ पढ़ाया जाता था। तुर्क सुल्तानों ने निम्न वर्ग के लोगों से बात तक करना बंद कर दिया था लेकिन इन सन्तों ने अपनी खानकाह के दरवाजे सभी तरह के लोगों धनी–निर्धन, ऊँच–नीच, ग्रामीण–शहरी, पुरूष–महिला के लिए खोल दिये थे। एक सम्भ्रान्त (Sharif) और एक निम्न जात, (Razil) जिसका जबरदस्त उल्लेख हम जियाउद्दीन बरनी की फतवा–ए–जहांदारी और फखर–ए–मुद्दब्बिर की 'आदाब–उल–हर्ब' नामक पुस्तकों में पाते है इन खानकाहों में अर्थहीन थी। शासक वर्ग शिक्षा को उन वर्ग तक ही सीमित रखना पसंद करता था निम्न वर्ग के लोगों तक उसके फैलाव से मना करता था। दूसरी तरफ इन सूफी सन्तों ने अशिक्षा के खिलाफ लड़ाई लड़ी। वास्तव में यह उन्हीं के लगातार जाति प्रथा एवं भेदभाव के विरूद्ध संघर्ष के कारण ही इस भावना का विकास मुस्लिम समाज में न हो सका जिसे शासक वर्ग प्रेरित कर रहा था और उन्होंने इस्लामिक सद्धिान्तों समानता व बंधुत्व को स्थायित्व प्रदान किया। सुल्तान बलबन

निम्न वर्ग के लोगों से बात भी नहीं करता था लेकिन जब वह इन खानकाहों एवं उनके आसपास से गुजरता था तो उसे यह अहसास हो जाता था कि यहां पर उसकी पहचान एक साधारण व्यक्ति से अषिक नहीं है। प्रारम्भिक चिश्ती सन्तों की ये खानकाहें हालांकि दिल्ली सल्तनत के राजनैतिक दायरे में अवस्थित थी लेकिन वे दिल्ली साम्राज्य का अंग नहीं थी उनकी अपनी अलग ही दुनियां थी। दरबारी गंदगी उनकी आध्यात्मिक संजीदगी और वर्गहीन माहौल को स्पर्श नहीं कर सकती थी।

### 20.7.3 जात–पात को नकारना

भारत में मुसलमानों के स्थापित होने के बाद, देश के दो महत्वपूर्ण वर्गों– हिन्दू, मुसलमान में सामंजस्य स्थापित करना एक नैतिक और बौद्धिक आवश्यकता ही नहीं थी बल्कि एक अतिआवश्यक सामाजिक जरूरत थी। विजेताओं ने कुछ शारीरिक एवं नैतिक आधारों पर यहां अपना राज्य तो अवश्य स्थापित कर लिया था लेकिन वे अपना राज्य तब तक स्थाई नहीं कर सकते थे जब तक कि देश का अधिकांश तबका उनसे जाति, धर्म भाषा एवं सांस्कृतिक रूप से भिन्न था। समय के साथ अपने विचारों एवं दृष्टिकोण को बदलना समय की एक महती आवश्यकता बन गई थी। मुस्लिम सूफी सन्तों ने इन अवस्थाओं को बदलने में पहल की और उनकी वैचारिक, सामाजिक, भाषायी गतिरोधों को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और एक समान सांस्कृतिक दृष्टिकोण को विकसित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

कूपमंडूकता और अपने आपको को ही सबसे उच्च श्रेष्ठ समझना सांस्कृतिक सम्मिश्रण के रास्ते का एक महान अवरोध था। मुस्लिम विचारक समझते थे कि हम श्रेष्ठ है उधर हिन्दू भी अपने आपकों को कम नहीं समझते थे। ऐसे वातावरण में इन भारतीय मुस्लिम सन्तों ने सहिष्णुता और सामंजस्य का दृष्टिकोण अपनाया।

इस महान विचारधारा ने उस अविश्वास और पृथकत्व के माहौल को तोड़ा जिसने भारत के अनेक सांस्कृतिक समूहों में स्नेह व सामंजस्य स्थापित किया और जिसने ही नये सामाजिक व वैचारिक सामंजस्य का मार्ग प्रशस्त किया। हजरत अमीर खुसरों ने इन भारतीय मुस्लिम सन्तों के विचारों का पुर जोर समर्थन किया था और विभिन्न धर्मों में सामंजस्य स्थापित करने हेतु अनेक हिन्दू रिवाजों, परम्पराओं और प्रथाओं की अहम् भूमिका के बारे में उल्लेख करते है।

भारतीय मुस्लिम सन्तों ने वैचारिक सामंजस्य की अपेक्षा भावनात्मक सामंजस्य पर अधिक जोर दिया जो एक धीमा और एक छोटे वर्ग को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया था। भावनात्मक सामंजस्य एक कठिन कार्य था लेकिन इसका परिणाम निकलना अवश्यंभावी था एवं भारी तादाद मे इसका प्रभाव होने की उम्मीद थी। ऐसा हम इस बात से पाते है कि भारतीय सूफी सन्त हिन्दू धार्मिक विचारों की अपेक्षा हिन्दू धार्मिक परम्पराओं में अधिक रूचि रखते थे।

### 20.7.4 एक समान भाषा की उत्पत्ति

भारतीय मुस्लिम सन्तों द्वारा हिन्दू के साथ घनिष्ठ संबंध बनाने की उत्सुकता और उनके धार्मिक जीवन व विचारों को बेहतर समझने के प्रयास ने विचारों के आदान–प्रदान के एक समान तरीके का विकास किया। चूंकि इन सूफियों के यहां पर हिन्दवी भाषा प्रारंभ से ही प्रयोग

की जाती रही है तो इसमें यह कोई शक नहीं है कि उर्दू भाषा का जन्म स्थल इन्हीं सूफी सन्तों की खानकाहें थी जहां पर अनेक तरह के भाषायी व्यक्ति एक ही भाषा का प्रयोग करते थे।

### 20.7.5 एकेश्वरवाद

सूफी सन्तों की शिक्षाओं का मुख्य केन्द्र ईश्वर की एकता और बंधुत्व की भावना थी। इन्हीं दो बातों के आसपास इन सन्तों की शिक्षाएं केन्द्रित होती थी। इन सिद्धान्तों का तत्कालीन हिन्दू समाज व संस्कृति पर किस कदर प्रभाव पड़ा इसका अंदाजा बाद की शताब्दियों होने वाले हिन्दू धार्मिक आन्दोलनों से लगाया जा सकता है।

यह एक सत्य है कि 14वीं एवं 15वीं सदी में हिन्दू भक्ति आन्दोलन का नेतृत्व हिन्दू समाज के निम्न वर्ग के लोगों ने ही किया था। यह एक ऐसा वर्ग था जो मुस्लिम सन्तों की शिक्षाओं और उनके खानकाही जीवन से काफी प्रभावित हुआ था। यह भी एक उल्लेखनीय घटना थी हिन्दू धर्म के इतिहास में इससे पूर्व शायद ही समाज ने निम्न वर्ग से उठकर इसका नेतृत्व किया हो। जिस वर्ग का चैतन्य, कबीर, नानक, धन्ना दादू इत्यादि प्रतिनिधित्व करते थे उससे पहले कोई धार्मिक या भक्ति का नेता नहीं बना था। भक्ति शाखा के सन्तों ने अपना जीवन का एक हिस्सा इन खानकाहों में ही गुजारा था।

### 20.7.6 सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लड़ना

भारतीय समाज एवं संस्कृति को सूफी सन्तों के अन्य महत्वपूर्ण योगदान का उल्लेख करना भी अतिआवश्यक है। भारत में तुर्क सत्ता की स्थापना के साथ ही शहरी क्रान्ति का सूत्रपात हुआ था जिसके कारण अनेक सामाजिक बुराइयों का भी जोर शुरू हो गया। हजरत अमीरखुसरो की पुस्तक किरानुस्सादैन और जियाउद्दीन वरनी की 'तारीख–ए–फिरोजशाही' में बलबन की मृत्यु के बाद और अलाउद्दीन खलजी के उत्कर्ष से पहले जो माहौल दिल्ली का था उसकी झलकियां हमें देखने को मिलती है। मध्यकालीन खानकाहों ने तत्कालीन समाज के संतुलन बनाये रखनें में अहम भूमिका निभाई थी। ऐसा कोई भी सामाजिक या नैतिक जुर्म या बुराई नहीं थी जैसे दासप्रथा, कालाबाजारी चीजों को इकट्ठा करना, अधिक मुनाफा वसूल करना, शराब, भोगविलास इत्यादि के खिलाफ आवाज न उठाई हो। इन सूफी सन्तों की शिक्षाओं के महत्व एवं उनके परिणामों पर नियाउद्दीन बरनी उल्लेखनीय ढंग से लिखता है कि लोगों में बुराईयां काफी हद तक कम हो गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन सूफी सन्तों ने सभी प्रकार की सामाजिक बुराईयों के खिलाफ शिक्षाऐं दी और प्रत्येक दर्शनार्थी को इन्हीं शिक्षाओं पर चलने व्यवहार करने पर जोर दिया। परिणामत: जिया बरनी यह लिखने पर मजबूर था कि समाज में से अनेक बुराईयां कम हो गई थी जो इन सन्तों का एक महत्वपूर्ण योगदान है।

## 20.8 सारांश

उपरोक्त अध्याय को पढ़ने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि मध्यकालीन सूफी सन्तों ने इस्लाम की परिधि में रहकर एक विचारधारा का विकास किया उनका मानना था कि ईश्वर एक है और उस तक पहुंचने के मार्ग अलग–अलग है लेकिन सबका मकसद एक ही है। उनका मानना था कि यदि आप ईश्वरीय भक्ति करते है और ईश्वर की कृति–मानव–से घृणा

करते है तो आपकी यह भक्ति, नमाज, प्रार्थना बेकार है। मानव की सेवा करना ही इन सन्तों की सबसे बड़ी शिक्षा थी। और इसलिए ही इन्होंने इसपर सर्वाधिक बल दिया है। ईश्वरीय भक्ति के लिए एक व्यक्ति को परिवार, समाज शहर छोड़कर जंगल में जाकर बैठकर तपस्या करना जरूरी नहीं है वह समाज में रहे लोगों की व्यथा को दूर करे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करे एवं उन्हे सन्मार्ग पर चलने की हिदायत दे। इन्हीं सूफी सन्तों ने अहिसां एवं शान्तिवादी विचार धारा का भी पाठ पढ़ाया। उनका मानना था कि हिंसा मारने से ही नहीं बल्कि वाणी से भी हो सकती है इसलिए सद्वचनों पर जोर दिया। अपने स्वाद के लिए जीवों की हत्या करना भी उनके लिए एक अपराध माना जाता था वे ' जीयो और जीने दो' के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। उनका मानना था कि जीविका कमाने के लिए किसी के आगे हाथ मत फैलाओ। अपनी जीविका खुद कमाओ। कृषि या फुतुह को ही अपनाने पर उन्होंने बल दिया था।

इन विचार धाराओं को समझने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि उन्होंने समाज में भाईचारे की भावना का विकास किया मानव प्रेम एवं मनुष्य की समानता पर अधिक बल दिया इसके साथ ही उनलोगों ने इस बात पर जोर दिया कि समाज में जो जांत–पांत, ऊँच–नीच, छुआछूत है वह सब मनुष्य की बनाई हुई है और उनका ईश्वर के सामने कोई महत्व नहीं है। एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान उर्दू भाषा का विकास इन्हीं सन्तों का है जो आज भारत की एक प्रमुख भाषा के रूप में जानी जाती है। इन्होंने न केवल एकेश्वरवाद जाति–प्रथा, ऊँच–नीच, इत्यादि के भेदभाव को मिटाने का प्रयास किया बल्कि मध्यकालीन समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों का भी इन सूफी सन्तों ने विरोध किया और एक ऐसा वातावरण तैयार किया जिसमें भारतीय समाज अनेक बुराईयों से मुक्त हो गया।

## 20.9 संदर्भ ग्रन्थ


1. Some aspects of Religion and Politics in India - -By K.A. Nizami
2. Influence of Islam on Indian Culture - -Tara Chand
3. A History of Sufism in India - -S.A.A. Rizri
4. Mystcism - -Nicolson
5. Awariful Maarifi - -Shaikh Shihabuddin Suhrawardi.
   (Trans Maulvi Abdul Hassan - -Naval Kirhore Press 1926)
6. Life and Times of Baba Farid - -K.A. Nizami
7. Fatawa–i–jahandari - Barni -(Trans–Habib and Afsar Afzaluddin)

ISBN 13/978-81-8496-278-9